आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज का जीवन परिचय



पूर्व नाम : पारसचंद जैन
पिता एवं माता : श्री शिखरचंद जैन, श्रीमती मायाबाई जैन
जन्म : 11 सितम्बर 1967, फुटेरा कलां, जिला दमोह (मध्यप्रदेश)
शिक्षा: बी.ए., डिग्री कॉलेज, दमोह (मध्यप्रदेश)
ब्रह्मचर्य व्रत : 19 दिसम्बर 1984, अतिशय क्षेत्र, पनागर, जबलपुर (मध्यप्रदेश)
क्षुल्लक दीक्षा : 8 नवंबर 1985, सिद्धक्षेत्र अहारजी, टीकमगढ़ (मध्यप्रदेश)
ऐलक दीक्षा : 10 जुलाई 1987, अतिशय क्षेत्र थूवोन जी, अशोकनगर (मध्यप्रदेश)
मुनि दीक्षा : 31 मार्च 1988, महावीर जयंती, सिद्धक्षेत्र सोनागिरि जी, दतिया (मध्यप्रदेश)
दीक्षा गुरु : संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज
आचार्य पद : 25 जनवरी 2015, इंदौर (समाधि पूर्व आचार्य श्री सीमंधरसागर जी महाराज द्वारा)

कृतियाँ एवं रचनाएँ

आचार्यश्री की साहित्य साधना अत्यंत व्यापक और प्रेरणादायी है। उन्होंने दो दर्जन से अधिक कृतियों का सृजन किया है, जिनके माध्यम से आचार्य श्री ने जैन दर्शन के गूढ़ तत्त्वों को सरल और व्यवहारिक रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है।

1. **आगम ग्रंथ**- आगम अनुयोग, जैनागम संस्कार (हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती, तमिल, कन्नड़), आध्यात्मिक प्रवचन, पर्युषण पीयूष।
2. **काव्य व शतक**- तीर्थोदय काव्य, सदाचार सूक्ति काव्य, मोक्षप्रदायक काव्य (आर्जवोदय शतक, सम्यगं प्रभावना काव्य, तीर्थंकर स्तुति शतक, सम्यक् ध्यान शतक, श्री अंतादि शतक, गुरु-गुण महिमा काव्य, आशीर्वाद शतक, धर्म भावना शतक, अध्यात्म समयोदय काव्य), ज्ञान वर्धन काव्य आदि।
3. **पद्यानुवाद**- पद्यानुवाद मंजरी (गोम्मटेश थुदी, भक्तामर स्तोत्र, द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, समाधितंत्र, वारसाणुवेक्खा, तत्त्वसार, प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)।
4. **अन्य विशेष**- आर्जव कविताएँ, लोक कल्याण विधान, ॐ योग ध्यान, आर्जव वचनामृत, आर्जव सूक्तियाँ एवं आर्जवसागर के दोहे आदि।

विशेष उपलब्धियाँ- आचार्य श्री को Chania International University द्वारा भारतीय दर्शन, जैन आगम के प्रचार-प्रसार एवं सामाजिक जागरण के क्षेत्र में किए गये अद्वितीय योगदान हेतु Docotrate of Philosophy की मानद उपाधि प्रदान की गई। एवं America international University द्वारा Doctorate of Littrature(D.Litt.) की उपाधि प्रदान की गई। डॉ. आचार्य श्री आर्जवसागर जी को अनेक आध्यात्मिक, साहित्यिक एवं मानवीय योगदान के लिए यूएसए, लंदन, एशियन, यूएन, इंडिया, गिनीज, इंटरनेशनल, वर्ल्ड वाइड, लिमका बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड के संस्थानों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सम्मान से अलंकृत किया गया है। इसके माध्यम से पूरे विश्व में आचार्य भगवन् की कृतियों की कीर्ति सर्वव्यापी फैली है। अनेक संस्थाओं द्वारा आपको ''ब्रह्माण्ड के देवता'', ''जैन धर्म के गौरवान्वित संत'', ''अहिंसक प्रचारक'', ''आध्यात्मिक संत'', ''आहारीपथ विज्ञान के ज्ञाता'', ''साहित्यिक प्रतिभा संपन्न'', ''20 वीं सदी के हिंदी साहित्य के, सर्वोच्च शिखर'', ''विश्व के भगवान'', करुणा के सागर, अहिंसा के पुजारी, तमिल देश के उद्धारक संत, महावीर प्रतिमूर्ति, विद्या गुरु से दीक्षित बुंदेलखण्ड के प्रथमाचार्य, बहुभाषाविद् ''वर्ल्ड गॉड'', ''चारित्र शिरोमणि'' जैसी उपाधियाँ देकर जैसी उपाधियां देकर स्वर्ण भारत सम्मान, राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पुरस्कार, भारतीय रत्न अवार्ड, पद्म श्री गौरव सम्मान, भारत गौरव रत्न, भारत प्रतिभा सम्मान, नेशनल अवार्ड, प्रेरणा सम्मान, भारतीय उत्कृष्टता सम्मान, नव भारत सेवा रत्न सम्मान, ग्लोबल अचीवर्स अवार्ड, अंतर्राष्ट्रीय उत्कृष्टता पुरस्कार, समाज सेवा आदर्श रत्न पुरस्कार, बिजीनेरी लीडर अवार्ड, विजय रत्न सम्मान, विद्या रत्न सम्मान, पीएम मोदी विजन ऑफ भारत अवार्ड, श्रेष्ठ रत्न सम्मान, भारत स्वाभिमान, विजय गौरव सम्मान, स्टार ऑफ द ग्लोब अवॉर्ड, अखंड भारत सम्मान, राष्ट्रीय गौरव सम्मान, महात्मा गाँधी राष्ट्रीय पुरस्कार, एपीजे अब्दुल कलाम नेशनल अवार्ड, स्वामी विवेकानंद प्रेरणा सम्मान, डॉ. भीमराव अंबेडकर नेशनल अवार्ड, उज्जवल भारत पुरस्कार, इंडिया प्राइड इन एजुकेशन पुरस्कार, सद्भावना सेवा सम्मान, वर्ल्ड टैलेंट अवार्ड, ग्लोबल प्रतिष्ठित अवार्ड, इंटरनेशनल स्टार अवार्ड, राष्ट्रजिंग भारत स्टार अवार्ड, लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड, द्रोपदी मुर्मू प्रेसिडेंशियल ऑनर फॉर सोशल जस्टिस, भारत के प्रभावशाली संत /व्यक्ति पुरस्कार, भारत के दयालु संत, सहित अनेक अवार्ड एवं उपाधियों से भी सम्मानित किया है।

प्रवचन और प्रेरणाएँ- डॉ. आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज अपने ओजस्वी, तार्किक और हृदयस्पर्शी और आध्यात्मिक प्रवचनों के लिए प्रसिद्ध हैं। आपके प्रवचन चौदह प्रदेशों संबंधी अनेकों जेल, स्कूल, विश्वविद्यालय, आश्रम आदि अनेक संस्थानों में भी हुए हैं। आचार्य श्री का उपदेश समाज में नशामुक्ति, शाकाहार, नैतिकता, अहिंसा और शिक्षा के प्रसार का माध्यम बन चुका है। आचार्य श्री विशेष रूप से जनमानस को सम्यग्दृष्टि बनाकर संयम, सदाचार और आत्मानुशासन की ओर प्रेरित करते हैं।

आध्यात्मिक योगी, बहुभाषाविद्, 20 से अधिक शिष्यों के दीक्षादाता आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज का जीवन तप, त्याग, साधना और सेवा का आदर्श उदाहरण है। समाज में उनकी साधना के माध्यम से आध्यात्मिकता, संस्कृति और मानवीय मूल्यों पर निरंतर प्रकाश फैल रहा है। गुरुदेव ने देश की संस्कृति की संपदा को उद्घाटित करते हुए कीर्तिमान स्थापित कर भारत देश को गौरवान्वित किया है।

आचार्य श्री आर्जवसागर जी रचित साहित्य



आगम-अनुयोग

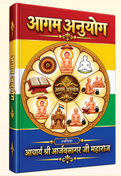
आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज

आगम-अनुयोग



रचयिता

आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज



आगम-अनुयोग ग्रन्थ-सार

'आगम-अनुयोग' जैन आगम-साहित्य की गहनता, तात्त्विक समृद्धि एवं आध्यात्मिक दृष्टि को सरल, संगठित और ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करने वाली एक महत्वपूर्ण कृति है। जैन दर्शन के चार अनुयोग—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग—के माध्यम से जीव के अस्तित्व, उसके कर्तव्य तथा परम लक्ष्य को समझने का मार्ग प्रशस्त किया गया है।

इस कृति में लोक-अलोक की रचना, कर्म-सिद्धान्त की सूक्ष्मता, तीर्थंकरों का चरित्र-विज्ञान, श्रावक एवं मुनिधर्म की मर्यादाएँ तथा विविध तात्त्विक विषयों को प्रश्नोत्तर एवं व्याख्यात्मक शैली में स्पष्ट किया गया है। विषयों की प्रस्तुति में आगमिक प्रामाणिकता, तार्किक दृष्टि और आध्यात्मिक विवेचन का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

यह ग्रंथ केवल पाण्डित्य-प्रदर्शन तक सीमित नहीं है, बल्कि आगम के गूढ़ सिद्धान्तों को आधुनिक जिज्ञासु, विद्यार्थी एवं अध्येता के लिए सुबोध बनाने का सार्थक प्रयास है। इसकी विषयवस्तु स्नातकोत्तर विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं विशेष रूप से जैन दर्शन में पीएच.डी. करने वाले शोधकर्ताओं के लिए भी उपयोगी संदर्भ-सामग्री के रूप में महत्वपूर्ण हो सकती है। इसमें निहित विषय शोध, तुलनात्मक अध्ययन, तात्त्विक विवेचन एवं नवीन शोध-दृष्टि के लिए अनेक संभावनाएँ प्रस्तुत करते हैं।

इस ग्रंथ की विषयवस्तु की व्यापकता एवं प्रासंगिकता का परिचय इस तथ्य से भी मिलता है कि 'आगम-अनुयोग' पर आधारित अनेक विद्वत्-संगोष्ठियों का आयोजन हो चुका है, जिनमें देश के विभिन्न विद्वानों ने इसके विविध पक्षों पर गंभीर विचार-विमर्श किया है। इससे यह कृति केवल पाठन की सामग्री न रहकर अध्ययन, मनन, शोध और विद्वत्-चर्चा का एक सशक्त आधार बनती है।

विशेष रूप से नवपीढ़ी के लिए यह कृति जैन दर्शन के अध्ययन, स्वाध्याय और आत्मचिन्तन की दिशा में उपयोगी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है।

आगम के सिद्धान्तों को समझने से लेकर उन्हें जीवन-दृष्टि में उतारने तक—'आगम-अनुयोग' ज्ञान, विवेक, शोध और आत्मबोध की दिशा में एक प्रेरक एवं उपयोगी कृति है।

इंजी.बहिन ऋषिका जैन
प्रबंध संपादक-भावविज्ञान पत्रिका

ॐ

आगम अनुयोग

[प्रश्नोत्तर-प्रदीप]

(भाग 1-2)

सम्यग्ज्ञान-भूषण एवं सिद्धांत-भूषण पदवी हेतु कोर्स
भाव-विज्ञान धार्मिक परीक्षा बोर्ड, भोपाल द्वारा स्वीकृत



रचयिता
आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

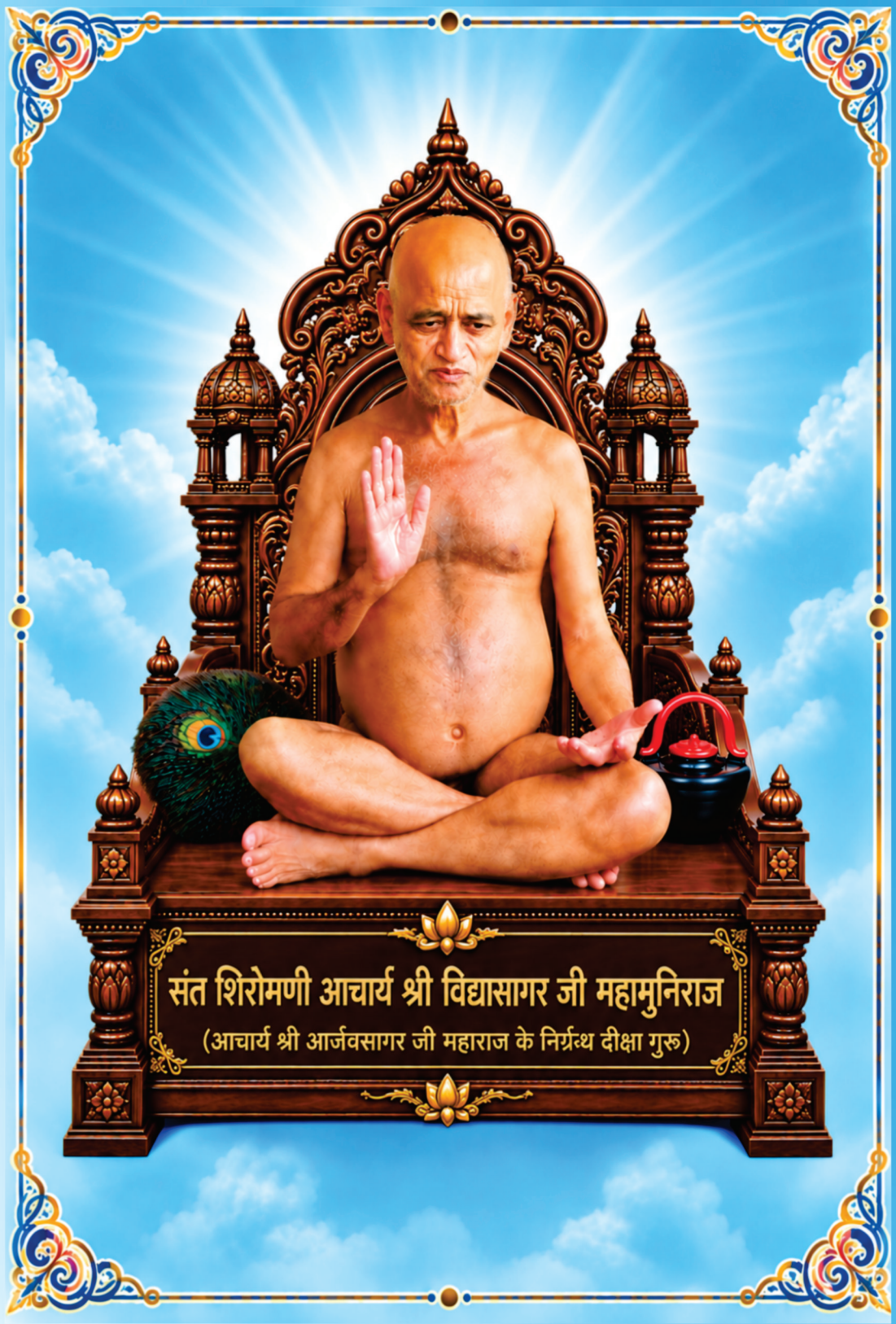
आगम अनुयोग

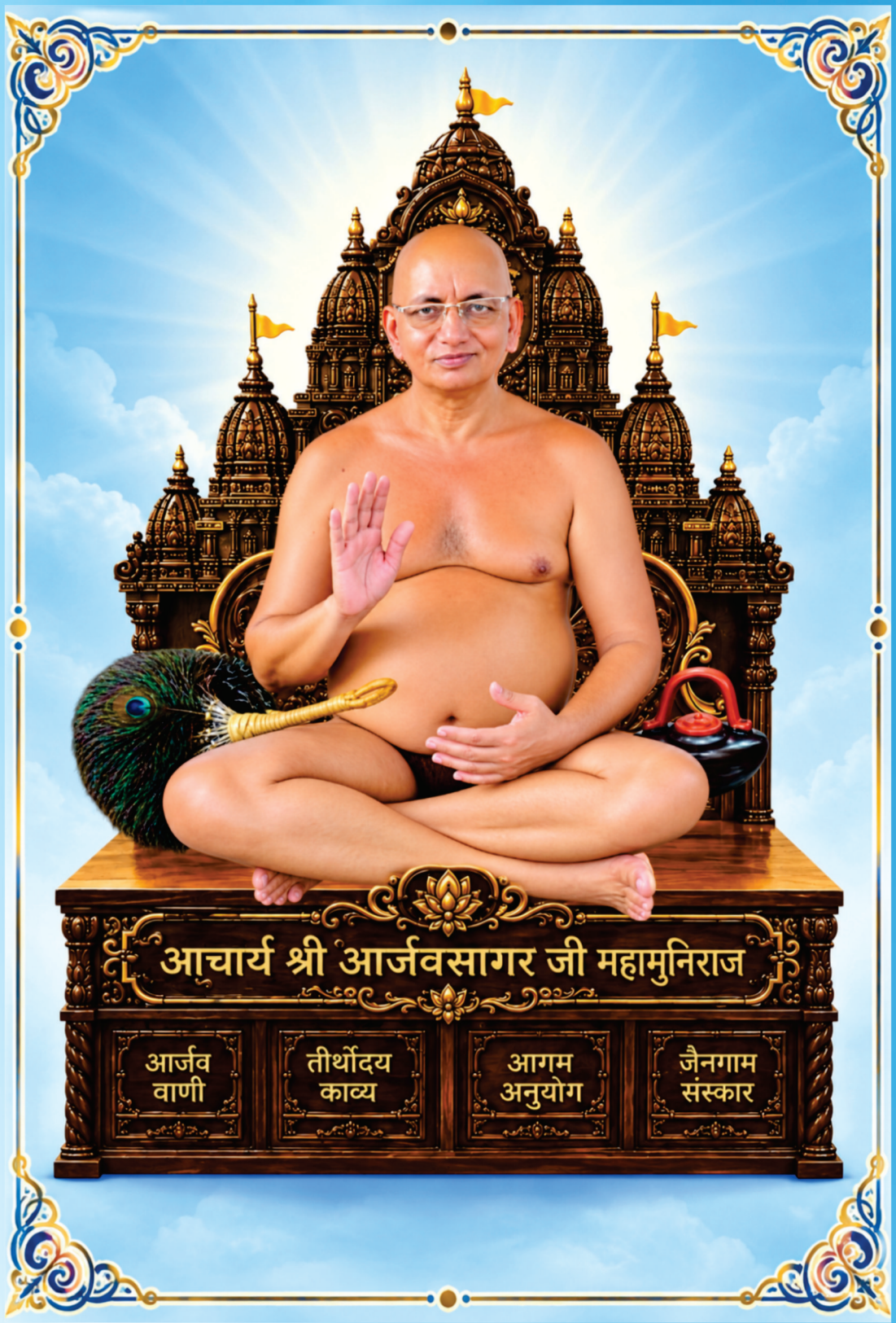
(भाग 1-2)

कृतिकार	–	आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज
पावन स्मृति	–	राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी 2026, बड़ौत (उत्तर प्रदेश)
संस्करण	–	द्वितीय
पुण्यार्जक	–	• श्रीमती गीता, मनीष-पूर्णिमा जैन, इंदौर (म.प्र.) • श्रीमती चंद्रप्रभा अजित मीना मोनल खुशबू स्वप्निल मयूरी जैन (जखौरा वाले) सपरिवार उदयनगर इंदौर (म. प्र.)
प्रतियाँ	–	1000
मुद्रक	–	पारस प्रिंटर्स, भोपाल 207/4, सांईबाबा काम्पलेक्स, जोन-1 एम.पी.नगर, भोपाल फोन : 0755-4260034, 9826240876
प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान	–	आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट, भोपाल मो. : 7049004653, 9425011357, 9425601161, 9425601832, 7222963457
Website		www.aarjavvani.com

© – सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित

मूल्य – पुनः प्रकाशन हेतु सहयोग


संत शिरोमणी आचार्य श्री विद्यासागर जी महामुनिराज
(आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज के निर्ग्रन्थ दीक्षा गुरू)


आचार्य श्री आर्जवसागर जी महामुनिराज
आर्जव वाणी
तीर्थोदय काव्य
आगम अनुयोग
जैनगाम संस्कार

प्रस्तावना / समीक्षात्मक अभिवचन

इंजी. रोहित जैन, नोयडा
सचिव आर्जव प्रभावना संघ, भारत

जैन आगम-साहित्य अनादि परम्परा का वह दिव्य ज्ञानकोश है, जिसमें आत्मकल्याण के समस्त मार्गों का सूक्ष्म एवं व्यापक निरूपण मिलता है। आगमों के चार अनुयोग–प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग–वास्तव में जैन दर्शन के चार स्तंभ हैं, जिनके माध्यम से जीव अपने अस्तित्व, कर्त्तव्य और परम लक्ष्य को समझने में समर्थ होता है।

ऐसे गूढ़ एवं गम्भीर विषयों को सरल, संगठित एवं ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। प्रस्तुत 'आगम-अनुयोग' ग्रंथ में पूज्य आचार्य भगवन् श्री आर्जवसागर जी महामुनिराज ने इस दुष्कर साधना को अत्यंत सफलतापूर्वक संपन्न किया है। उनकी लेखनी में जहाँ एक ओर आगमिक प्रामाणिकता की दृढ़ता है, वहीं दूसरी ओर प्रस्तुति की सरलता एवं सरसता भी अद्भुत रूप से विद्यमान है।

इस कृति की विशेषता यह है कि इसमें जैन सिद्धांत के जटिल तत्त्व–जैसे लोक-अलोक की रचना, कर्म-सिद्धांत की सूक्ष्मता, तीर्थंकरों का चरित्र-विज्ञान, तथा श्रावक एवं मुनिधर्म की मर्यादाएँ–प्रश्नोत्तर एवं व्याख्यात्मक शैली में अत्यंत स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। यह ग्रंथ केवल पांडित्य प्रातव्य का माध्यम नहीं, बल्कि साधकों के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शक के रूप में भी अत्यंत उपयोगी है।

पूज्य आचार्यश्री की साधना, स्वाध्याय एवं गहन आगम-अध्ययन का यह प्रत्यक्ष फल है कि उन्होंने इस कृति के माध्यम से प्राचीन ज्ञान को आधुनिक जिज्ञासुओं के लिए सुलभ एवं बोधगम्य बना दिया है। विशेषतः नवपीढ़ी के लिए यह ग्रंथ जैन दर्शन के अध्ययन का एक सशक्त सेतु सिद्ध हो सकता है।

निःसंदेह, 'आगम-अनुयोग' केवल एक ग्रन्थ नहीं, अपितु जिज्ञासु आत्माओं के लिए एक प्रकाश-स्तम्भ है, जो उन्हें अज्ञान के अंधकार से निकालकर सम्यग्ज्ञान की ओर अग्रसर करता है। इस ग्रंथ में निहित तत्त्वचर्चा केवल स्वाध्याय तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह आत्मा को अंतर्मुखी बनाकर उसके शुद्ध स्वरूप के साक्षात्कार की दिशा में प्रेरित करती है।

'प्रस्तुत कृति में वर्णित सिद्धांत के माध्यम से आचार्य श्री ने जहाँ गूढ़ विषयों को सरल किया है, वहीं उनकी प्रस्तुति में तर्क, प्रमाण और आगमिक प्रमाणों का अत्यंत संतुलित समावेश भी दृष्टिगोचर होता है, जो इस ग्रंथ को विशिष्टता प्रदान करता है।''यह कृति जिज्ञासु, भव्य जीव, साधक सभी के लिए समान रूप से उपयोगी एवं पथप्रदर्शक सिद्ध होने की पूर्ण क्षमता रखती है।'

ऐसी उत्कृष्ट एवं कल्याणकारी कृति के लिए पूज्य आचार्यश्री के चरणों में बारम्बार नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु....

यह ग्रंथ अधिकाधिक जिज्ञासुओं तक पहुँचे और उनके जीवन में धर्म, संयम एवं आत्मचिंतन की ज्योति प्रज्जवलित करे एवं यह ग्रंथ जिनवाणी के सच्चे स्वरूप को जन-जन तक पहुँचाकर धर्मप्रभावना का एक सशक्त माध्यम बने और असंख्य जीवों के आत्मोद्धार का कारण सिद्ध हो। यही मंगल भावना है।

प्राक्कथन

-डॉ. श्रेयांसकुमार जैन बड़ौत,
अध्यक्ष- अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रि-परिषद्

जैन वाङ्मय को ऋषियों, आचार्यों, मुनियों और विद्वानों ने समृद्ध किया है उसी शृंखला में जैनधर्म-दर्शन के श्रेष्ठ आचार्यवर श्री विद्यासागर महाराज से दीक्षित आगम आध्यात्म के विशिष्ट अध्येता, चारों अनुयोगों में निष्णात्, दर्शनशास्त्र के श्रेष्ठ मनीषी, प्रज्ञा और प्रतिभा के धनी कवीश्वर आचार्य श्री आर्जवसागर महाराज ने अनेक रचनाओं का सृजन कर वाङ्गमय की भी वृद्धि की है। आचार्य श्री कारयित्री और भावयित्री प्रतिभावान होने के कारण निरन्तर ग्रन्थों का प्रणयन करते रहते हैं। श्रुतशील आचार्य श्री आर्जवसागर जी की कृतियाँ आगम-अध्यात्म सम्बन्धी विषयों की प्रतिपादिका है। पूज्य श्री की कृतियाँ- अध्यात्मिक प्रवचन, तीर्थोदय काव्य, जैनागम संस्कार, ज्ञान-वर्धन काव्य, सदाचार सूक्ति काव्य, सम्यक् ध्यान शतक, पर्यूषण पीयूष, जैन शासन का हृदय, लोक-कल्याण (षोडसकारण) विधान, ओम्-योग ध्यान, आगम-अनुयोग, मोक्षप्रदायक काव्य, पद्यानुवाद मंजरी आदि ज्ञान प्रभावक हैं। इनमें आचार्य श्री के शास्त्रीय ज्ञान का स्पष्ट प्रतिबोध होता है इन्हीं के माध्यम से आचार्यवर की कीर्ति समस्त प्रबुद्धवर्ग में फैली हुई है क्योंकि ज्ञान से मनुष्य की निर्मल कीर्ति तीनों लोकों में फैल जाती है। इस ज्ञान से ही समस्त लोक में मान्यता बढ़ जाती है। ज्ञान से ही उत्कृष्ट विवेक, शीतलता आ जाती है। ज्ञान से ही पूज्यता के पद प्राप्त होते हैं। ज्ञान का सर्वातिशयी माहात्म्य है। ज्ञान आत्मा का साक्षात्कार कराने में सहकारी होता है। आचार्य श्री का ज्ञान उन्हें रागद्वेष से दूर रखकर आत्म-प्रभावना में निमित्त है।

आत्मप्रभावना के साथ श्रुतप्रभावना में निमित्त ज्ञान के आश्रय से आचार्य श्री आर्जवसागर महराज ने आगम-अनुयोग नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। ग्रन्थ में चारों अनुयोगों का प्रमेय समाहित है प्रथमानुयोग के परिप्रेक्ष्य में भोगभूमि, कुलकरादि की विशद विवेचन की गई है। तीर्थंकर ऋषभदेव का वैभव के अन्तर्गत सोलहकारण भावना, तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध के कारणों पर विचार, ढाई द्वीप में तीर्थंकर सम्बन्धी वर्णन, भूत, वर्तमान और भविष्य कालिन तीर्थंकरों की महिमा लोकत्रय के अकृत्रिम जिनालयों की सम्यक् जानकारी प्रदान कर ग्रन्थ को स्वाध्यायियों के लिए महत्पवूर्ण बना दिया है।

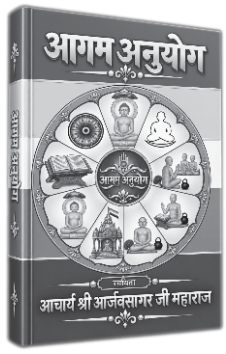
तीर्थंकर ऋषभदेव के वैराग्यादि के प्रसंग प्रश्नोत्तर शैली में बड़े रोचक ढंग से वर्णित किये गये हैं। चक्रवर्ती के वैभवादि को भी वर्णित किया गय है। प्रथमानुयोग में विशेष रूप से त्रेसठ शलाका पुरुषों का वर्णन होता है उसे इस ग्रन्थराज में प्रश्न और उत्तर के रूप में रोचक तथा सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है। विदेह क्षेत्र सम्बन्धी बीस तीर्थंकरों की जानकारी संक्षिप्त से अध्ययन करने वाले व्यक्तियों को करायी है। समवशरण का वैभव और दिव्यध्वनि आदि का विवेचन तो विशिष्ट रूप से दिया ही है। उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी काल की प्ररूपणा भी कर लोगों को कालक्रम का सम्यक् बोध कराया है।

करणानुयोग मीमांसा में जैनगणित विज्ञान, लोक रचना, दीप, पर्वत, काल परिवर्तन आदि जीवों की अवगाहना, ज्योतिष-चन्द्र सूर्य आदि का विवेचन ग्राह्य है। गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणा स्थान आदि को प्रश्नोत्तर शैली में समझाकर ग्रन्थ को उपादेय बना दिया है।

चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग सम्बन्धी विषयों का प्रतिपादन ग्रन्थ की उपादेयता बढ़ाने वाला है। प्रस्तुत ग्रन्थ चारों अनुयोगों के प्रतिपाद्य को सरल-सुबोध शैली में प्रस्तुत करने में कामयाब है। ग्रन्थ की महत्ता इसलिए भी विशेष है कि सभी प्रश्नों के समाधान ग्रन्थ में मिल जाते हैं। तीन लोक सम्बन्धी परिज्ञान इस ग्रन्थ से जितने सरल रूप में प्राप्त होता है उतने सरल रूप में अन्यत्र सुलभ नहीं है। मुनियों व आर्यिकाओं के चारित्र व सामाचार विषय की जानकारी प्रदान करने में यह आगम-अनुयोग ग्रन्थ सर्व-जन संवेद्य है।

यह आगम-अनुयोग नामक ग्रन्थ जन सामान्य से लेकर आगमाभ्यासी सभी व्यक्तियों के लिए अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण है। इसमें आचार्य श्री आर्जवसागर महाराज ने उन महत्वपूर्ण शास्त्रीय विषयों को भी समाहित किया है जिनको उन्होंने अपने मुनिदीक्षा गुरुवर सन्तशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर महाराज से पढ़ा और सुना था। सन्त शिरोमणि आचार्य श्री का तो आगम का परिपूर्ण ज्ञान था उन्होंने अपने शिष्यों को प्रदान कर शिष्यों का तो उपकार किया ही है उन शिष्यों के द्वारा वही ज्ञान जन-जन तक पहुँचाया जा रहा है। जिससे लोककल्याण हो रहा है। आचार्य गुरुवर तो कालजयी व्यक्तित्व सम्पन्न थे उनके शिष्य भी अपनी विलक्षण प्रतिभा और कौशल के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को प्रभावित कर रहे हैं।

आचार्य श्री आर्जवसागर महाराज ने दक्षिण और उत्तर में अभूतपूर्व जिनधर्म प्रभावना की है। अपने उपदेशों के माध्यम से श्रद्धालु समाज का उपकार किया ही है। साथ में शोध पीएच.डी के क्षेत्र में जो लोग संलग्न है उन्हें भी शोध सामग्री प्रदान कर जैन विद्या के क्षेत्र में योगदान देकर उपकृत किया है। यह **आगम-अनुयोग नामक ग्रन्थ** रत्न समस्त स्वाध्याय करने वालों के लिए महत्वपूर्ण है। इसका प्रतिपाद्य आगम-सिद्धान्त अध्यात्म का बोध कराने में परम सहायक है अतः ग्रन्थ प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वाध्याय करने के लिए योग्य है अतः सभी उसका स्वाध्याय कर आत्मकल्याण करें यही मंगल भावना है।



चारों अनुयोगों का पिटारा : आगम-अनुयोग

-इंजी. बहिन ऋषिका जैन, दमोह

संत शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज से दीक्षित परम पूज्य आध्यात्म योगी आचार्य गुरुदेव श्री आर्जवसागर जी महाराज ने मोक्षमार्गोपयोगी अनेक बहुमूल्य कृतियों की रचना की है; जिनमें 'आगम-अनुयोग' एक ऐसी अनूठी, अद्वितीय (Unique)कृति है, जिसमें जैन धर्म के चारों अनुयोगों (प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग) रूप ग्रंथों का सार समाहित है। यह बहुमूल्य कृति स्वाध्याय प्रेमी श्रावकों के लिये अत्यंत मूल्यवान एवं बहुउपयोगी है। इसके माध्यम से आचार्यश्री ने जैन आगम की, लोक-अलोक की काल परिवर्तन, ज्योतिष्क, तीर्थंकर समवसरण, श्रावक-मुनिचर्या की विस्तृत जानकारी का समावेश इसमें किया गया है। यह कृति प्रश्नोत्तरी रूप में अत्यंत सरल शब्दों में लिखित है। इसके माध्यम से सम्यग्ज्ञान भूषण, सिद्धांत भूषण पदवी की उपाधि भी प्राप्त हो सकती है। आगम अनुयोग (प्रश्नोत्तर प्रदीप) का मुख्य उद्देश्य भव्यजीवों को सरलता से स्वाध्याय के माध्यम से आगम ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त कराना है।

गुरुवर की यह अनूठी कृति संपूर्ण जैन दर्शन को बताने वाली है एवं अत्यंत सरल शब्दों में आगम ग्रन्थों का मुख्य ज्ञान कराने वाली है। हम सभी का परम सौभाग्य है कि हमें गुरुवर रचित इस 'आगम-अनुयोग' कृति को पढ़ने का, इसका स्वाध्याय करने का अवसर प्राप्त हो रहा है।

'आगम-अनुयोग' कृति में कुल 2217 प्रश्नोत्तरों के माध्यम से आचार्य भगवन् ने जैन आगम का विशेष वर्णन किया है इसमें कुल 2163 प्रश्नोत्तरों के माध्यम से प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग का विशेष वर्णन किया है।

त्रेसठ (63) शलाका पुरुषों, कुलकरों, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों संबंधी पुराणों का संपूर्ण सारांश 'आगम-अनुयोग' में प्रथमानुयोग में लगभग 404 प्रश्नों में समाहित है। यह प्रथमानुयोग का ज्ञान भव्यों के लिये अत्यंत उपकारी है। इसके ज्ञान से जीवों को सम्यग्दर्शनादि रूप बोधि और धर्मध्यान, शुक्लध्यान रूप समाधि की प्राप्ति होती है। इसी अनुयोग में भोगभूमि-कर्मभूमि की व्यवस्था, पुरुषार्थ का भी विस्तृत विवेचन है।

आचार्य गुरुदेव ने 63 शलाका पुरुषों में भी सर्वप्रथम तीर्थंकर महापुरुषों का वर्णन किया है कि तीर्थंकर कौन होते हैं? किस तरह तीर्थंकर प्रकृति का संचय होता है? भरत क्षेत्र, विदेह क्षेत्र संबंधी कितने-कितने तीर्थंकर होते हैं? किस तरह सौधर्मेन्द्र-शचि इन्द्राणि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव प्रभु का जन्मोत्सव मनाते हैं? किस कारण से उन्हें वैराग्य होता है? किस तरह अयोध्या की रचना होती है? कैसे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त होता है? और उनका समवशरण कितना विशाल विस्तार वाला होता है? कौन से जीव उस समवशरण में उनकी दिव्यध्वनि रूप उपदेश को ग्रहण करते हैं? आदि विशेष शंकाओं का समाधान इस प्रथमानुयोग खण्ड में प्रश्नोत्तर के माध्यम से किया गया है। तीर्थंकरों के विशेष वर्णन के बाद चक्रवर्ती और उनका वैभव आदि एवं बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण, कामदेव आदि महापुरुषों का भी उल्लेख इसमें समाहित है।

करणानुयोग का वर्णन भी प्रश्न 405 से लेकर 1274 प्रश्न तक किया गया है, जिसमें विशेष रूप से तीन लोक का वर्णन समाहित है। अर्थात् लोक-अलोक का विभाग, गणित, उसकी रचना एवं उसमें जीवों का निवास, युग परिवर्तन, गुणस्थान, मार्गणा, प्ररूपणा आदि का ज्ञान प्राप्त कराने वाला यह करणानुयोग खण्ड है। तीन लोक (ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक) के वर्णन में अधोलोक में नरकादि एवं उनके पटलों का विस्तार, वहाँ का वातावरण, नरक के दुःख वहाँ उत्पन्न होने वाले जीवों की लेश्या, नरकों की आयु एवं वहाँ कौन से जीव किस कारण से जन्म लेते हैं आदि का भी मुख्यतः से वर्णन किया गया है। मध्यलोक में भी युग परिवर्तन, कल्पकाल, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल आदि का भी विशेष वर्णन है। एवं देवों की विस्तृत जानकारी भी इसमें समाहित है। (सर्वद्वीप और समुद्र, उन पर स्थित पर्वतों का, भोगभूमि-कर्मभूमि की व्यवस्था का, अकृत्रिम चैत्यालयों का भी विशेष वर्णन प्रश्नोत्तरों के माध्यम से किया गया है।)

चरणानुयोग के अंतर्गत प्रश्न 1275 से 1685 तक के प्रश्नोत्तर में मुनियों संबंधी आचारांग एवं मुनि चरित्र, दीक्षादि छह काल, निर्यापक लक्षण, सामाचर, स्वाध्याय के प्रकार, निषिद्धिका का स्थानादि का विशेष वर्णन किया है।

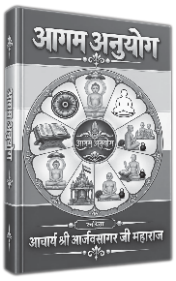
एवं द्रव्यानुयोग में प्रश्न 1686 से 2085 के अंतर्गत, बंध, उदय, सत्व का वर्णन, कर्म प्रकृतियाँ, गुणश्रेणी निर्जरादि, नय, प्रमाण तथा द्रव्य-गुण-पर्याय का विशेष वर्णन एवं सैद्धांतिक प्रकरण के अंतर्गत प्रश्न 2083 से 2163 छह अधिकारों द्वारा शास्त्र व्याख्यानादि का सैद्धांतिक प्रश्न एवं कृति के अंत में सैद्धांतिक प्रकरण के बाद परिशिष्ट में भी प्रश्न 2164 से प्रश्न 2217 तक रहस्यात्मक गूढ़ विषय विशेष रूप से वर्णन किया है। अतः प्रश्नोत्तर के अंतर्गत बहुत ही सुन्दर रूप से गुरुदेव ने सरल भाषा में समझाया है अतः

यह 'आगम-अनुयोग' प्रश्नोत्तर-प्रदीप हम भव्य जीवों को कल्याणकारी रूप है यह कृति मोक्ष रूपी पद (शिवालय) को शीघ्र ही प्रदान करायेगी।

जिनके दर्शन से नयन धन्य हो जाते हैं, जिनको आहार दान देने से हाथ धन्य हो जाते हैं, जिनका सुमरण करने से मन धन्य हो जाता है, जिनका गुणगान करने से कण्ठ धन्य हो जाता है, जिनके पास जाने से जीवन धन्य हो जाता है। ऐसे आगम-अनुयोग ग्रन्थ के प्रणेता परमोपकारी, धर्म प्रभावक, षोडशकारण व्रत प्रणेता, मोक्षमार्ग उपदेशक, आध्यात्मिक संत आचार्य गुरुदेव श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज के चरणों में बारंबार नमोस्तु.... नमोस्तु.... नमोस्तु।

-इंजी. बहिन ऋषिका जैन, दमोह

(B.E., M.A., Ph.D संलग्न)



अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
	प्रथमानुयोग	
	अध्याय-1	
	भोगभूमि कुलकरादि	
1.	आगम का लक्षण	1
2.	आगम के छह विशेषण एवं पञ्च मन्तव्य	1
3.	वक्ता, श्रोता व धर्मोपदेष्टा	2
4.	अनुयोग एवं उसके प्रकार	2
5.	प्रथमानुयोग का लक्षण	3
6.	भोगभूमि, कल्पवृक्ष एवं उनके कार्य	3
7.	शलाका पुरुष का लक्षण	5
8.	कुलकर का लक्षण	6
9.	कुलकर की उत्पत्ति व कार्य	7
10.	पुरुषार्थ एवं प्रयोजनीय कार्य	10
11.	तीर्थंकर; कहाँ कब, कितने?	11
12.	भरतादि क्षेत्रों में कल्याणक व मोक्ष	12
13.	आर्यखण्ड और म्लेच्छखण्ड	13
	अध्याय-2	
	तीर्थंकर ऋषभदेव का वैभवादि	
1.	तीर्थंकर-प्रकृति-बंध के कारणादि	14
2.	भरत क्षेत्र के तीनों काल संबंधी तीर्थंकर	15
3.	विदेह क्षेत्र के तीर्थंकर	15
4.	अयोध्या नगरी की रचना	16
5.	रत्नों की वर्षा, 56 देवांगनाओं द्वारा सेवा	16
6.	माता के सोलह स्वप्न	17
7.	सोलह स्वप्नों का फल	18
8.	शचि इंद्राणी के पुण्य कार्य	18
9.	तीर्थंकर का जन्मोत्सव	19
10.	तीर्थंकर का जन्माभिषेक	21
11.	सुमेरु पर्वत	21
12.	सुदर्शन आदि चार मेरु	21
13.	सुमेरु पर्वत का विस्तार	24
14.	क्षीरोदधि समुद्र का जल	24
15.	तीर्थंकर के अलंकार हेतु रत्नाभूषण	25
16.	आहार-निहार व्यवस्था	26
17.	तीर्थंकर बालक के सुलक्षण	27
18.	तीर्थंकर को वैराग्य	28
19.	देवताओं से मनुष्य श्रेष्ठ	29
20.	ऋषभदेव की दीक्षा का सार्थक प्रयोजन	29
21.	छेदोपस्थापना एवं वर्द्धमान चारित्र	31
22.	तीर्थंकर की शोभा	31
	अध्याय-3	
	तीर्थंकर ऋषभदेव का विहार समवसरणादि	
1.	ऋषभदेव मुनीश्वर की आहारचर्या	33
2.	देवोपनीत पंचाश्चर्य	34
3.	ऋद्धिधारी महामुनीश्वर के आहारोपरांत रत्नों की वर्षा	35
4.	ऋद्धि और विद्यायें	37
5.	तीर्थंकर ऋषभदेव को केवलज्ञान	39
6.	साक्षात् तीर्थंकर केवली भगवान का दर्शन किन्हें नहीं?	39
7.	केवलज्ञान पश्चात् देवों की प्रतिक्रिया	40
8.	तीर्थंकर ऋषभदेव के समवशरण का विस्तार एवं परिचय	41
9.	समवसरण की कटनियों की विशेषता	43
10.	समवशरण के भामण्डल की महिमा	44

क्र.	विषय	पृष्ठ
11.	मानस्तंभ की बाबड़ियों की विशेषता	44
12.	तीर्थंकर की दिव्यध्वनि की भाषाएँ	44
13.	दिव्यध्वनि (वाणी) की विशेषता	45
14.	तीर्थंकरों के पाद कमलों की रचना	46
15.	तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाण विशेष	46
	अध्याय-4	
	चक्रवर्ती का वैभवादि	
1.	चक्रवर्ती महापुरुष	48
2.	चक्रवर्तियों के सप्तांग बल	49
3.	दशांग भोग एवं दिव्य रत्न	50
4.	चक्रवर्ती के नव निधियाँ	53
5.	चक्रवर्तियों के चार कर्त्तव्य	54
6.	चक्रवर्तियों की राज विद्यायें	54
7.	राजाओं के विशेष गुण	54
8.	अठारह श्रेणियों का स्वामी मुकुटबद्ध राजा	55
9.	चक्रवर्ती का स्त्री परिवार	55
10.	चक्रवर्ती का वैभव	56
11.	भद्र, विवर्धन आदि 923 पुत्र	57
12.	भरत चक्रवर्ती के वैराग्य का कारण	58
13.	चक्रवर्तियों की गति	59
14.	नारायण-प्रतिनारायण एवं उनकी गति	59
15.	बलभद्र-रुद्र एवं उनका अगला भव	
16.	चौबीस कामदेव का तीर्थकाल एवं निर्वाण क्षेत्र	62
	करणानुयोग	
	अध्याय-5	
	जैन गणित-विज्ञान	
1.	करणानुयोग का लक्षण	64
2.	लोक और अलोक	64
3.	परिकर्माष्टक-संकलन आदि	64
4.	क्षेत्रफल	65
5.	मान-मानगणित के भेद	65
6.	संख्यात, असंसख्यात और अनंत	66
7.	उपमान के भेद पल्य, सागरादि	66
8.	समय, आवली	66
9.	उच्छवास, घड़ी, मुहूर्त्त आदि	67
10.	पूर्व, पद्म आदि	67
11.	पल्य के भेद, सागर	69
12.	सूच्यांगुल, अर्द्धच्छेद, प्रतरांगुल	70
13.	घनांगुल, अंगुल के भेद	71
14.	उत्सेधांगुल, यवमध्य आदि	71
15.	प्रमाणांगुल, आत्मांगुल	72
16.	योजन, महायोजन	72
17.	धनुष-प्रमाण, हस्तप्रमाण	72
18.	वितस्ति (बालिश्त) प्रमाण	72
19.	पाद का प्रमाण	72
20.	जगत्प्रतर या प्रतरलोक	72
21.	घन-लोक	72
22.	राजू व राजू की उपमा का रूपक	72
	अध्याय-6	
	लोक रचनादि	
1.	लोक का स्थान, आकारादि	74
2.	तीनों लोकों का विस्तारादि	75
3.	वातवलयों का स्वरूप	76
4.	त्रसनाड़ी व जीवों का स्थान	76
5.	त्रसनाड़ी के बाहर उपपाद	77
6.	रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भाग	77
7.	रत्नप्रभा पृथ्वी के भावों की विशेषता	77
8.	खर भाग की उप पृथ्वियाँ	77
9.	नरक पृथ्वियों के पटल एवं नरक बिलों के नाम	78
10.	नारकियों के उत्पत्ति स्थान	79
11.	नारकियों के उत्सेध, विक्रिया आदि	80

क्र.	विषय	पृष्ठ
12.	नरकों में नारकियों के दुःख	80
13.	नारकियों का अवधिज्ञान	81
14.	नरक पृथ्वियों में जन्म-मरण का अंतराल काल	81
15.	नरक से निकले जीवों की उत्पत्ति आदि	81
16.	तीर्थंकर प्रकृति सह नरक पृथ्वियाँ	82
17.	सहनन की अपेक्षा नरकों में उत्पत्ति	82
18.	नरकों में नारकियों की लेश्याएँ, संहनन	83
19.	नरक से निकलकर सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति	84
20.	नारकियों की आयु	
21.	नरकों में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के कारण	84
22.	मध्यलोक में द्वीप समुद्र	85
23.	मध्यलोक के समुद्रों का स्वाद	86
24.	द्वीप समुद्रों का आकार, विस्तार, गहराई	86
25.	ढ़ाई द्वीप और मानुषोत्तर पर्वत	86

अध्याय-7

द्वीप, पर्वत, काल- परिवर्तनादि

1.	ढ़ाई द्वीप के बाहर स्थित भूमि, समुद्र एवं स्वयंप्रभ पर्वत	87
2.	ढ़ाई द्वीप के बाहर जीवों का अवस्थान	87
3.	स्वयंप्रभ पर्वत के बाह्य भाग में देश संयम की योग्यता	87
4.	वृषभगिरि पर्वत एवं विशेषता	87
5.	विजयार्द्ध पर्वत एवं विशेषता	88
6.	विजयार्द्ध पर्वत पर सदा संयमधारण एवं मोक्ष प्राप्ति की योग्यता आदि	88
7.	युग परिवर्तन	89
8.	कल्पकाल, षट्कालों में काल संख्या	89
9.	सुषमा-दुषमा काल का लक्षण	90
10.	सुषमा-सुषमा कालादि का वातावरण	90
11.	भोगभूमि का प्रकृति सौन्दर्य आदि	90
12.	भोगभूमि के मनुष्यों की प्रकृति एवं उनके कार्य	90
13.	भोगभूमि की विक्रिया आभरण एवं भोज्य व्यंजनादि	91
14.	भोगभूमि के जीवों का गर्भ धारण, जन्म-मरण, शारीरिक वृद्धि आदि	91
15.	भोगभूमिज तिर्यंचों की आहार व्यवस्था	92
16.	वर्तमान दुषमा-सुषमा काल का प्रारंभ कब?	92
17.	भगवान महावीर का निर्वाण एवं तीन अनुबद्ध केवली	92
18.	पाँच श्रुत केवली व अंगपूर्व के ज्ञानी	92
19.	आचार्य धरसेन और पुष्पदंत भूतवली	92
20.	षट्खण्डागम और कषायपाहुड ग्रंथों की रचना, रचयिता और टीका आदि	93
21.	श्रुत का विच्छेद	93
22.	अंतिम मुकुटबद्ध राजा की दीक्षा	93
23.	कल्की और उपकल्की का प्रादुर्भाव	94
24.	कल्की द्वारा मुनि पर बाधा	94
25.	पंचमकाल के अंत में वीरांगज मुनि आदि को अवधिज्ञान एवं सल्लेखना	95
26.	छठे काल का प्रारंभ एवं दुःखों का वर्णन	96
27.	प्रलयकाल एवं युग का प्रारंभ तथा उत्सर्पिणी काल आदि का वर्णन	96
28.	कुभोगभूमि एवं उनमें जीव	97
29.	कुभोगभूमि में मनुष्यों का आकार	98
30.	मध्यलोक में अकृत्रिम जिनालय	98
31.	कुलाचल पर्वत एवं वहाँ अकृत्रिम जिनालय	99
32.	विजयार्द्ध पर्वत और गजदंत पर्वत की विशेषता	99
33.	जम्बू, शाल्मली वृक्षों एवं वक्षार पर्वत पर जिनालय	100
34.	विदेह क्षेत्र की विशेषता	100

क्र.	विषय	पृष्ठ
35.	इक्ष्वाकार, मानुषोत्तर पर्वत पर जिनालय एवं उसकी विशेषता	101
36.	नंदीश्वर द्वीप, कुण्डलवर दीप एवं रुचकवर द्वीप के अवस्थान एवं अकृत्रिम जिनालय	102
37.	तीर्थंकर माता की सेवा करने वाली देवियों के निवास स्थान	102
	अध्याय-8	
	जीवों की अवगाहनादि	
1.	मध्यलोक के अंतिम चतु:कोणों में जीवों का अवस्थान	103
2.	तिर्यंचों की उत्कृष्ट अवगाहना	103
3.	सम्मूर्च्छन जीव का लक्षण	103
4.	जम्बूद्वीप की परिधि	103
5.	लवणादि समुद्रों में मत्स्यों की अवगाहना	104
6.	द्विन्द्रियादिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों की अवगाहना	104
7.	पृथ्क्त्व व द्रव्यांगुल का लक्षण	105
8.	पृथ्वीकायादिक स्थावरों की अवगाहना	105
9.	सर्व जघन्य शरीर में तृतीय समय का समाधान	105
10.	बादर और सूक्ष्मजीव का लक्षण	105
11.	पृथ्वीकायिक आदि जीवों का आकार	105
12.	पंचेन्द्रिय जीवों एवं इन्द्रियों का आकार	106
13.	चारों गतियों में पंचेन्द्रिय जीवों का संस्थान	106
14.	पृथ्वीकायिक आदि स्थावर जीवों की विषय ग्रहण शक्ति	106
15.	चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र	107
16.	आहार आदि पर्याप्तियों की पूर्णता का काल	107
17.	देव-नारकियों की पर्याप्तियों की पूर्णता का काल	108
18.	देवगणों की उपपाद शैय्या की विशेषता	108
19.	देवों के दिव्य शरीर की विशेषता	108
20.	देवों के शरीर से मनुष्यों के गुणों की उत्कृष्टता	109
21.	भवनवासी, व्यंतर देवों के निवास स्थलों के नाम आदि	109
22.	भवनवासी देवों के प्रभेद, मुकुट चिह्न, निवासादि का वर्णन	110
23.	असुरकुमारादि देवों के चैत्य वृक्षों के नाम आदि	111
24.	भवनवासी देवों के जिनालयों की संख्या	111
25.	भवनवासी देवों में आहार, श्वासोच्छवास आदि का नियम	111
26.	असुरकुमार देवों की गमन सीमा	112
27.	भवनवासी देवों की आयु, शक्ति आदि	112
28.	भवनवासी देवों के अवधिज्ञान की सीमा एवं शरीर की ऊँचाई एवं उत्सेध, विक्रिया एवं वर्ण	112
29.	भवनवासी देवों में उत्पत्ति एवं देव दुर्गति के कारण	114
30.	व्यंतर देवों का विशेष वर्णन	114
31.	नीचोपपाद आदि व्यंतर देवों का निवास	114
32.	व्यंतर देवों के चैत्य वृक्षादि का वर्णन	114
	अध्याय-9	
	ज्योतिषि, विमानवासी व गुणस्थानादि	
1.	ज्योतिषि देवों का स्वरूप	117
2.	राहु-केतु के विमान	117
3.	सूर्य-चन्द्र आदि की किरणों का स्वरूप	117
4.	सूर्य-चन्द्र आदि का वीथियों में गमन	117
5.	ज्योतिषि देव के संसार से दिन-रात आदि पर प्रभाव	117
6.	युग एवं उसका प्रारंभ	118
7.	ढाई वर्ष में एक अधिक मास कैसे?	118

क्र.	विषय	पृष्ठ
8.	चन्द्रमा आदि देवेां की उत्कृष्ट आयु	118
9.	ज्योतिषि देवांगनाओं की आयु	119
10.	ज्योतिषि देवों के जिनालय	119
11.	ज्योतिषि देवों का अवधिज्ञान एवं शरीर का उत्सेध आदि	119
12.	मध्य लोक से स्वर्ग विमान की दूरी	119
13.	स्वर्गों की सौधर्म आदि संज्ञा	119
14.	स्वर्गों में विमानों का विस्तार पटल आदि	119
15.	वैमानिक देवों संबंधी पटल	120
16.	सौधर्म आदि कल्पों के इन्द्रक आदि विमान	120
17.	स्वर्गादिक के संपूर्ण विमानों का आधार	121
18.	सौधर्म आदि कल्पों में विमानों का वर्ण	121
19.	देव-देवांगनाओं का उत्पत्ति स्थान	122
20.	स्वर्गादिक देव पर्याय में जन्म के उपरांत का वातावरण	122
21.	कल्पवासी देवों द्वारा धार्मिक अनुष्ठान	122
22.	इन्द्र भवनों में देवदर्शन	122
23.	सौधर्मादिक देवों की प्रधान देवियों का परिवार	122
24.	वैमानिक देवों का आहार	123
25.	देवगति में एक भवावतारी कौन?	123
26.	वैमानिक देवों में सम्यग्दर्शन का नियम एवं अवधिज्ञान का विषय	123
27.	देवों में मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि का जन्म	123
28.	देवगति में देवों की लेश्या	124
29.	स्वर्गिक देवांगनाओं की आयु	
30.	देवों में घातायुष्क की व्यवस्था	124
31.	कौन से जीवों का वैमानिकों में कहाँ तक जन्म	124
32.	वैमानिक देवों की सामर्थ्य	125
33.	कौन से देवों की कौन से तिर्यंचों में उत्पत्ति	125
34.	सर्वार्थसिद्धि विमान से सिद्धशिला की ऊँचाई	125
35.	सिद्धों का निवास	125
36.	सिद्धों की अवगाहना एवं उनका सुख	126
37.	विस्तार और आदेश की संज्ञा	126
38.	मार्गणा का लक्षण	126
39.	सामान्य विशेष का लक्षण	126
40.	प्ररूपणा का लक्षण	126
41.	गुणस्थानों में पंच भाव	127
42.	सिद्धों में पारिणामिक भाव	128
43.	सिद्धों में जीवत्व भाव	128
44.	मिथ्यादृष्टि जीव की श्रद्धान की विपरीतता?	128
45.	मिथ्यादृष्टि के भेद	128
46.	अधःकरण आदि परिणाम	128
47.	सासादन गुणस्थान कब?	129
48.	अनंतानुबंधी सम्यक्त्व की घातक कैसे?	129
49.	असंयत सम्यग्दृष्टि में श्रद्धान की विशेषता	129
50.	वेदक सम्यक्त्व में उदयाभावी क्षय	129
51.	स्वस्थान व सातिशय अप्रमत्त	130
52.	श्रेणी चढ़ने वाले पात्र	130
53.	विसंयोजना का अर्थ	130
54.	उपशम श्रेणी कितनी बार?	130
55.	अपूर्वकरण परिणामों के कारण	131
56.	गुणश्रेणी निर्जरा का स्वरूप	131
57.	गुण संक्रमण का लक्षण	131
58.	स्थितिखण्डन, अनुभाग खण्डन का लक्षण	131
59.	स्पर्धक का स्वरूप	131
60.	बादरकृष्टि और सूक्ष्मकृष्टि	132
61.	अनुभाग का लक्षण	132
62.	अविभाव प्रतिच्छेद का लक्षण	132
63.	समय प्रबद्ध का स्वरूप	132

क्र.	विषय	पृष्ठ
64.	वर्ग, वर्गणा एवं स्पर्धक?	132
65.	उपशांतकषाय एवं क्षीणकषाय में अंतर	132
66.	केवली भगवान की नव लब्धियाँ	132
67.	गुणस्थानों में आरोहण-अवरोहण	133
68.	मरण किन गुणस्थानों में?	134
69.	गुणस्थानों में मरण कर जीव की गति	134
70.	किन अवस्थाओं में मरण नहीं?	134
71.	कृत्कृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि का मरण एवं उत्पत्ति	135
72.	सात कर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा?	135
73.	गुणश्रेणी निर्जरा का काल	135
74.	अयोगकेवली गुणस्थान की विशेषता	135
75.	गुणस्थानातीत सिद्धों का स्वरूप	135
	अध्याय-10	
	जीवसमास व मार्गणादि	
1.	जीवसमास का लक्षण एवं भेद	136
2.	योनि एवं गुणयोनि के भेद	137
3.	कुल एवं उसके भेद	137
4.	लब्ध्यपर्याप्तक जीव के भव धारण	138
5.	लब्ध्यपर्याप्त , निर्वत्यपर्याप्त और पर्याप्त के गुणस्थान	138
6.	प्राण का लक्षण एवं भेद	138
7.	जीवों में प्राणों की व्यवस्था	138
8.	संज्ञाओं में गुणस्थान	139
9.	सप्तमादि गुणस्थानों में संज्ञाओं का समाधान	140
10.	मार्गणाएँ एवं उसके लक्षण	140
11.	योग एवं उसके भेद	130
12.	ज्ञान एवं उसके भेद	141
13.	मार्गणाओं में जीवसमास का अंतर्भाव	142
14.	उपयोग का लक्षण एवं भेद	143
15.	सांतर और निरंतर मार्गणाएँ	143
16.	आठ अंतरमार्गणाओं का काल	144
17.	पंचमादि गुणस्थानों का विरहकाल	144
18.	वनस्पतिकाय एवं उनके भेद	144
19.	वनस्पति में साधारण, प्रत्येक प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित भेद	144
20.	काय, कायिक आदि का लक्षण	145
21.	एक निगोदिया शरीर में जीवों की संख्या	145
22.	नित्य निगोद एवं इतर निगोद का लक्षण	145
23.	सादि, अनादि, सांत, अनंत का लक्षण	145
24.	निगोदिया का ग्रहण किस काय में?	145
25.	बादर निगोदिया जीवों का निवास	145
26.	किन जीवों में निगोदिया जीवों का निवास	146
27.	सत्य मनोयोग आदि का स्वरूप	146
28.	मनोयोगों की गुणस्थान सीमायें	146
29.	केवली भगवान के मनोयोग?	146
30.	वचनयोग के गुणस्थान	146
31.	औदारिक मिश्र काययोग व गुणस्थान	146
32.	औदारिक, वैक्रियिक, आहारक योगों का लक्षण एवं गुणस्थान	147
33.	औदारिक आदि शरीरों के लक्षण एवं विशेषतायें	145
34.	आहारक शरीर का विशिष्ट कार्य	148
35.	आहारक शरीर से असंयम का परिहार?	149
36.	विग्रह गति एवं उसके प्रकार	149
37.	कौन से क्षेत्र में उत्पन्न होने हेतु कितने मोड़े	150
38.	विग्रह गति में समय की सीमा	150
39.	विग्रह गति उपरांत आहार ग्रहण	150
40.	पृथक विक्रिया के स्वामी	151
41.	तेजस शरीर के भेद	151
42.	समुद्घात उसके भेद एवं लक्षण	151
43.	द्वीपायन मुनि की गति	152
44.	केवली समुद्घात की विशेषतायें	

क्र.	विषय	पृष्ठ
	एवं समाधान	153
45.	समुद्घात के काल में आत्मप्रदेशों की गमन दिशा	153
46.	कर्म-नोकर्म का लक्षण	153
47.	विस्रसोपचय का लक्षण	153
48.	कर्म-नोकर्म का संचय कब कैसे?	154
49.	कर्मों के उत्कृष्ट संचय के कारण	154
50.	औदारिकादि शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति	154
51.	कौन सी गति में कौन से वेद?	155
52.	भाव वेद का परिवर्तन	155
53.	वेदों के उदाहरण एवं गुणस्थान	155
54.	कषाय उदय के गुणस्थान	156
	अध्याय-11	
	ज्ञान और सम्यक्त्वादि	
1.	मतिज्ञान के 336 भेद	157
2.	अक्षरात्मक व अनक्षरात्मक ज्ञान का लक्षण	157
3.	श्रुतज्ञान के पर्यायादि 20 भेद	157
4.	सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक का ज्ञान	157
5.	निरावरण पर्याय में?	158
6.	लब्ध्यक्षर रूप श्रुत ज्ञान?	158
7.	अंग प्रविष्ट ज्ञान एवं भेद-अभेद	158
8.	अंगबाह्य ज्ञान एवं भेद	159
9.	द्वादशांग में वर्णित 64 मूलवर्ण (अक्षर)	159
10.	अवधिज्ञान के भेदप्रभेदों का लक्षण	160
11.	अवधिज्ञान के स्वामी और क्षेत्र	161
12.	अंतिम नरक भूमि व नव-अनुदिश आदि में अवधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र	161
13.	मनःपर्यय ज्ञान के भेद व लक्षण	161
14.	मनःपर्यय ज्ञान के स्वामी विशेषताएँ व क्षेत्र आदि	162
15.	केवलज्ञान, वह असहाय क्यों?	162
16.	सकल प्रत्यक्ष, विकल प्रत्यक्ष?	163
17.	ज्ञानों में गुणस्थान	163
18.	सामायिक आदि संयमों का लक्षण	163
19.	सामायिक संयम व सावद्य योग	164
20	सावद्य और असावद्य का लक्षण	164
21.	सावद्य कर्मार्य के छः भेद	164
22.	सामायिक शब्द के विभिन्न प्रयोजन	164
23.	परिहारविशुद्धि संयम एवं उसकी विशेषता	164
24.	संयम और असंयम के युगपत् कथन	165
25.	संयम मार्गणा के गुणस्थान	165
26.	दर्शन ज्ञान युगपत्?	165
27.	चक्षु से अन्य इन्द्रियों से दर्शन?	166
28.	षट्लेश्याएँ एवं उनके भेद	166
29.	चतुर्गति में द्रव्य एवं भाव लेश्याएँ	167
30.	गुणस्थान में लेश्याएँ	168
31.	कषाय में कषाय की तरतमता का उदाहरण	168
32.	भव्य के प्रकार व लक्षण	168
33.	अभव्य किसके अयोग्य	169
34.	भव्य व अभव्य की पहचान	169
35.	त्रस पर्याय का काल	170
36.	करणानुयोग में सम्यक्त्व का लक्षण	170
37.	प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन की योग्यता	170
38.	पंचलब्धियों का लक्षण	170
39.	प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन और उसकी विशेषता	171
40.	मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व का अंतरकरण?	172
41.	वेदक या क्षयोपशम सम्यक्त्व कैसे?	172
42.	अप्रशस्त व प्रशस्त उपशम	172
43.	वेदक सम्यक्त्व का काल	172
44.	क्षायिक सम्यक्त्व की उत्पत्ति?	173
45.	दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारंभ एवं प्रस्थापक	173
46.	दर्शनमोहनीय की क्षपणा का निष्ठापक	173

क्र.	विषय	पृष्ठ
47.	कृतकृत्य वेदक का लक्षण	173
48.	दर्शनमोहनीय की क्षपणा का निष्ठापन कहाँ?	174
49.	क्षायिक सम्यक्त्व की स्थिति	174
50.	क्षायिक सम्यग्दर्शन के गुणस्थान	174
51.	द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कब, किसको, कैसे?	175
52.	द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन में मरण?	175
53.	किस गति में कितने सम्यक्त्व?	175
54.	संज्ञी असंज्ञी जीवों की पहचान व गुणस्थान	176
55.	आहारक व अनाहारक का लक्षण, गुणस्थान आदि	177
56.	सिद्ध-गति में कौन सी मार्गणाओं का अभाव	177

भाग-2

चरणानुयोग

अध्याय-12

आचारांग और मुनि चारित्र

1.	चरणानुयोग का लक्षण	179
2.	आचारांग में पद का प्रमाण	179
3.	आचारांग के प्रमुख अधिकार	179
4.	आचारांग के मुख्य विशेषण	179
5.	आचारांग के उपदेष्टा	179
6.	मुनियों के मूलगुण यम और नियम	179
7.	मुलगुणों से विशुद्ध संयत	179
8.	मूलगुणों के आचरण व फल	179
9.	साध्य प्राप्ति के उपाय	179
10	मुनि का लक्षण व जिनवर की व्युत्पत्ति	181
11.	यतियों के 28 मूलगुण	181
12.	स्थाण्डिलशायी गुण	182
13.	आचार ग्रंथ रचना रूप प्रवृत्ति	182
14.	ग्रन्थ व्याख्या के प्रकार	182
15.	जीव निबद्ध, जीव अप्रतिबद्ध एवं जीव संभव परिग्रह	184
16.	प्रासुक मार्ग	184
17.	मुनि रूप के चार लिंग	185
18.	पाणिपात्र ही उत्तम क्यों?	185
19.	स्थिति भोजन का उद्देश्य	185
20.	आहार ग्रहण का काल	186
21.	काष्ठ का आसन ही श्रेष्ठ क्यों?	187
22.	तप और गुप्तियाँ	187

अध्याय-13

यतियों के दीक्षादि छह काल आदि

1.	यतियों के जीवन के छह काल एवं लक्षण	188
2.	मुनियों के द्वारा त्याज्य सप्त भय	189
3.	मुनियों द्वारा त्याज्य अष्ट मद	189
4.	यतियों द्वारा त्याज्य चार संज्ञायें	190
5.	यतियों द्वारा त्याज्य तीन गारव	190
6.	असादनाएँ	191
7.	प्रवचन मातृका	191
8.	गुरु समक्ष भव्य साधु द्वारा आलोचना	192
9.	निर्यापकाचार्य के गुण	192
10.	सल्लेखना पूर्व क्षमा-याचना	192
11.	अपरिश्रावी गुण	192
12.	मरण के प्रकार	192
13.	मरण के स्वामी	192
14.	मरण की विराधना व देव दुर्गति	193
15.	असमाधि रूप कुमरण	193
16.	कान्दर्प, आभियोग्य एवं किल्विष भावना	194
17.	संघ, चैत्य, सूत्र का अर्थ	194
18.	सम्मोह एवं आसुरी भावना	195
19.	बोधि की दुर्लभता एवं सुलभता	195
20.	अनंत एवं परीत संसारी	196

क्र.	विषय	पृष्ठ
21.	उद्वेग एवं जाति मरण	196
22.	पण्डित मरण ही श्रेष्ठ क्यों?	
23.	क्षपक द्वारा धैर्य धारण	197
24.	आचार्य देव द्वारा क्षपक के लिये उपदेश	198
25.	बारह वर्ष की सल्लेखना	198
26.	संक्षेप प्रत्याख्यान रूप सल्लेखना	198
27.	उत्तमार्थ विधि	199
28.	क्षपक द्वारा तीन प्रतिक्रमण	199
29.	प्रतिक्रमण के प्रकार	199
30.	सल्लेखना में स्वाध्याय मरण	200
31.	क्षपक का अभ्यंतर योग	200
32.	पंच-नमस्कार मंत्र-सह शरीर त्याग	200
33.	एक पद या द्वितीय पद में निरंतर संवेग	200
34.	आराधना एवं आराधक	201
35.	क्षपक की पीड़ा को दूर करने की औषधि	201
36.	समाधि के समय ज्ञानादि शरण	201
37.	विज्ञान को चारित्र की उपमा	201
38.	क्षपक की सल्लेखना में अड़तालीस मुनियों के कार्य	202
39.	सिद्धांत वेत्ता क्षपक के लिए मुनिगण द्वारा तत्त्व-चिंतन	203
40.	निर्यापकाचार्य आदि समक्ष क्षपक का अन्तिम मंगल-भाव	204
41.	निर्ग्रंथ मुनियों के अलब्धपूर्व और आराधन वचन	204
42.	सच्चे सल्लेखना धारक कौन?	205
43.	कब, किसे, किस संहनन व ध्यान से निर्वाण	205
44.	क्षपक हेतु वीतराग मंत्रों का जाप	205
45.	मंत्र शब्द का अर्थ	207
46.	गुरु वचन भी मंत्र	208
47.	सल्लेखना में प्रशस्त निदान	208
48.	संलेखना में की गई आराधना का फल	208
49.	तीन भव में मोक्ष	208

अध्याय-14

निर्यापक-लक्षण एवं मुनियों के सामाचार आदि

1.	दीक्षा गुरु एवं निर्यापक गुरु	209
2.	सामाचार शब्द के निरुक्ति अर्थ	209
3.	लक्षण भेद रूप सामाचार	210
4.	औधिक सामाचार के इच्छाकार आदि दस भेद	211
5.	आगम में उद्देश्य और निर्देश	
6.	वाचना का लक्षण	212
7.	पद विभागी सामाचार का लक्षण	212
8.	उपदेश, सूत्र, टीका व सूत्रार्थ का अर्थ	212
9.	निषेधिका, आशिका का अर्थ	213
10.	उपसंपत् का विशेष अर्थ व प्रकारों के लक्षण	213
11.	लौकिक, वैदिक एवं सामायिक शास्त्र	214
12.	सर्वज्ञ देव आदि छह आयतन	214
13.	एकल विहारी मुनि के गुण	215
14.	वर्तमानकालिक एकल विहार के दोष	216
15.	गण और गच्छ	216
16.	गुरुकुल में मुनियों के पाँच आधार	216
17.	संघ के नायक आचार्य के गुण	217
18.	संग्रह एवं अनुग्रह का अर्थ	217
19.	आगंतुक मुनि से संघस्थ मुनियों में सामाचार की प्रतिक्रिया	218
20.	आगंतुक मुनि से आचार्य द्वारा प्रश्न	219
21.	आगंतुक मुनि की योग्यता व शुद्धि	219
22.	सूत्र अध्ययन हेतु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि	220
23.	मुनियों के संस्तर, आवास एवं उपकरण	221
24.	आगंतुक मुनि की परीक्षा एवं संघ व्यवहार	222
25.	कुशल आचार्य के विशिष्ट गुण	221

क्र.	विषय	पृष्ठ
26.	आचार्य भगवन् का शिष्यों पर अनुग्रह	223
27.	आचार्य किंचित कुतूहल कर्त्ता कैसे?	224
28.	चिर दीक्षित का तात्पर्य	224
29.	आर्यिकाओं को गुरु आदेश	224
30.	आर्यिकाओं का वसतिका में समय का उपयोग	224
31.	आर्यिकाओं के गुण	225
32.	आर्यिकाओं के योग्य वसतिका	226
33.	लज्जा, मार्गणा और क्रिया का अर्थ	225

अध्याय-15

स्वाध्याय से लाभ, सत्य के भेद, एषणा समिति आदि

1.	विस्मृत-श्रुत परभव में उपलब्ध	227
2.	स्वाध्याय से लाभ	227
3.	जिनागम में दस प्रकार के सत्यों के लक्षण	227
4.	अनुभय वचन रूप असत्यमृषा भाषा के प्रकार व लक्षण	230
5.	मुनियों के बोलने योग्य वचन	232
6.	आहार हेतु साधु की चर्या कैसी?	232
7.	पिण्ड आहार शुद्धि	233
8.	उद्गम आदि आठ दोषों के लक्षण	233
9.	मुनि द्वारा आहार ग्रहण करने के कारण	234
10.	मुनि द्वारा आहार त्याग के कारण	235
11.	सोलह प्रकार के उद्गम दोष	236
12.	मिश्र दोष	237
13.	सोलह प्रकार के उत्पादन दोष	238
14.	दस प्रकार के अशन दोष	240
15.	चौदह मल दोष	241
16.	मुनि के योग्य निर्दोष आहार	242
17.	मुनियों के पालन योग्य 32 अंतराय	243
18.	सवैषण, विद्वैषण और शुद्धाशन आहार	245
19.	सर्वाशन और असर्वाशन	245

अध्याय-16

आगम में सत्रह प्रकार के निषीधिका स्थानादि

1.	आगम में सत्रह प्रकार के निषिधिका स्थान	246
2.	बारह प्रकार की भिक्षुक प्रतिमाएँ	246
3.	प्रतिमायोग एवं अवग्रह	247
4.	सत्रह तरह के असंयम भाव	247
5.	सत्रह तरह के संयम	247
6.	बीस प्रकार के असमाधि स्थान	248
7.	उन्तीस तरह के पाप सूत्र	248
8.	तैतीस तरह की असादनाएँ	249
9.	भव्यजनों के भाने योग्य सप्त भावनायें	249
10.	चूलिका का अर्थ	250

द्रव्यानुयोग

अध्याय-17

बन्ध त्रिभङ्गी, बन्ध उदय सत्व

1.	द्रव्यानुयोग का लक्षण	251
2.	षट् द्रव्यों का लक्षण	252
3.	सात तत्त्वों का लक्षण	253
4.	जीव के प्रकार	253
5.	पृथ्वी आदि पंच स्थावर, उनके भेद एवं लक्षण	253
6.	हिंसा परिहार हेतु पृथ्वीकायिक आदि के छत्तीस भेद	254
7.	बादर और सूक्ष्मकायिक जीवों का आधार	254
8.	सूक्ष्मकाय पंच स्थावरों की अवगाहना	254
9.	पौद्गलिक वर्गणाओं का स्वरूप एवं उनके भेद	257
10.	रूपी पुद्गल के स्कन्धादि भेद	258
11.	अमूर्तिक और मूर्तिक का संबंध कैसे?	259
12.	बादर-बादर आदिक छहों के लक्षण	259

क्र.	विषय	पृष्ठ
13.	पुण्यास्रव व पापास्रव के कारण	259
14.	कर्म एवं कर्मबंध	260
15.	आत्मा और कर्म का संबंध कबसे, कैसे?	260
16.	कर्मबंध के 5 हेतु	260
17.	मिथ्यादर्शन के भेद	261
18.	अष्ट शुद्धियाँ	261
19.	समय प्रबद्ध	261
20.	कर्मबंध के मूल भेद-प्रभेद	261
21.	अनुजीवी गुणों का लक्षण	262
22.	उत्कृष्ट आदि बन्धों के अवान्तर भेद	262
23.	भुजकार, अल्पतर, अवस्थित अवक्तव्य बंध	262
24.	घातिया और अघातिया कर्मों के प्रभेद	264
25.	देशघाति व सर्वघाति कर्म प्रकृतियाँ	264
26.	कर्म-विपाक की अपेक्षा कर्म प्रकृतियों के प्रकार	264
27.	पाप-कर्म और पुण्य कर्म प्रकृतियाँ	266
28.	ध्रुवबन्धी और अध्रुवबन्धी प्रकृतियों का लक्षण	266
29.	परोदय, स्वोदय, उभयोदय बंधी प्रकृतियाँ	266
30.	बंध त्रिभङ्गी	267
31.	बन्ध, उदय, सत्व के योग्य प्रकृतियाँ	267
32.	व्युच्छित्ति का अर्थ	269
33.	देवायु, आहारक द्विक, तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति बंध	270
34.	आबाधा का लक्षण एवं भेद	271
35.	बद्धमान और भुज्यमान आयु में उदीरणा संबंधी व्यवस्था	271
36.	कर्म उदय एवं उदय त्रिभङ्गी	274
37.	गुणस्थानों में अनुदय रूप प्रकृतियाँ	274
38.	कर्मों के उदय और उदीरणा में अंतर	279
39.	गुणस्थानों में उदीरणा व्युच्छित्ति	280
40.	उदीरणा और अनुदीरणा	280
41.	कर्म-सत्व	281
42.	कर्म-सत्व की गुणस्थानों की अपेक्षा व्यवस्था	282
43.	आयुबंध उपरांत सम्यक्त्व, देशव्रत, महाव्रत कैसे?	282
44.	गुणस्थानों में कर्म प्रकृतियों की सत्ता एवं संवर	283

अध्याय-18

गुणस्थानों में प्रकृतियों का संवर, गुणश्रेणी निर्जरादि

1.	गुणस्थानों में प्रकृतियों का संवर	286
2.	गुणश्रेणी निर्जरा	287
3.	ध्यान का स्वरूप एवं उसके स्वामी	289
4.	उत्तम संहनन	289
5.	निश्चल ध्यान हेतु उदाहरण	290
6.	अशुभ और शुभ रूप ध्यान	290
7.	ध्यान के भेद एवं पदस्थ पिण्डस्थ आदि ध्यान	293
8.	पिण्डस्थ ध्यान में पृथ्वी आदि पंचधारणाएँ	294
9.	शुक्लध्यान एवं उसके प्रकारों के लक्षण	296
10.	चौदहवें गुणस्थान का काल	297
11.	कौन से गुणस्थान में कौन सा शुक्लध्यान	296
12.	सिद्धात्मा की संसार में अवस्था	296
13.	सिद्धों का अवतार नहीं	296
14.	सर्वज्ञ और आत्मज्ञ	296
15.	निर्वाण प्राप्त सिद्ध जीव किन अनुयोगों द्वारा साध्य?	298
16.	संहरण सिद्ध?	299
17.	विक्रिया ऋद्धि से सिद्ध? (अधोलोक ऊर्ध्वलोक के सिद्ध का उदाहरण)	299
18.	सिद्ध परमेष्ठी के ध्यान क्यों नहीं?	299

क्र.	विषय	पृष्ठ
	अध्याय-19	
	आगम में नय, प्रमाण, नयों के प्रकार, द्रव्य,-गुण-पर्याय	
1.	आगम में नय	301
2.	प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण	301
3.	आगम पद्धति में नयों के भेद	301
4.	आगम में द्रव्य-गुण-पर्याय	302
5.	सामान्य गुण एवं उनके प्रकार	302
6.	विशेष गुण एवं उनके प्रकार	303
7.	जैन धर्म में पर्याय एवं उसके प्रकार	304
8.	द्रव्यार्थिक नय के भेद	306
9.	शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के भेद	308
10.	अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के भेद	309
11.	पर्यायार्थिक नय के भेद	311
12.	नैगम आदि सात नय एवं उनके प्रकार	312
13.	उपनय एवं उनके भेद	315
14.	अध्यात्म पद्धति से नयों के भेद	318
15.	संयोग, संश्लेष एवं तादात्म संबंध	320
	अध्याय-20	
	सैद्धांतिक प्रकरण	
	छह अधिकारों द्वारा शास्त्र व्याख्यानादि	
1.	शास्त्र व्याख्यान के 6 अधिकार	321
2.	'मंगल' का व्युत्पत्ति अर्थ	321
3.	'मंगल' के पर्यायवाची नाम	321
4.	मंगल या मंगलाचरण	321
5.	चौबीस अनुयोग द्वार	322
6.	शुभोपयोग से कर्मों की निर्जरा	382
7.	शास्त्र व्याख्यान पूर्व निमित्त	322
8.	शास्त्र कथन से पूर्व हेतु फल का महत्व	322
9.	शास्त्र ज्ञान से लाभ	323
10.	शास्त्र की व्याख्या व शास्त्रकर्ता का व्याख्यान	323
11.	प्रमाण के भेद रूप सर्वार्थ और परार्थ	323
12.	निर्देश, स्वामित्व आदि का परार्थ लक्षण	324
13.	नरकगति प्रथमभूमि में अपर्याप्त अवस्था संबंधी वेदक सम्यक्त्व कैसे?	324
14.	कृतकृत्य वेदक का काल	324
15.	स्त्री पर्याय में क्षायिक सम्यग्दर्शन	325
16.	देवों का अपर्याप्त अवस्था में औपशमिक सम्यग्दर्शन	325
17.	क्षयोपशमिक सम्यग्दर्शन का उत्कृष्ट काल	325
18.	सत्, संख्यादि आठ अनुयोग द्वारों का लक्षण	326
19.	आहारकों में गुणस्थान	327
20.	आगम में आहार के प्रकार	328
21.	1 से 5 गुणस्थान में रहने वाले जीवों की संख्या	328
22.	प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत मुनीश्वरों की संख्या	329
23.	उपशम और क्षपक गुणस्थानवर्ती मुनीश्वरों की संख्या	329
24.	सयोग और अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती मुनीश्वरों की संख्या	329
25.	छठे से 14 वें गुण तक रहने वाले नग्न दिगंबर मुनीश्वरों की संख्या	329
26.	सोलहवें स्वर्ग के देवों का तीसरी पृथ्वी तक गमन संभव	330
27.	मनुष्य गति में 1 से 5 गुणस्थान के जीवों की संख्या	330
28.	पृथ्वीकायिक आदि जीवों की संख्या	330
29.	औपशमिक सम्यग्दर्शन के साथ मरण एवं उपपाद	331
30.	असंयत सम्यग्दृष्टि एवं संयमासंयम की आयु व उत्कृष्ट काल कैसे	332

क्र.	विषय	पृष्ठ
31.	सादि मिथ्यादृष्टि का अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल	331
32.	लघु अंतर्मुहूर्त्त	332
33.	पूर्व कोटि पृथक्त्व काल कैसे	332
34.	क्षुद्र भव का अर्थ	332
35.	आयु स्थिति और भव स्थिति	332
36.	पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि के एक हजार सागरोपम	333
37.	संयतासंयत, संयमासंयम में अंतरकाल की व्यवस्था	335
38.	कौन से गुणस्थान में कौन सा भाव	335
39.	अभाव एवं अभाव के भेद	336
	परिशिष्ट	
1.	संकरादि आठ दोष	337
2.	जिनेन्द्र भ. के मन संबंधी आगम प्रमाण	338
3.	चतुर्गति में लेश्याओं संबंधी कथन	338
4.	केवलियों के द्रव्येन्द्रिय संबंधी आगम प्रमाण	338
5.	क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति	339
6.	जीव के सासादन सम्यक्त्व	339
7.	प्रथमोपशम सम्यक्त्व में प्रकृतियाँ	340
8.	कृतकृत्य वेदक	340
9.	वेदक सम्यक्त्व की मलिनता का कारण	340
10.	आहारक अनाहारक जीव	341
11.	पच्चीस प्रकार की विकथायें	341
12.	क्षपक श्रेणी चढ़ने का अधिकारी कौन	342
13.	सयोग केवली भगवान के अन्य पर्यायवाची नाम	342
14.	अयोग केवली के आयु प्राण	343
15.	धर्मध्यान और शुक्लध्यान में अंतर	344
16.	कौन से गुणस्थान में कौन सा धर्म्यध्यान	344
17.	जाति/योनी की परिभाषा	344
18.	निगोदिया जीव का लक्षण	345
19.	सूक्ष्म और बादर जीव	345
20.	क्षपणा और विसंयोजना	346
21.	क्षायिक सम्यग्दर्शन हेतु दर्शनमोहनीय का क्षपणा का प्रतिष्ठापक एवं निष्ठापक	346
22.	सोलह स्वर्गों में इन्द्र	346
23.	स्वर्गों की अपेक्षा देवों की संख्या	347
24.	स्वर्गों की अपेक्षा देवियों की संख्या	347
25.	स्वर्ग में विमानों की संख्या	348
26.	वैमानिक इन्द्रों के परिवार देवों की देवियों का प्रमाण	349
27.	कल्पविमानों व इन्द्र भवनों के विस्तार आदि का प्रमाण	350
28.	इन्द्र-नगरों के विस्तार संबंधी प्रमाण	350
29.	भवनवासी देवों के भेद, उसके मुकुट का चिह्न, आहार व श्वासोच्छवास का अन्तराल तथा उनकी अवगाहना एवं आयु	351
30.	कल्पवासी देवों की आयु व अवगाहना	351
31.	कल्पातीत देवों की आयु व अवगाहना	352
32.	देवों का अवधिज्ञान	353
33.	आगम के दूसरे मत से निर्जरा के ग्यारह स्थान	354
34.	त्रस-नाड़ी में कुछ कम तेरह राजू में योजन व धनुष का प्रमाण	354
35.	जैन दर्शन में मरण के भेद	354
36.	**अंतिम मंगल**	356
37.	सम्यग्ज्ञान एवं सिद्धांतभूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र	357
38.	आगम अनुयोग ग्रंथ में प्रयुक्त ग्रंथ सूचि	373



आचार्य श्री आर्जवसागर विरचित

आगम-अनुयोग

[प्रश्नोत्तर-प्रदीप]

मंगलाचरण

प्रथम तीर्थ के कर्त्ता प्रभुवर,
आदिनाथ को करूँ नमन।
चौबीसी के अन्तिम जिनवर,
महावीर हैं परम शरण॥
तीर्थंकर से उदित तीर्थ में,
है आगम-अनुयोग प्रधान।
जिसे कहूँ मैं भविकजनों को,
मिले मोक्ष-पद शीघ्र महान॥

भाग-1

प्रथमानुयोग

अध्याय -1

भोगभूमि कुलकरादि

प्र.1 आगम किसे कहते हैं?

उत्तर जिनेन्द्र भगवान कथित सर्व पदार्थ प्रकाशक वचन आगम कहलाता है।

प्र. 2 आगम के छह विशेषण कौन-से हैं?

उत्तर आगम के 1. अर्हंत कथित, 2. अखण्डित, 3. अविरोधी, 4. धर्मोपदेशी, 5. हितकर्त्ता और 6. मिथ्यात्व खण्डक ऐसे छह विशेषण होते हैं।

प्र. 3 आगम कथन में पंच ध्यातव्य रूप मन्तव्य कौन-से हैं?

उत्तर आगम कथन में शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ रूप पांच ध्यान रखने योग्य मन्तव्य (बातें) हैं।

प्र. 4 आगम के व्याख्यान में शब्दार्थ का तात्पर्य क्या है?

उत्तर आगम के व्याख्यान में शब्दार्थ का तात्पर्य शब्द का सम्यक् अर्थ बतलाना है।

प्र. 5 आगम के उपदेश में नयार्थ का अर्थ क्या है?

उत्तर आगम के उपदेश में नयार्थ का अर्थ व्यवहार व निश्चय आदि नयों का अवलम्बन लेकर कथन शैली अपनाना है।

प्र. 6 आगम में मतार्थ से क्या तात्पर्य है?

उत्तर आगम में मतार्थ से तात्पर्य सांख्य, बौद्ध आदि विभिन्न मतों के संदर्भ में विचार विमर्श करना है।

प्र. 7 जैनदर्शन में आगमार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर जैन दर्शन में परमागम और आचार्य परम्परा से अविरोध कथन-शैली का होना आगमार्थ कहलाता है।

प्र. 8 आगम-कथन-शैली में भावार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर आगम-कथन-शैली में जिनागम के ज्ञान से गुण-दोषों के सम्बन्ध में ग्रहण व त्याग के व्याख्यान को भावार्थ कहते हैं।

प्र. 9. आगम पद्धति किसे कहा जाता है?

उत्तर वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत सप्त तत्त्वों, छह द्रव्यों आदि के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और आचरण रूप प्रतिपादन को आगम पद्धति कहा जाता है।

प्र. 10 आगम ग्रन्थ (शास्त्र) अध्ययन करने की या वीतराग की देशना प्राप्त करने की योग्यता किस आचरणवान मानव के पास होती है?

उत्तर आगम अध्ययन या वीतराग-देशना की योग्यता अष्टमूलगुण धारक अर्थात् मद्यत्याग, मधुत्याग, मांस त्याग, रात्रिभोजन त्याग, पंच उदुम्बर फल त्याग, जिनेन्द्र देव दर्शन, जीवदया पालन और छना-जलपान ऐसे अष्ट नियम-संकल्प धारक के पास होती है।

प्र. 11 वक्ता किसे कहते हैं?

उत्तर धर्म के उपदेष्टा को वक्ता कहते हैं।

प्र. 12 धर्मोपदेष्टा कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर धर्मोपदेष्टा तीन प्रकार के होते हैं- 1. सर्वज्ञ तीर्थंकर या सामान्य केवली, 2. श्रुतकेवली मुनीश्वर और 3. आरातीय अर्थात् शुद्ध परम्परा से ज्ञान प्राप्त आचार्य।

प्र.13. धर्मोपदेष्टा किन गुणों से सम्पन्न होता है?

उत्तर जो प्राज्ञ है अर्थात् समस्त शास्त्रों के रहस्य (मर्म) को जानता है, लोक व्यवहार से परिचित है, कुशील या धनादि समस्त आशाओं से रहित है, प्रतिभाशाली है, शान्त है, प्रश्न होने के पूर्व ही उत्तर देने में सक्षम है, श्रोताओं के प्रश्नों को सहन करने में समर्थ है (अर्थात् प्रश्न सुनकर न तो घबराता है और उत्तेजित होता है), दूसरों के मनोगत भावों को जानने वाला है, शीलाचारादि अनेक गुणों से सम्पन्न है और जो दूसरों की निंदा न करता हुआ स्पष्ट और मधुर शब्दों में उपदेश को करने वाला है उसे सुयोग्य गुणवान धर्मोपदेष्टा कहते हैं।

प्र. 14 श्रोता कौन कहलाता है?

उत्तर जो सम्यग्दृष्टि आत्मा शास्त्र के ग्रहण व धारण करने में समर्थ तथा विनय गुण से अलंकृत और संयमित होता है वह श्रोता कहलाता है।

प्र. 15 उत्तम श्रोता में हंस सदृश श्रोता से क्या तात्पर्य है?

उत्तर जिस तरह मिले हुए दुग्ध और जल को भिन्न करते हुए हंस जल को छोड़ दुग्ध मात्र का पान कर लेता है उसी तरह उत्तम श्रोता अन्य अनावश्यक विषयों को छोड़ स्वात्म प्रयोजनीय धार्मिक, आध्यात्मिक विषय मात्र को ग्रहण करने वाला होता है।

प्र. 16 अनुयोग किसे कहते हैं?

उत्तर जिनवाणी के उपदेश की आगम पद्धति को अनुयोग कहते हैं।

प्र. 17 आगम में अनुयोग के प्रकार कौन-से हैं?

उत्तर आगम में अनुयोग के प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग रूप से चार प्रकार होते हैं।

प्र. 18 प्रथमानुयोग किसे कहा जाता है?

उत्तर एक पुरुष सम्बन्धी चरित या त्रेसठ शलाका महापुरुष सम्बन्धी कथा रूप पुराण को प्रथमानुयोग कहा जाता है।

प्र. 19 प्रथमानुयोग के ज्ञान का फल क्या है?

उत्तर प्रथमानुयोग भव्यों के लिए अत्यन्त उपकारी है, इसके ज्ञान करने से जीवों को सम्यग्दर्शनादि रूप बोधि और धर्मध्यान, शुक्लध्यान रूप समाधि की प्राप्ति होती है।

प्र. 20 त्रेशठ शलाका पुरुष कब उत्पन्न होते हैं?

उत्तर अवसर्पिणी काल से संबन्धित त्रेशठ शलाका पुरुष भोग भूमि के अनन्तर उत्पन्न होते हैं।

प्र. 21 भोग-भूमि किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ उत्कृष्ट ज्योर्तिमय दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं और उन कल्पवृक्षों से ही मनुष्यों की उपजीविका रूप जीवनशैली चलती है ऐसे स्थान को मनुष्यों से संबधित भोग-भूमि कहते हैं। जहाँ खेती आदि षट्कर्म एवं वर्णादिक की व्यवस्था नहीं होती।

प्र. 22 भोग-भूमि में पाये जाने वाले कल्पवृक्षों का लक्षण क्या है?

उत्तर जो भोग-भूमि में मनुष्यों को अपने-अपने मन की कल्पित वस्तुओं को दिया करते हैं वे कल्पवृक्ष कहलाते हैं।

प्र. 23 ये कल्पवृक्ष वनस्पतिकायिक या देवोपनीत वृक्ष होते हैं क्या?

उत्तर सभी कल्पवृक्ष न तो वनस्पतिकायिक रूप हैं और न कोई व्यन्तरादि देव रूप ही हैं, किन्तु इनकी विशेषता यह है कि ये सभी पृथ्वी रूप होते हुए भी जीवों को उनके पुण्यकर्म का फल देते हैं।

प्र. 24 भोग-भूमि-गत मनुष्यों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष कौन-से हैं?

उत्तर भोग-भूमि में पानांग, तूर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और तेजांग नामक कल्पवृक्ष अपने नाम के अनुरूप मनवांछित वस्तुओं को देने में सक्षम होते हैं।

प्र. 25 भोग-भूमि सम्बन्धित पानांग कल्पवृक्ष मनुष्यों के लिए कौन-से पेय प्रदान करते हैं?

उत्तर पानांग नामक कल्पवृक्ष भोगभूमिजों को मधुर, सुस्वादु, षट्रसों से युक्त, प्रशस्त, अतिशीत और तुष्टि एवं पुष्टि को करने वाले ऐसे बत्तीस प्रकार के पेय द्रव्यों को दिया करते हैं।

प्र. 26 भोग-भूमि में तूर्यांग नामक कल्पवृक्षजीवों को क्या-क्या प्रदत्त करते हैं?

उत्तर तूर्यांग जाति के कल्पवृक्ष उत्तमवीणा, पटु, पटह, मृदंग, झालर, शंख, दुंदुभि, भंभा, भेरी और काहल इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्यों को देते हैं।

प्र. 27 भोग-भूमि में भूषणांग जातिज कल्पवृक्ष मनुष्यों को कौन-कौन से आभूषण प्रदान करते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में भूषणांग जातिज कल्पवृक्ष कंकण, कटिसूत्र, हार, केयूर, मंजीर, कटक, कुण्डल, किरीट और मुकुट इत्यादिक आभूषण प्रदान करते हैं।

प्र. 28 भोग भूमिज वस्त्रांग नामक कल्पवृक्ष कैसे-कैसे वस्त्रों को फलते हैं?

उत्तर भोग भूमिज वस्त्रांग नामक कल्पवृक्ष नित्य ही उत्तम क्षौमादि वस्त्र तथा अन्य मन और नयनों को आनन्दित करने वाले नाना प्रकार के वस्त्रादि फलते हैं।

प्र. 29 भोग-भूमिज भोजनांग नामक कल्पवृक्ष मनुष्यों के लिए कौन-कौन से स्वादिष्ट मधुर भोज्य फलते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में भोजनांग कल्पवृक्ष सोलह प्रकार का आहार, सोलह प्रकार के व्यंजन, चौदह प्रकार के सूप (दालादिक), एक सौ आठ प्रकार के खाद्य पदार्थ, तीन सौ त्रेसठ प्रकार के स्वाद्य-पदार्थ और त्रेसठ प्रकार के स्वादिष्ट रस दिया करते हैं।

प्र. 30 भोग-भूमि में आलयांग नामक कल्पवृक्ष जीवों को क्या फल देते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में आलयांग कल्पवृक्ष स्वस्तिक और नन्द्यावर्त नामक सोलह प्रकार के रमणीय दिव्य भवन दिया करते हैं।

प्र. 31 भोग-भूमि में दीपांग नामक कल्पवृक्ष जीवों को क्या फल देते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में दीपांग नामक कल्पवृक्ष प्रासादों (भवनों) में शाखा, प्रवाल (नवजात पत्र) फल, फूल और अंकुरादि के द्वारा जलते हुए दीपकों के समान दिव्य ज्योतिर्मय प्रकाश देते हैं।

प्र. 32 भोग-भूमिज भाजनांग जाति के कल्पवृक्ष मनुष्यों को क्या-क्या प्रदान करते हैं?

उत्तर भोगभूमिज भाजनांग जाति के कल्पवृक्ष मनुष्यों के लिए सुवर्ण एवं बहुत-से रत्नों से निर्मित धवल झारी, कलश, गागर, चामर और आसनादिक प्रदान करते हैं।

प्र. 33 भोग-भूमिज मालांग जाति के कल्पवृक्ष जीवों को क्या-क्या अर्पण करते हैं?

उत्तर भोग-भूमिज मालांग जाति के कल्पवृक्ष जीवों को बल्ली, तरु, गुच्छ और लताओं से उत्पन्न हुए सोलह हजार भेद रूप पुष्पों की विविध मालाओं को अर्पण करते हैं।

प्र. 34 भोग-भूमि में तेजांग नामक कल्पवृक्ष मनुष्यों के किस तरह उपकारक बनते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में तेजांग नामक कल्पवृक्ष मनुष्यों को मध्यदिन के करोड़ों सूर्यों की किरणों के समान होते हुए नक्षत्र, चन्द्र और सूर्यादिक की कान्ति को हरते (संहरण करते) हैं।

प्र. 35 भोगभूमिज जीवों की जन्म और मरण सम्बन्धी क्या विशेषता है?

उत्तर भोगभूमि में जीव जुड़वा रूप जन्म लेते हैं, संतति को जन्मने वाले जन्म दाता पुरुष का छींक आते ही और स्त्री का जंभाई आते ही बिना किसी कष्ट हुए मरण हो जाता है और उन माता-पिता का शरीर शरद ऋतु के बादलों की तरह शुभ्र आकाश में विलय को प्राप्त हो जाता है।

प्र. 36 जन्म प्राप्त भोगभूमिज जुड़वा मनुष्यों का शरीर किस तरह वृद्धिंगत होता है?

उत्तर जन्म प्राप्त जघन्य भोगभूमिज जुड़वा मनुष्य शय्या पर सोते-जागते हुये सात दिनों तक सानन्दित अमृतमय अपना अंगूठा चूसते हैं, फिर सात दिनों तक घुटने के बल चलते हैं, फिर तीसरे सप्ताह में मीठी-मीठी तोतली-सम भाषा बोलते हैं, फिर चौथे सप्ताह में पैरों को जमाकर स्वतः चलने लग जाते हैं, फिर पाँचवे सप्ताह में वे कला और रूप आदि गुणों से सम्पन्न हो जाते हैं, फिर छठे सप्ताह में वे नवयौवन से सहित हो जाते हैं और सातवें सप्ताह में वे सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता भी पा लेते हैं।

प्र. 37 भोगभूमिज जुड़वा पुरुष और स्त्री कैसा जीवन जीते हैं?

उत्तर भोगभूमिज जुड़वा पुरुष और स्त्री दम्पत्ति (पति-पत्नी) रूप बनकर विषय सुखमय जीवन जीते हैं।

प्र. 38 भोग-भूमि का सुख किससे भी अधिक होता है?

उत्तर भोग-भूमि का सुख चक्रवर्ती के सुख से भी अधिक होता है।

प्र. 39 भोग-भूमि में कौन-सी बाधाएँ नहीं होती?

उत्तर भोग-भूमि में विकलत्रय जीव, सर्प, बिच्छू आदि विषैले जन्तु, विषम ऋतु, बुढ़ापा, रोग, विशेष निद्रा और चिन्तादि बाधाएँ नहीं होती।

प्र. 40 भोग-भूमि में कौन-कौन से विशेष पाप नहीं होते?

उत्तर भोगभूमि में लड़ाई-झगड़े, युद्ध, असत्य, चोरी, अन्याय, परस्त्रीसेवन और परिग्रह संग्रह आदि रूप पाप कदापि नहीं होते। [शेष वर्णन करणानुयोग में देखें]

प्र. 41 शलाका पुरुष किन्हें कहते हैं?

उत्तर लोक प्रसिद्ध भव्य पुरुष जो तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदिक पद के धारक होते हैं उन्हें शलाका पुरुष कहते हैं।

प्र. 42 शलाका पुरुष कब कौन-कौन-से कितने-कितने होते हैं?

उत्तर शलाका पुरुष प्रत्येक कल्पकाल में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र (बलदेव), 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण रूप 63 होते हैं।

प्र. 43 शलाका पुरुषों का अन्य तरह से महापुरुषों के रूप में कथन आगम में किस तरह से वर्णित किया गया है?

उत्तर शलाका पुरुषों का अन्य तरह से महापुरुषों के रूप में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 नारद, 11 रुद्र, 24 कामदेव, तीर्थंकरों के जन्म गुरु रूप 24 पिता, 24 माता, और 14 कुलकर इस तरह 169 महापुरुषों के रूप में शलाका पुरुष वर्णित किये गये हैं।

प्र. 44 कुलकर अथवा मनु या आदिपुरुष किन्हें कहते हैं?

उत्तर पुरुषों को कुल की भांति इकट्ठे रहने का उपदेश देने से भव्यपुरुष कुलकर कहलाते हैं अथवा वे अवधिज्ञान व जाति स्मरण द्वारा प्रजा के जीवन-जीने का उपाय जानने से वे मनु कहलाते हैं और वे युग के आदि में उत्पन्न होने से आदि पुरुष भी कहलाते हैं।

प्र. 45 शलाका पुरुषों का मोक्ष-प्राप्ति सम्बन्धी आगमिक नियम क्या है?

उत्तर तीर्थंकर, उनके गुरु (पिता-माता), चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, रुद्र, नारद, कामदेव और कुलकर ये सब (प्रतिनारायण को छोड़कर 160 दिव्य पुरुष) भव्य होते हुए नियम से (उसी भव में या अगले 1, 2 भवों में) सिद्ध होते हैं- मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

प्र. 46 शलाका पुरुषों का परस्पर मिलाप सम्बन्धी आगम में क्या कथन है?

उत्तर त्रिलोक में कभी चक्रवर्ती-चक्रवर्तियों का, तीर्थंकर-तीर्थंकरों का, बलभद्र-बलभद्रों का, नारायण-नारायणों का और प्रतिनारायण-प्रतिनारायणों का परस्पर मिलाप नहीं होता। नारायण-नारायण के निकट पहुँचेगा तो परस्पर दूरस्थ चिह्न- जैसे शंख के शब्द सुनने, रथों की ध्वजाओं के देखने मात्र से

साक्षात्कार हो सकेगा।

प्र. 47 शलाका पुरुषों के शरीर सम्बन्धी क्या-क्या विशेषताएँ होती हैं?

उत्तर सभी शलाका पुरुष वज्रवृषभनाराच संहनन से सहित, सुवर्ण के समान वर्ण वाले (तिलोयपण्णत्ती में यह विशेष कथन है), उत्तमशरीर के धारक, सम्पूर्ण सुलक्षणों से युक्त और समचतुरस्र रूप संस्थान युक्त शरीर वाले होते हैं।

प्र. 48 तीनों लोकों के जीवों के शरीर में मूँछ-दाढ़ी के केशों सम्बन्धी क्या विशेषता होती है?

उत्तर सर्व देव, नारकी, बलदेव, चक्रवर्ती, तीर्थंकर, नारायण और कामदेव मूँछ-दाढ़ी के केश रहित होते हैं। (यही विशेषता भोगभूमि के मनुष्य एवं कुलकरों के शरीर में भी होना चाहिए।)

प्र. 49 शलाका पुरुषों में वर्णित कुलकरों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर 1. प्रतिश्रुति, 2. सन्मति, 3. क्षेमंकर, 4. क्षेमंधर, 5. सीमंकर, 6. सीमंधर, 7. विमलवाहन, 8. चक्षुष्मान्, 9. यशस्वी, 10. अभिचन्द्र, 11. चन्द्राभ, 12. मरुद्देव, 13. प्रसेनजित और 14. नाभिराय।

प्र. 50 तीर्थंकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत भी कुलकरों में सम्मिलित किये जाते हैं क्या?

उत्तर हाँ! महापुराण में तीर्थंकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत के लिए कुलकरों में सम्मिलित कर कुलकरों की सोलह संख्या बतलायी है।

प्र. 51 इस कर्म भूमि (चतुर्थकाल) आने के कितने वर्ष शेष रहने पर इन कुलकरों की उत्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है?

उत्तर इस कर्मभूमि रूपी चतुर्थ काल आने के एक हजार वर्ष शेष रहने पर इन कुलकरों की उत्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है। (उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा)

प्र. 52 प्रतिश्रुति नामक प्रथम कुलकर ने तात्कालिक किस परिस्थिति को देखकर भोगभूमि के मनुष्यों को क्या उपदेश दिया?

उत्तर प्रतिश्रुति नामक प्रथम कुलकर ने चन्द्र सूर्य के दिखने लग जाने से भयभीत मनुष्यों को यह उपदेश दिया कि अब तेजांग जाति के कल्पवृक्षों की कमी आ चुकी है अतः पूर्व से ही अस्तित्व में रहने वाले सूर्य चन्द्र अब दिखने में आने लगे हैं इस प्रकार परिचय देकर उनका भय दूर किया और हठाग्रह रूप अपराध करने वाले मनुष्यों के लिए 'हा' रूप दण्ड का विधान निश्चित किया।

प्र. 53 सन्मति नामक द्वितीय कुलकर ने तात्कालिक कौन-सी परिस्थिति को देखकर वहाँ रहने वाले मनुष्यों के लिए क्या उपदेश दिया?

उत्तर सन्मति नामक द्वितीय कुलकर ने तेजांगजाति के कल्पवृक्षों के लोप हो जाने पर अंधकार और तारागण के दिखने पर उन्हें अंधकार और ताराओं का परिचय देकर भय दूर किया।

प्र. 54 क्षेमंकर नामक तृतीय कुलकर ने भोग-भूमि की परिस्थिति बदलने पर लोगों को क्या शिक्षा दी?

उत्तर क्षेमंकर नामक तृतीय कुलकर ने भोगभूमि में व्याघ्रादि तिर्यंचों में क्रूरता नजर आने पर भयभीत हुए

लोगों के लिए यह उपदेश दिया कि इन क्रूर तिर्यंचों से अपना बचाव करना चाहिए, और बताया कि कल्पवृक्षों का अंत होने वाला है और दुषमा-सुषमा काल निकट आने के कारण तिर्यंचों में क्रूरता दिखने लगी है, इनसे अपनी रक्षा का उपाय करना चाहिए, गृहादिक की विशेष सुरक्षा रखना चाहिए एवं गाय आदि पशु पालन व रक्षा की शिक्षा दी।

प्र. 55 क्षेमंधर नामक चतुर्थ कुलकर ने मनुष्यों को जीवन रक्षणार्थ कौन-से उपाय बतलाये?

उत्तर क्षेमंधर नामक चतुर्थ कुलकर ने व्याघ्रादि द्वारा मनुष्यों का भक्षण किये जाने पर अपने जीवन के रक्षणार्थ दण्ड (डण्डा) आदिक की प्रयोग विधि के उपाय बतलाये।

प्र. 56 सीमंकर नामक पंचम कुलकर ने विवादों से बचने का क्या उपाय बतलाया?

उत्तर सीमंकर नामक पंचम कुलकर ने कल्पवृक्षों की कमी के कारण उनके स्वामित्व पर परस्पर में झगड़ा देखकर मनुष्यों के लिए कल्पवृक्षों की सीमा का विभाजन किया।

प्र. 57 सीमंधर नामक छठे कुलकर ने मनुष्यों में होने वाले परस्पर कलह की स्थिति में किस तरह की व्यवस्था स्थापित की?

उत्तर सीमंधर शुभनाम वाले छठे कुलकर ने कल्पवृक्षों की अत्यन्त हानि के कारण मनुष्यों में परस्पर होने वाली कलह की वृद्धि को देखकर 'हा' (आश्चर्यकारक शब्द), 'मा' (निषेध कारक शब्द) रूप दण्ड विधान को निश्चित कर वृक्षों को चिह्नित करके उनके स्वामित्व का विभाजन किया।

प्र. 58 विमलवाहन नामक सातवें कुलकर ने मनुष्यों को होने वाली बाधाओं को देखकर कौन-सी शिक्षा दी?

उत्तर विमलवाहन नामक सातवें कुलकर ने मनुष्यों के गमनागमन में बाधक कारणों को जानकर अश्वारोहण व गजारोहण की शिक्षा तथा वाहनों के प्रयोग की शिक्षा दी।

प्र. 59 चक्षुष्मान् नामक आठवें कुलकर ने संतान के दर्शन से भयभीत लोगों के लिए क्या उपदेश दिया?

उत्तर चक्षुष्मान नामक आठवें कुलकर ने संतान के दर्शन से भयभीत लोगों के लिए यह उपदेश दिया कि अभी तक संतान का मुख देखने से पूर्व ही माता-पिता का देहान्त हो जाता था लेकिन अब सन्तानों के जन्मोपरान्त उनका मुख देखकर उनका मरण होगा।

प्र. 60 यशस्वी नामक नौवें कुलकर ने संतानों के लक्षणों से सम्बन्धित क्या शिक्षा प्रदान की?

उत्तर यशस्वी नामक नौवें कुलकर ने संतानों के लक्षणों को देखकर उनका नामकरण करके ही अब माता-पिता का देहान्त होगा अतः उनके नामकरण के विधि-विधान की शिक्षा दी।

प्र. 61 अभिचन्द्र नामक दसवें कुलकर ने बालकों को बचपन के समय कौन-सी कला सिखलाने का उपदेश दिया?

उत्तर अभिचन्द्र नामक दसवें कुलकर ने बालकों के लिए माता-पिता के द्वारा बोलने और क्रीड़ा करने की शिक्षा-कला सिखलाने का उपदेश दिया।

प्र. 62 चन्द्राभ नामक ग्यारहवें कुलकर ने पुत्र-कलत्र के साथ दीर्घ काल तक जीवित रहने लगने वाले मनुष्यों के लिए विशेष कलह और शीतवायु के प्रकोप से बचने हेतु क्या शिक्षा रूप उपाय बतलाए?

उत्तर चन्द्राभ नामक ग्यारहवें कुलकर ने पारिवारिक दीर्घजीवन में होने वाले विशेष कलह की स्थिति में 'हा', 'मा', 'धिक्' (धिक्कार हो) शब्दोच्चारण रूप दण्ड-विधान निश्चित किया तथा सूर्य की किरणों से शीत निवारण की शिक्षा दी।

प्र. 63 मरुद्देव नामक बारहवें कुलकर ने भोगभूमि के अवसान काल में प्राकृतिक वातावरण के परिवर्तन के समय लोगों को कौन-सी शिक्षा दी?

उत्तर मरुद्देव नामक बारहवें कुलकर ने तात्कालिक प्रकृति में बदलाव रूप मेघ, वर्षा, बिजली, नदी व पर्वत आदि के दर्शन होने पर जन संतुष्टि हेतु नौका व छातों की प्रयोग-विधि तथा पर्वत पर सीढ़ियाँ बनाने की शिक्षा दी।

प्र. 64 प्रसेनजित नामक तेरहवें कुलकर ने सन्तानों सम्बन्धी क्या शिक्षा दी?

उत्तर प्रसेनजित नामक तेरहवें कुलकर ने सन्तानों के जन्म पर जरायु की उत्पत्ति देखकर जरायु के दूर करने के उपाय की शिक्षा दी।

प्र. 65 नाभिराय नामक चौदहवें कुलकर ने नाभि से सम्बन्धित एवं कल्पवृक्षों के अभाव में औषधादि के प्रयोग सम्बन्धी क्या शिक्षा दी?

उत्तर नाभिराय नामक चौदहवें कुलकर ने सन्तानों की नाभिनाल को अत्यन्त लम्बा होते देखकर नाभिनाल को काटने के उपाय की शिक्षा दी और औषधियों व धान्य आदि की पहचान का ज्ञान कराया तथा उनके दूध आदि के प्रयोग करने की शिक्षा दी।

प्र. 66 ऋषभदेव नामक पंद्रहवें कुलकर ने स्व जात धान्यादि में हानि देखकर मनुष्यों को कौन-कौन-सी शिक्षायें प्रदान कीं?

उत्तर ऋषभदेव नामक पंद्रहवें कुलकर (प्रथम तीर्थंकर) ने एक ही प्रकार के स्वजात धान्यादि में हानि देखने पर कृषि, असि, मसि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या रूपी षट् कर्मों या षट् विद्याओं की मनुष्यों के लिए शिक्षाएँ प्रदान कीं।

प्र. 67 भरत नामक सोलहवें कुलकर ने कुछ मनुष्यों में अविवेक की उत्पत्ति होने पर किस व्यवस्था की स्थापना की?

उत्तर भरत नामक सोलहवें कुलकर (प्रथम चक्रवर्ती) ने कुछ मनुष्यों में अविवेक की उत्पत्ति होने पर वर्ण व्यवस्था की स्थापना की।

प्र. 68 प्रतिश्रुति नामक प्रथम कुलकर से लेकर नाभिराय पर्यंत चौदह कुलकरों का पूर्व-भव कौन-सा था?

उत्तर प्रतिश्रुति से लेकर नाभिराय पर्यंत वे चौदह कुलकर पूर्व-भव में विदेह क्षेत्र के भीतर महाकुल में

राजकुमार थे।

प्र. 69 भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले कुलकरों का पूर्व-भव में संयम, तप आदि सम्बन्धी नियम क्या है?

उत्तर वे सभी चौदह कुलकर संयम, तप और ज्ञान से युक्त पात्रों के लिए दानादिक देने में कुशल, अपने योग्य अनुष्ठान से युक्त और आर्जव, मार्दव गुणों से सहित होते हुए पूर्व में मिथ्यात्व काल मेंभोगभूमि की आयु को बाँधकर पश्चात् जिनेन्द्र भगवान के चरणों के समीप क्षायिक-सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं।

प्र. 70 मनुष्य-भव से आकर कुलकर होने का नियम ऋषभ देव एवं भरत के जीवन पर लागू नहीं होता क्योंकि वे विमानवासी देव पर्याय से आकर मनुष्य रूप में जन्में थे फिर भी उन्हें कुलकर क्यों माना?

उत्तर ऐसा नियम है कि अवसर्पिणी काल सम्बन्धी चौदह कुलकर पूर्वजन्म में मिथ्यात्व के साथ ही मनुष्य आयु का बंध कर फिर सम्यक्त्व ग्रहण कर भोगभूमि में कुलकर के रूप में उत्पन्न होते हैं, लेकिन ऋषभदेव और भरत विमानवासी देवों के सर्वार्थसिद्धि विमान से सम्यक्त्व के साथ मनुष्य आयु का बंध कर कर्मभूमि में जन्म लेने अवतरित हुए थे और तृतीयकाल के अंत में कर्मभूमि का वातावरण प्रारम्भ हो गया था फिर भी उन्हें कृषि आदि षट् कर्मों और वर्णादिक की व्यवस्था स्थापित करने वाले कहे जाने से कुलकर औपचारिक रूप कहा जाता है।

प्र. 71 प्रतिश्रुति से लेकर नाभिराय तक चौदह कुलकर स्वीकार करने पर क्या विशिष्टता और अधिक रूप से सोलह कुलकर स्वीकार करने पर क्या बाधा उत्पन्न होगी?

उत्तर प्रतिश्रुति से लेकर नाभिराय तक चौदह कुलकर स्वीकार करने पर 169 महापुरुषों की संख्या सुरक्षित रहेगी अन्यथा तीर्थंकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत को कुलकर मानने पर महापुरुषों की संख्या 171 मानना पड़ेगी तथा मनुष्य गति से मनुष्य आयु का बंध करके कुलकर बनते हैं यह नियम बाधक बनेगा।

प्र. 72 भोगभूमि के जीव मरणोपरान्त कौन-सी गति को प्राप्त करते हैं?

उत्तर भोगभूमि के जीव अगर मिथ्यात्व के साथ मरण को प्राप्त होते हैं तो भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिष्क देव रूप किसी एक पर्याय में भवनत्रिक नामक देवगति को प्राप्त करते हैं तथा भोगभूमि के जीव अगर सम्यक्त्व के साथ मरण को प्राप्त होते हैं तो सौधर्म-ऐशान कल्प में जाकर विमानवासी रूप देवगति को प्राप्त करते हैं।

प्र. 73 भोगभूमि के अंत में क्षायिक-सम्यक्त्व के साथ जन्म लेने वाले चौदह कुलकर मरण को प्राप्तकर कहाँ जन्म-धारण करते हैं?

उत्तर भोगभूमि के अंत में क्षायिक-सम्यक्त्व के साथ जन्म लेने वाले चौदह कुलकर मरण को प्राप्त कर विमानवासी देवों में ऋद्धि आदिक से सम्पन्न विशिष्ट देव पद धारण करते हैं और वहाँ से चयकर सुयोग्य मनुष्य-भव पाकर संयम धारण कर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

प्र. 74 तीर्थंकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत ये कर्मभूमि के मनुष्य थे इसके लिए आगमिक सटीक तर्क कौन-सा है?

उत्तर निश्चित रूप से देवगति को प्राप्त करने वाले भोगभूमि के जीव उस ही भव में अर्थात् भोगभूमि में संयम धारण एवं मोक्ष पद पाने की योग्यता धारक नहीं होते जबकि तृतीयकाल के अन्त में जन्म लेने वाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एवं प्रथम चक्रवर्ती भरत संख्यात वर्ष की आयु वाले होते हुए षट्कर्मों की व्यवस्था बतलाने वाले तथा चार पुरुषार्थों के उपदेशक होते हुए तद्भव मोक्षगामी थे अतः उन्हें कर्मभूमिज मानव कहा जाता है।

प्र. 75 पुरुषार्थ का वास्तविक शाब्दिक अर्थ क्या है?

उत्तर पुरुषार्थ का वास्तविक शब्दिक अर्थ ''पुरुष'' के द्वारा किया जाने वाला 'अर्थ' अर्थात् प्रयोजनीय कार्य है।

प्र. 76 पुरुषार्थ के वे प्रयोजनीय रूप कार्य कौन-से हैं?

उत्तर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चार तरह के पुरुषार्थ ही प्रयोजनीय कार्य कहलाते हैं।

प्र. 77 धर्म-पुरुषार्थ में कौन-कौन-से प्रमुख कार्य समाहित किये जाते हैं?

उत्तर 1. समीचीन जिनधर्म के आयतनों का निर्माण व उनका संरक्षण, संवर्द्धन।

2. समीचीन धर्मक्षेत्रों हेतु यात्राएँ व उनका प्रबन्धन।

3. पञ्चकल्याणकों व जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा का समायोजन।

4. कल्पद्रुम जैसे- महामण्डल आराधना रूप विधानों का आयोजन।

5. जिनागम का संरक्षण व संवर्द्धन। और

6. मुनि, आर्यिकादि रूप आचार्य संघों की आहार, विहार और निहार आदिक की व्यवस्था के साथ उनको होने वाली बाधाओं का निवारण आदिक विशेष कार्य विशिष्ट पुरुषार्थी पुरुषों द्वारा किये जाने के कारण धर्म-पुरुषार्थ कहे जाते हैं।

प्र. 78 अर्थ-पुरुषार्थ को पुरुष किस रूप सम्पन्न करता है?

उत्तर अर्थ-पुरुषार्थ में संलग्न पुरुष गृहणी सम भयभीत व सलज्ज न होता हुआ, न ही राज्य के नियमों का उल्लंघन करता हुआ, दिन रात प्रयत्नशील रहता हुआ देश-विदेश, देश प्रमुखों के समक्ष चोर व जंगली पशुओं (सिंहादिक) के आगे शूरवीर बनता हुआ भूख, प्यास और मानापमानादि की बाधाओं को सहता हुआ अर्थ या धन-अर्जन के कार्य को सम्पन्न करता है।

प्र. 79 काम-पुरुषार्थ को पुरुष कैसे सार्थक बनाता है?

उत्तर जो अपने धार्मिक कुल के संस्कार की परम्परा की वृद्धि करने के निमित्त स्वयं के पूर्वज, माता-पिता और अग्रज आदिक की आज्ञा व अनुमति तथा उनकी संतुष्टि के बल पर अपने कुल आदिक की परम्परा, राज्य तथा स्वगुणों के अनुरूप, विनीत, गुणवान, सुयोग्य कन्या को स्वीकार कर जीवन पर्यन्त विवाह के संकल्पों से संकल्पित होता हुआ सन्तान उत्पत्ति का पुरुषार्थ करता है वह पुरुष काम-पुरुषार्थ की सार्थकता को प्राप्त करता है।

प्र. 80 मोक्ष-पुरुषार्थ को सार्थक बनाने वाला पुरुष कैसा होता है?

उत्तर मोक्ष-पुरुषार्थ को सार्थक बनाने हेतु जो पुरुष एकत्व (अकेलेपन), अन्यत्व (स्वात्मा से सर्व पदार्थ भिन्न हैं) की भावना को प्रमुख बनाता हुआ गृह के मोह-जाल को छोड़ मुनि बन व मुनि संघ में समर्पित होकर निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर मुनियों के मूलगुणों के साथ द्वादश तपादिक आचारों का पालन करता हुआ सिंह के सदृश निर्भय, निर्द्वन्द होकर जंगल, उपवन नगर व ग्रामादिक में सम्यक्-ध्यान के द्वारा कर्मों की निर्जरा करता है वह पुरुष मोक्ष-पुरुषार्थ को सार्थक बनाने वाला होता है।

प्र. 81 पुरुषार्थों को करने में केवल पुरुष के लिए ही सुयोग्य माना है ऐसा क्यों?

उत्तर केवल पुरुष अत्यन्त निर्भीक, निर्द्वन्द, निर्लज्य, अकायर होते हुए एकलपन के साथ बुलंदतापूर्वक बेझिझक विशिष्ट शक्तिवान उद्यमी कहलाता हुआ त्याग और वैराग्य से उत्कृष्ट ध्यान में भी अपनी आत्मा को उन्नति की सर्वोच्चता तक पहुँचाता है न कि कोई गृहणी इस पुरुषार्थ की सिद्धि को पाती है, अतः उसे पुरुष के अर्थ अर्थात् प्रयोजनीय कार्य के करने वाले पुरुष को ही चारों पुरुषार्थों के करने हेतु सुयोग्य माना गया है।

प्र. 82 धर्म-पुरुषार्थ करने का फल क्या है?

उत्तर धर्म-पुरुषार्थ करने का फल पुण्य की प्राप्ति है, जिस पुण्य के फलस्वरूप सांसारिक वैभव रूप सुगति, उत्तम जाति, उत्तम कुल, सांगोपांग शरीर, सुन्दर भोग, धन-धान्य, पुत्र पौत्रादि सम्पदा की प्राप्ति तथाहि वीतराग आयतन, उत्तम संहननादि की उपलब्धि से परम्परा से मोक्ष रूप फल की प्राप्ति माना गया है।

प्र. 83 अर्थ-पुरुषार्थ और काम पुरुषार्थ का फल क्या है?

उत्तर अर्थ तथा काम-पुरुषार्थ का फल संसार वृद्धि या चतुर्गति भ्रमण है।

प्र. 84 मोक्ष-पुरुषार्थ का फल क्या है?

उत्तर मोक्ष-पुरुषार्थ का फल सर्वकर्म का क्षय, भव भ्रमण का अंत और मोक्ष या सिद्ध-पद की प्राप्ति माना गया है।

प्र. 85 तीर्थंकर किन्हें कहते हैं जिन्होंने कि हमें पुरुषार्थों का उपदेश दिया था?

उत्तर कल्याणकों की पूजा से लोक पूज्यता को प्राप्त जिन विशिष्ट आत्माओं से तीर्थ का उदय होता है उन्हें तीर्थंकर कहते हैं।

प्र. 86 तीर्थ किसे कहते हैं?

उत्तर जो भव्य जीवों को संसार रूपी समुद्र से पार लगावे उसे तीर्थ कहते हैं।

प्र. 87 संसार रूपी भव-समुद्र से पार लगाने वाली वस्तु कौन-सी है?

उत्तर संसार रूपी भव-समुद्र से पार लगाने वाली वस्तु तीर्थंकरों से प्राप्त कल्याण करने वाली वाणी है जिसे जिनवाणी, आगम या दिव्यध्वनि भी कहते हैं।

प्र. 88 तीर्थंकर कहाँ, कब कितनी संख्या में होते हैं?

उत्तर पंच भरत, पंच ऐरावत संबन्धी अवसर्पिणी के दुषमा-सुषमा नामक चतुर्थ काल में और उत्सर्पिणी के दुषमा-सुषमा नामक तृतीय काल में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. 89 विदेह क्षेत्रों में कब और कितने तीर्थंकर होते हैं?

उत्तर पंच महा विदेहों अथवा उनके अंदर स्थित एक सौ साठ उपविदेह क्षेत्रों में जहाँ सदा दुषमा-सुषमा नामक चतुर्थकाल जैसा वातावरण रहता है, वहाँ हमेशा अधिक से अधिक एक सौ साठ और कम-से-कम बीस तीर्थंकर विद्यमान रहते हैं।

प्र. 90 तीर्थंकर कौन और कैसे बनते हैं?

उत्तर जो भव्य जीव सम्यक्त्व पूर्वक केवली-भगवान अथवा श्रुत-केवली मुनीश्वर के पाद-मूल में लोक-कल्याण की भावना के साथ षोडसकारण भावनाओं को भाते हैं वे विशिष्ट विशुद्धि प्राप्त जीव तीर्थंकर प्रकृति का संचय कर तीर्थंकर बनते हैं।

प्र. 91 अवसर्पिणी काल संबंधी सुषमा-दुषमा नामक तृतीय काल के अन्त में तीर्थंकर की उत्पत्ति का कारण बतलाइये?

उत्तर सुषमा-दुषमा नामक तृतीय काल के अन्त में प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ और प्रथम चक्रवर्ती भरत की उत्पत्ति होना यह दुषमा-सुषमा जैसे काल के वातावरण का सद्भाव मानना चाहिए।

प्र. 92 भरत और ऐरावत क्षेत्रों में तीर्थंकरों के कल्याणक कितने होते हैं और कौन-कौन-से?

उत्तर भरत और ऐरावत क्षेत्रों में तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा (तप या अभिनिष्क्रमण), केवलज्ञान और निर्वाण (मोक्ष) रूप पंच कल्याणक हुआ करते हैं।

प्र. 93 विदेह क्षेत्रों में कल्याणकों के होने का क्या विशेष नियम है?

उत्तर विदेह क्षेत्रों में पञ्च कल्याणकों वाले तीर्थंकरों के अलावा दो या तीन कल्याणकों वाले तीर्थंकर भी हुआ करते हैं।

प्र. 94 विदेह क्षेत्रों में दो अथवा तीन कल्याणक कौन-कौन-से होते हैं?

उत्तर विदेह क्षेत्रों में कोई गृहस्थश्रावक सोलह भावन-भाकर तीर्थंकर-प्रकृति का बंध कर निर्ग्रन्थ-दीक्षा-धारण करते समय तीर्थंकर-प्रकृति का उदय हो जाने से उनके दीक्षा-कल्याणक और आगे उसी जीवन में ज्ञान और मोक्ष-कल्याणक भी अवश्य सम्पन्न होते हैं। तथा जो गृहस्थ मुनि बनने के उपरान्त तीर्थंकर-प्रकृति का बंध करते हैं, उनके ज्ञान एवं मोक्ष-कल्याणक रूप दो कल्याणक सम्पन्न होते हैं। यह नियम केवल विदेह क्षेत्रों का है न कि भरत और ऐरावत क्षेत्रों का।

प्र. 95 विदेह क्षेत्र में एक या चार कल्याणक वाले तीर्थंकर क्यों नहीं होते?

उत्तर इसका समाधान यह है कि जो जीव पूर्वभव से तीर्थंकर-प्रकृति का बंध करके आया है उस जीव के पांचों कल्याणक सम्पन्न होंगे और जो जीव पूर्व भव से तीर्थंकर-प्रकृति का बंध करके नहीं आया है उसे गर्भावस्था में तो तीर्थंकर-प्रकृति बंध होगा नहीं अत: गर्भ कल्याणक को छोड़कर चार कल्याणक होना संभव नहीं। इसी तीर्थंकर-प्रकृति का बंध किसी योग्य पुरुष के गृहस्थावस्था से मुनि अवस्था तक ही होना संभव है केवली होने के बाद नहीं; कि जिस कारण उसके ज्ञान-कल्याणक भी छोड़कर मात्र मोक्ष-कल्याणक सम्पन्न हो सके। (विशेष विषय करणानुयोग में देखें)।

प्र. 96 भरतक्षेत्र में तीर्थंकरों का जन्म किस विशिष्ट स्थल पर होता है?

उत्तर भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में तीर्थंकरों का जन्म; जिस स्थल की चित्रा भूमि पर ओम् (ॐ) शाश्वत रूप से बना हुआ है ऐसे स्थल पर रची जाने वाली अयोध्या नगरी में होता है।

प्र. 97 भरतक्षेत्र में तीर्थंकरों को निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति किस पवित्र स्थल से होती है?

उत्तर भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में तीर्थंकरों को निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति; जिस स्थल की चित्राभूमि पर शाश्वत रूप से स्वस्तिक (卐) बना हुआ है ऐसे स्थल पर रचे जाने वाले सम्मेदशिखर-पर्वत से होती है। (प्रलयोपरान्त रचना रूप विशेष वर्णन करणानुयोग में देखें)।

प्र. 98 आर्यखण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर भरत-क्षेत्र में विजयार्ध पर्वत की दक्षिण दिशा की ओर गंगा और सिन्धु नदियों से विभाजित मध्य वाले भाग को जहाँ धार्मिक-क्रिया करने वाले गुणवान मनुष्य निवास करते हैं उसे आर्यखण्ड कहते हैं।

प्र. 99 म्लेच्छखण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर भरत क्षेत्र में विजयार्ध पर्वत की उत्तर दिशा की ओर गंगा और सिन्धु नदियों से विभाजित तीन भागों को तथा दक्षिण दिशा के दो भागों को अर्थात् षट्खण्डों में से पांच खण्डों को जहाँ कि धार्मिक क्रियाओं से रहित मनुष्य निवास करते हैं उसे म्लेच्छ खण्ड कहते हैं।

प्र. 100 भरत क्षेत्र में तीर्थंकरों का अयोध्या नगर को छोड़कर अन्य स्थलों पर जन्म होने में और सम्मेद-शिखर क्षेत्र के अलावा अन्य स्थल से मोक्ष होने में मुख्य कारण कौन-सा है?

उत्तर तीर्थंकरों का अयोध्या नगर छोड़कर अन्य स्थलों पर जन्म और सम्मेदशिखर क्षेत्र छोड़कर अन्य स्थल से मोक्ष होने में मुख्य कारण असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के अनन्तर आने वाला हुण्डा-अवसर्पिणी काल है जिस काल में ऐसी ही कुछ विचित्र घटनाएँ घटा करती हैं। (अतिरिक्त विषय देखें जैनागम संस्कार अ.2.)।



बिना आत्मा की पवित्रता के अतिशय संभव नहीं।

Without the presence of the soul, the manifestation of spiritual excellence is not possible.

•••

याद रखना....धर्मात्मा से कभी ग्लानि मत करना। क्योंकि धर्मात्मा के बिना धर्म नहीं होता।

Do not look for faults in devotees, because devotion keeps religion alive.

अध्याय - 2
तीर्थंकर ऋषभदेव का वैभवादि

प्र. 101 निर्मल सम्यग्दृष्टि जीव किस तरह की लोककल्याण या विश्वकल्याण की प्रबल भावना से तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है?

उत्तर तीर्थंकर जिनेन्द्र देव की दिव्य-वाणी के प्रसाद से देव, मनुष्य और पशु इन सभी जीवों को धर्म का अपूर्व लाभ होता है। यह देखकर किसी महाभाग मनुष्य के हृदय में ऐसे अत्यन्त पवित्र भाव उत्पन्न होते हैं कि हे प्रभो! आपके समान क्षमता, शक्ति तथा सामर्थ्य मेरी आत्मा में भी उत्पन्न हो, जिससे मैं भी सम्पूर्ण जीवों को आत्म-ज्ञान का अमृत पिलाकर उनको सच्चे सुख का मार्ग बता सकूँ। इस प्रकार की विश्वकल्याण की प्रबल भावना के द्वारा सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थंकर-प्रकृत्ति का बंध करता है।

प्र. 102 दर्शन विशुद्धि भावना मात्र से भी क्या तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है?

उत्तर सम्यक्त्व यदि सांगोपांग (अष्टअंगसह) हो और उसके साथ सर्व जीवों को सम्यक् ज्ञानामृत पिलाने की भावना या मंगल कामना प्रबल रूप से हो जाये तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है। दर्शन की विशेष विशुद्धि रूप दर्शन विशुद्धि भावना की परिपूर्णता होने पर अनेक शेष वे विनयसम्पन्नता आदिक भावनाएँ अप्रत्यक्ष रूप से या अस्पष्ट रूप से सहचर बनकर धर्म-मार्ग की विशुद्धि में और तीर्थंकर प्रकृतिबंध में कारण बनती हैं।

प्र.103 सम्यग्दर्शन से भी दर्शन विशुद्धि भावना में क्या विशिष्टता है?

उत्तर सम्यग्दर्शन आत्मा का श्रद्धा विशेष परिणाम है। वही मात्र तीर्थंकर प्रकृति बंध का कारण नहीं हो सकता; उसके सद्भाव में जब एक लोक कल्याण की विशिष्ट भावना उत्पन्न होती है तब उसे दर्शन विशुद्धि भावना कहा जाता है। यदि दोनों में अन्तर न हो तो चल-मल-अगाढ़ आदिक विकारी दोषों से पूर्णतः उन्मुख सभी क्षायिक सम्यक्त्वी जीव तीर्थंकर प्रकृति के बंधक हो जाते, किन्तु ऐसा नहीं होता, अतः यह स्वीकरना तर्क सङ्गत है कि सम्यक्त्व के साथ में और भी सर्वजीव-उद्धारक रूप विशेष पुण्य भावना का सद्भाव आवश्यक है।

प्र. 104 परम-उत्कृष्ट रूप क्षायिक सम्यग्दर्शन मात्र के हो जाने से तीर्थंकर प्रकृति बंध की अनिवार्यता मान लेने पर क्या विरोध आता है?

उत्तर क्षायिक सम्यक्त्व मात्र यदि तीर्थंकर प्रकृति बंध का कारण होता तो सिद्ध-पद की प्राप्ति के पूर्व सर्व केवली तीर्थंकर होते, क्योंकि केवलज्ञानी बनने से पूर्व क्षपकश्रेणी आरोहण करते समय क्षायिक सम्यक्त्व को पाना यह अनिवार्य नियम है। भरत क्षेत्र में एक अवसर्पिणी में वर्तमान कालिक चौबीस ही तीर्थंकर होने रूप अल्प संख्या ही तीर्थंकर प्रकृति की लोकोत्तरता को स्पष्ट करती है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि होने मात्र से यदि तीर्थंकरत्व प्राप्त होता तो तीर्थंकर महावीर भगवान के समवसरण में विद्यमान सात सौ केवली सामान्य केवली न होकर तीर्थंकर हो जाते; किन्तु नहीं हुआ। कदापि एक

तीर्थंकर के समक्ष दूसरे तीर्थंकर का सद्भाव भी नहीं होता।

प्र. 105 भरतक्षेत्र सम्बन्धी भूतकालीन (उत्सर्पिणी के दुषमा-सुषमा नामक तृतीय काल में हुए) चौबीस तीर्थंकर कौन-से शुभ नामों से जाने जाते थे?

उत्तर भरतक्षेत्र सम्बन्धी भूतकालीन चौबीस तीर्थंकर-1. निर्वाण, 2. सागर, 3. महासाधु, 4. विमलप्रभ, 5. श्रीधर, 6. सुदत्त, 7. अमल प्रभ, 8. उद्धर, 9. अंगिर, 10. सन्मति, 11. सिन्धु, 12. कुसुमांजलि, 13. शिवगण, 14. उत्साह, 15. ज्ञानेश्वर, 16. परमेश्वर, 17. विमलेश्वर, 18. यशोधर, 19. कृष्णमति, 20. ज्ञानमति, 21 शुद्धमति, 22. श्रीभद्र, 23. अतिक्रान्त और 24. शांतदेव; ऐसे शुभनामों से जाने जाते थे।

प्र. 106. भरतक्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान कालीन (अवसर्पिणी के दुषमा-सुषमा नामक चतुर्थकाल में हुए) चौबीस तीर्थंकर किन शुभ नामों से पुकारे जाते हैं?

उत्तर भरतक्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान कालीन चौबीस तीर्थंकर- 1. ऋषभनाथ, 2. अजितनाथ, 3. संभवनाथ, 4. अभिनन्दन, 5. सुमतिनाथ, 6. पद्मप्रभ, 7. सुपार्श्वनाथ, 8. चन्द्रप्रभ, 9. पुष्पदंत, 10. शीतलनाथ, 11. श्रेयांसनाथ, 12. वासुपूज्य, 13 विमलनाथ, 14. अनन्तनाथ, 15. धर्मनाथ, 16. शांतिनाथ, 17. कुन्थुनाथ, 18. अरहनाथ, 19. मल्लिनाथ, 20. मुनिसुव्रत, 21. नमिनाथ, 22. नेमिनाथ, 23. पार्श्वनाथ और 24. महावीर; ऐसे शुभ नामों से पुकारे जाते हैं।

प्र. 107 भरतक्षेत्र सम्बन्धी भविष्यत् कालीन (उत्सर्पिणी के दुषमा-सुषमा नामक तृतीय काल में होने वाले) चौबीस तीर्थंकर किन शुभ नामों से पुकारे जावेंगे?

उत्तर भरतक्षेत्र सम्बन्धी भविष्यत् कालीन चौबीस तीर्थंकर-1. महापद्म, 2. सुरदेव, 3. सुपार्श्व, 4. स्वयंप्रभ, 5. सर्वात्मभूत, 6. देवपुत्र, 7. कुलपुत्र, 8. उदंकदेव, 9. प्रोष्ठिलदेव, 10. जयकीर्ति, 11. मुनिसुव्रत, 12. अरदेव (अप्तम), 13. निष्पाप, 14. निष्कषाय, 15. विपुलदेव, 16. निर्मलदेव, 17. चित्रगुप्त, 18. समाधिगुप्त, 19. स्वयंभूदेव, 20. अनिवृत्तदेव, 21. जयदेव, 22. विमलदेव, 23. देवपाल और 24. अनन्तवीर्य; ऐसे शुभ नामों से पुकारे जावेंगे।

प्र. 108 विदेहक्षेत्र में विराजमान विद्यमान बीस तीर्थंकर किन शुभ नामों सह आराधित (उपासित) किये जाते हैं?

उत्तर विदेहक्षेत्र में विराजमान विद्यमान बीस तीर्थंकर- 1. सीमंधर, 2. युगमन्धर, 3. बाहु, 4. सुबाहु, 5. सुजात, 6. स्वयंप्रभु, 7. वृषभानन, 8. अनन्तवीर्य, 9. सुरप्रभ, 10. विशालकीर्ति, 11. वज्रधर, 12. चंद्रानन, 13. भद्रबाहु, 14. भुजंगम, 15. ईश्वर, 16. नेमप्रभ, 17. वीरसेन, 18. महाभद्र, 19. देवयश और 20. अजितवीर्य ऐसे शुभ नामों सह आराधित किये जाते हैं।

प्र. 109 ढाई-द्वीप में युगपत् कितने तीर्थंकर तक हो सकते हैं?

उत्तर जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध नामक ढाई-द्वीप में युगपत् पंच भरत, पंच ऐरावत और एक सौ साठ उप विदेहों की अपेक्षा एक सौ सत्तर तीर्थंकर तक हो सकते हैं। कहते हैं कि अजितनाथ तीर्थंकर

के काल में एक सौ सत्तर तीर्थंकर विद्यमान थे। लेकिन जन्मकल्याणक आदि सन्दर्भों में कुछ समय का अन्तर मानना पड़ेगा क्योंकि पंचमेरु सम्बन्धी जन्माभिषेक हेतु निश्चित पाण्डुक शिलाएँ केवल बीस ही होती हैं।

प्र. 110 प्रथम तीर्थंकर के समय सौधर्मेन्द्र अयोध्या की रचना किस तरह से करता है?

उत्तर प्रथम तीर्थंकर भगवान् वृषभदेव की माता मरुदेवी के गर्भ में आने के छह माह पूर्व ही इन्द्र की आज्ञानुसार देवों ने स्वर्गपुरी के समान अयोध्या नगरी की रचना की। देवों ने उस नगरी को विशेष मनोहर बनाया। इसका कारण यह प्रतीत होता कि देवताओं की यह इच्छा थी कि मध्यलोक में स्वर्ग की एक प्रतिकृति रही आवे। (म.पु.12-17)

प्र. 111 अयोध्या नगरी के लिए और किन-किन नामों से पुकारा जाता था?

उत्तर अयोध्या नगरी के लिए साकेता, विनीता तथा सुकौशला आदि शुभ नामों से भी पुकारा जाता था।

प्र. 112 अयोध्या नगरी में महाराजा नाभिराय के निवासार्थ कौन-से भवन की रचना की गई थी?

उत्तर अयोध्या नगरी के मध्य में स्वर्गीय सुरेन्द्र भवन से स्पर्धा करने वाले नरेन्द्र भवन की रचना की गई थी, जो महाराजा नाभिराय के निवासार्थ था।

प्र. 113 महाराजा तीर्थंकर वृषभदेव अयोध्यानगरी के जिस भवन में निवास करते थे; रत्नों से सुसज्जित उस स्वर्णिम भवन का नाम क्या था?

उत्तर महाराजा वृषभदेव के उस सुन्दर भवन का नाम सर्वतोभद्र था।

प्र. 114 सर्वतोभद्र भवन कितना ऊँचा एवं किस तरह का था?

उत्तर सर्वतोभद्र भवन इक्यासी मंजिला एवं परकोटे, वापिका उद्यान और चतुर्मुख द्वारों से शोभायमान था तथा देवगणों द्वारा रक्षित था।

प्र. 115 तीर्थंकरों के जन्म वाले विशिष्ट भवन एवं भवन के परिसर में स्वर्गिक देवगण कितने करोड़ रत्नों की वर्षा कब; कब तक किया करते हैं?

उत्तर तीर्थंकर भगवान के जन्म के पन्द्रह माह पूर्व से अर्थात् गर्भ में आने के छह माह पूर्व से जन्म के नौ माह बाद तक जन्म नगरी में प्रभात, मध्याह्न, सायंकाल तथा मध्यरात्रि में चार बार साढ़े तीन-साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा देव गण किया करते हैं। इस तरह चौदह करोड़ दिव्य-वेशकीमती रत्नों की वर्षात् नित्यप्रति हुआ करती है।

प्र. 116 तीर्थंकरों के अवतार की खुशी में रत्नों की वर्षा करने, कराने वाले देव किस नाम से पुकारे जाते हैं?

उत्तर तीर्थंकरों के अवतार की खुशी में रत्न वर्षाने वाले देव तिर्यग्विजृंभक नामक सार्थक नाम से पुकारे जाते हैं जो कुबेरेन्द्र की आज्ञा से रत्न वर्षाते हैं।

प्र. 117 तीर्थंकर तो रत्न भण्डारयुत राजभवन में जन्म धारण करते हैं उन्हें रत्नों की वर्षात् से क्या प्रयोजन है?

उत्तर तीर्थंकरों का भवन रत्नों से सम्पन्न होते हुए भी वहाँ रत्नों की वर्षात् देवों द्वारा किया जाना यह स्वर्गिक देवों की विशेष भक्ति का प्रदर्शन है तथाहि नगर में रहने वाले लोग उन रत्नों को ले जाकर सम्पन्नता का अनुभव करते हुए फूले नहीं समाते और तीर्थंकर की महिमा गाते हुए उनका उपकार जन्म जन्मान्तरों तक नहीं भूलते।

प्र. 118 तीर्थंकर को जन्म देने वाली जननी माँ की सेवार्थ कितनी देवियाँ सातिशय पुण्य की भागनी होती हैं?

उत्तर तीर्थंकर को जन्म देने वाली जननी माँ की सेवार्थ कल्पवासी देवों के देवेन्द्रों की बारह इन्द्राणियाँ, भवनवासी देवों के देवेन्द्रों की बीस इन्द्राणियाँ, व्यन्तरवासी देवों के देवेन्द्रों की सोलह इन्द्राणियाँ, ज्योतिष्क देवों के देवेन्द्रों की दो इन्द्राणियाँ और कुलाचल (पर्वत) वासिनी श्री, ह्री आदि छह देवियाँ इस तरह कुल मिलाकर छप्पन देवांगनायें सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से नियुक्त होकर तीर्थंकर की माता की सेवाकर सातिशय पुण्य की भागनी होती हैं।

प्र. 119 देवांगनाओं ने किस तरह से तीर्थंकर को जनने वाली गुणवान माता की सेवा सम्पन्न की थी?

उत्तर कुण्डल पर्वत के महलों पर निवास करने वाली चूलावती, मालनिका, नवमालिका, त्रिशिरा, पुण्यचूला, कनकचित्रा, कनकादेवी तथा वरुणी देवी नामक अष्टदिक् कन्याएँ इन्द्र की आज्ञा से तीर्थंकर की जननी माँ की सेवा को नियुक्त हुईं थीं। कुलाचल वासिनी श्री देवी, ह्री देवी, कीर्ति देवी, धृति देवी, बुद्धि देवी एवं लक्ष्मी देवी नामक छह देवियाँ भगवान की माता का गर्भशोधन का कार्य करती हैं। नवमा माह निकट आने पर सेवा संलग्न देवियों ने अत्यन्त गूढ़, तत्त्व से सम्बन्धित तथा मनोरञ्जक प्रश्न जिनमाता से पूछे और उन तीर्थंकर माता से सुन्दर समाधान पाकर सुन्दर, मधुर मंगल गीत गाये।

प्र. 120 तीर्थंकर को जनने वाली माता को सोलह स्वप्न देखने की भूमिका किस तरह तैयार होती है और माता किस तरह के सोलह स्वप्न देखती हैं?

उत्तर वृषभदेव के गर्भ में आने के छह माह पूर्व से जैसे-जैसे दिन न्यून होते जा रहे थे वैसे-वैसे यहाँ अयोध्यापुरी की सर्वांगीणश्री, वैभव, सुख आदि की वृद्धि हो रही थी। शीघ्र ही वह समय आ गया, कि देवायु समाप्त हुई और तीर्थंकर की मनुष्य आयु का उदय आते ही वह स्वर्ग की विभूति मानव लोक में आ गई और उसने माता मरुदेवी को सोलह स्वप्न-दर्शन द्वारा उक्त बात की सूचना देने के साथ अपने मङ्गल जीवन की महत्ता को पहले से ही प्रकट कर दिया। तीर्थंकर भगवान की माता ने 1. गर्जना करते हुए सफेद हाथी देखा 2. शुभ्ररंग वाला बैल देखा 3. बालों युत सिंह को देखा, 4. दोनों बाजू से दो हाथी कलशाभिषेक कर रहे हैं जिसके ऐसी लक्ष्मी को देखा, 5. लटकती हुईं दो पुष्पमालाएँ देखीं, 6. चाँदनी युक्त पूर्ण चन्द्रमा को देखा, 7. उदय होते हुए सूर्य को देखा 8. सरोवर में क्रीड़ा करने वाले मीन युगल को देखा, 9. कमलों से घिरे सुवर्णमय दो पूर्ण कलश देखे, 10. पद्मों से भरे सरोवर को देखा, 11. उन्मत्त लहरयुक्त समुद्र देखा, 12. रत्न जड़ित सिंहासन देखा, 13. रत्नजड़ित देव विमान देखा, 14.

नागेन्द्र के भवन को देखा 15. प्रकाशमान रत्न राशि देखी और अंत में 16. धूम्र रहित प्रखर अग्नि देखी इस तरह क्रमशः सोलह स्वप्न देखे।

प्र. 121 तीर्थंकर की प्रत्येक माताएँ किस तरह अपने पति से स्वप्नों का फल पूछती हैं और स्वप्नों के फलों को सुनकर आनन्दित भी होती हैं?

उत्तर प्रत्येक तीर्थंकरों की माताएँ रात्रि के अंतिम प्रहर में दर्शित होने वाले सोलह स्वप्नों के फलों को अपने पति से पूछने पर उनके द्वारा बतलाये सोलह स्वप्नों के फलों को इस तरह सुनकर कि हे प्रिये! गजेन्द्र दर्शन से अपना पुत्र उच्च चारित्र वाला होगा। वृषभ दर्शन से धर्मात्मा होगा। लक्ष्मी अवलोकन से अधिकश्री सम्पन्न होगा। मालाएँ दिखने से सबके द्वारा शिरोधार्य होगा। चन्द्रमा दिखने से संसार के संताप को दूर करने वाला होगा। सूर्य दिखने से अधिक तेजस्वी होगा। मीन दिखने से सर्वाधिकरूप से सम्पन्न होगा। कलश दर्शन से कल्याणक को प्राप्त होगा। सरोवर दिखने से वात्सल्य भाव युक्त होगा। समुद्र दर्शन से गम्भीर बुद्धि वाला होगा। सिंहासन दिखने से सिंहासन का स्वामी होगा। देव विमान दिखने से देवों का आगमन होगा। नागेन्द्रभवन दिखने से नागकुमार देवों का भी आगमन होगा। रत्न राशि दिखने से विशिष्ट गुणों का स्वामी होगा। तथा अग्नि दर्शित होने से अपना पुत्र कर्मों का दहन कर मोक्ष का भागी होगा अतीव आनन्द को प्राप्त होती हैं।

प्र. 122 तीर्थंकरों की माता और तीर्थंकरों की प्रारंभिक काल से ही परिचर्या करने से कौन आत्मा देव गति से अतिशीघ्र मनुष्य भव पाकर मोक्ष पद को प्राप्त करती है?

उत्तर तीर्थंकरों की माता और तीर्थंकरों की गर्भादिक कल्याणकों की प्रारंभिक अवस्था से ही परिचर्या (सेवा) करने व करवाने से सौधर्मेन्द्र की पट्ट (प्रमुख) देवी शची इन्द्राणी सौधर्मादिक देव-गणों की सागरोपमादिक आयु के सामने मात्र कुछ पल्योपम जैसी आयु का अनुभव कर और मनुष्य भव को प्राप्त कर एक भव अवतारी सौधर्मेन्द्रादि देवों से भी पहले ही संयम-धारण कर (मुनि बन) कर्म क्षपणकर, अतिशीघ्र मोक्ष पद को प्राप्त कर लेती है।

प्र. 123 सौधर्मेन्द्र की पट्ट देवी शची तीर्थंकरों से सम्बन्धित ऐसे कौन-कौन-से सातिशय पुण्यकारी कार्यों को सम्पन्न करती है जिस कारण उसे शीघ्र ही इतने उत्कृष्ट फल रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है?

उत्तर स्वर्ग से आकर के वह शची देवी तीर्थंकर की माता की सेवा में गर्भ के समय से स्वतः सेवा में तत्पर रहती हुई अन्य देवियों को भी सेवा में तत्पर कराती है अन्य देवियाँ शची देवी के निर्देशन में गर्भशोधन, मंगलगीत गायन, प्रश्न पूछनादि कार्यों को करते हुए शारीरिक सेवा-सुश्रुषा का भी कार्य किया करती हैं। शची इन्द्राणी स्वतः माता की सेवा के साथ जन्मोत्सव पर इन्द्राज्ञा से प्रसूति ग्रह से जिनबालक को लाते समय माता को मायामयी निद्रा में सुलाना, मायामयी बालक को माता की शय्या पर लिटाना, तीर्थंकर बालक का रूप देखकर अतिशय चकित व पुलकित होना और विशेष आग्रह पर इन्द्र को सौंपना, इन्द्रों द्वारा जन्माभिषेक के सम्पन्न हो जाने पर जिनबालक का प्रक्षालन करना, उनको स्वर्गिक

अलंकार आभूषण, वस्त्रादिक से सजाना तथाहि तीर्थंकर बालक के गृहस्थ जीवन में जिनमाता से छुपाते हुए स्वर्गिक वस्त्राभूषण आदि उपभोग की सामग्रियाँ तथा अपनी माया से तरह-तरह के स्वादिष्ट भोज्य उपस्थित करना इत्यादिक सेवा कार्यों से विशिष्ट पुण्यार्जन कर और जिसके फलस्वरूप मोक्ष प्राप्ति की अनुकूलताओं को प्राप्त कर शीघ्र मोक्ष पा लेती है।

प्र. 124 तीर्थंकर प्रभु के जन्म लेते ही चारों निकायों के देवों को किन संकेतों से प्रभु जन्म का संदेश प्राप्त होता है?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु के जन्म होते ही भवनवासी देवों के यहाँ शंख ध्वनि होने लगती है, व्यन्तर देवों के यहाँ भेरी नाद होने लगता है, ज्योतिषी देवों के यहाँ सिंहनाद होने लगता है तथा कल्पवासी देवों के यहाँ स्वयमेव घण्टे बजने लग जाते हैं।

प्र. 125 सौधर्मेन्द्र किस विशिष्ट रूप संकेत द्वारा तीर्थंकर के जन्म का संदेश पाकर प्रभु के लिए किस तरह आदर पूर्वक नमन प्रस्तुत करता है?

उत्तर तीर्थंकर वृषभदेव के जन्म होते ही सौधर्मेन्द्र का आसन कंपित हुआ तथा वह सोचने लगा कि यह किस निर्भय, शंका रहित, अत्यन्तबाल स्वभाव, मुग्ध प्रकृति, स्वच्छंद भाव वाले तथा शीघ्र कार्य करने वाले व्यक्ति का कार्य है। अपने पराक्रम से शोभायमान भी देव-दानव समुदाय के किञ्चित् प्रतिकूल होने पर जो उनके दमन करने की सामर्थ्य धारण करता है, ऐसे शक्र पुरन्दर और इन्द्र नामधारी मेरे अकंपित सिंहासन को कंपित करते हुए उसने मेरी कुछ भी गणना नहीं की।

ऐसा विचारते हुए सौधर्मेन्द्र के चित्त में एक बात उत्पन्न हुई कि तीनों लोकों में ऐसा प्रभाव तीर्थंकर भगवान के सिवाय अन्य किसी व्यक्तित्व में संभावनीय नहीं है। पश्चात् अवधिज्ञान द्वारा ज्ञात हो गया कि भरत क्षेत्र में महाराज नाभिराज के यहाँ ऋषभनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ है। तत्काल ही वह विस्मय महा आनंद रस में परिणत हो गया। बड़े भावविभोर होकर सौधर्मेन्द्र ने तीर्थंकर प्रभु जयवन्त हों ऐसा पुकारते हुए सात पग आगे जाकर हाथ जोड़कर तीर्थंकर जिनबालक को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया। जन्म तो अयोध्या में हुआ लेकिन स्वर्ग लोक आदि में देवों के मुकुट झुक गये।

प्र. 126 जगत् त्रय के स्वामी तीर्थंकर के जन्मोत्सव को मनाने स्वर्ग लोक से सौधर्मेन्द्र की किस तरह की सेना अयोध्या नगरी में अवतरित हुई?

उत्तर त्रिलोक के स्वामी तीर्थंकर का जन्म जानकर स्वर्गिक देवों के हाथी, घोड़े, रथ, गंधर्व, पदाति, बैल तथा नृत्यकारिणी रूपधारी सात तरह की सेना सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से अयोध्या नगरी की ओर रवाना हुई। ज्ञातव्य रहे कि स्वर्गों के आभियोग्य जाति के देव ही तिर्यंचों का रूप धारण करते हैं। स्वर्गों में कोई तिर्यंच नहीं पाये जाते। ऐसे मंगलमय अवसर पर शोक, विषाद आदि विकारों का सर्वत्र अभाव हो गया था। सर्वजगत् आनंद के सिंधु में निमग्न था। शांति का सागर दिग्-दिगंत में लहरा रहा था। इन्द्र की सात प्रकार की देव-सेना तीर्थंकर आदि का गुणानुवाद तथा नृत्य गायन करती हुई अयोध्या नगरी पहुँचती है।

प्र. 127 सौधर्मेन्द्र ने किस तरह के अद्‌भुत ऐरावत हाथी पर सवार होकर अयोध्या नगरी की ओर प्रस्थान किया था?

उत्तर सौधर्मेन्द्र ने एक लाख योजन के ऐरावत हाथी पर शची इन्द्राणी व अपने परिकर के साथ बैठकर अनेक देवों से समलंकृत हो अयोध्या नगरी की ओर प्रस्थान किया था। ऐरावत गज अद्‌भुत था, वह दैविक चमत्कार रूप अत्यन्त मनोज्ञ था, देवों की कल्पनातीत विक्रिया शक्ति एक उदाहरण था, वैक्रियिक शरीर का स्थूल रूप का दर्शन ऐरावत हाथी में हो रहा था, वह गज लौकिक गजों से भिन्न था और देव सामर्थ्य का सुमधुर प्रदर्शन था। उस गज के बत्तीस मुख थे, प्रत्येक मुख में आठ-आठ दांत थे, प्रत्येक दांत पर एक-एक सरोवर था, प्रत्येक सरोवर में एक-एक कमलिनी थी, एक-एक कमलिनी में बत्तीस-बत्तीस कमल पत्र थे और कमल के प्रत्येक पत्ते पर बत्तीस-बत्तीस देवांगनाएँ मधुर नृत्य कर रही थीं, जो दृश्य सौधर्मेन्द्र के वैभव का परिचायक होते हुए तीर्थंकर की सेवा की महिमा को सर्व जगत् में विस्तृत करने वाला था।

प्र. 128 तीर्थंकर की जन्म नगरी में सेवार्थ आते हुए देवों का समूह किस तरह प्रतीत होता था?

उत्तर सोलह स्वर्ग तक के समस्त देव, देवांगनाएँ तथा भवनत्रिक के देवताओं का समुदाय महान पुण्यात्मा सौधर्मेन्द्र के नेतृत्व में आकाश मार्ग से श्रेष्ठ वैभव, आनन्द, प्रसन्नता तथा अमर्यादित उल्लास के साथ अयोध्या की ओर बढ़ रहा था, उन आते हुए देवों के विमान और वाहनों से व्याप्त हुआ आकाश ऐसा प्रतीत होता था मानों त्रेसठ पटल वाले स्वर्ग को छोड़कर अन्य स्वर्ग का निर्माण हुआ हो। महाराज नाभिराज के राजभवन का प्रांगण सुरेन्द्रों के समुदाय से भर गया था और देवों की सेनाएँ अयोध्या पुरी को घेर कर चहुँ ओर अवस्थित हो गयी थीं तथाहि ऐसा प्रतीत होता था कि जन्मे हुए तीर्थंकर बालक को देख उनमें समूचे संसार का सुख पाने के लिए आतुर हों वे पुण्यशाली देवगण।

प्र. 129 तीर्थंकर के जन्मोत्सव में अष्ट दिक्कुमारियों ने कौन से अष्ट मंगल करों में धारण कर प्रभु की शोभाश्री में वृद्धि की थी?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु को प्रसव मंदिर से बाहर लाते ही जन्मोत्सव के समय प्रभु के आगे छत्र, चँवर, ध्वजा, कलश, सुप्रतिष्टक (ठोना), झारी, दर्पण तथा पंखा उन अष्ट कुमारियों ने अपने करों में धारण कर प्रभु की शोभाश्री में अतिशय वृद्धि की थी।

प्र. 130 तीर्थंकर प्रभु के प्रथम दर्शन पर सौधर्मेन्द्र ने किस तरह आनंद का अनुभव किया?

उत्तर सौधर्मेन्द्र तीर्थंकर प्रभु की प्रथम बार पूर्ण जगत् में अनुपम सौन्दर्यपूर्ण मनोज्ञ छबि का दर्शन कर, सहस्र नेत्र बनाकर आश्चर्य चकित हो आनंद के सिंधु में आकण्ठ निमग्न हो गया और जयकारों से दशों दिशायें गूंज उठीं।

प्र. 131 तीर्थंकर के जन्म के समय सौधर्मेन्द्र ने उन प्रभु की स्तुति करते समय तीर्थंकर प्रभु को किन उत्तम शब्दों में पुकार कर उनका गुणाभिनन्दन किया?

उत्तर तीर्थंकर के जन्म के समय हे भगवन्! आप विश्वज्योति स्वरूप हो। आप जगत् गुरु हो। आप त्रिभुवन

को मोक्षमार्ग प्रदर्शित करने वाले विधाता हो। हे देव! आप समस्त जगत् के नाथ हो इस तरह उत्तम शब्दों में सौधर्मेन्द्र ने उन तीर्थंकर प्रभु का गुणाभिनन्दन किया।

प्र. 132 जन्माभिषेक के निमित्त ऐरावत हाथी पर विराजित कर जब तीर्थंकर बालक के लिए मेरु पर्वत पर ले जाया जा रहा था तब इन्द्रगण उन प्रभु की किस तरह सेवा कर रहे थे?

उत्तर जन्माभिषेक के निमित्त मेरु पर्वत पर ले जाते हुए सौधर्मेन्द्र ने ऐरावत हाथी पर उन प्रभु को अपनी गोद में विराजित कर रखा था, ईशानेन्द्र ने धवल छत्र लगा रखा था और सनत्कुमार तथा महेन्द्र ऐसे इन्द्रयुगल देवाधिदेव तीर्थंकर प्रभु पर चँवर ढुरा रहे थे।

प्र. 133 तीर्थंकर प्रभु का जिस मेरु पर जन्माभिषेक होता है उस मेरु की सीढ़ियाँ किस तरह सुशोभित होती हैं?

उत्तर तीर्थंकर के लिए सुमेरु पर्वत पर ले जाते समय सुमेरु पर्वत पर्यंत नील मणि से निर्मित सोपान पंक्तियाँ ऐसी शोभायमान हो रहीं थीं, मानो नील वर्ण में दिखने वाले नभोमण्डल ने भक्तिवश सीढ़ियों रूप नील वर्ण में परिणमन कर लिया हो।(म.पु.)

प्र. 134 सुदर्शन मेरु (सुमेरु) पर्वत कहाँ और क्या विशेषता वाला है?

उत्तर मध्यलोक में असंख्यात द्वीप, समुद्रों के अत्यन्त मध्यभाग में रहने वाले जम्बूद्वीप के मध्य भाग में पद्म कर्णिका अथवा नाभि के सदृश एक लाख चालीस योजन की ऊँचाई को लिए हुये मेखलालंकृत, अकृत्रिम जिनालयों सहित तथा तीर्थंकरों के जन्माभिषेक की पीठिका के रूप में प्रसिद्ध सुदर्शन मेरु या सुमेरु पर्वत है।

प्र. 135 ढाईद्वीप सम्बन्धी मनुष्यलोक में कितने मेरु पर्वत हैं?

उत्तर ढाई द्वीप सम्बन्धी मनुष्यलोक में पाँच मेरु पर्वत हैं।

प्र. 136 वे मेरु पर्वत कौन-कौन से द्वीप में कितने-कितने हैं?

उत्तर जम्बूद्वीप में सुदर्शन नामक एक मेरु पर्वत है। धातकीखण्ड नामक द्वीप में विजय और अचल नामक दो मेरु पर्वत हैं तथा पुष्करार्ध नामक द्वीप में मंदर और विद्युन्माली नामक दो मेरु पर्वत हैं।

प्र. 137 मेरु पर्वतों पर कितने और कौन-कौन से वन होते हैं?

उत्तर मेरु पर्वतों पर चार-चार वन; भद्रशाल वन, नन्दन वन, सौमनस वन, और पाण्डुक वन नामक ऐसे शुभ नाम वाले वन होते हैं।

प्र. 138 सुदर्शन नामक प्रथम मेरु पर्वत पर चारों वन कहाँ, कितनी ऊँचाई पर शोभित होते हैं?

उत्तर सुदर्शन मेरु में सबसे नीचे भद्रशाल वन है, उससे पाँच सौ योजन ऊँचाई पर नन्दन वन है, उससे साढ़े बासठ हजार योजन ऊँचाई पर सौमनस वन है और उससे भी छत्तीस हजार योजन ऊँचाई पर अन्तिम पाण्डुक वन शोभित होता है।

प्र. 139 सुदर्शन आदिक चारों मेरुओं सम्बन्धी चार-चार वनों पर कितने-कितने अकृत्रिम चैत्यालय (जिनालय) स्थित हैं?

उत्तर सुदर्शन आदिक चारों मेरुओं सम्बन्धी चार-चार वनों की चार-चार दिशाओं में एक-एक अकृत्रिम चैत्यालय स्थित हैं। इस तरह एक-एक वन में चार-चार तो एक मेरु सम्बन्धी सोलह चैत्यालय कहे जाते हैं।

प्र. 140 पाँचों मेरुओं सम्बन्धी वनों के सम्पूर्ण चैत्यालयों की कुल संख्या कितनी रहती है?

उत्तर पाँचों मेरुओं सम्बन्धी वनों के सम्पूर्ण चैत्यालयों की कुल संख्या मात्र अस्सी रहती है।

प्र. 141 पंच मेरु सम्बन्धी अस्सी अकृत्रिम चैत्यालयों के एक-एक चैत्यालय में कितनी-कितनी संख्या में अकृत्रिम जिन प्रतिमाएँ विराजित रहती हैं?

उत्तर पंच मेरु सम्बन्धी अस्सी अकृत्रिम चैत्यालयों के प्रत्येक चैत्यालय में एक सौ आठ-एक सौ आठ अकृत्रिम जिन प्रतिमाएँ विराजित रहती हैं।

प्र. 142 अकृत्रिम चैत्यालयों में विराजित जिन प्रतिमाओं का आकार, रूप, रंग आदिक किस तरह का रहता है?

उत्तर अकृत्रिम चैत्यालयों में विराजित जिन प्रतिमायें तीर्थंकर सदृश आकार रूप और विभिन्न वर्णों के नाना रत्नों वाली तथा कहीं-कहीं पाँच सौ धनुष ऊँचाई वाली रहती हैं।

प्र. 143 अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमायें कब से व किन से प्रतिष्ठित रहती हैं?

उत्तर अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमायें अनादिकाल से स्वप्रतिष्ठित रहती हैं।

प्र. 144 अकृत्रिम प्रतिमायें किस हेतु से किन परमेष्ठी की रहती हैं?

उत्तर अरिहंत प्रतिमा की पहचान रूप सिंहासन, अशोकवृक्ष, छत्रत्रय, प्रभामण्डल (भामण्डल), दिव्यध्वनि, सुर पुष्पवृष्टि, चँवर और देवदुन्दुभि ये अष्ट प्रातिहार्य जिन प्रतिमाओं के समक्ष दर्शित नहीं होते इस हेतु से वे अकृत्रिम प्रतिमायें सिद्ध प्रतिमायें कही जाती हैं।

प्र. 145 सर्व (भवनवासी देव भवनों के इन देवों से पूजित) अकृत्रिम जिनालयों की आकृतियाँ-छवि कैसी रहा करती है?

उत्तर ऐसे सर्व अकृत्रिम जिनालयों में चार-चार गोपुर द्वारों से युक्त तीन कोट, प्रत्येक (चारों) वीथी (मार्ग) में एक-एक मानस्तम्भ व नौ स्तूप तथा कोटों के अन्तराल में क्रम से वनभूमि, ध्वजभूमि और चैत्यभूमि रहती है, वन भूमि में चैत्यवृक्ष है। ध्वज भूमि में हाथी आदि चिन्हों से युक्त महाध्वजाएँ हैं और एक महाध्वजा के आश्रित एक सौ आठ लघुध्वजाएँ हैं। ऐसे अकृत्रिम जिनालयों के जिनेन्द्र भवनों में सिंहासनादि से युक्त और चँवर लिए हुए यक्ष युगल से सेवित एवं नाना तरह के रत्नों से युक्त जिनेन्द्र देव की प्रतिमाएँ विराजमान हैं, ऐसी उन अकृत्रिम जिनालयों की छवि रहा करती है।

प्र. 146 सुमेरु पर्वत कितनी ऊँचाई तक किस वर्ण का रहता है?

उत्तर सुमेरु पर्वत नीचे इकसठ योजन पर्यंत नाना रत्नयुक्त है। उसके ऊपर यह सुवर्णमयी वर्ण संयुक्त है। (त्रि.सा.)

प्र. 147 मेरु पर्वत से भव्यों को क्या लाभ होता है?

उत्तर मेरु सम्बन्धी जिनालयों की देव, विद्याधर तथा चारण ऋद्धिधारी मुनीश्वर वंदना करके आत्म निर्मलता प्राप्त करते हैं।

प्र. 148 सुमेरु (सुदर्शन मेरु) पर्वत का कहाँ, कितनी ऊँचाई पर कितना विस्तार है?

उत्तर यह सुमेरु पर्वत इस चित्राभूमि के अन्दर नीचे की ओर एक हजार योजन नीव या जड़ रूप में फैला हुआ है जहाँ इसका मूलरूप विस्तार दस हजार नब्बे योजन है। इस चित्रा भूमि पर अर्थात् जड़ से एक हजार योजन ऊँचाई पर इस सुमेरु पर्वत का विस्तार दस हजार योजन है और इसी जगह भद्रसाल नामक वन दो सौ पचास योजन तक चारों दिशाओं की ओर फैला हुआ है। भद्रसाल वन से पाँच सौ योजन ऊँचाई पर पाँच सौ योजन विस्तार वाला नन्दन नामक वन है। नन्दन वन से ग्यारह हजार योजन तक पर्वत की ऊँचाई खड़ी रूप होते हुए आगे साढ़े इक्यावन हजार योजन ऊँचाई ढाल रूप में है। अनन्तर अर्थात् नन्दन वन से साढ़े बासठ हजार योजन ऊँचाई पर सौमनस नामक वन पाँच सौ योजन विस्तार को लेकर फैला हुआ है। सौमनस वन से ग्यारह हजार योजन तक पर्वत की ऊँचाई खड़ी रूप में होते हुए आगे ढाई हजार योजन ढाल रूप में ऊँचाई है। अनन्तर अर्थात् सौमनस वन से छत्तीस हजार योजन ऊँचाई पर चार सौ चौरानवे योजन विस्तार वाला अन्तिम पाण्डुक वन है। यह पाण्डुक वन मेरु स्थल मेरु का अग्र भाग होते हुए एक हजार योजन चौड़ाई वाला है। पाण्डुक वन के बीचों -बीच चालीस योजन ऊँचाई, मूल में बारह हजार योजन चौड़ाई, मध्य में आठ योजन तथा अग्रभाग में चार योजन चौड़ाई वाली सुमेरु पर्वत की चूलिका है।

प्र. 149 सुमेरु पर्वत की चूलिका कौन-से मणि-रत्न से सुशोभित है?

उत्तर सुमेरु पर्वत की चूलिका वैडूर्यमणि रत्न से सुशोभित है।

प्र. 150 सुमेरु पर्वत पर किस वन में किस निमित्त, कहाँ, कितनी भव्य शिलाएँ स्थित हैं?

उत्तर सुमेरु पर्वत के पाण्डुक नामक वन में तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त चारों विदिशाओं में चार भव्य शिलायें स्थित हैं।

प्र. 151 तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त रूप वे भव्य शिलाएँ कितनी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई को लिए हुए किस आकार वाली हैं?

उत्तर तीर्थंकरों के जन्माभिषेक वाली वे भव्य शिलाएँ सौ योजन लम्बी पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची होते हुए अर्द्धचन्द्रमा के समान आकार वाली हैं।

प्र. 152 प्रथम शिला किस दिशा में, कौन-से वर्ण वाली और कौन-से शुभ नाम वाली होते हुए कौन-से तीर्थंकरों के निमित्त होती है?

उत्तर प्रथम शिला मेरुपर्वत के पाण्डुक वन सम्बन्धी ईशान दिशा में सुवर्ण वर्ण वाली पाण्डुक नामक शिला है जो भरत क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त होती है।

प्र. 153 द्वितीय शिला किस दिशा में कौन-से वर्ण वाली और कौन-से शुभ नाम वाली होते हुए कौन-से तीर्थंकरों के निमित्त होती है?

उत्तर द्वितीय शिला आग्नेय दिशा में रजतवर्ण वाली पाण्डुकम्बला नामक शिला है जो पश्चिम विदेह क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त होती है।

प्र. 154 तृतीय शिला किस दिशा में कौन-से वर्ण वाली और कौन-से शुभ नाम वाली होते हुए कौन-से तीर्थंकरों के निमित्त होती है?

उत्तर तृतीय शिला नैऋत्य दिशा में तप्त सुवर्ण वर्ण वाली रक्त नामक शिला है जो ऐरावत क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त होती है।

प्र. 155 चतुर्थ शिला किस दिशा में कौन-से वर्ण वाली और कौन-से शुभ नाम वाली होते हुए कौन-से तीर्थंकरों के निमित्त होती है?

उत्तर चतुर्थ शिला वायव्य दिशा में रक्तवर्ण वाली रक्तकम्बला नामक शिला है जो पूर्व विदेह क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त होती है।

प्र. 156 पाण्डुक शिला पर कौन-से और किस तरह के आसन हैं तथा उन आसनों पर कौन विराजमान और कौन अवस्थित होते हैं?

उत्तर पाण्डुक शिला पर सूर्य के समान प्रकाशमान उन्नत सिंहासन है। सिंहासन के दोनों पार्श्वभाग में दिव्य रत्नों से खचित भद्रासन विद्यमान हैं। तीर्थंकर भगवान को मध्य सिंहासन पर विराजमान करते हैं तथा सौधर्मेन्द्र दक्षिण भद्रासन और ईशानेन्द्र उत्तर भद्रासन पर अवस्थित होते हैं।

प्र. 157 पाण्डुक शिला पर तीर्थंकर का अभिषेक कौन करते हैं?

उत्तर पाण्डुक शिला पर तीर्थंकर का जन्माभिषेक सौधर्मेन्द और ईशानेन्द्र करते हैं।

प्र. 158 तीर्थंकर के जन्माभिषेक के काल में शची व अप्सरायें (देवियाँ) क्या कार्य करती हैं?

उत्तर तीर्थंकर के जन्माभिषेक के काल में शची व अप्सरायें अष्ट मंगल द्रव्यों को धारण कर मंगल नृत्य-गान में निमग्न रहती हैं।

प्र. 159 जन्माभिषेक के सुअवसर पर इन्द्रद्वय से अतिरिक्त देव-गण किस कार्य में तत्पर रहते हैं?

उत्तर जन्माभिषेक के सुअवसर पर बहुत से देव-गण क्षीरसागर का जल लाने के लिए कमर बाँधकर सुवर्णमय कलशों को लेकर श्रेणीबद्ध होकर खड़े रहते हैं।

प्र. 160 क्षीरोदधि समुद्र का जल ही तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के योग्य क्यों माना गया है?

उत्तर क्योंकि क्षीरोदधि का जल जघन्य भोगभूमि वाले समुद्र का जल होने से वह विकलेन्द्रिय और जलचर जीवों से रहित होता है। उसे छानने (गालने) की आवश्यकता नहीं पड़ती तथाहि पंचम समुद्र के जल से किया गया जन्माभिषेक देवों की पञ्चमगति (मोक्ष) प्राप्ति की भावना को सुदृढ़ बनाने में साक्षात् निमित्त कारण है।

प्र. 161 क्षीरोदधि समुद्र का जल क्या क्षीर (दुग्ध)वत् या धवल होता है या अन्य तरह का होता है?

उत्तर पंचम समुद्र के साथ 'क्षीर' शब्द केवल नाम निक्षेप रूप प्रसिद्ध है, न कि ऐसे समुद्र में किसी तरह का दुग्ध भरा हुआ है और क्षीरोदधि समुद्र का जल दुग्ध जैसे स्वाद वाला मधुर है, न कि उस समुद्र का जल

दुग्ध जैसा धवल (सफेद) है।

प्र. 162 क्षीरोदधि समुद्र से जन्माभिषेक हेतु लाया गया जल तो अप्रासुक-सचित्त होता है ऐसे जल से साक्षात् तीर्थंकर भगवान का अभिषेक करना कैसे उचित होगा?

उत्तर दीक्षा लेकर महाव्रती या परमेष्ठी बन जाने से उन्हें या उन परमेष्ठी की प्रतिमा के निमित्त सचित्त-अप्रासुक जलादि वस्तु का प्रयोग अहिंसा की दृष्टि से अनुचित होता है, लेकिन तीर्थंकर; बालक अवस्था में व्रती नहीं होते अतः जन्माभिषेक के समय क्षीरोदधि समुद्र के जल से अभिषेक करना अनुचित नहीं है।

प्र. 163 तीर्थंकर प्रभु का जन्माभिषेक कितने कलशों से सम्पन्न होता है?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु का जन्माभिषेक एक हजार आठ कलशों से सम्पन्न होता है।

प्र. 164 बड़े-बड़े घट रूपी कलशों से होने वाली जन्माभिषेक की धाराओं को तीर्थंकर प्रभु उस बाल्यावस्था में किस तरह सहन करते हैं?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु जन्मकाल से ही अनन्त बल के स्वामी होते हैं अतः उन्हें जन्माभिषेक की धाराओं को सहन करना कोई संदेह की बात नहीं। जन्माभिषेक के समय सौधर्मेन्द्र ने वर्द्धमान स्वामी की सहन शीलता पर जब सन्देह व्यक्त किया था तब तीर्थंकर वर्द्धमान प्रभु ने अवधिज्ञान से जानकर अपने पैर का अंगूठा दबा कर सुमेरु पर्वत को कंपित कर दिया था तभी तो इन्द्र ने उनका सार्थक नाम 'वीर' रखा था।

प्र. 165 तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के समय देव गणों द्वारा कौन सा मनोरम वातावरण निर्मित किया जाता है?

उत्तर तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के समय; अत्यन्त प्रशान्त, भव्य तथा प्रमोद परिपूर्ण वातावरण में स्वर्गिक देववृन्द देव दुन्दुभि बजाकर मधुर स्वरों द्वारा सभी को मंत्र मुग्ध कर लेते हैं और देव-देवियाँ नृत्यगान करते हुए फूले नहीं समाते। रत्नमय पुष्पवृष्टि और दिशाओं की निर्मलता के साथ मन्द-मन्द सुगन्धित वायुमय वातावरण अत्यन्त मनोरम प्रतीत होता है।

प्र. 166 तीर्थंकरों के जन्माभिषेक सानंद सम्पन्न होने के उपरान्त उन तीर्थंकर प्रभु के लिए कौन वस्त्राभूषणों से अलंकृत करने का परम सौभाग्य प्राप्त करता है?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु के जन्माभिषेक जन्मकल्याणक के रूप में सौधर्मेन्द्रादिक देवगणों के द्वारा सानन्द सम्पन्न होने के उपरान्त शची इन्द्राणी तीर्थंकर बालक को दिव्य वस्त्राभूषणों से समलंकृत करने का परम सौभाग्य प्राप्त करती है।

प्र. 167 त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर प्रभु के अलंकार के योग्य सर्वश्रेष्ठ रत्नाभूषण तीन लोक में कहाँ से उपलब्ध होते होंगे?

उत्तर भरत और ऐरावत क्षेत्रों के तीर्थंकरों के सुयोग्य रत्नमयी आभूषण सौधर्म तथा ऐशान स्वर्ग सम्बन्धी; पूर्व और अपर विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों के सुयोग्य रत्नमयी आभूषण सानत्कुमार तथा माहेन्द्र स्वर्ग सम्बन्धी द्वादश धारायुक्त मानस्तम्भों के रत्नमयी सींकों में लटकते हुए उत्तम रत्नमय करण्डकों (पिटारों) में

विद्यमान रहते हैं, देवेन्द्रगण बड़ी भक्तिसह उन पिटारों से रत्नाभूषण प्रभु-चरणों में लाते हैं।

प्र. 168 तीर्थंकरों के साथ-साथ और कौन-कौन-से विशिष्ट जीव हैं, जिनके जीवन में आहार तो होता है परन्तु नीहार नहीं होता?

उत्तर छद्मस्थ तीर्थंकर, तीर्थंकरों के माता-पिता, बलदेव, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण तथा समस्त भोगभूमियों के जीवों के जीवन में आहार तो होता है लेकिन नीहार नहीं होता। विशेष यह है कि तीर्थंकरों के पिता, बलदेव, चक्रवर्ती व किसी पुरुष का भी केवली बनने पर आहार और नीहार नहीं होता।

प्र. 169 छद्मस्थ तीर्थंकरादिक का आहार होते हुए भी नीहार क्यों नहीं होता?

उत्तर तीर्थंकर आदिक विशिष्ट आत्माओं की जठराग्नि इस प्रकार की होती है, कि उसमें पड़ने वाली वस्तु रस, रुधिर आदि रूप परिणत हो जाती है, ऐसा कोई तत्त्व नहीं बचता, जो व्यर्थ चला जाय और नीहार की आवश्यकता पड़े।

प्र. 170 तीर्थंकरों के शरीर में धवल रुधिर होने का रहस्य क्या है?

उत्तर तीर्थंकर भगवान के रोम-रोम में समूचे विश्व के प्राणियों के प्रति सच्ची करुणा, दया तथा प्रेम के बीज परिपूर्ण हैं। तीर्थंकर प्रकृति बंध करते समय उनके द्वारा निर्मल सम्यग्दर्शन के साथ लोक कल्याण की भावना भी भाई गयी थी। अन्य शब्दों में कहा जाय तो भगवान ने विश्व मैत्री के वृक्ष का बीज बोया था, जो उनके धवल रुधिर के रूप में वृद्धि को प्राप्त हुआ है। शरीर सम्बन्धी विद्या में प्रवीण लोगों का मन्तव्य है, कि महान बुद्धिमान, सदाचारी, कुलीनतादि गुण सम्पन्न व्यक्तियों के रुधिर में रक्तवर्णीय परमाणु पुञ्ज के स्थान में धवलवर्णीय परमाणु पुञ्ज विशेष पाये जाते हैं। इसमें एक कारण स्वरूप तीर्थंकरों का परमौदारिक शरीर भी कहा जाता है। अन्य सरागियों के शरीर में ऐसे दुर्लभ शरीर की कल्पना व्यर्थ है।

प्र. 171 तीर्थंकर भगवान के जीवन में कब से देश संयम का आचरण प्रारम्भ हो जाता है?

उत्तर सर्व तीर्थंकर भगवन्तों की अपनी आयु के आरम्भ से आठ वर्ष के उपरान्त देशसंयम का आचरण प्रारम्भ हो जाता है। (आ.पु.6-35)

प्र. 172 तीर्थंकरों का आकर्षक और विशिष्ट शरीर किस तरह का होता है?

उत्तर तीर्थंकरों का आकर्षक और विशिष्ट शरीर अन्तः बाह्य में अपूर्व सौन्दर्य का केन्द्र होता है। सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से भी तीर्थंकर भगवान का पौद्गलिक शरीर सुलक्षणों से समलंकृत होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।

प्र. 173 तीर्थंकर भगवान के शरीर में किस तरह के कितने सुलक्षण विद्यमान होते हैं?

उत्तर तीर्थंकर भगवान के शरीर में वृक्ष, शंख, कमल, स्वस्तिक, ध्वज, चक्र, हस्ती, सिंह, मेरु, ग्रह, नक्षत्र, कल्पवृक्ष, समुद्र, सरोवर, देवविमान, अष्ट मंगल, अष्ट-प्रतिहार्य आदि एक सौ आठ मुख्य सुलक्षण और मसूरिकादि नौ सौ व्यंजन रूप सामान्य सुलक्षण इस तरह सब मिलाकर एक हजार आठ सुलक्षण विद्यमान रहते हैं। (महा.पु.पर्व 15, श्लोक 37 से 44)

प्र. 174 तीर्थंकरों के लिए वैराग्य-भाव प्रकट होने में कौन-से निमित्त-कारण होते हैं?

उत्तर जातिस्मरण (पूर्वभव-स्मृति), प्राणि पीड़ा, विद्युत प्रकाश (बिजली चमकना), मेघपटल नाश (मेघाकार नाश), उल्कापात (तारा जैसा टूटना), वन लक्ष्मीनाश (जंगल सूखना), सौन्दर्य नाश और अकस्मात् मृत्यु आदि सन्दर्भ संसार की क्षणभंगुरता, स्वार्थपरता एवं नश्वरता का स्वयं बोध कराते हुए तीर्थंकरों के लिए वैराग्य-भाव के प्रकट होने में निमित्त-कारण बनते हैं।

प्र. 175 तीर्थंकरों के लिए स्वयंभू क्यों कहा जाता है?

उत्तर सभी तीर्थंकर किसी एक निमित्त के द्वारा संसार की असारता का चिंतन स्वयं अपनी आत्मा के द्वारा किया करते हैं, न कि किसी अन्य मुनि आदिक का उपदेश सुनकर वे बोध को प्राप्त करते हैं, अर्थात् जो 'स्वयं'-अपने द्वारा ही 'भू'-बोध को या वैराग्य को प्राप्त हो जावे उसे स्वयंभू कहा जाता है। जिसे स्वयंबुद्ध भी कहते हैं।

प्र. 176 प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ भगवान ने किस तरह से वैराग्य को प्राप्त किया था?

उत्तर प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ प्रभु) एक स्वर्गिक अप्सरा नीलाञ्जना नामक नृत्यकारिणी की अकस्मात् मृत्यु से जग की क्षणभंगुरता का चिंतवन कर वैराग्य को प्राप्त हो गये। वे संसार की मोह-निद्रा से भली प्रकार जाग गये। उन्हें कर्म चोर अब नहीं लूट सके। अयोध्या की जनता को प्रजापति होने के नाते आप आत्मीय-भाव से देखते थे, अब उनकी दृष्टि बदल गई। एक चैतन्य निजात्मा सिवाय अन्य सर्वपदार्थ पर रूप प्रतिभासमान होने लगे। जिनके अंदर अपने और पराये पदार्थों के ज्ञानरूप भेद-विज्ञान का मानो भानु उदित हो गया और क्षायिक सम्यक्त्व रूपी चिन्तामणि रत्न का मानो प्रकाश ही दैदीप्यमान हो गया।

प्र. 177 तीर्थंकर प्रभु के वैराग्य-भाव को लौकान्तिक देवों ने किस तरह जानकर क्या मंगलमय प्रतिक्रिया की?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु के वैराग्य-भाव को अपने अवधिज्ञान से जानकर धवल वस्त्रधारी देवर्षि कहलाने वाले लौकान्तिक देवों ने अपने ही स्थान से वैराग्य सम्पन्न तीर्थंकर प्रभु के लिए बड़ी श्रद्धा पूर्वक प्रणाम किया। वे देवर्षि वैराग्य के प्रेमी; कोकिल सदृश थे, जिन्हें अपना मधुर गीत प्रस्तुत करने हेतु वैराग्य पूर्ण बसंतऋतु चाहिए थी, जिससे सर्व कष्टों का सदा के लिए हरण हो जाता है। सुयोग्य बेला में वे देवर्षि तीर्थंकर प्रभु के निकट आ ही गये।

प्रभु को भक्ति से प्रणाम कर संस्तुति में संलग्न हो कहने लगे, भगवन्! आपने जो मोह जाल से छूटने का पवित्र निश्चय किया है वह आप जैसी उत्तम आत्मा की प्रतिष्ठा के पूर्णतया अनुरूप है। अब तो धर्मतीर्थ प्रवर्तन के योग्य समय आ गया है, धन्य-धन्य।

हे नाथ! चारों गति रूप महाअटवी में दिशाओं का परिज्ञान न होने से भटकते हुए संसारी जीवों को मुक्तिपुरी में पहुँचने का समीचीन मार्ग बतलाइये। प्रभो! अब आपके द्वारा बतलाये गये मार्ग पर चलकर सत्पुरुष जन्म-मरण के श्रम से शून्य होकर त्रिलोक के शिखर पर जहाँ अविनाशी आनन्द है,

पहुँचकर विश्रान्ति लेंगे।

प्र. 178 वैराग्य से सम्पन्न तीर्थंकर प्रभु ने सर्वप्रथम क्या दृढ़ निश्चय किया?

उत्तर परम वैराग्य से सम्पन्न तीर्थंकर प्रभु भेदविज्ञान भास्कर के उदित प्रकाश में इस शरीर से भिन्न चैतन्य ज्योति देखकर उसे विशुद्ध बनाने के पवित्र विचारों में निमग्न हुए और आत्म प्रकाश से सुशोभित प्रभु ने अपनी मंगलवाणी से सर्व जनों को संतुष्ट कर स्वतः अन्तः -बाह्य नग्न मुद्रा धारण करने का दृढ़ निश्चय किया।

प्र. 179 देव-लोक से देवगण क्यों, कौन-सी दीक्षा-पालकी लाकर उपस्थित हुए?

उत्तर ऋषभदेव तीर्थंकर की दीक्षा हेतु उन्हें वन तक गमन कराने के लिए देवगण 'सुदर्शना' नामक सुरत्न-जड़ित पालकी लाकर उपस्थित हुए।

प्र. 180 तीर्थंकर प्रभु विराजित पालकी के लिए सर्वप्रथम अपने कंधों पर उठाने का परम सौभाग्य किन्होंने प्राप्त किया?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु विराजित पालकी के लिए सर्वप्रथम अपने कंधों पर उठाने का परम सौभाग्य भूमिगोचरी मनुष्यों के राजाओं ने प्राप्त किया।

प्र. 181 तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा-पालकी उठाने का द्वितीय सौभाग्य किसने पाया?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा-पालकी उठाने का द्वितीय सौभाग्य विद्याधर मनुष्यों ने पाया।

प्र. 182 भूमिगोचरी राजाओं और विद्याधर मनुष्यों ने कितने-कितने कदमों तक दीक्षा-पालकी को उठाने का सौभाग्य पाया?

उत्तर भूमिगोचरी मनुष्य-राजाओं और विद्याधर मनुष्यों ने दीक्षा-पालकी को सात-सात कदम उठाने का सौभाग्य प्राप्त किया।

प्र. 183 तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा-पालकी को अंतिम तृतीय सौभाग्य के रूप में उठाकर किसने किस तरह उसे वन तक पहुँचाया था?

उत्तर देवगति के देवताओं ने तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा-पालकी को अंतिम तृतीय सौभाग्य के रूप में उठाकर अपने कंधों पर रखकर आकाश-मार्ग द्वारा शीघ्र ही दीक्षा वन तक पहुँचाया था।

प्र. 184 प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की दीक्षा के वन का नाम क्या था?

उत्तर प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की दीक्षा के वन नाम 'सिद्धार्थ वन' था।

प्र. 185 दीक्षा-पालकी तो स्वर्गिक देवता-गण लाये थे लेकिन दीक्षा-पालकी के लिए प्रथम रूप से उठाने का सौभाग्य मनुष्यों को क्यों मिला?

उत्तर मनुष्यों को प्रथम रूप से दीक्षा-पालकी उठाने के सौभाग्य का कारण उनके लिए प्राप्त संयमधारण की योग्यता है।

प्र. 186 देवगति के देव विशेष वैभव सम्पन्न होते हैं, वे स्वर्गों में भी रहते हैं, तथा पंच कल्याणकों में तीर्थंकरों व उनके परिवार की सेवा करने उपस्थित होते हैं फिर भी उन्हें मनुष्यों द्वारा उपासना

करने योग्य क्यों नहीं बतलाया गया, अन्यथा उन्हें ही सर्वप्रथम तीर्थंकरों की दीक्षापालकी उठाकर वन तक ले जाने का परम सौभाग्य प्राप्त होता?

उत्तर सर्व प्रथम वे देवगति के देव असंयमी होने के कारण अष्टपाहुड़ ग्रंथ के आगमिक कथन से मनुष्यों द्वारा वंदनीय नहीं हैं। रत्करण्डक श्रावकाचार के कथन से देव गति के देव राग-द्वेष से मलिन होने के कारण उनकी उपासना (पूजा, अभिषेक, वंदनादि क्रिया) करना देवमूढ़ता मानी गयी है।

प्र. 187 मनुष्यों के जीवन में ऐसी कौन-सी विशेषताएँ होती हैं जिस कारण वे देवगति के देवों से भी उत्तम माने जाते हैं तथा देवगणों से भी आदर पाते हैं?

उत्तर उपर्युक्त प्रश्न का समाधान जैनागम-संस्कार प्रश्नोत्तर रत्नमालिका कृति के अध्याय नौ प्रश्न क्र. चौतीस में हम बतला ही चुके हैं, पुनः संक्षिप्त में कहें तो- 1. मनुष्य अहिंसादि अणुव्रतों को धारण कर सकते हैं। 2. मनुष्य साक्षात् शरीर से जिनाभिषेक, पूजा, दानादिक क्रियायें सम्पन्न करते हैं। 3. मनुष्य मुनियों के महाव्रतों को भी धारण कर सकते हैं। 4. मनुष्य चतुर्थ काल हो तो तीर्थंकर भी बन सकते हैं और 5. मनुष्य चतुर्थकाल में (अर्थात् दुषमा-सुषमा काल में) मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं इत्यादिक इन कारणों से मनुष्य देवगति के देवों से उत्तम तथा आदरणीय माने जाते हैं।

प्र. 188 तीर्थंकर प्रभु ऋषभ देव का दीक्षा-धारण करने के पीछे क्या सार्थक-प्रयोजन था?

उत्तर जिस तरह मलिन दर्पण जब तक मल रहित नहीं बनता, तब तक वह पदार्थों का प्रतिबिम्ब ग्रहण करने में असमर्थ रहता है, इसी तरह मोह-मलिन मानव का मन त्रिभुवन के पदार्थों को अपने अन्तस् में प्रतिबिम्बित करने में अक्षम रहता है। तीर्थंकर प्रभु ने यह तत्त्व हृदयंगम किया, कि आत्मा की कालिमा को धोकर उसे निर्मल बनाने के लिए समाधि अर्थात् आत्मलीनता रूप सम्यक्ध्यान की आवश्यकता है। अतः एक चित्त वृत्ति द्वारा स्थिर होकर मोहादि कर्म शत्रुओं को ध्वंस करने के लिए प्रभु वैराग्यपूर्ण मन से दीक्षा धारण के उन्मुख हुये।

प्र. 189 जिस शिला पर ऋषभदेव दीक्षा हेतु विराजित हुए वह शिला कौन-सी थी?

उत्तर ऋषभदेव तीर्थंकर भगवान की दीक्षा-शिला चन्द्रकान्तमणि शिला थी।

प्र. 190 तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा की मंगलबेला में शची आदिक इन्द्राणियों ने कौन-सी मांगलिक क्रिया सम्पन्न की थी?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा की मंगलबेला में शची इन्द्राणी ने अपने हाथों से रत्नों को चूर्णकर उस दीक्षा-शिला पर चौक बनाया था, उस पर चन्दन के मांगलिक छीटे दिये थे और उस शिला के समीप ही अनेक (कलशादि) मंगल द्रव्य रखे थे तत्पश्चात् प्रभु उस शिला पर विराजमान हुए थे।

प्र. 191 तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा किनकी साक्षी में किस तरह सम्पन्न हुई थी?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु ने स्वात्मा, देवतागण और सिद्ध-भगवान की साक्षी में सांसारिक सुख की अपेक्षा रहित होकर वस्त्राभूषणादि समस्त परिग्रह का त्याग कर पञ्चमुष्ठि केशलोंच कर नग्न-दिगम्बरी मुनि दीक्षा धारण की थी।

प्र. 192 दीक्षाबेला में तीर्थंकर प्रभु ने किस दिशा में और किस आसन में बैठकर दीक्षा-धारण सम्बंधी केशलोंच की विधि सम्पन्न की थी?

उत्तर दीक्षाबेला में तीर्थंकर प्रभु ने पूर्व दिशा की ओर मुख करके पद्मासन में बैठकर दीक्षा-धारण सम्बन्धी केशलोंच की विधि सम्पन्न की थी।

प्र. 193 पंच मुष्ठि केशलोंच करते समय तीर्थंकर प्रभु किस तरह प्रतीत होते थे?

उत्तर पंच मुष्ठि केशलोंच करते समय तीर्थंकर प्रभु इस तरह प्रतीत होते थे मानो वे पञ्चमगति को प्रस्थान करने को उद्यत परम पुरुष द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप पञ्च परावर्तन रूप संसार का मूलोच्छेद कर रहे हों।

प्र. 194 तीर्थंकर ऋषभ देव की दीक्षा किस वृक्ष के नीचे सम्पन्न हुई और वह दीक्षा वृक्ष किस नाम से प्रसिद्ध हुआ था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव की निर्ग्रन्थ दीक्षा वटवृक्ष के नीचे सम्पन्न हुई थी और वह दीक्षा वृक्ष अक्षय वट वृक्ष के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया था।

प्र. 195 सौधर्मेन्द्र; सम्पन्न हुए तीर्थंकरों के केशलोंच के केशों को किस पवित्र जगह पर विसर्जित करता है?

उत्तर सम्पन्न हुए तीर्थंकरों के केशलोंच के केशों को रत्न-पिटारे में रखकर सौधर्मेन्द्र देवगणों के साथ जाकर क्षीरसमुद्र में विसर्जित-क्षेपण करता है।

प्र. 196 आगम में वर्णित है कि मानुषोत्तर पर्वत से आगे मनुष्य एवं मनुष्य के शरीर का एक छोटा-सा भाग भी नहीं जा सकता, फिर तीर्थंकरों के केशों को क्षीरसागर में इन्द्रों द्वारा कैसे ले जाया जा सकता है?

उत्तर यह आगम कथन सत्य ही है। तीर्थंकरों के केश मानुषोत्तर पर्वत पर ही गिर जाया करते हैं लेकिन भक्तिवश देव विक्रिया से बनावटी केश बनाकर उन्हें क्षीरसागर में क्षेपण किया करते हैं।

प्र. 197 दिगम्बरी मुनि दीक्षा लेते ही तीर्थंकर कब तक के लिए क्यों मौन धारण कर लेते हैं; इसके रहस्य को बतलाइये?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु का मौन अलौकिक होता है, वे छद्मस्थ अर्थात् केवलज्ञान अवस्था के पूर्व तक मौन रहते हैं। उनकी दृष्टि बहिर्जगत् से अन्तर्जगत् की ओर पहुँच जाती है अतः राग उत्पत्ति की असाधारण परिस्थिति भी उनकी वीतराग वृत्ति के लिए निष्कलंक बनाये रखती है।

प्र. 198 तीर्थंकरों द्वारा छद्मस्थ-श्रामण्य अवस्था में मौन-धारण नहीं करने से क्या बाधा उत्पन्न हो सकती है?

उत्तर तीर्थंकरों द्वारा छद्मस्थ-श्रामण्य अवस्था में मौन नहीं धारण करने से लोक-जनसम्पर्क होने पर वचन प्रवृत्ति होगी, उससे मानसिक विकल्प उत्पन्न होंगे और क्षायोपशमिक ज्ञान होने के कारण कदाचित्

अन्यथा वचन प्रवृत्ति होने पर वर्द्धमान चारित्र छूटकर छेदोपस्थापना चारित्र-धारण का प्रसंग प्राप्त हो जावेगा।

प्र. 199 छेदोपस्थापना और वर्द्धमान-चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर मुनियों के जिस चारित्र में शिथिलतावश कोई दोष उत्पन्न हों और उन दोषों के निराकरण हेतु प्रतिक्रमणादि कर चारित्र को शुद्ध बनाया जावे; तो उसे छेदोपस्थापना चारित्र कहते हैं तथा जिस चारित्र में उत्कृष्ट संहनन, ध्यान, कान्तार (जंगल) चर्या, योग व मौनादिक धारण रूप चतुर्थकालीन निर्दोष श्रमणचर्या के साथ जो नियम-साधना उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली जावे उसे वर्द्धमान चारित्र कहते हैं।

प्र. 200 तीर्थंकर मुनि पिच्छिका व कमण्डलु साथ रखते हैं या नहीं? अन्यथा उनकी शोभा कैसे रहेगी?

उत्तर तीर्थंकर मुनि अवस्था से ही चारण आदिक ऋद्धियों के स्वामी होते हैं उनका शरीर भूमि से ऊपर होता है और उन्हें जीवों की उत्पत्ति आदिक का पूर्ण ज्ञान होता है अतः उन्हें पिच्छिका की आवश्यकता नहीं होती। तीर्थंकरों को नीहार भी न होने से तथा धूलादिक का स्पर्शन न होने से उनके जीवन में कमण्डलु की भी आवश्यकता नहीं होती। उनकी तो यथाजात मुद्रा ही मात्र बाल्यावस्थावत् निर्विकार भगवान सदृश सुशोभित और पूज्य होती है।



रत्नत्रय के तेज की प्रभावना; सबसे बड़ी प्रभावना है।

The influence and the spreading of the radiance of the Three Jewels (Ratnatraya) is the greatest glory.

•••

धर्मध्यान में निश्चिंतता, निराकुलता जरूरी है।

Peace of mind and a state of freedom from all anxieties are essential requirements in righteous meditation.

विशुद्धि को बढ़ाना है तो सद्धर्म पर श्रद्धान करो।

If you truly wish to increase your inner purity, then place your firm faith and belief in the true religion.

•••

भाग्य को जगाना है तो धर्म और मोक्ष का पुरुषार्थ करो।

If you want to shape and brighten your fortune, then put your greatest effort into the path of religion and liberation.

अध्याय - 3

तीर्थंकर ऋषभदेव का विहार समवसरणादि

प्र. 201 तीर्थंकर ऋषभदेव राजन् ने दीक्षा पूर्व किन पारिवारिक लोगों से मोह का बंधन तोड़कर नग्न-दिगम्बरी-दीक्षा धारण की थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव राजन् ने प्रथम रानी नंदा (यशस्वती) तदोत्पन्न भरत आदिक शत पुत्र एवं ब्राह्मी पुत्री से तथा द्वितीय रानी सुनंदा तदोत्पन्न पुत्र बाहुबली और पुत्री सुन्दरी इन प्रमुख पारिवारिक लोगों से मोह का बंधन तोड़कर दिगम्बरी दीक्षा धारण की थी।

प्र. 202 तीर्थंकर ऋषभदेव की दीक्षा के समय उनका साथ न छोड़ते हुए कितने राजाओं ने दिगम्बरी-दीक्षा धारण की थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ उनके राज्य में रहने वाले चार हजार राजाओं ने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली थी।

प्र. 203 तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा-धारण के समय कितने दिनों तक लिए योग-धारण कर लिया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा-धारण करते ही छह माह तक का योग धारण कर लिया था।

प्र. 204 तीर्थंकर ऋषभदेव छह माह के योग-धारण के समय कौन-से कार्य में लीन हो गये थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव छह माह के योग-धारण के समय छह माह के ही उपवास का नियम ग्रहण कर एक ही पद्मासन में बैठकर प्रतिमायोग-धारण कर निजात्मतत्त्व के गुण चिन्तवन रूप प्रशस्त-शुभध्यान में लवलीन हो गये थे।

प्र. 205 तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ दीक्षा-धारण करने वाले चार हजार मुनीश्वरों ने तीर्थंकर के मौनधारण पर किस तरह मुनि-क्रिया का अनुपालन किया?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ दीक्षा-धारण करने वाले चार हजार मुनीश्वर तीर्थंकर के मौन-धारण पर उनके उपदेश के अभाव में मुनिचर्या का ज्ञान न हो सकने से तीर्थंकर के उपदेश की प्रतीक्षा करते हुए मन की शिथिलता के कारण भूख-प्यास की बाधा होने पर पेड़-पौधों के फलादिक एवं झरने का पानी सेवन कर और शीतादिक की बाधाओं में पेड़ों के पत्ते व छालादिक से तन को ढककर मनमानी चेष्टा के द्वारा सच्चे मार्ग से विमुख हो गये थे।

प्र. 206 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर सर्व प्रथम आहार चर्या को कब निकले एवं उन्हें किस तरह आहार का अलाभ हुआ?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर छह माह सम्बधी योग-धारण के उपवास के उपरान्त आहार-चर्या को नगर की ओर निकले लेकिन किसी ने उनकी नवधाभक्ति नहीं की, दातागण मात्र आहार इत्यादिक सम्बन्धी भोगोपभोग की सामग्री ग्रहण करने का आग्रह करते रहे, इस तरह विधिवत् भक्ति के अभाव में अलाभ रूप अंतराय मानकर वे तीर्थंकर मुनीश्वर वन की ओर लौट आये और ध्यान योग में लीन हो

गये।

प्र. 207 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए विधिवत्-नवधाभक्ति पूर्वक आहार का लाभ कितने दिनों के उपरान्त कब प्राप्त हुआ?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए विधिवत् नवधाभक्ति पूर्वक आहार एक वर्ष एक माह और नौ दिनों के बाद वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन प्राप्त हुआ।

प्र. 208 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए आहारचर्या को जाने में एक वर्ष एक माह और नौ दिनों का समय क्यों लगा था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा धारण करते ही सर्वप्रथम छह माह का उपवास-धारण किया तदुपरान्त उन्हें आहार अलाभ रूप अंतराय हुआ एवं उन्होंने प्रतिदिन आहार चर्या को न जाते हुए सात माह और नौ दिनों के लिए पुनः योग-धारण के साथ उपवास ग्रहण का नियम धारण कर लिया था।

प्र. 209 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर प्रथम छह माह के योग धारण व उपवास के उपरान्त प्रतिदिन आहार-चर्या को क्यों नहीं निकले?

उत्तर इसमें महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि सभी तीर्थंकर वर्द्धमान-चारित्र के धारक हुआ करते हैं, वे जो साधना पूर्व में कर चुकते हैं उससे आगे बढ़कर ही साधना या तपस्या किया करते हैं; कम नहीं। अतः तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर ने छह माह के उपवास के उपरान्त एक दिन की चर्या के समय नवधा भक्ति के ज्ञान के अभाव को देखकर अलाभ-अन्तराय मानकर हीयमान चारित्र रूप प्रतिदिन आहार-चर्या को न जाते हुए वर्द्धमान चारित्र के रूप में पुनः सात माह और नौ दिनों का योग धारण कर लिया था। यदि तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर छह माह के उपवास के बाद प्रतिदिन आहार को जाते तो वे वर्द्धमान-चारित्र वाले न कहलाकर हीयमान-चारित्र वाले कहलाते।

प्र. 210 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए प्रथम पारणा के रूप से आहार-दान किस श्रावक द्वारा अपने राजमहल में दिया गया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए प्रथम पारणा के रूप से आहार-दान राजा श्रेयांस द्वारा अपने परिवार के साथ अपने राजमहल में दिया गया था।

प्र. 211 किस नगर में राजा श्रेयांस द्वारा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) मुनीश्वर के लिए आहार दान दिया गया था?

उत्तर हस्तिनापुर नगरी में राजा श्रेयांस द्वारा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) मुनीश्वर के लिए आहार दान दिया गया था।

प्र. 212 राजा श्रेयांस ने अपने परिवार सहित कौन-सी वस्तु का आहार-दान तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के कर कमलों में देने का परम सौभाग्य प्राप्त किया था?

उत्तर राजा श्रेयांस ने अपने परिवार सहित इक्षु रस का आहार-दान तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के कर कमलों में प्रदान करने का परम सौभाग्य प्राप्त किया था।

प्र. 213 राजा श्रेयांस ने सहपरिवार किस तरह की नवधाभक्ति करके तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के समक्ष आहार-दान विधि सानंद सम्पन्न की थी?

उत्तर राजा श्रेयांस ने सहपरिवार 1. प्रतिग्रहण (पड़िगाहन), 2. उच्चासन 3. पाद प्रक्षालन 4. पूजन, 5. मनशुद्धि, 6. वचनशुद्धि, 7. कायशुद्धि 8. आहार-जल शुद्धि और 9. नमोस्तु इस तरह की नवधाभक्ति मन-वचन-काय पूर्वक करते हुए तीर्थंकर ऋषभदेव के समक्ष आहार दान-विधि सानन्द सम्पन्न की थी।

प्र. 214 तीर्थंकर ऋषभदेव जब प्रथम बार आहार-चर्या को निकले थे तब राजा श्रेयांस ने नवधाभक्ति रूप आहार की विधि सम्पन्न क्यों नहीं की थी?

उत्तर क्योंकि तब तक राजा श्रेयांस के लिए किन्हीं तीर्थंकर के तीर्थ अर्थात् दिव्यध्वनि रूप उपदेश के अभाव में नवधा-भक्ति करने के ज्ञान का अभाव था।

प्र. 215 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के दूसरी बार आहार-चर्या के लिए निकलने पर राजा श्रेयांस को कैसे नवधा-भक्ति का ज्ञान जागृत हुआ?

उत्तर राजा श्रेयांस ने अपने पूर्व के आठवे भव में चक्रवर्ती वज्रजंघ (वर्तमान भव-ऋषभदेव) की पत्नी श्रीमती (वर्तमान भव राजा श्रेयांस) की पर्याय में दो मुनियों के लिए नवधाभक्ति पूर्वक आहार दिया था इस बात का स्मरण उन राजा श्रेयांस के जातिस्मरण (पूर्व भव की स्मृति) द्वारा हो गया था। अतः उन्होंने नवधा-भक्तिपूर्वक तीर्थंकर ऋषभदेव की आहार विधि सम्पन्न की थी।

प्र. 216 राजा श्रेयांस के लिए ऐसे जातिस्मरण के होने में इतने अधिक दिन क्यों व्यतीत हुए; कुछ काल पूर्व ऐसा जातिस्मरण क्यों नहीं हुआ?

उत्तर क्योंकि इतने काल के पूर्व राजा श्रेयांस के दानान्तराय कर्म का एवं ऋषभदेव मुनीश्वर के लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ था।

प्र. 217 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के प्रथम आहार की सानन्द सम्पन्नता पर किस तरह देव-गणों ने उत्सव मनाया?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के प्रथमाहार की सानन्द सम्पन्नता पर बड़ी भक्ति-भाव पूर्वक पञ्चाश्चर्य करते हुए देव-गणों ने महा उत्सव मनाया।

प्र. 218 महामुनीश्वरों के आहार-दान के उपरान्त देवों द्वारा किये जाने वाले पञ्चाश्चर्य किस तरह सम्पन्न किये जाते हैं?

उत्तर जिस तरह तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए दिये आहारदानोपरान्त देवों ने आकाश से रत्नों की धारा पृथ्वी पर बरसाई थी, मंद-मंद सुगन्धित वायु बहाई थी, दिव्य पुष्पों की वृष्टि की थी, जय-जयकार रूप शब्दों द्वारा उच्च स्वरों में उद्घोष किया था और देव दुन्दुभि-वाद्यों से मधुर ध्वनि कर भव्यों को परमानन्द में अवगाहित कर पञ्चाश्चर्यों को सम्पन्न किया था, उसी तरह सर्व ऋद्धि आदिक से विशिष्ट महामुनीश्वरों के आहारोपरान्त देवगण पञ्चाश्चर्य किया करते हैं।

प्र. 219 ऋद्धिधारक महामुनीश्वरों के लिए अर्पित किये गये आहारोपरान्त कम-से-कम और अधिक-से-अधिक कितने दिव्य (वेशकीमती) रत्नों की वर्षा देवों द्वारा की जाती है?

उत्तर ऋद्धिधारक महामुनीश्वरों के आहारोपरान्त देवों द्वारा कम-से-कम एक लाख पच्चीस हजार और अधिक-से अधिक साढ़े बारह करोड़ दिव्य रत्नों की वर्षा की जाती है। (त्रि.महा.)

प्र. 220 राजा श्रेयांस द्वारा दिये गये तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर को प्रथमाहार द्वारा चक्रवर्ती भरतेश्वर ने राजा श्रेयांस के लिए कौन-से तीन विशेषणों के साथ पुकारा था?

उत्तर चक्रवर्ती भरतेश्वर ने राजा श्रेयांस के लिए प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव महामुनीश्वर के लिए प्रदान किये गये प्रथमाहार के महानन्दोत्सव पर तुम महादानपति हो, तुम दानतीर्थकृत हो और तुम महापुण्यभाग हो ऐसे इन तीन विशेषणों के साथ पुकारा था। (म.पु.)

प्र. 221 प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव महामुनीश्वर के प्रथम आहार दान के शुभ दिन का नाम जगत् के भव्य बन्धुओं ने क्या घोषित किया था?

उत्तर ऐसे महान प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव महामुनीश्वर के प्रथमाहारदान के शुभ दिन का शुभ नाम जगत् के भव्य जनों ने **अक्षय तृतीया** उद्घोषित किया था।

प्र. 222 तीर्थंकरों के लिए दीक्षा-धारण करते ही कौन-कौन-सी ऋद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं?

उत्तर तीर्थंकरों के लिए दीक्षा-धारण करते ही 1. बुद्धि-ऋद्धि, 2. विक्रिया-ऋद्धि, 3. चारण-ऋद्धि, 4. तप-ऋद्धि, 5. बल-ऋद्धि, 6. औषध-ऋद्धि, 7. रस-ऋद्धि और 8. अक्षीण-ऋद्धि इस तरह मूल रूप से अष्ट ऋद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं।

प्र. 223 बुद्धि आदिक मूल अष्ट ऋद्धियों के उत्तर भेद कितने होते हैं?

उत्तर बुद्धि आदिक मूल अष्टऋद्धियों के उत्तर भेद आगम में चौंसठ बतलाये गये हैं। (विशेष देखिये जै.सि.कोश)

प्र. 224 बुद्धि-ऋद्धि के अठारह भेदों में एक भेद केवलज्ञान भी आता है तो क्या वे तीर्थंकर मुनि-पद धारण करते ही केवलज्ञान रूप ऋद्धि के भी स्वामी बन जाते हैं?

उत्तर नहीं; ऐसा नहीं होता। इस जिज्ञासा का समाधान ऐसा है कि- तीर्थंकर जब मुनि-दीक्षा धारण करते हैं तब तत्काल ही उन्हें त्रेसठ ऋद्धियाँ अवश्य प्रकट हो जाती हैं लेकिन बुद्धि-ऋद्धि के अठारह भेदों में से एक केवलज्ञान ऋद्धि रूप भेद तब प्रकट होता है जब वे चार घातियाँ कर्मों का क्षयकर अरहंत-पद रूप अवस्था को प्राप्त करते हैं।

प्र. 225 ऋद्धि और विद्याओं को क्या परिग्रह नहीं कहा जा सकता? और इनके माध्यम से मुनिपद बाधित नहीं होता क्या?

उत्तर ऋद्धियों से मुनिपद बाधित नहीं होता और न ही वे परिग्रह रूप होती हैं क्योंकि वे तपस्या से प्राप्त आत्मिक शक्तियाँ हैं न कि कोई सेविकाएँ। विद्याओं से मुनिपद बाधित अवश्य होता है और उन्हें अपनाने से परिग्रह रूप पाप भी होता है क्योंकि वे सेविका (दासी) रूप हुआ करती हैं। परन्तु विद्याओं

का ज्ञान मात्र होना परिग्रह नहीं है।

प्र. 226 बुद्धि-ऋद्धि के तेरहवें भेद दशपूर्वित्व में जो विद्यानुप्रवाद नामक पूर्व होता है उसके अध्ययन के काल में मुनियों के सम्यक्त्व व उनके निराकांक्षा रूप परिणामों के परीक्षण हेतु जो महारोहणी आदि पाँच सौ महा-विद्याएँ तथा अंगुष्ठ, प्रसेन आदि सात सौ लघु विद्याएँ उपस्थित होती हैं तब वे मुनि अपरिग्रही कैसे बने रहते हैं?

उत्तर जो वैरागी मुनि इन असंयमी देवी रूप विद्याओं की सेवा रूप प्रार्थना को अस्वीकार कर देते हैं वे सम्यक्त्व रूपी रत्न को सुरक्षित रखने वाले मुनि अभिन्न दशपूर्वित्व रूपी अवस्था को धारण करते हुए अपरिग्रही-संयमी कहलाते हैं और जो मुनि असंयमी स्त्रियों रूपी विद्याओं की सेवा स्वीकार कर लेते हैं वे वैराग्य-भाव से च्युत परिग्रही, असंयमी होते हुए अपने सम्यक्त्व रूपी रत्न को भी अथाह भवोदधि में गवाँ बैठते हैं।

प्र. 227 क्या ऐसी असंयमी देवी रूपी विद्याओं को अपनाने वाला यति ही रुद्र कहा जाता है और उसकी करनी का क्या फल होता होगा?

उत्तर हाँ! जो यति ऐसी असंयमी देवी रूप विद्याओं को स्वीकार कर व विषय-सेवन कर उनमें रमता है वह रुद्र कहलाता है, और वह निश्चित ही अपनी इस अशुभ करनी से अधो-पतन की राह द्वारा घोर दुःखों के द्वार अवश्य खोल लेता है।

प्र. 228 अंग श्रुतधारक श्री धरसेनाचार्य ने जब मुनिवर पुष्पदन्त और भूतबली के लिए जो श्रुतज्ञान देने के पूर्व परीक्षणार्थ एक-एक विद्यामंत्र शुद्ध करने दिये थे और उनका ध्यान करते हुए उन मुनियों को दो देवियाँ दिखीं तो क्या इस कार्य को यह मानना अनुचित ही होगा कि उनका यह कार्य देवी सिद्धि के लिए था?

उत्तर हाँ अनुचित ही होगा! क्योंकि गुरु-शिष्य का मन्तव्य देवी-सिद्धि का किञ्चत भी नहीं था। वे देवियाँ तो मात्र उनकी श्रुत-रक्षा रूप विशुद्धि के प्रभाव से यह संकेत दर्शाने उपस्थित हुईं थीं कि इन विद्यामंत्रों में जो विकलता है वे हमारे शरीर (एक आँख और एक दांत बाहर) रूप विकलता को देखकर, सही अर्थ ग्रहण कर अपनी बुद्धि के अनुरूप श्लोकों को शुद्ध कर लें। इस तरह न वे देवियाँ सिद्ध की गईं थीं और न वे विषय रमण या चिरकाल को स्थायी बनने आयीं थी बल्कि वे स्वतः उपस्थित होकर विद्यामंत्रों की शुद्धि होते ही वास्तविक रूप प्रकट कर तत्काल ही यथास्थान प्रस्थान कर गईं।

प्र. 229 संयमी और महान व्रतों के धारक महाव्रती मुनि जनों के प्रति असंयमी सरागी देवी-देवताओं को वश में करने के कार्य की कल्पना करना कौन-से अनर्थ का कारण है?

उत्तर जब एक सामान्य सम्यग्दृष्टि भव्यजीव सरागी देवी-देवता की उपासना को मिथ्यात्व मानता है तब इन महा सम्यग्ज्ञानी भव्य मुनीश्वरों के साथ देवादिक की सिद्धि या वश करने की कल्पना करना उन महाव्रतियों को दासी-दास का परिग्रही बनाते हुए महामिथ्यात्व-पोषक महाअज्ञान या घोर मूढ़ता रूप अनर्थ क्यों नहीं माना जावेगा? अर्थात् अवश्य ही माना जावेगा।

प्र. 230 विद्याधर गृहस्थ मनुष्य तो विद्याओं के स्वामी कहे जाते हैं; तो क्या वे सभी मिथ्यादृष्टि होते हैं या सम्यग्दृष्टि?

उत्तर सभी विद्याधर मिथ्यादृष्टि नहीं होते; जो सरागियों की उपासना कर विद्याओं की प्राप्ति करते हैं वे विद्याधर मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं, लेकिन जो बिना प्रयास ही जाति व कुल आदिक से विद्याओं की प्राप्ति कर वीतराग जिनेन्द्र देव, जिनवाणी और निर्ग्रन्थ गुरुओं की ही आराधना करते हुए सहज प्राप्त विद्याओं का धर्म या सदुपकार के निमित्त प्रयोग किया करते हैं वे विद्याधर सम्यग्दृष्टि कहलाते हैं।

प्र. 231 सेवा इत्यादिक कार्य करने वाली परिग्रह रूप विद्याएँ गृहस्थों के जीवन में कौन-सी अवस्था तक रह सकती हैं?

उत्तर मोक्ष में बाधक भिन्न पदार्थरूप परिग्रह पाप रूप होते हुए भी गृहस्थों के जीवन में न्याय-शीलता के साथ एक सीमा में सीमित रहते हुए पंचम गुणस्थान तक रह सकता है।

प्र. 232 इसी कारण-वश क्या कोई-कोई श्रावक क्षुल्लक जैसी अवस्था में भी विद्याओं का प्रयोग पूर्व काल में किया करते थे?

उत्तर हाँ! पूर्व प्राप्त विद्याओं को अणुव्रत-धारक पंचमगुणस्थानवर्ती क्षुल्लक रखते हैं तथा कदाचित् उन विद्याओं को आज्ञा दे धर्म कार्य किया करते थे; परन्तु मुनि दीक्षा लेने के पूर्व ही उन विद्याओं का त्याग कर दिया करते थे।

प्र. 233 जिनदत्त श्रेष्ठी श्रावक के लिए विद्या की प्राप्ति किस कारण हुई थी?

उत्तर जिनदत्त श्रेष्ठी श्रावक के दृढ़तायुत ध्यान को देखकर बिना कांक्षा (चाहना) के ही देवों द्वारा आकाशगामिनी विद्या प्रदान की गई थी जिससे वे मेरुपर्वत आदिक के अकृत्रिम जिनालयों के नित्य दर्शन आदिक किया करते थे।

प्र. 234 अञ्जन चोर को विद्या की प्राप्ति का कारण क्या था और वह विद्या कब तक रही?

उत्तर जिनदत्त श्रेष्ठी श्रावक द्वारा प्रमाणित और प्रसारित किये गये अनादि व अनिधन णमोकार मंत्र पर श्रद्धा कर उसे ध्याते हुए अञ्जन चोर के लिए प्राप्त हुई आकाशगामिनी विद्या उसे मेरु पर्वत पर स्थित अकृत्रिम जिनालयों के दर्शनार्थ ले गई थी और वहाँ विराजित मुनिराज के उपदेश से दीक्षा लेते समय उसने उस परिग्रह रूप विद्या का भी त्याग कर दिया था तथा तप से प्राप्त चारण ऋद्धि द्वारा अञ्जन मुनि ने कैलाश पर्वत पर आकर वहाँ से शुक्ल-ध्यान द्वारा सर्व अष्ट-दुष्ट कर्मों का क्षय कर निर्वाण रूप निरञ्जन रूप मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया था।

प्र. 235 तीर्थंकर-पदधारी मुनिवर को आत्मिक शक्ति रूप प्राप्त ऋद्धियों के माध्यम से जगजन क्या लाभ लेते होंगे?

उत्तर ऐसी तीर्थंकर जैसी आत्माएँ जब दूर-सुदूर तक अपनी चारण ऋद्धि द्वारा आकाश में ऊँचाई से गमन करते हैं तब स्वपर कल्याण करते हैं; जैसे कि अक्षीण-महानस ऋद्धि द्वारा आहार अक्षीणता (वृद्धि) हो जाना, नीरसाहार भी सरस हो जाना, अक्षीण महालय ऋद्धि से लघुस्थान भी (गुफा जैसा स्थान भी)

बड़ा विशाल हो जाना, उनके शरीर से अन्य शरीर को बाधा उत्पन्न न होना, उनके शरीर के प्रभाव से अन्य जीवों के रोगादिक का पलायन होना और सम्पूर्ण लोक के पदार्थों के ज्ञान से दिव्य-ध्वनि द्वारा सम्पूर्ण जगत् के भव्य जीवों के लिए मोक्षमार्ग का उपदेश प्राप्त होना इत्यादिक अनेकों लाभ होते हैं।

प्र. 236 विष्णुकुमार मुनि ने तप से प्राप्त ऋद्धि द्वारा क्या उपकार कर लोक प्रशंसित कार्य किया था?

उत्तर विष्णुकुमार मुनि ने तप से प्राप्त विक्रिया ऋद्धि द्वारा अपने शरीर को विस्तृत बना कर एक पग मेरु पर्वत पर व एक पग मानुषोत्तर पर्वत पर रखने वाला बनाकर बलि राजा का मान खण्डित कर अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों की रक्षा करते हुए बड़ा ही लोक प्रशंसित कार्य किया था।

प्र. 237 विद्या का एक अर्थ कोई अन्य देवी इत्यादिक न होते हुए मात्र ज्ञान रूप होता है; तो ज्ञान रूप विद्याएँ जो आत्मिक शक्तिरूप होती हैं वे मुनियों के जीवन में परिग्रह रूप न होते हुए किस रूप होती होंगी?

उत्तर वे ज्ञान रूप विद्याएँ महामुनियों के जीवन में अन्तरिक्ष, भौम, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन व छिन्न (चिह्न) रूप अष्ट महानिमित्त की भेदवाली अंग-ज्ञान रूप हुआ करती हैं तथा वे महाज्ञानी मुनिवर इस ज्ञान रूप विद्या का प्रयोग लौकिक कार्यों के लिए कदापि नहीं करते क्योंकि वे विशुद्ध सम्यग्दृष्टि हुआ करते हैं।

प्र. 238 तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा से पूर्व सर्वप्रथम जिन विद्याओं द्वारा ब्राह्मी और सुन्दरी पुत्रियों के ऊपर उपकार किया था वे ज्ञान-विद्यायें कौन सी थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा के पूर्व प्रथम पुत्री ब्राह्मी के लिए लिपि विद्या और द्वितीय पुत्री सुन्दरी के लिए अंक विद्या सिखलाकर उनका महान उपकार किया था।

प्र. 239 तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा पूर्व अपने गृहस्थ जीवन में जन सामान्य को षट् कर्मादिक का उपदेश देकर कितने वर्षों तक कर्मभूमि की उत्तम-व्यवस्था में अपने अमूल्य-जीवन के समय का सदुपयोग किया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा-पूर्व अपने गृहस्थ जीवन में जनसामान्य के लिए तेरासी लाख पूर्व वर्ष तक षट्-कर्मादिक का उपदेश देकर कर्मभूमि की उत्तम-व्यवस्था में अपने अमूल्य-जीवन के समय का सदुपयोग किया था।

प्र. 240 तीर्थंकर ऋषभदेव के दीक्षोपरान्त छदमस्थ अवस्था में कितने वर्ष तपस्या में व्यतीत हुए थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के दीक्षोपारान्त छदमस्थ अवस्था में एक हजार वर्ष तपस्या में व्यतीत हुए थे।

प्र. 241 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए केवलज्ञान की उत्पत्ति किस स्थल पर हुई थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभवदेव मुनीश्वर के लिए केवलज्ञान की उत्पत्ति पर्वतालपुर के निकट हुई थी।

प्र. 242 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए केवलज्ञान किस वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुआ था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए केवलज्ञान वट वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुआ था।

प्र. 243 केवलज्ञानोत्पत्ति होते ही तीर्थंकर अरिहंत इस धरातल से कितने हस्त ऊपर उठ जाया करते हैं

और जहाँ से उनकी वाणी खिरना, व गमन-विराजमान रूप क्रिया हुआ करती है?

उत्तर केवलज्ञानोत्पत्ति होते ही तीर्थंकर अरिहंत का शरीर इस सामान्य धरातल से पाँच हजार धनुष अर्थात् बीस हजार हस्त (हाथ) ऊपर उठ जाता है और उतनी ऊँचाई से ही उनकी वाणी खिरना व गमन-विराजित होने रूप क्रिया सम्पन्न होती है।

प्र. 244 तीर्थंकर अरिहंतों का शरीर इस सामान्य धरातल (भूमि) से पाँच हजार धनुष ऊपर की ओर क्यों उठ जाता है? क्या इसमें कोई विशेष रहस्य है?

उत्तर जगत् में विशिष्ट आत्माओं का स्थान सर्वोपरि होता है, यह अवस्था लोक शिखर तक जाने वाले भावि सिद्ध उन अरिहन्तों भगवन्तों की होती है, तीर्थंकर प्रभु कैवल्य उपलब्धि के उपरान्त परम शुद्ध एवं इतने विशिष्ट आत्मा सुनिश्चित होते हैं कि उन्हें कोई अभव्य और मिथ्यादृष्टि जैसे पुण्यहीन प्राणी देखने में बड़े अभागे होते हैं; इतदर्थ उनका शरीर स्वयमेव पाँच हजार धनुष की ऊँचाई पर चला जाता है।

प्र. 245 तीर्थंकर केवली का दर्शन कौन-से पुण्यवान व भाग्यवान जीव कर पाते हैं?

उत्तर तीर्थंकर केवली का दर्शन जो जीव भव्यत्व के साथ सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं ऐसे वे ही बड़े पुण्यवान व भाग्यवान प्राणी कर पाते हैं।

प्र. 246 साक्षात् तीर्थंकर-केवली भगवान का दर्शन कौन-कौन से प्राणी नहीं कर पाते?

उत्तर आगम-ग्रन्थों में वर्णित है कि साक्षात् तीर्थंकर-केवली भगवान का दर्शन अभव्य जीवों, मिथ्यादृष्टि जीवों, सासादन गुणस्थानवर्ती जीवों एवं मिश्रगुणस्थानवर्ती जीवों को नहीं होता। (मुनिसुव्रत का.4-130)

प्र. 247 अभव्य व मिथ्यादृष्टि आदिक जीवों को तीर्थंकर-केवली भगवान के साक्षात् दर्शनार्थ निकट जाने में कौन बाधक बन जाता है और वे दर्शन से वंचित किस तरह-से रह जाते हैं?

उत्तर अभव्यों व मिथ्यादृष्टि आदिक जीवों को साक्षात् तीर्थंकर-केवलियों के दर्शन में बाधक उनका मोहनीय व दर्शनावरणीय आदिक कर्म ही समझना चाहिए, जिस कारण अभव्य मिथ्यादृष्टि आदिक जीव प्रभु के समवसरण के निकटस्थ प्रथम परकोट धूलिसाल सम्बन्धी विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक चार द्वारों के समीप पहुँचते ही उन्हें समवसरण में विराजित तीर्थंकर प्रभु तक पहुँचाने वाली वीथियों रूप मार्ग नजर ही नहीं आता तथा वे अन्धे सदृश हो जाते हैं और समवसरण के बाहरी भाग से ही वापस लौट आते हैं।

प्र. 248 भव्य, सम्यग्दृष्टि जीव किस तरह बीस हजार हाथ ऊपर जाकर साक्षात् तीर्थंकर केवली का दर्शन करते होंगे?

उत्तर स्वर्गिक सौधर्मेन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेरेन्द्र इस भूमि पर रत्नमय एक विशाल धर्मसभा रूप भव्यों को शरण देने वाला समवसरण रूप वैभव रचाता है जिसमें तीर्थंकर प्रभु के निकट तक पहुँचने हेतु बीस हजार सीढ़िया रची जाती हैं, जिन रत्नमय सीढ़ियों को भव्य सम्यग्दृष्टि जीव बिना परिश्रम ही थोड़े-से

पुरुषार्थ के माध्यम से चढ़ जाया करते हैं और उन पुण्यभागी भाग्यशालियों को सहज ही उन त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर केवली प्रभु का साक्षात् दर्शन हो जाया करता है।

प्र. 249 अरिहंत केवली भगवन्तों की गमनादिक क्रिया क्या उनकी इच्छा पूर्वक हुआ करती है या भव्यों के पुण्य के वश हुआ करती है?

उत्तर अरिहंत केवली भगवन्तों की गमन, बैठना और वाणी खिरने रूप क्रिया स्त्रियों की माया व मेघों के गमन सदृश स्वाभाविक रूप से भव्य जीवों के पुण्य के निमित्त और जग-उपकारार्थ उनकी बिना इच्छा के ही हुआ करती है। (प्र.सा. 1.44)

प्र. 250 केवली भगवान की इच्छा रूप प्रवृत्ति होने में क्या बाधा है?

उत्तर इच्छा का प्रकट होना एक तरह का राग-भाव है और जो राग भाव मोहनीय कर्म में गर्भित होता है, जब तेरहवें गुणस्थानवर्ती भगवान मोहनीय कर्म का क्षय दसवें गुणस्थान में ही कर चुके होते हैं तब उनके जीवन में किसी भी तरह की इच्छा प्रकट होने की कल्पना करना व्यर्थ ही समझना चाहिए।

प्र. 251 तीर्थंकर ऋषभदेव के केवलज्ञानोत्पत्ति का हर्ष देवों ने व प्रकृति ने किस तरह प्रकट किया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव ने जब घातिया कर्मों पर विजय प्राप्त की तब संसार भर में शान्ति छा गई। सुरलोक में शीघ्र ही जिनेन्द्रदेव के केवलज्ञान का समाचार ज्ञात हो गया। कल्पवासियों के विमानों में घंटानाद, ज्योतिषी देवों के यहाँ सिंहनाद, व्यन्तरों के यहाँ भेरीनाद तथा भवनवासियों के यहाँ भी स्वतः शंख-ध्वनि होने लगी। इन्द्रों के आसन डोलने लगे, मानों जिनेन्द्र देव द्वारा घातिया कर्मों के जीते जाने पर देवों को जो गर्व हुआ था, उसे वे सहन करने में असमर्थ हो आसन-सह दोलायित होते हुये कम्पायमान होने लगे। कल्पवृक्षों से दिव्य-पुष्पों की वर्षा हो रही थी मानों वे प्रभु को पुष्पांजलि अर्पित कर रहे हों। दिशायें धुएँ व धूलादि रहित निर्मल हो गईं थीं। आकाश मेघों से रहित हो गया था। मंद-मंद सुगंधित और शीतल वायु बह रही थी। ऐसे मनोरम वातावरण में देवगण व मनुष्य आदिक उन जिनेन्द्र प्रभु को भक्ति भाव-सह वंदन कर रहे थे।

प्र. 252 देव-गणों ने किस तरह तीर्थंकर ऋषभदेव का केवलज्ञान कल्याणक बड़े वैभव-सह मनाया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव को कैवल्य प्राप्ति होते ही सर्व प्रथम सौधर्मेन्द्र ने स्वर्ग से ही आनंदित होकर उन जिनेन्द्र देव की परोक्ष में वंदना की। तदनन्तर सौधर्मैशानेन्द्र अपनी-अपनी शची के साथ ऐरावत गज पर आरूढ़ होकर अयोध्या नगरी की ओर प्रस्थान करते हैं। इसी तरह सभी देवगण स्व-स्व विमानों में बैठकर अयोध्या नगरी पहुँचते हैं। सौधर्मेन्द्र की आज्ञा पा कुबेरेन्द्र सूर्य मण्डल के समान गोल इन्द्रनील मणिमयी बारह योजन प्रमाण विस्तार वाली भूमि रचकर उसके ऊपर समवसरण की रचना करता है। देवों के अद्भुत् कौशल तथा तीर्थंकर प्रकृति के निमित्त से आदिनाथ ऋषभदेव प्रभु का समवसरण सौन्दर्य, वैभव तथा श्रेष्ठ कला का अद्भुत केन्द्र था। ऐसे महान समवसरण में पहुँचकर देवेन्द्र तीर्थंकर प्रभु की सविनय नमस्कार पूर्वक स्तुति करता है और अष्ट महामंगल द्रव्यों से उनकी पूजा रचाता है

तथा अष्ट भूमि व बारह सभा युक्त समवसरण की शरण में अपने को धन्य मानते हुए सभी भव्य गणों-सह इन्द्र प्रभु की अमृतमय दिव्य वाणी को सुनकर केवलज्ञान कल्याणक मनाता है।

प्र. 253 सौधर्मेन्द्र ने किस देव के लिए ऐरावत गज का रूप धारण करने की आज्ञा प्रदान की थी?

उत्तर सौधर्मेन्द्र ने नागदत्त नामक आभियोग्य जाति के स्वर्गिक देव के लिए ऐरावत गज का रूप धारण करने की आज्ञा प्रदान की थी।

प्र. 254 तीर्थंकर ऋषभदेव प्रभु के विशाल समवसरण का विस्तार कितना था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के विशाल समवसरण का विस्तार बारह योजन था।

प्र. 255 क्या सर्व तीर्थंकरों के समवसरण का विस्तार एक सदृश होता है या कोई विशेषता है?

उत्तर ऋषभनाथ तीर्थंकर भगवान के बारह योजन समवसरण के विस्तार से शेष अजितनाथ से लेकर बाईसवे नेमिनाथ तक के तीर्थंकरों के समवसरण का विस्तार आधा-आधा योजन कम था। पार्श्वनाथ तीर्थंकर का समवसरण सवा योजन तथा भ. महावीर का समवसरण एक योजन विस्तार वाला था।

प्र. 256 विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकरों के समवसरण का विस्तार कितना होता है?

उत्तर विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकरों की शारीरिक अवगाहना पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है, अतः वहाँ के समवसरणों का विस्तार नियम से बारह योजन प्रमाण होता है ऐसा आगम है।

प्र. 257 तीर्थंकर प्रभु के समवसरण का संक्षिप्त परिचय किस तरह का है?

उत्तर समवसरण के बाह्य भाग में सर्वप्रथम धूलिसाल परकोट जो रत्नों की धूलि से निर्मित होता है। इस धूलिसाल के बाहर चारों दिशाओं में स्वर्णमय खंभों के अग्रभाग पर अवलंबित चार तोरण द्वार शोभायमान होते हैं। धूलिसाल के भीतर जाने पर कुछ दूरी पर चारों दिशाओं में एक-एक मानस्तम्भ होते हैं। वे मानस्तम्भ बड़े ऊँचे घण्टाओं से घिरे, और चँवर तथा ध्वजाओं से शोभायमान होते हैं। ऐसे दिव्य मानस्तम्भों के मूल भाग में जिनेन्द्र भगवान् की सुवर्णमय प्रतिमाएँ विराजित होती हैं, जिनकी इन्द्रगण क्षीरसागर के जल से अभिषेक कर पूजन किया करते हैं। उन मानस्तम्भों में श्रीजिन के मस्तक पर छत्रत्रय शोभित होते हैं। प्रत्येक मानस्तम्भ की चारों दिशि में चार सरोवर निर्मल जल से पूरित होते हैं मानों वे तन के मैल सह कर्म-मैल को धोया करते हैं।

फिर निर्मल जल से पूर्ण कमलादिपुष्पों-सह खातिका होती है। पश्चात् पुष्पवाटिका होती है। अनन्तर प्रथम कोट होता है। पश्चात् दो-दो नाट्य शालायें होती हैं। उसके अनन्तर अशोक आदि वृक्षों का वन होता है। उसके आगे वेदिका होती है। तदनन्तर ध्वजाएँ शोभित होती हैं। इनके पश्चात् दूसरा कोट होता है। फिर वेदिका सह कल्पवृक्षों का वन होता है। तदनन्तर स्तूप होते हैं और फिर भवनों की पंक्तियाँ शोभित होती हैं।

इसके अनन्तर स्फटिक मणि से रचित तीसरा परकोटा होता है। उसके बाद मुनि, राजादि मनुष्य और देवादिकों की बारह सभाएँ हुआ करती हैं और अंत में गोल तीन कटनी रूपी पीठिका के ऊपर सहस्रदल स्वर्णिम कमल फिर रत्नजड़ित सिंहासन से अधर में स्वयंभू तीर्थंकर अरहंत-देव विराजित

होते हैं। इस तरह यह समवसरण का संक्षिप्त परिचय है।

प्र. 258 एक अपेक्षा से समवसरण में ग्यारह भूमियाँ कौन-सी होती हैं?

उत्तर समवसरण में 1. चैत्यभूमि, 2. खातिकाभूमि, 3. लताभूमि, 4. उपवनभूमि, 5. ध्वजाभूमि, 6. कल्पांगभूमि, 7. गृहभूमि, 8. सद्गुणभूमि, 9. प्रथम मेखला (कटनी) भूमि, 10. द्वितीय मेखला भूमि और 11. तृतीय मेखला भूमि।

प्र. 259 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने गणधर मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में चौरासी गणधर मुनि विराजित थे।

प्र. 260 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने केवली मुनिवर विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में बीस हजार केवली मुनि विराजित थे।

प्र. 261 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने अवधिज्ञानी मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में नौ हजार अवधिज्ञानी मुनि विराजित थे।

प्र. 262 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने शिक्षक मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषदेव के समवसरण में चार हजार एक सौ पचास शिक्षक मुनि विराजित थे।

प्र. 263 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने मनःपर्ययज्ञानी मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में बीस हजार सात सौ पचास मनःपर्ययज्ञानी मुनि विराजित थे।

प्र. 264 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने विक्रिया ऋद्धि धारक मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में बीस हजार छह सौ विक्रिया ऋद्धि धारक मुनि विराजित थे।

प्र. 265 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने अनुत्तरवादी मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में बीस हजार सात सौ पचास अनुत्तरवादी मुनि विराजित थे।

प्र. 266 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने अंग-पूर्व के ज्ञाता (श्रुतकेवली) मुनिराज विराजमान थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में चार हजार सात सौ पचास अंग-पूर्व के ज्ञाता (श्रुतकेवली) मुनिराज विराजमान थे।

प्र. 267 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने सामान्य मुनिराज विराजमान थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में चौरासी हजार सामान्य मुनिराज विराजमान थे।

प्र. 268 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में आर्यिकाओं की कितनी संख्या थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में आर्यिकाओं की संख्या तीन लाख पचास हजार थी।

प्र. 269 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में श्रावकों एवं श्राविकाओं की कितनी संख्या थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में श्रावकों की संख्या तीन लाख एवं श्राविकाओं की पाँच लाख थी।

प्र. 270 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में देवगति के देव-देवियाँ कितने थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में देवगति सम्बन्धी देव और देवियाँ असंख्यात थे।

प्र. 271 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में तिर्यञ्च प्राणी कितने थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में तिर्यञ्च प्राणी संख्यात थे।

प्र. 272 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख श्रोता का नाम क्या था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख श्रोता का नाम भरत चक्रवर्ती था।

प्र. 273 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख गणधर मुनि कौन थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख गणधर मुनिवर वृषभसेन थे।

प्र. 274 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख आर्यिका कौन थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख आर्यिका ब्राह्मी थी।

प्र. 275 तीर्थंकरों के समवसरण में (मण्डप भूमि में) प्राणियों के लिए कौन-कौन-सी बाधाएँ और क्यों उत्पन्न नहीं होती?

उत्तर तीर्थंकरों के समवसरण में (मण्डप भूमि में) आतंक, रोग, शोक, प्रसव, निद्रा, बैर, काम, भूख और प्यासादिक की बाधाएँ तीर्थंकर प्रभु के पुण्य के महाप्रताप से उत्पन्न नहीं होती।

प्र. 276 समवसरण में नवमी भूमि रूप प्रथम मेखला (कटनी) क्या विशेषता वाली होती है?

उत्तर समवसरण में नवमी भूमि रूप प्रथम मेखला-पीठिका पर स्थित अष्टमंगल द्रव्य अतिशय शोभायमान होते हैं तथा सुन्दर यक्षों के ऊँचे-ऊँचे मस्तकों पर स्थित धर्मचक्र उदयाचल से उदित होते हुए सूर्य बिम्ब सदृश प्रतिभासित होते हैं।

प्र. 277 समवसरण में दसमी भूमि रूप द्वितीय मेखला क्या विशेषता वाली होती है?

उत्तर समवसरण में दसमी भूमि रूप द्वितीय मेखला-पीठिका पर चक्र, गज, वृषभ, कमल, अश्व, सिंह, गरुड़ तथा माला के चिह्न से चिह्नित आठों दिशि में आठ विस्तृत ध्वजाएँ शोभायमान होती हैं।

प्र. 278 समवसरण में ग्यारहवीं भूमि रूप तृतीय मेखला क्या विशेषता वाली होती है?

उत्तर समवसरण में ग्यारहवीं भूमि रूप तृतीय मेखला-पीठिका सर्व रत्नों और मोतियों के हारों से सुसज्जित होती है जिस मेखला के बीचो-बीच चहुँदिशि में मधुर गंध को बिखराने वाली गंधकुटी इस तरह भासित होती है मानो तीर्थंकर प्रभु का परमौदारिक शरीर ही अष्ट-गंध के रूप में अपनी सुगन्धि से भव्यों को संतृप्त कर रहा हो तथाहि ऐसी मनहारी गंधकुटी के मध्य सहस्रदल स्वर्णिम कमल एवं जिस पर रत्न जड़ित सिंहासन अतिशय-शोभाश्री को बढ़ाने वाला होता है और जिस सिंहासन में चतुरंगुल ऊपर अधर में तीर्थंकर प्रभु विराजित होते हैं। ऐसी मनभावन तृतीय मेखला होती है।

प्र. 279 तीर्थंकर केवली के सिर पर कौन-से देवों द्वारा कितने चँवर ढुराये जाते हैं?

उत्तर तीर्थंकर केवली के सिर पर आजू-बाजू से कटक, कटि-सूत्र, कुण्डल और मुकुटादि अलंकारों से परिपूर्ण सुन्दर यक्षों द्वारा चौसठ चँवर ढुराये जाते हैं।

प्र. 280 सुन्दर आभरणों से युक्त यक्ष क्या तीर्थंकरों मात्र की चँवर ढोरकर सेवा करते हैं या अन्य पुण्यवान मनुष्यों की भी चँवर ढोरकर सेवा करते हैं? और वे अन्य पुण्यवान कौन-कौन-से

मनुष्यों के सिर पर कितने-कितने चँवर ढोरते हैं?

उत्तर आभरणों से सुन्दर यक्ष चक्रवर्तियों पर सदाकाल बत्तीस चँवर ढोरते हैं। अर्धचक्रवर्ती (नारायण-प्रतिनारायण) पर सोलह चँवर ढोरते हैं। महामण्डलेश्वर राजाओं पर आठ चँवर ढोरते हैं। मण्डलेश्वर राजा पर चार चँवर ढोरते हैं और महाराजाओं पर दो चँवर ढोरते हैं। इस तरह यक्ष देव मनुष्यों की भी बड़ी मनोभावना से सेवा पूर्ण करते हैं।

प्र. 281 तीर्थंकरों के समवसरण में प्रभु के भामण्डल (प्रभामण्डल) की क्या महिमा होती है? उसके रहस्य को बतलाइये?

उत्तर त्रिलोक के प्रकाशमान पदार्थों के तेज को तिरस्कृत करने वाला अथवा अमृत सदृश निर्मल और जगत् को अनेक मंगल रूप दर्पण के समान भगवान् की देह के प्रभामण्डल में भव्यात्माओं के सप्त-सप्त भव दर्शित होते हैं ऐसे महातेज पुञ्ज रूप प्रभामण्डल के कारण समवसरण में रात्रि और दिन का कोई भेद नहीं रहता है।

प्र. 282 समवसरण में स्थित मानस्तम्भों की चारों दिशाओं सम्बन्धी सरोवरों या बाबड़ियों में भी आगे, पीछे के तीन-तीन और वर्तमान का एक भव दर्शित होने का वर्णन मिलता है। परन्तु जिन जीवों के मोक्ष होने में एक, दो भव ही शेष हैं तो उन्हें क्या नियम लागू होगा?

उत्तर जिन जीवों के एक, दो भव ही शेष रहते हुए मोक्ष पाना निकट होता है वे जीव कल्याण में निमित्त भामण्डल में उतने ही भव देखते हुए वैराग्य-भाव का चिन्तवन मन में लाकर शीघ्र मोक्ष-पुरुषार्थ करने में उत्सुक हो जाते हैं। उन्हें चार, पाँच अथवा छह भवों के दिखने का नियम भी लागू हो सकता है।

प्र. 283 समवसरण-विराजित सहस्रसूर्य-सम प्रतापी प्रभु को निहारने में आँखे कैसे सक्षम होंगी क्या अश्रुपात नहीं होने लगेगा?

उत्तर नहीं! ऐसा नहीं होता, जैसे-प्रभु का रूप सहस्र सूर्यों से भी अधिक प्रतापी होता है वैसे ही सहस्रचन्द्रों से भी अधिक शीतल होता है अतः नयन सुख और प्रसन्नता का ही अनुभव करते हैं, न कि किसी तरह के कष्ट का अनुभव करते हैं।

प्र. 284 तीर्थंकर केवली की दिव्यध्वनि कितनी भाषाओं में खिरती है?

उत्तर तीर्थंकर केवली की दिव्यध्वनि अठारह महाभाषाओं और सात सौ लघु भाषाओं में खिरती है।

प्र. 285 जिनेन्द्र देव- केवली प्रभु की वाणी रूप दिव्य-ध्वनि के लिए सार्वार्धमागधी भाषा क्यों कहा जाता है?

उत्तर जिनेन्द्र देव-केवली प्रभु की वाणी रूप दिव्यध्वनि लोक के सर्व जीवों की हितकारक होने से 'सार्व' कही जाती है और मागध नामक देवों द्वारा भिन्न-भिन्न भव्य जीवों के कर्णप्रदेशों के समीप तक सरलता पूर्वक पहुँचायी जाने वाली होने से 'मागधी' भाषा कहलाती है।

प्र. 286 जिनेन्द्र देव से खिरी दिव्य-ध्वनि की क्या महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है?

उत्तर जिनेन्द्र-देव से खिरी दिव्यध्वनि गम्भीर, मधुर, अत्यन्त मनोहर, निष्कलंक, कल्याणकारी,

कण्ठओष्ठ-तालु आदि वचन उत्पत्ति के निमित्त कारणों से रहित, पवन के रोध बिना उत्पन्न हुई, स्पष्ट, श्रोताओं के लिए अभीष्ट तत्त्वों का निरूपण करने वाली सर्वभाषा स्वरूप, समीप तथा दूरवर्ती जीवों के लिए समान रूप से सुनाई पड़ने वाली, शांति-रस से परिपूर्ण तथा उपमा रहित ऐसी अनुपम जिनेन्द्र प्रभु की दिव्यध्वनि बड़ी महान होती है।

प्र. 287 जिनेन्द्र प्रभु की दिव्यध्वनि विभिन्न जीवों के लिए विविध भाषा रूप कैसे हो जाती है?

उत्तर जिस तरह, एक प्रकार के जल का प्रवाह वृक्षों के भेद से अनेक रस रूप परिणत हो जाता है, उसी प्रकार यह वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव की दिव्यध्वनि एक रूप होते हुए भी विभिन्न जीव-पात्रों के भेद से विविध भाषा रूपता को प्राप्त हो जाती है।

प्र. 288 जिनेन्द्र प्रभु की ओंकार रूप दिव्यध्वनि में द्वादशांग श्रुत रूप होने की शक्ति किस तरह निहित होती है?

उत्तर जिनेन्द्र प्रभु की ओंकार बीजाक्षर रूप दिव्य ध्वनि (वाणी); अनन्त अर्थ है गर्भ में जिसके; ऐसे बीज पदों से निर्मित शरीरवाली होती है। जैसे-हल के द्वारा सम्यक् प्रकार से तैयार की गई उपजाऊ भूमि में योग्य काल में बोया गया एक भी बीज बहुत बीजों को उत्पन्न करता है, उसी तरह बीज पद- युक्त वाणी को गणधर देव बीज बुद्धि रूप ऋद्धि से अवधारण करके द्वादशांग श्रुत की रचना करते हैं।

प्र. 289 जिनेन्द्र प्रभु की वाणी अनक्षरात्मक और अक्षरात्मक किस तरह कही गयी है?

उत्तर जिनेन्द्र प्रभु की दिव्य ध्वनि रूप वाणी श्रोताओं के समीप पहुँचने तक अनक्षरात्मक रहती है, पश्चात् भिन्न-भिन्न श्रोताओं का आश्रय पाकर वह जिनवाणी अक्षर रूपता को धारण कर लेती है।

प्र. 290 जिनेन्द्र प्रभु की वाणी में सत्य और अनुभय वचन किस तरह सिद्ध होता है?

उत्तर जिनेन्द्र प्रभु-केवलज्ञानी की दिव्यध्वनि रूप वाणी उत्पन्न होते ही अनक्षरात्मक रहती है, इसलिए श्रोताओं के कर्णप्रदेश से सम्बन्ध होने के समय तक अनुभय वचन योग सिद्ध होता है। इसके पश्चात् वाणी अक्षरात्मक रूप होते हुए श्रोताओं के इष्ट अर्थों के विषय में संशय आदि का निराकरण करने से तथा सम्यग्ज्ञान को उत्पन्न करने से उसी वाणी में सत्य वचन योग का भी सद्भाव स्वतः सिद्ध हो जाता है।

प्र. 291 जिनेन्द्र प्रभु की दिव्यध्वनि कौन-कौन से काल में कितने समय तक खिरती है?

उत्तर जिनेन्द्र प्रभु की दिव्य ध्वनि प्रभात, मध्याह्न, सायंकाल तथा मध्यरात्रि के काल में छह-छह घटिका पर्यन्त अर्थात् दो घण्टा चौबीस मिनिट तक प्रतिदिन नियम पूर्वक खिरती है।

प्र. 292 किन्हीं विशिष्ट पुण्यशाली आत्माओं के लिए असमय में भी क्या दिव्यध्वनि खिरती है?

उत्तर भव्यात्माओं के लिए उनके आगमन पर या इनके द्वारा प्रश्न किये जाने पर जिनेन्द्र प्रभु की वाणी असमय में भी खिर जाया करती है। इसका कारण यह है उन विशिष्ट आत्माओं के संदेह दूर होने पर धर्मप्रभावना बढ़ेगी और उससे मोक्ष-मार्ग की देशना का प्रचार होगा जिससे तीर्थंकर का धर्म समुन्नत होगा।

प्र. 293 बारह सभाओं में बैठकर भव्य-प्राणी जिनेन्द्र प्रभु की वाणी किस तरह विनय पूर्वक श्रवण किया करते हैं?

उत्तर समवसरण या गंधकुटी (सामान्य अरिहंतों की सभा) सम्बन्धी बारह सभाओं में भव्य प्राणी जिनेन्द्र प्रभु की ओर मुखकर एवं हाथ जोड़कर विनीत होकर प्रभु की वाणी का श्रवण किया करते हैं न कि प्रभु की ओर पीठ कर बैठते हैं और ना ही देवी, देवतादिक आशीर्वाद की ही मुद्रा धारण करते हैं।

प्र. 294 तीर्थंकर जिनेन्द्र प्रभु के समवसरण से विहार के समय उनके चलते हुए चरणों के नीचे देवों द्वारा कितने स्वर्णिम कमलों की रचना की जाती है?

उत्तर तीर्थंकर जिनेन्द्र प्रभु के समवसरण-विहार के समय उनके पुण्य चरणों के नीचे देवों द्वारा आठ दिशाओं में तथा उनके अष्ट अन्तरालों में सात-सात कमल ऐसे एक सौ बारह कमल, उन सोलह स्थानों के भी सोलह अंतरालों में पूर्ववत् सात-सात कमल इस तरह एक सौ बारह कमल, इनको जोड़ने पर दो सौ चौबीस कमल हुए और प्रभु-चरणों के रखने के स्थान के नीचे एक कमल इस तरह दो सौ पच्चीस स्वर्णिम कमलों की रचना की जाती है।

प्र. 295 तीर्थंकर ऋषभ देव से भव्यों के लिए कितने वर्षों तक समवसरण के माध्यम से दिव्यध्वनि द्वारा साक्षात् कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता रहा?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव से भव्यात्माओं के लिए समवसरण में दिव्यध्वनि के माध्यम से एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्ष तक साक्षात् कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता रहा।

प्र. 296 तीर्थंकर ऋषभदेव का समवसरण छोड़ने के उपरान्त मोक्ष प्राप्ति के मध्य कितना काल कैलाश पर्वत पर उत्कृष्ट ध्यान मुद्रा में व्यतीत हुआ?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव का समवसरण छोड़ने के उपरान्त मोक्ष-प्राप्ति के मध्य चौदह दिवस पर्यंत का काल कैलाश (अष्टापद) पर्वत पर उत्कृष्ट ध्यान (योग) मुद्रा में व्यतीत हुआ।

प्र. 297 तीर्थंकर ऋषभदेव मोक्ष जाने के दो दिन पूर्व जब पद्मासन में योग निरोध करने हेतु अष्टापद पर्वत पर विराजित हुए तब प्रभु के मोक्ष जाने के संकेत स्वरूप भरत चक्रवर्ती ने कौन-सा स्वप्न देखा?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्ष जाने के पूर्व भरत चक्रवर्ती ने शुभ और मंगल स्वरूप स्वप्न देखा कि- महा मंदराचल (सुमेरु पर्वत) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ प्राग्भार पृथ्वी (सिद्धशिला) तक पहुँच गया है।

प्र. 298 तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्षोपरांत चतुर्णिकाय के देवों ने प्रभु का निर्वाण कल्याणक किस तरह मनाया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्षोपरांत बड़ी भक्ति को धारण करने वाले आलस्य विरहित इन्द्रों सह चतुर्णिकाय के देव आये और प्रभु की अत्येष्टि अर्थात् अन्तिम पूजा कर उनके पवित्र, उत्कृष्ट, मोक्ष के साधन स्वरूप स्वच्छ तथा निर्मल शरीर को उत्कृष्ट मूल्यवान पालकी (आसन) में विराजमान कर अग्निकुमार नामक भवनवासी देवों के इन्द्र के रत्नों की कान्ति से दैदीप्यमान अत्यन्त उन्नत

मुकुटानल, और चन्दन, अगर, कपूर केशरादि सुगन्धित पदार्थों से तथा घृतादि के द्वारा वृद्धि को प्राप्त अग्नि से लोक में अनुपम सुगन्धि को व्याप्त करते हुए शुद्धाग्नि संस्कार द्वारा भस्मरूप पर्यायान्तर को प्राप्त करा दिया था। तदनन्तर देवों और देवेन्द्रों ने भक्ति पूर्वक पञ्चकल्याणक प्राप्त तीर्थंकर जिनेन्द्र की देह-भस्म को लेकर 'हम भी ऐसे हों' यही विचार करते हुए उस भस्म को अपने मस्तक, भुजायुगल, कण्ठ तथा छाती में लगाकर अत्यन्त पवित्रता का अनुभव करते हुए धर्मरस में डूबकर निर्वाण कल्याणक को सानंद मनाया था।

प्र. 299 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के साथ कितने महामुनियों ने निर्वाण (मोक्ष)-पद को प्राप्त कर सिद्धालय की ओर गमन किया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के साथ एक हजार महामुनियों ने निर्वाण-पद को प्राप्त कर सिद्धालय (लोकशिखर) की ओर गमन किया था।

प्र. 300 तीर्थंकरों की अनुपम सामर्थ्य या अतुल बल का स्थूल दृष्टान्त दीजिये?

उत्तर अनन्त बल युक्त तीर्थंकरों की अनुपम सामर्थ्य की कल्पना करना अल्पज्ञों को शक्य नहीं, फिर भी स्थूल दृष्टान्त द्वारा विचार करते हैं कि- हजारों हाथियों का बल एक सिंह में होता है और हजारों सिंहों का बल एक शरभ (शार्दूल) में होता है। हजारों शरभों का बल एक बलदेव में होता है। दो बलदेवों की शक्ति एक अर्धचक्री (नारायण) में रहती है। दो अर्धचक्रवर्तियों का बल एक नरेन्द्र-चक्रवर्ती में होता है। एक हजार चक्रवर्तियों का बल एक इन्द्र में होता है और असंख्य इन्द्रों के बल से भी अधिक शक्ति एक तीर्थंकर में होती है। वास्तव में तीर्थंकरों के जन्म से ही अतुल बल या अप्रतिम वीर्यता नामक एक अतिशय-गुण होता है इतदर्थ उनके बल की तुलना विश्व की किसी शक्ति से नहीं की जा सकती है।



मन को चंचल नहीं अविचल बनाओ।

Do not allow the mind to remain restless; instead, make it unwavering, steady, and focused.

•••

रत्नत्रय की प्राप्ति भव्य को होती है; अभव्य को नहीं।

The attainment of the Three Jewels is possible for the worthy soul, but it is not possible for the unworthy soul.

अध्याय - 4.
चक्रवर्ती का वैभवादि

प्र. 301 तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्ष प्राप्ति के पूर्व शारीरिक अवगाहना एवं मोक्ष प्राप्ति के उपरान्त आत्म प्रदेशों की अवगाहना (ऊँचाई) कितनी थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्ष प्राप्ति के पूर्व शारीरिक अवगाहना पाँच सौ धनुष (चार हाथ का एक धनुष) एवं मोक्ष प्राप्ति के उपरान्त आत्म-प्रदेशों की अवगाहना अन्तिम शरीर से किञ्चित् न्यून थी।

प्र. 302 मोक्ष प्राप्ति के उपरान्त सिद्ध भगवान् के आत्म प्रदेशों की अवगाहना अन्तिम शरीर से किञ्चित् न्यून होने में क्या विशेषता है?

उत्तर मोक्ष प्राप्ति के उपरान्त अन्तिम शरीर से सिद्धों के आत्मप्रदेशों की अवगाहना किञ्चित् न्यून होना यह सर्वत्र आगम प्रमाणिक माना गया है, क्योंकि शरीर की अवगाहना को हीनाधिक करने वाले उस आयु कर्म का क्षय हो चुका है। परन्तु किञ्चित् न्यून का प्रमाण कितना होगा यह विचार करने योग्य है।

प्र. 303 मनुष्य के अन्तिम शरीर से मुक्त होने के उपरान्त उस अन्तिम शरीर से सिद्ध परमेष्ठी के आत्म-प्रदेशों की अवगाहना किञ्चित् न्यून जो सर्वत्र आगम में वर्णित की गई है उस किञ्चित न्यून का सही कारण व प्रमाण क्या है?

उत्तर सम्पूर्ण दृश्यमान मनुष्य के शरीर की अवगाहना को लक्ष्य में रखकर किञ्चित् ऊन चरम शरीर प्रमाण सिद्धों के आत्म प्रदेशों की अवगाहना का जो कथन किया गया है उसके प्रसंग पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि शरीर के भीतर मुख, उदर आदि में आत्म प्रदेशों से शून्य भाग भी है, उसको घटाने पर शरीर का घनफल एक तृतीय (1/3) भाग शून्य होगा अतः तिलोय पण्णत्ति ग्रन्थ के अनुसार यह सैद्धान्तिक कथन है कि अंतिम शरीर से एक तृतीयांश (1/3) भाग प्रमाण हीन सिद्धों की अवगाहना जानना चाहिए। (ति.प.)

प्र. 304 चक्रवर्ती महापुरुष किसे कहते हैं?

उत्तर पूर्व जन्म की तपस्या के पुण्य से स्वर्गिक सुखों का भोगकर मनुष्य लोक की कर्मभूमि में जन्म लेकर षट्खण्ड पृथ्वी के अधिपति रूप पुण्य पुरुष कहलाने वाले चक्ररत्न आदि चौदह रत्नों और कालनिधि आदि नव निधियों के जो स्वामी होते हैं उन्हें चक्रवर्ती कहते हैं।

प्र. 305 जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान अवसर्पिणी के दुषमासुषमा काल में उत्पन्न हुये बारह चक्रवर्तियों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर बारह चक्रवर्तियों के नाम क्रमशः 1. भरत, 2. सगर, 3. मघव, 4. सनत्कुमार, 5. शान्तिनाथ, 6. कुन्थुनाथ, 7. अरहनाथ, 8. सुभौम, 9 पद्मनाथ (महापद्म), 10. हरिषेण, 11. जयसेन, और 12. ब्रह्मदत्त इस प्रकार हैं।

प्र. 306 ऊपर वर्णित भरत आदिक बारह चक्रवर्तियों की जन्मभूमि कौन-सी थीं?

उत्तर भरत, सगर आदिक बारह चक्रवर्तियों की जन्मभूमियाँ क्रमशः- 1. अयोध्या, 2.अयोध्या, 3. श्रावस्ती (कौशलपुर), 4. हस्तिनागपुर, 5. हस्तिनागपुर, 6. हस्तिनागपुर, 7. हस्तिनागपुर, 8 अयोध्या, 9. हस्तिनागपुर, 10. कपिलनगर (भोगपुर), 11. कौशाम्बी और 12. कंपिलनगर इसप्रकार थीं।

प्र. 307 भरत, सगर आदिक बारह चक्रवर्तियों के जनक और जननी के शुभ नाम क्या थे?

उत्तर भरत, सगर आदिक बारह चक्रवर्तियों के जनक (पिता), जननी (माता) के क्रमशः शुभ नाम-1. ऋषभदेव-यशस्वति, 2. विजय-सुमंगला, 3. सुमित्र-भद्रवति, 4. विजय-सहदेवी, 5. विश्वसेन-ऐरादेवी, 6. सुरसेन-श्रीकान्ता, 7.सुदर्शन-मित्रसेना, 8. कीर्तिवीर्य-तारादेवी, 9.पद्मरथ-मयूरीप्रिया, 10. हरिकेतु-विप्रादेवी, 11.श्रीविजय-यशोवती और 12. ब्रह्मरथ-चूलादेवी जानना चाहिए।

प्र. 308 भरत, सगर आदिक बारह चक्रवर्तियों की उत्पत्ति के समय कौन-से तीर्थंकर का तीर्थकाल प्रवर्तमान था?

उत्तर भरत चक्रवर्ती प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (वृषभनाथ) के तीर्थकाल में उन तीर्थंकर के ही समय उत्पन्न हुए थे। सगर चक्रवर्ती तीर्थंकर अजितनाथ के ही तीर्थकाल के समय उत्पन्न हुए थे। मघव चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर धर्मनाथ का तीर्थकाल प्रवर्तन था। सनत्कुमार चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय भी धर्मनाथ तीर्थंकर का तीर्थकाल प्रवर्तमान था। तीर्थंकर शांतिनाथ, तीर्थंकर कुन्थुनाथ और तीर्थंकर अरहनाथ स्वयमेव चक्रवर्ती थे। सुभौम चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर अरहनाथ के मोक्षोपरान्त उनका ही तीर्थकाल प्रवर्तमान था। पद्मनाथ (महापद्म) चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर मल्लिनाथ का तीर्थकाल प्रवर्तमान था। हरिषेण चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर मुनिसुव्रत का तीर्थकाल प्रवर्तमान था। जयसेन चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर नमिनाथ का तीर्थकाल प्रवर्तमान था और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर नेमिनाथ का तीर्थकाल प्रवर्तमान था।

प्र. 309 चक्रवर्तियों के शरीर में पांचों इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य विषय सम्बन्धी बल कितना होता है?

उत्तर चक्रवर्ती अपनी स्पर्शनेन्द्रिय से 9 योजन तक का विषय, रसनेन्द्रिय से 9 योजन तक का विषय और घ्राणेन्द्रिय से भी 9 योजनों तक का विषय जान लेते हैं, चक्षुरिन्द्रिय से $47263\frac{7}{2}$ योजन तक देख सकते हैं और श्रोत्रेन्द्रिय से 12 योजन तक का शब्द सुन लेते हैं।

प्र. 310 चक्रवर्तियों के सप्तांग बल कौन-से होते हैं?

उत्तर चक्रवर्तियों के 1. स्वामी, 2 अमात्य, 3 देश, 4. दुर्ग, 5. खजाना, 6. षडंगबल और 7. मित्र इस तरह सात अंगबल होते हैं।

प्र. 311 चक्रवर्तियों का षडंगबल किस तरह का होता है?

उत्तर 1.चक्रबल, 2. चौरासी लाख भद्र हस्थी (गज), 3. चौरासी लाख रथ, 4. अठारह करोड़ जातिवंत (सुलक्षणयुत) घोड़े, 5. चौरासी करोड़ वीरभट (पैदल सैनिक-योद्धा), 6. असंख्यात विद्याधर सैन्य

रूप चक्रवर्तियों का षडंगबल होता है।

प्र. 312 चक्रवर्तियों के दशांग भोग कौन-से होते हैं?

उत्तर चक्रवर्तियों के 1. दिव्यपुर (पट्टण), 2. दिव्य भाजन, 3. दिव्य-भोजन, 4. दिव्य शय्या, 5. दिव्य आसन, 6. दिव्य नाटक, 7. दिव्य रत्न, 8. दिव्य निधियाँ, 9. दिव्य सैन्य और 10. दिव्य वाहन इस तरह दशांग भोग होते हैं।

प्र. 313 चक्रवर्ती के भोग रूप दिव्य-रत्न कौन-से होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के दिव्य-रत्न चौदह होते हैं। जिनके नाम हैं- 1. सेनापतिरत्न, 2. गृहपतिरत्न(भद्रमुख-हर्म्यपति), 3. पुरोहित रत्न (बुद्धिसमुद्र), 4. तक्षरत्न (कामवृष्टि-स्थपति), 5. स्त्रीरत्न, 6. गजपतिरत्न (विजयगिरि), 7. अश्वरत्न (पवनंजय), 8. चक्ररत्न (सुदर्शनचक्र), 9. छत्ररत्न (सूर्यप्रभ), 10. खड्गरत्न (भद्र-मुख असि), 11. दण्डरत्न (प्रवृद्धवंग), 12. काकिणी रत्न, 13. चूड़ामणि रत्न (चिंतामणि), 14. धर्मरत्न (चर्मरत्न)।

प्र. 314 चक्रवर्ती के सेनापतिरत्न का क्या महत्व है?

उत्तर एक आर्यखण्ड और पाँच म्लेच्छखण्डों रूप षट्खण्डों तथा अन्य दिग्विष्टरों की विजय प्राप्ति में सहायक सेना नायक रूप सेनापतिरत्न है।

प्र. 315 चक्रवर्ती के गृहपतिरत्न का क्या महत्त्व है?

उत्तर राजमहल का हिसाब-किताब (लेखा-जोखा) आदि रूप व्यवहार चलाने वाला भण्डारी गृहपतिरत्न होता है।

प्र. 316 चक्रवर्ती के पुरोहितरत्न का क्या महत्त्व है?

उत्तर धर्मप्रेरक बुद्धि द्वारा सर्वजनों को धर्म, कर्मानुष्ठान पूर्वक सलाह व प्रेरणा रूप बुद्धि का समुद्र पुरोहितरत्न होता है।

प्र. 317 चक्रवर्ती के तक्षरत्न से क्या प्रयोजन है?

उत्तर राजमहल, मंदिर, प्रासाद, पुल और तम्बू आदिक को उत्तम रीति से तैयार करने-करवाने वाला उत्तम कारीगर रूप तक्षरत्न है।

प्र. 318 चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न का क्या महत्त्व है?

उत्तर चक्रवर्ती की छ्यानवे हजार युवती-बल्लभाओं में जो अत्यन्त प्रिय प्रमुख बल्लभा होती वह पट्टरानी रूप स्त्रीरत्न है।

प्र. 319 चक्रवर्ती के गजपतिरत्न से क्या इष्ट सिद्ध होता है?

उत्तर रथ सवारी के प्रयोजन हेतु एवं अरिनृपों के गजघटाओं का विघटन करने वाला गजपति रत्न विजय सिद्धि का कारण है।

प्र. 320 चक्रवर्ती के अश्व रत्न से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है?

उत्तर तिमिश्र गुफा के कपाट- विघटन होते ही बारह योजन के क्षेत्र को एक छलांग में लांघने और दौड़ने की सामर्थ्य रखने वाला अश्वरत्न होता है। जिसके माध्यम से चक्रवर्ती अपनी विशाल सेना को लेकर विजयार्ध पर्वत के आगे जाकर भी वहाँ पर स्थित म्लेच्छ खण्डों पर विजय प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करता है।

प्र.321 चक्रवर्ती के चक्ररत्न का क्या सदुपयोग होता है?

उत्तर अन्याय व अनीति-कारक जनों का संहारक चक्ररत्न आयुध सेना के अग्रिम गतिमान चहुँओर प्रकाश फैलाने वाला और चक्रवर्ती की छहों खण्डों पर विजय पताका फैलाने वाला प्रमुख चक्र रत्न होता है।

प्र. 322 चक्रवर्ती का छत्ररत्न किस तरह सुशोभित होता है?

उत्तर कटक (सेना)के ऊपर आने वाली वर्षादिक बाधाओं को दूर करने वाला रत्न छत्ररत्न कहलाता है जो सर्व जनानन्दमय सुशोभित होता है।

प्र. 323 चक्रवर्ती का खड्गरत्न क्या प्रयोजन रखने वाला है?

उत्तर चक्रवर्तियों के चित्तोत्सव को करने वाला अन्यायी जनों का संहारक खड्गरत्न होता है।

प्र. 324 चक्रवर्ती का दण्डरत्न का क्या विशिष्ट कार्य होता है?

उत्तर चक्रवर्ती का दण्डरत्न मार्ग को स्वच्छ व निरापद करने वाला, गुफाओं के कपाट खोलने वाला, वृषभांचल पर्वत पर प्रशस्ति लिखने के काम आने वाला, शत्रुओं को दण्डित करने वाला तथा एक हजार योजन प्रमाण तक की भूमि को चीर देने में समर्थ ऐसे विशिष्ट कार्य का संपादक दण्डरत्न होता है।

प्र. 325 चक्रवर्ती के काकिणीरत्न की क्या महिमा है?

उत्तर काकिणी अस्त्र गुफाओं के घोर अंधकार में प्रकाश फैलाने वाला गुफाओं या अंधकार मय प्रदेशों की दीवार पर जिस रत्न से सूर्य-चन्द्र मण्डल का आकार लिखते ही अतिशयवान प्रकाश हो जावे ऐसा रत्न व प्रशस्ति लिखने का भी कार्य करने वाला रत्न काकिणीरत्न विशिष्ट महिमा कारक होता है।

प्र. 326 चक्रवर्ती के चूड़ामणि रत्न की क्या विशेषता है?

उत्तर इच्छित पदार्थों को देने में समर्थ तथा बाह्य वस्तुओं को प्रकाशित करने वाला रत्न विशेष चूड़ामणि रत्न कहलाता है।

प्र. 327 चक्रवर्ती का धर्मरत्न या चर्मरत्न किसे कहा जाता है?

उत्तर समुद्र में या भूमि जल मग्न हो जाने पर नीचे भूमि-सम सहारा बन छत्ररत्न से मिलकर अण्डाकार बनकर सम्पूर्ण कटक (सेना) की रक्षा करने वाला, संसार समुद्र से पार लगाने वाले धर्मसम बड़े-बड़े नद व नदियों तथा समुद्र से पार लगाने वाला धर्म या चर्मरत्न कहलाता है।

प्र. 328 चक्रवर्ती के इन चौदह रत्नों में से किन्हीं रत्नों में अन्य विशेष कार्य व प्रमाणादि सम्बंधी क्या विशेषता है?

उत्तर
- चक्रवर्ती के सेनापति आदिक सात रत्न चेतन (सजीव) तथा चक्ररत्न आदिक सात रत्न अजीव होते हैं।
- पुरोहित रत्न धर्म-कर्म रूप अनुष्ठानों के साथ-साथ रण संग्राम में सैनिकों के रोग व घाव-व्रणादिक के सुयोग्य उपचार का कार्य भी किया करता है।
- पट्टरानी रूपी स्त्रीरत्न के साथ क्रीड़ा के समय चक्रवर्ती स्वाश्रित अन्य रानियों के साथ भी क्रीड़ा करने के काल में अधिकाधिक छ्यानवे हजार भी रूप धारण कर लेता है जिसे अवलोकन कर पट्ट (मुख्य) रानी रूपी स्त्रीरत्न को अत्यन्त सन्तुष्टि का अनुभव होता है।
- छत्र रत्न का प्रमाण एक धनुष प्रमाण होते हुए भी चक्रवर्ती के स्पर्श किये जाने पर वह छत्ररत्न आवश्यकतानुसार बारह योजन तक विस्तृत हो जाया करता है।
- काकिणी रत्न का प्रमाण चार अंगुल प्रमाण वाला होता है तथा इस रत्न के माध्यम से गुहादिक अंधकार वाले स्थलों पर एक-एक योजन के अन्तराल से सूर्य-चन्द्र-सम प्रकाश की उपलब्धि सहज होती है।
- चूड़ामणि रत्न चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा प्रमाण वाला होते हुए रोग-शोक नाशक तथा बारह योजन तक प्रकाश को विस्तृत करने वाला भी वर्णित किया गया है।
- धर्मरत्न (चर्मरत्न) दो हाथ प्रमाण होता है परन्तु प्रसंगवश चक्रवर्ती का हाथ लगते ही उसका विस्तार बारह योजन-प्रमाण हो जाता है, और विशेष इतना ही नहीं बल्कि आवश्यकतानुसार विस्तृत किये गये धर्मरत्न पर प्रातः बोया हुये धान्य, अनाज व फलादि सायंकाल तक सपक्व हो भोज्य योग्य हो जाया करते हैं।

प्र. 329 चक्रवर्ती के इन चौदह रत्नों की रक्षा-सुरक्षा करने हेतु कोई देवादिक सुनिश्चित होते हैं क्या?

उत्तर हाँ; चक्रवर्ती के सेनापति आदिक चौदह रत्नों में से प्रत्येक रत्न की रक्षा-सुरक्षा एक-एक हजार यक्ष देव किया करते हैं जिनकी नियोगनी यक्षणियाँ भी इस कार्य में सहयोगी होती हैं।

प्र. 330 हजारों यक्ष देव देवियों से सुरक्षित सुभौम और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सप्तम पृथ्वी के सबसे घोर नरक में जाकर घोर दुःखों का फल भोगने लगे उन्हें नरक में जाने से वे यक्ष देव-देवी क्यों नहीं बचा सके?

उत्तर संसारी जीवों के पुण्य और पाप के फल को बदलने या टालने में कोई भी सरागी देवी-देवता समर्थ नहीं होते हैं। स्वयंकृत कर्म का फल संसारियों को भोगना ही पड़ता है। वीतरागी पञ्चपरमेष्ठी की भक्ति से अर्जित पुण्य; पाप को भी टालने या बदलने में कारण बन सकता है बस इतना ही कहना शेष होगा कि सामने वाला भव्य वीतराग का भक्त सम्यग्दृष्टि और तीव्र धर्म पुरुषार्थी होना चाहिए। न कि किसी यक्ष देव-देवी के भरोसे रहना चाहिए।

प्र. 331 चक्रवर्ती के चौदह रत्न कहाँ- किस जगह उत्पन्न होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में से सेनापति, गृहपति, पुरोहित और स्त्रीरत्न स्व-स्व नगरों में उत्पन्न होते हैं। गजपति और अश्व रत्न विजयार्ध पर्वत पर उत्पन्न होते हैं। चक्र, छत्र, खड्ग और दण्ड रत्न आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं तथा काकिणी, चूड़ामणि और धर्म (चर्म) रत्न श्रीगृह में उत्पन्न होते हैं।

प्र. 332 चक्रवर्ती के दशांग भोगों के अन्तर्गत नव निधियाँ कौन-सी होती हैं?

उत्तर चक्रवर्ती की दिव्य नव-निधियाँ- 1. कालनिधि, 2. महा कालनिधि, 3. माणक निधि, 4. पिंगल निधि, 5. नैसर्पनिधि, 6. पद्मनिधि, 7. पाण्डुक निधि, 8.शंखनिधि और 9. सर्वरत्ननिधि।

प्र. 333 चक्रवर्ती की काल नामक निधि कौन-कौन-से पदार्थों को देने वाली सर्वोत्तम निधि कहलाती है?

उत्तर सर्वप्रथम यह कालनिधि सर्वऋतुओं के अनुरूप द्रव्य फल-फूलादिक फलती है तथा इस निधि के माध्यम से ज्योतिषशास्त्र, निमित्तशास्त्र, न्यायशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, छंदालंकार-शास्त्र, लोक-व्यवहार शास्त्र और पुराण आदिक का सद्भाव अर्थात् प्राप्ति होती है।

प्र. 334 चक्रवर्ती की महाकाल नामक निधि में किन-किन वस्तुओं का सद्भाव पाया जाता है?

उत्तर चक्रवर्ती की महाकाल निधि से षट्कर्मों के योग्य साधन तथा भोजन और भाजन (बर्तन) एवं अनेक धातुएँ प्राप्त होती हैं।

प्र. 335 चक्रवर्ती की माणक नामक निधि राज्य में कौन-सी वस्तुएँ उपलब्ध कराती है?

उत्तर चक्रवर्ती की माणक निधि कवच, ढाल, तलवार, बाण, शक्ति, धनुष तथा चक्र आदिक नाना प्रकार के दिव्य शस्त्रों व आयुधों के साथ नीति शास्त्रों को भी प्रदान कराती है।

प्र. 336 चक्रवर्ती की पिंगल नामक निधि कौन-सी वस्तुओं से परिपूर्ण करती है?

उत्तर चक्रवर्ती की पिंगल निधि कटक, कटिसूत्र, कुण्डल और केयूर इत्यादिक अनेक दिव्य आभूषणों से पुण्यवानों को परिपूर्ण करती है।

प्र. 337 चक्रवर्ती की नैसर्प-निधि से क्या-क्या सुख रूप साधन उपलब्ध होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती की नैसर्प नामक निधि से आसन, शय्या, प्रासाद (गृह) व मंदिरों की सहज रूप से उपलब्धि हो जाया करती है।

प्र. 338 चक्रवर्ती की पद्मनामक निधि कौन-से वस्त्र प्रदान करती है?

उत्तर चक्रवर्ती की पद्मनिधि पादाम्बर, चीन, महानेत्र, दुकूल, उत्तम कम्बल तथा नाना प्रकार के वर्णादिक से परिपूर्ण वस्त्रों को प्रदान करती है।

प्र. 339 चक्रवर्ती की पाण्डुक नामक निधि कौन-से पदार्थों को फलती है?

उत्तर चक्रवर्ती की पाण्डुक-निधि शालि, ब्रीहि, जौ आदिक समस्त धान्य तथा मनोहर षट् रसादिक से परिपूर्ण करती है।

प्र. 340 चक्रवर्ती की शंख नामक निधि कौन-सी वस्तुएँ अर्पित कर भव्यों की श्रवणेन्द्रिय के लिए संतृप्त करती है?

उत्तर चक्रवर्ती की शंख नामक निधि भेरी, शंख, नगाड़े, वीणा, झल्लरी, मृदंग तथा और भी नाना तरह के वाद्यों को अर्पित कर भव्यजनों की श्रवणेन्द्रिय को प्रफुल्लित करने वाली होती है।

प्र. 341 चक्रवर्ती की सर्वरत्न नामक निधि पुण्यवानों के लिए कौन-कौन-से उत्तमोत्तम रत्नों को फलती है?

उत्तर चक्रवर्ती के सर्व रत्न निधि इन्द्रनीलमणि, महानीलमणि, वज्रमणि (सूर्यकान्तमणि और चंद्रकान्त मणि) आदिक बड़ी-बड़ी ज्योति शिखा के धारक उत्तमोत्तम रत्नों को कल्पतरु-सम फलती है।

प्र. 342 चक्रवर्ती की नवनिधियाँ कहाँ उत्पन्न (प्राप्त) होती हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के महापुण्य-प्रभाव से भोगोपभोग को देने वाली ये अक्षय नवनिधियाँ श्रीपुर में उत्पन्न (प्रकट) होती हैं, और दूसरे मत से ये नवनिधियाँ नदीमुख से उत्पन्न होती हैं।

प्र. 343 चक्रवर्ती की नवनिधियों की रक्षा कौन करते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती की नवनिधियों की रक्षा हमेशा निधिपालक नामक देव किया करते हैं और दूसरे मत से प्रत्येक निधि की रक्षा में एक-एक हजार यक्ष नियुक्त होते हैं।

प्र. 344 चक्रवर्ती की नवनिधियाँ किस रत्न के आधीन रहती हैं?

उत्तर सर्व मनोरथों को पूर्ण करने वाली ये नवनिधियाँ गृहपति रत्न के आधीन होती हैं।

प्र. 345 चक्रवर्ती की नवनिधियों का आकार व प्रमाणादिक किस तरह का होता है?

उत्तर चक्रवर्ती की नव निधियाँ गाड़ी के सदृश आकार वाली चार-चार भौरों (चक्रों), आठ-आठ पट्टियों से सहित नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी, आठ योजन गहरी और वक्षार गिरि के समान विशाल कुक्षी से सहित होती हैं।

प्र.346 चक्रवर्ती व राजाओं के चार कर्त्तव्य कौन-से होते हैं?

उत्तर चक्रवर्तियों के चार कर्त्तव्य इस तरह होते हैं-

1. **आत्मपालन**- निजात्म रक्षा की व्यवस्था करना।
2. **मतिपालन**- अपनी बुद्धि व विवेक को जाग्रत रखना।
3. **कुलपालन**- राजकुलाचार पर ध्यान रखना। और
4. **प्रजापालन**- पुत्रवत् प्रजा का पालन करना।

प्र.347 चक्रवर्तियों की चार तरह की राज विद्याएँ कौन-सी हैं?

उत्तर चक्रवर्तियों की चार तरह की राजविद्याएँ इस तरह होती हैं-

1. **आन्वीक्षिकी**- अपना स्वरूप जानना, निजबल की पहचान करना, हेयोपादेय का ज्ञान होना, सत्यासत्य की समझ होना और रत्न परीक्षक की तरह सूक्ष्म दृष्टि का होना।
2. **त्रयी**- शास्त्रानुसार धर्म-अधर्म का मर्म समझकर अधर्म छोड़कर धर्म में प्रवृत्ति करना।
3. **वार्ता**- अर्थ-अनर्थ को समझकर प्रजाजनों का रक्षण करना।

4. दण्डनीति- योग्य दण्ड-विधान द्वारा दुष्ट-जनों को मार्ग पर लाना।

प्र. 348 चक्रवर्ती व राजाओं के छह विशेष गुण कौन-से होते हैं?

उत्तर राजाओं के छह गुण इस तरह होते हैं-

1. संधि- अन्य राजाओं से प्रेम-वात्सल्य व्यवहार बनाकर रखना।

2. निग्रह- अन्याय रोकने के लिए युद्ध करना।

3. यान- विविध प्रकार के वाहनों व साधनों का ज्ञान।

4. आसन- राज्य व्यवस्थानुसार स्थान का अनुभव।

5. संस्थान- वचन का दृढ़ संकल्प।

6. आश्रय- अपने से बलिष्ठ का सहयोग लेना और अपने से कमजोर को सहारा देना।

प्र.349 मुकुटबद्ध राजा कितनी श्रेणियों का स्वामी होता है?

उत्तर मुकुटबद्धराजा अठारह श्रेणियों का स्वामी होता है, जो श्रेणियाँ इस तरह हैं-

1. सेनापति- समस्त सेनाओं का नायक, **2. गणकपति**- ज्योतिषी आदिकों का नायक, **3. वणिक्पति**- व्यापारियों का नायक, **4. मंत्री**- पंचांग, मंत्र-विषय में प्रवीण, **5. दण्डपति**-सेना नायक, **6. महत्तर**- कुलवान अर्थात् कुलविशेष में उच्चता, **7. तलवर**-कोतवाल का स्वामी (नगरकोतवाल) **8. ब्राह्मण**-वर्ण प्रमुख (स्वामी), **9. क्षत्रिय (क्षत्री)**-शरणागतों का रक्षक, **10. वैश्य**- व्यापारी, **11. शूद्र**- सेवा कार्य-कारक, **12. हस्थी**-विजयश्री दाता, **13. अश्व**- सैनिक सवारी, **14. रथ**- आवागमन कारक, **15. पदाति**-चतुरंग सेना-बलस्वामी, **16. पुरोहित**-राज-पण्डित, **17. आमात्य**-देश का अधिकारी और **18. महामात्य**-समस्त राज्यकार्यों का अधिकारी।

प्र.350 मुकुटबद्ध राजाओं में विशिष्ट पदस्थान कौन-से होते हैं?

उत्तर 500 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अधिराजा होता है। 1000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी महाराजा होता है। 2000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अर्धमाण्डलीक होता है। 4000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी माण्डलीक होता है। 8000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी महामाण्डलीक होता है। 16000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अर्धचक्री (त्रिखण्डाधिपति) होता है और 32000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी सकल चक्रवर्ती (षट्खण्डाधिपति) होता है।

प्र.351 चक्रवर्ती का स्त्री परिवार कितना और किस जगह का होता है?

उत्तर चक्रवर्ती की स्त्री परिवार एक पट्टरानी से अतिरिक्त 96 हजार स्त्री रूप होता है। इनमें आर्य खण्ड से 32 हजार राजकन्यायें, विजयार्धश्रेणी से सम्बन्धित 32 हजार विद्याधर राज-कन्यायें और पंचम्लेच्छ खण्डों से 32 हजार राजकन्यायें प्राप्त होती हैं।

प्र.352 चक्रवर्ती की पट्टरानी से वंशोत्पत्ति (संतानोत्पत्ती) क्यों नहीं होती?

उत्तर चक्रवर्ती की पट्टरानी शंखावर्त योनियुत होने के कारण वह गर्भ-धारण की अयोग्य स्थिति में बंध्या ही

रहती है और वंशोत्पत्ति से वंचित रहती है।

प्र.353 चक्रवर्ती की पट्टरानी से अतिरिक्त अन्य रानियों से कितनी संतानें (पुत्र-पुत्रियाँ) उत्पन्न होती हैं?

उत्तर चक्रवर्ती की संख्यात हजार संतानें उत्पन्न होती हैं।

प्र.354 चक्रवर्ती का बन्धुवर्ग कितना विशाल होता है?

उत्तर चक्रवर्ती का बन्धुवर्ग 50 हजार संख्या में बड़ा विशाल होता है।

प्र.355 चक्रवर्ती के सम्पूर्ण वैद्यों की कितनी संख्या में होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के शारीरिक वैद्य 361 एवं इतर वैद्य 361 होते हैं।

प्र.356 चक्रवर्ती के रसोइयों की संख्या कितनी होती है?

उत्तर चक्रवर्ती के रसोइयों की संख्या 360 होती है।

प्र.357 चक्रवर्ती के अंग रक्षकों की संख्या कितनी होती है?

उत्तर चक्रवर्ती के अंगरक्षकों की संख्या 360 होती है।

प्र.358 चक्रवर्ती के परिचारक (सेवक) गणबद्धदेव कितने होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के परिचारक (सेवक) गणबद्धदेव 32 हजार होते हैं।

प्र.359 चक्रवर्ती की नाट्यशालाओं की संख्या कितनी होती है?

उत्तर चक्रवर्ती की नाट्यशालाओं की संख्या 32 हजार होती है।

प्र.360 चक्रवर्ती की संगीत शालाओं की संख्या कितनी होती है?

उत्तर चक्रवर्ती की संगीत शालाओं की संख्या 32 हजार होती है।

प्र.361 चक्रवर्ती के अधीनस्थ कितने देश होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के अधीनस्थ 32 हजार देश होते हैं।

प्र.362 चक्रवर्ती के राज्य में कृषि-उपयोगी कितने हल होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में कृषि उपयोगी एक करोड़ हल होते हैं।

प्र.363 चक्रवर्ती के राज्य में कितने गौ मण्डल (गौ-शालाएँ) होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में तीन करोड़ गौ मण्डल होते हैं।

प्र.364 चक्रवर्ती के गृह (राजभवन) में रसोई-पाक हेतु कितने स्वर्ण के बड़े हण्डे (बर्तन) होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राजगृह में एक करोड़ स्वर्ण के हण्डे होते हैं।

प्र.365 चक्रवर्ती के अधीनस्थ कितने ग्राम होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के अधीनस्थ दीवार से घिरे 96 करोड़ ग्राम होते हैं।

प्र.366 चक्रवर्ती के अधीनस्थ कितने नगर होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के अधीनस्थ परकोटे और चार द्वारों से युक्त 75 हजार नगर होते हैं।

प्र.367 चक्रवर्ती के राज्य में कितने खेट होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में नदी व पर्वतों से वेष्ठित गाँव रूप 76 करोड़ खेट होते हैं।

प्र.368 चक्रवर्ती के राज्य में कितने खर्वट होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में पर्वतों से घिरे हुए गाँव रूप 24 हजार खर्वट होते हैं।

प्र.369 चक्रवर्ती के राज्य में कितने मटम्ब होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में पाँच सौ ग्रामों से संयुक्त रूप चार हजार मटम्ब होते हैं।

प्र.370 चक्रवर्ती के राज्य में कितने पट्टण होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में रत्न उत्पत्ति के स्थान रूप पट्टण 48 हजार होते हैं।

प्र.371 चक्रवर्ती के राज्य में होने वाले संवाहन किसे कहते हैं और वे कितने होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में उपसमुद्र के तट पर रहने वाले गाँवों को संवाहन कहते हैं और वे 74 हजार होते हैं।

प्र.372 चक्रवर्ती के राज्य में होने वाली दुर्गाटवी किसे कहा जाता है और कितनी संख्या में हुआ करती हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में पर्वतों पर रहने वाले व वन से घिरे गावों को दुर्गाटवी कहा जाता है और उनकी संख्या 28 हजार होती हैं।

प्र.373 चक्रवर्ती के राजगृह में शंख, भेरी और पटह कितनी संख्या में होते हैं और उनकी ध्वनि सुनाई देने की दूरी का प्रमाण कितना है?

उत्तर चक्रवर्ती के राजगृह में शंख, भेरी (नगाड़ा) और पटह (वाद्यविशेष) की संख्या 24-24 होती है और इनकी ध्वनि 12 योजन तक सुनाई देती है।

प्र.374 भरत चक्रवर्ती के कौन-से पुत्र ने मिथ्या मान्यता से भव-भव में भ्रमण किया था और पापों का भार हल्का होने पर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर-वर्द्धमान तीर्थंकर बनकर भव-भ्रमण से मुक्ति पायी थी?

उत्तर भरत चक्रवर्ती के पुत्र मारीचि कुमार ने मिथ्या मान्यता (वेश) प्रचलित कर भव-भव में भ्रमण किया था और पापों का भार हल्का होने पर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर वर्द्धमान तीर्थंकर बनकर भव-भ्रमण से मुक्ति पायी थी।

प्र.375 भरत चक्रवर्ती के कौन-से और कितने पुत्र नित्य निगोद से आये थे?

उत्तर भरत चक्रवर्ती के भद्र, विवर्धन आदि शुभ नाम वाले 923 पुत्र नित्य-निगोद से आये थे।

प्र.376 भद्र, विवर्धन आदि 923 पुत्र किस तरह से नित्य-निगोद से निकल कर मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुए?

उत्तर जैसे भाड़ में भूजे जाने वाले कोई-कोई चने भूजे जाते समय उचटकर भाड़ से बाहर निकल जाते हैं वैसे ही अनादि काल से कर्मों के सताये व दुःखों को भोगते हुए, कर्मों का भार हल्का होने से वे भद्र, विवर्धन आदि 923 पुत्र नित्यनिगोद से बाहर आकर मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुए थे।

प्र.377 भद्र, विवर्धन आदि 923 पुत्रों द्वारा अपने माता-पिता आदिक से मौन धारण करने का कारण

क्या था?

उत्तर भद्र, विवर्धन आदि 923 पुत्रों द्वारा अपने माता-पिता आदिक से मौन धारण करने का मुख्य कारण बड़ा ही रहस्यमय था कि वे पुत्र अनादिकाल से नित्य निगोद में एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण से होने वाले भयानक दु:खों को सहते-सहते जातिस्मरण कर संसार से भयभीत होकर जगत् के मोह-जाल से उदासीन हो गये थे और माता-पितादिक से वार्तालाप करने से उन्हें मोह जागृत होगा और हमें संसार के व्यवहार में फँसना पड़ेगा अत: वे मौन-धारण कर धर्म-भावना के चिन्तवन में लीन बने रहते थे।

प्र.378 भरत चक्रवर्ती ने भद्र, विवर्धन आदिक 923 पुत्रों पर किस तरह का संदेह मन में धारण करते हुए तीर्थंकर ऋषभदेव जिनवर के समवसरण में किस-तरह का प्रश्न निवेदित किया था?

उत्तर भरत चक्रवर्ती ने भद्र, विवर्धन आदिक 923 पुत्रों के मौन धारण पर गूँगेपन का संदेह धारणकर समवसरण में यह प्रश्न किया था कि हे प्रभु, प्रथम तीर्थंकर के कुल में उत्पन्न हुए ये पुत्र गूँगे क्यों हैं?

प्र.379 भरत चक्रवर्ती द्वारा पुत्रों के गूँगेपन से सम्बन्धित पूछे जाने पर उसे भगवान् की वाणी द्वारा क्या समीचीन उत्तर प्राप्त हुआ था?

उत्तर भगवान् ने 923 पुत्रों के सम्बन्ध में कहा कि ये पुत्र गूँगे नहीं हैं बल्कि ये असार रूप इस संसार व जगत् से उदासीन हैं और यहाँ अब ये मोक्षमार्ग पाने अवश्य बोलेंगे।

प्र.380 भरत चक्रवर्ती के ऐसे निकट भव्य 923 पुत्रों ने आत्मकल्याण रूप मोक्ष-पुरुषार्थ को किस तरह सफल बनाया था?

उत्तर भरत चक्रवर्ती के निकट भव्य पुत्रों ने आत्म कल्याण रूप मोक्ष-पुरुषार्थ हेतु समवसरण में प्रभु से नम्र निवेदन के साथ मौन खोलते हुए अपनी आंतरिक भावना प्रकट करते हुए कहा कि हे प्रभु! हम अनादि-काल से निगोद के दु:ख सहते-सहते संसार के दु:खों से अत्यन्त भयभीत होकर आपकी शरण में आये हैं, हम आप जैसे अनन्त सुखी होकर संसार से मुक्ति की तीव्र अभिलाषा रखते हैं अत: हमें मोक्षमार्ग से उपकृत कीजिये और जिस साधन से हम सम्पूर्ण दुष्ट कर्मों का क्षय कर मोक्ष-धाम को प्राप्त कर सकें; और उन सभी पुत्रों ने अपने पिता आदिक परिजनों को अचरज में डालते हुए सर्व वस्त्राभूषणों का त्याग कर, केशलोंच कर, निर्ग्रन्थ-मुनि दीक्षा को धारण कर लिया था।

प्र.381 भद्र, विवर्धन आदिक 923 पुत्रों ने निर्ग्रन्थ-मुनि बनकर तपस्या के माध्यम से क्या फल प्राप्त किया था?

उत्तर भद्र, विवर्धन आदिक 923 मुनियों ने अपने उत्कृष्ट वैराग्य, घोर तपस्या व ध्यान के माध्यम से अल्प काल में ही सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा कर मोक्ष प्राप्ति-द्वारा सिद्धालय रूप अष्टम वसुधा में अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुखादिक गुणों के भण्डार रूप आत्मिक वैभव को पाकर अनन्तकाल पर्यन्त के लिए स्थायित्व अवस्था को प्राप्त किया था।

प्र.382 भरत चक्रवर्ती के लिए वैराग्य किस तरह हुआ एवं उनके वैराग्य का कारण क्या था?

उत्तर भरत चक्रवर्ती ने समवसरण में वृषभनाथ भगवान् का यह उपदेश सुना कि ''अरे भव्य जीवो! तुम

विकारी भावों को शीघ्र छोड़ो और हमारे समान अपने जैसे ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति के स्वामी बन स्वात्मा में राज्य करो'' तब भगवान का यह संदेश भरतेश्वर के अत्यन्त विरक्त मन में प्रवेश कर गया और एक दिवस दर्पण में मुख देखते समय भरत चक्रेश्वर की दृष्टि अपने एक श्वेत केश पर पड़ी; उसे देखते ही बस; भरतेश्वर को ऐसा लगा कि मानों मुक्तिपुरी से भगवान् के द्वारा प्रेषित विशिष्ट-संदेश-वाहक दूत ही आ गया हो और वे संसार, शरीर और भोग से निर्विण्ण (वैरागी) हो गये।

प्र.383 भरतेश्वर ने वैरागी बनकर क्या कार्य सम्पन्न किया था?

उत्तर भरतेश्वर का आध्यात्मिक जीवन मोक्ष इच्छुक जनों के लिए चमत्कार का जनक रहा है उन्होंने छह खण्ड प्रमाण पौद्गलिक साम्राज्य का त्याग करके मुनि पद धारण करते समय केशों का लोच किया और तत्काल ही, नग्न दिगम्बर मुद्रा के साथ शुक्ल ध्यान के माध्यम से शत्रुध्वंस कलाँ में पारंगत वे सुयोगी भरत अंतर्मुहूर्त्त में ही मोहासुर का विनाश करके सर्वज्ञता रूप केवलज्ञान साम्राज्य के स्वामी हो गए। ऐसे मंगल क्षण में देवों ने गंधकुटी की रचना कर बत्तीस (व्यन्तर) इन्द्रों ने भगवान भरत की दिव्य पूजा सम्पन्न की।

प्र.384 केवलज्ञानी-सर्वज्ञ श्री भरत भगवान से किस तरह से जन कल्याण सम्पन्न हुआ था।

उत्तर दीक्षा लेते ही अल्पकाल में ही सर्वज्ञता व कैवल्यता प्राप्त कर तीर्थंकर की अपेक्षा अद्भुत् विशेषता प्रदर्शित करने वाले भगवान भरत ने भगवान ऋषभनाथ के समान भरत क्षेत्र की आर्यखण्ड की धरा पर समस्त देशों में विहार कर जीवों के निज-आत्मकल्याण हेतु अपनी दिव्य वाणी के द्वारा उनका आत्मोद्धार किया था।

प्र.385 भगवान् भरत के लिए निर्वाण-मोक्ष की प्राप्ति कहाँ से हुई थी?

उत्तर भगवान् भरत के लिए निर्वाण की प्राप्ति कैलाश पर्वत से हुई थी।

प्र.386 भरत चक्रवर्ती के अलावा अन्य चक्रवर्तियों के लिए कौन-सी गति की प्राप्ति हुई थी?

उत्तर मोक्ष-पद को प्राप्त भरत चक्रवर्ती के अलावा सगर चक्रवर्ती भी मोक्ष-पद को प्राप्त हुए। मघव चक्रवर्ती ने सौधर्म स्वर्ग को पाया, सनत्कुमार चक्रवर्ती ने सानत्कुमार स्वर्ग को ही पाया। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ चक्रवर्ती ने मोक्ष-पद को पाया। सुभौम चक्रवर्ती ने महातमः पृथ्वी को पाया। पद्मनाथ (महापद्म), हरिषेण और जयसेन चक्रवर्ती ने मोक्ष-पद को प्राप्त किया। अंत में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने महातमः पृथ्वी को पाया। इस तरह स्व-स्व कृत कर्मों से चक्रवर्तियों ने भिन्न-भिन्न गति प्राप्त किया था।

प्र.387 नारायण महापुरुष किसे कहते हैं?

उत्तर पूर्व जन्म के विशिष्ट पुण्यार्जन से जो स्वर्ग जाकर पुनः यहाँ कर्म-भूमि के मनुष्य रूप में त्रिखण्ड के अधिपति रूप पुण्य से जन्मधारण करता है उसे नारायण महापुरुष कहते हैं।

प्र.388 नारायण को किन-किन नामों से पुकारते हैं?

उत्तर नारायण को अर्धचक्री, वासुदेव, गोविन्द और हरि आदिक नामों से पुकारते हैं।

प्र.389 नारायण और प्रतिनारायण (प्रतिवासुदेव, प्रतिशत्रु, प्रतिहरि) में क्या विशेषता होती है?

उत्तर चक्र रत्न प्रतिनारायण के यहाँ उत्पन्न होता है लेकिन नारायण से परास्त होने पर चक्ररत्न का स्वामी नारायण हो जाया करता है यही इन दोनों में मुख्य विशेषता है।

प्र.390 जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान अवसर्पिणी के दुषमासुषमा काल में उत्पन्न हुए नौ नारायणों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर नौ नारायणों के नाम क्रमशः- 1. त्रिपिष्ट (त्रिपृष्ट), 2. द्विपिष्ट (द्विपृष्ट), 3. स्वयंभू, 4. पुरुषोत्तम, 5. नरसिंह (पुरुषसिंह), 6. पुंडरीक (पुरुषवर), 7. दत्त (पुरुषदत्त), 8. लक्ष्मण और 9. कृष्ण इस प्रकार हैं।

प्र.391 नौ नारायणों की जन्म भूमियों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर नौ नारायणों की जन्म भूमियाँ क्रमशः 1. पौदनपुर, 2. द्वारकापुर, 3.हस्तिनागपुर, 4. हस्तिनागपुर, 5. चक्रपुर, 6. कुशाग्रपुर, 7. मिथलापुर, 8. अयोध्यापुरी और 9. मथुरानगरी इस तरह बतलाई गई हैं।

प्र.392 त्रिपिष्ट आदिक नौ नारायणों के जनक और जननी के नाम कौन-से थे?

उत्तर त्रिपिष्ट आदिक नौ नारायणों के जनक व जननी के नाम क्रमशः -

1. प्रजापति-मृगावती, 2. ब्रह्मभूत-माधवी, 3. रौद्रनन्द-पृथिवी, 4. सौम-सीता, 5. प्रख्यात-अम्बिका, 6. वरसेन-लक्ष्मी, 7. शिवाकर-केशिनी, 8. दशरथ-सुमित्रा, 9. वसुदेव-देवकी इस तरह नाम थे।

प्र.393 पूर्व कथित नारायणों प्रतिशत्रु-प्रतिनारायणों के नाम क्या थे?

उत्तर नौ प्रतिनारायणों के नाम क्रमशः - 1. अश्वग्रीव, 2. तारक, 3. मेरक, 4. निशुंभ, 5. प्रल्हाद (प्रहरण), 6. मधुकैटभ, 7. बली, 8. रावण और 9. जरासंध इस तरह थे।

प्र.394 नौ प्रतिनारायणों की जन्म-राजधानियों के नाम क्या थे?

उत्तर नौ प्रतिनारायणों की जन्म-राजधानियाँ क्रमशः - 1. अल्कापुर, 2. विजयपुर, 3. नंदनपुर, 4. हरिपुर, 5. सिंहपुर, 6. पृथ्वीपुर, 7. सूर्यपुर, 8. लंका और 9. राजगृही इस प्रकार थे।

प्र.395 सर्व नारायणों और प्रतिनारायणों की भविष्य की गति (अगले भव) का क्या नियम है?

उत्तर सर्व नारायण और प्रति नारायण भोग-रुचि और बहुल-परिग्रह की आशा से मरणकर अधोलोक वासी होते हैं। नौ नारायण और प्रतिनारायण क्रमशः -1. महातम प्रभा पृथ्वी में, 2. तमः प्रभा पृथ्वी में, 3. तमःप्रभा पृथ्वी में, 4. तमः प्रभा पृथ्वी में, 5. तमःप्रभा पृथ्वी में, 6. तमःप्रभापृथ्वी में 7. धूम प्रभा पृथ्वी में, 8. पंकप्रभा पृथ्वी में और 9. बालुका प्रभा पृथ्वी में पहुँचे थे।

प्र.396 प्रत्येक अर्धचक्री के कौन-से आयुध अथवा महा रत्न कौन-से होते हैं?

उत्तर प्रत्येक अर्धचक्री के 1. सुनन्दक नामक खड्ग, 2. पञ्चजन्य नामक शंख, 3. शार्ङ्ग नामक धनुष, 4.

सुदर्शन नामक चक्र, 5. कौस्तुभ नामक मणि, 6. अमोघा नामक शक्ति और 7. कौमुदि नामक गदा इस तरह सप्त रत्न होते हैं।

प्र.397 बलभद्र महापुरुष किन्हें कहते हैं?

उत्तर बलभद्र महापुरुष नारायण के सगे भाई होते हैं ये चार या पाँच रत्नों के स्वामी तथा अपार शक्ति के धारक व वैभवशाली होते हैं।

प्र.398 बलभद्रों को प्राप्त होने वाले चार या पाँच रत्नों अथवा आयुधों के नाम कौन-से थे?

उत्तर 1. रत्नमाला (हार), 2. लांगल (अपराजित नामक हल), 3. मूसल, 4. स्यन्दन (जिसका अर्थ जन दिव्य-गदा या दिव्य रथ भी करते हैं) और 5. शक्ति इस तरह पाँच रत्न तथा अन्य मत से 1. हलायुध, 2. बाण, 3. गदा और 4. भाला ऐसे चार महारत्न होते हैं।

प्र.399 जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान अवसर्पिणी के दुषमासुषमा काल में उत्पन्न हुए नौ बलभद्रों के नाम क्या थे, वे कौन-से तीर्थंकरों के काल में उत्पन्न हुए और उन्होंने आगे कौन-सी गति को प्राप्त किया?

उत्तर नौ बलभद्रों के नाम, तीर्थकाल और आगे प्राप्त हुई उनकी गति क्रम तालिका इस प्रकार है-

क्र.	नाम	तीर्थकाल	निर्वाण व गति-प्राप्ति
1.	विजय	भ.श्रेयांसनाथ के तीर्थ में	निर्वाण (मोक्ष)
2.	अचल	भ. वासुपूज्य के तीर्थ में	निर्वाण
3.	सुधर्म (भद्र)	भ. विमल के तीर्थ में	निर्वाण
4.	सुप्रभ	भ. अनन्तनाथ के तीर्थ में	निर्वाण
5.	सुदर्शन	भ.धर्मनाथ के तीर्थ में	निर्वाण
6.	नन्दीषेण (अरनन्द)	भ. अरहनाथ के बाद	निर्वाण
7.	नन्दीमित्र (नन्दन)	भ. मल्लिनाथ के बाद	निर्वाण
8.	रामचन्द्र (पद्म)	भ. मुनिसुव्रत के बाद	निर्वाण
9.	बलिराम (पद्म)	भ. नेमिनाथ के तीर्थ में	ब्रह्म स्वर्ग

प्र.400 रुद्र नामक पुरुषों के नाम कौन-से हैं और वे किन तीर्थंकरों के तीर्थ काल में उत्पन्न हुए एवं उनका अगला भव कौन-सा हुआ था?

उत्तर

क्र.	नाम	तीर्थकाल	गति गमन
1.	भीमवली	भ. ऋषभनाथ के तीर्थ में	महातम:प्रभा पृथ्वी
2.	जितशत्रु (बलि)	भ. अजितनाथ के तीर्थ में	महातम:प्रभा पृथ्वी
3.	शंभु-रुद्र	भ. पुष्पदन्त के तीर्थ में	तम:प्रभा पृथ्वी
4.	वैश्वानर (विश्वानल)	भ. शीतलनाथ के तीर्थ में	तम:प्रभा पृथ्वी

5.	सुप्रतिष्ठ	भ.श्रेयांसनाथ के तीर्थ में	तमःप्रभा पृथ्वी
6.	अचल	भ. वासुपूज्य के तीर्थ में	तमःप्रभा पृथ्वी
7.	पुंडरीक	भ. विमलनाथ के तीर्थ में	तमःप्रभा पृथ्वी
8.	अजितंधर	भ. अनन्तनाथ के तीर्थ में	धूम प्रभा पृथ्वी
9.	जितनाभि (अजिनाभि)	भ. धर्मनाथ के तीर्थ में	पंक प्रभा पृथ्वी
10.	पीठ	भ. शान्तिनाथ के तीर्थ में	पंक प्रभा पृथ्वी
11.	सात्यकी पुत्र-स्थाणु	भ. महावीर के तीर्थ में	बालुका प्रभा पृथ्वी

प्र.401 कामदेव किन्हें कहते हैं?

उत्तर तीर्थंकरों के काल में अनुपम-अत्यन्त सुन्दर रूप को धारण करने वाले पुण्यशाली, उत्कृष्ट सुख भोक्ता तद्भव मोक्षगामी (जितेन्द्रिय बनकर मोक्ष पद पाने वाले) सत्पुरुष (महापुरुष) कामदेव कहलाते हैं।

प्र.402 जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान अवसर्पिणी के दुषमा-सुषमा काल में उत्पन्न हुए चौबीस कामदेवों के नाम तीर्थकाल और उनके निर्वाण क्षेत्रों को तालिका में दर्शाइये?

उत्तर चौबीस कामदेवों के नाम, तीर्थकाल और निर्वाण क्षेत्र क्रमशः-

क्र.	**नाम**	**तीर्थकाल**	**निर्वाणक्षेत्र**
1.	बाहुबली	ऋषभनाथ	पोदनपुर
2.	प्रजापति	अजितनाथ	पोदनपुर
3.	श्रीधर	संभवनाथ	पोदनपुर
4.	दर्शनभद्र	अभिनन्दनाथ	पोदनपुर
5.	प्रसेनचन्द्र	सुमतिनाथ	पोदनपुर
6.	चन्द्रवर्ण	पद्मप्रभ	पोदनपुर
7.	अग्निमुख (अनलवर्ण)	सुपार्श्वनाथ	पोदनपुर
8.	सनत्कुमार	चन्द्रप्रभ	सिद्धवरकूट
9.	वत्सराज	पुष्पदन्त	सिद्धवरकूट
10.	कनकप्रभ	शीतलनाथ	सिद्धवरकूट
11.	मेघप्रभ	श्रेयांसनाथ	सिद्धवरकूट
12.	शांतिनाथ	शांतिनाथ	सम्मेदशिखर
13.	कुन्थुनाथ	कुंथुनाथ	सम्मेदशिखर
14.	अरहनाथ	अरहनाथ	सम्मेदशिखर
15.	विजयराज	अरहनाथ	सिद्धवरकूट

16.	श्रीचन्द्र	मल्लिनाथ	सिद्धवरकूट
17.	नलराज	मल्लिनाथ	सिद्धवरकूट
18.	हनुमन्त	मुनिसुव्रतनाथ	तुंगीगिरि
19.	बलिराज	नमिनाथ	सिद्धवरकूट
20.	वसुदेव	नेमिनाथ	सिद्धवरकूट
21.	प्रद्युम्नकुमार	नेमिनाथ	ऊर्जयन्तगिरि
22.	नागकुमार	पार्श्वनाथ	कैलासपर्वत
23.	जीवन्धर	महावीर	सिद्धवरकूट
24.	जम्बूस्वामी	महावीर	जम्बूवन

प्र.403 भरत चक्रवर्ती के सत्ता अभिमान को चूर कर त्रययुद्ध में परास्त करने वाले और भ्रात पर चक्र चलाने रूप स्वार्थी संसार से विरक्त हो प्रवज्या (दीक्षा) धारण कर एक वर्ष तक उपवास धारण कर खड्गासन-कायोत्सर्ग में ध्यान कर कैवल्य की उपलब्धि द्वारा गन्धकुटी में विराजित हो जन-जन का क्षेम करने वाले महाबलशाली कामदेव और राजपद से अलंकृत बाहुबली को मोक्ष की प्राप्ति किन तीर्थंकर के पूर्व किन पुण्यात्मा के पश्चात् हुई थी?

उत्तर ऐसे कामदेव बाहुबली को तीर्थंकर ऋषभदेव के पूर्व एवं भरत चक्रवर्ती के छोटे भाई अनन्तवीर्य अपर नाम महासेन के मोक्ष जाने के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति हुई थी।

प्र.404 कामदेव-बाहुबली और अनन्तवीर्य ने सांसारिक वैभव का त्यागकर वैरागी बन मोक्ष-पथ को किस कारण अपनाया था?

उत्तर भरत चक्रवर्ती के द्वारा बाहुबली व अनन्तवीर्य को अपनी दासता स्वीकार करवाने या अपने चरणों में नम्रीभूत करने के हटाग्रह रूप व्यवहार से दु:खी-उदासीन होकर असार रूप संसार को त्यागकर अनन्तवीर्य (महासेन) और कामदेव-बाहुबली ने मोक्ष का पथ अपनाया था।



विशिष्ट पुण्य का अर्जन करना हो तो वीतराग के सेवक बनो।

If you wish to earn and accumulate extraordinary merit, then become a humble servant of the Detached Lord.

करणानुयोग

अध्याय - 5.
जैन गणित-विज्ञान

प्र. 405 करणानुयोग किसे कहते हैं?

उत्तर जिस अनुयोग में लोक अलोक का विभाग, गणित, जगत् का माप, लोक-रचना, जीवों का निवास, आयु, उत्सेधादि, युग-परिवर्तन और प्ररूपणाओं का वर्णन होता है, उसे करणानुयोग कहते हैं।

प्र. 406 लोक और अलोक किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ जीव, पुद्गलादिक द्रव्य पाये (देखे) जाते हैं उसे लोक तथा जिस आकाश में जीवादिक द्रव्य नहीं देखे जाते उसे अलोक कहते हैं।

प्र. 407 गणित में परिकर्माष्टक किन्हें कहते हैं?

उत्तर संकलन, व्यवकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल इन अष्ट प्रकारों को परिकर्माष्टक कहते हैं।

प्र. 408 संकलन क्या कहलाता है?

उत्तर लोक में संख्या को आपस में जोड़ना संकलन कहलाता है। जैसे- दो और दो चार होते हैं।

प्र. 409 व्यवकलन किसे बोलते हैं?

उत्तर लोक में जिसे घटाना या बाकी निकालना बोला जाता है उसे आगम भाषा में व्यवकलन बोलते हैं।

प्र. 410 गुणकार किसे कहते हैं?

उत्तर गुणा करने का नाम गुणकार होता है। जैसे- चार को दो से गुणा करने पर आठ होता है।

प्र. 411 भागहार क्या कहलाता है?

उत्तर भाग देने का नाम भागहार कहलाता है। जैसे- चार में दो का भाग देने से दो लब्ध प्राप्त होता है।

प्र. 412 वर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर समान दो राशियों का परस्पर में गुणा करने का नाम वर्ग है। जैसे- दो को दो से गुणा करने चार होता है। इस तरह दो का वर्ग चार है। वर्ग का एक नाम कृति भी है।

प्र. 413 घन किसे कहते हैं?

उत्तर समान तीन राशियों को परस्पर में गुणा करने का नाम घन है। जैसे- चार को तीन जगह रखकर परस्पर गुणा करने से चौंसठ होता है। तब चार का घन चौंसठ हुआ।

प्र.414 वर्गमूल किसे कहते हैं?

उत्तर जिसका वर्ग करने से जो राशि उत्पन्न होती है उसे उस राशि का वर्गमूल कहा जाता है। जैसे-दो का वर्ग करने से चार राशि उत्पन्न होती है। तब दो यह संख्या चार का वर्गमूल कहलाता है।

प्र. 415 घनमूल किसे कहते हैं?

उत्तर जो राशि जिसका घन करने से उत्पन्न होती है उस राशि का वह घनमूल होता है। जैसे- चार का घन करने से चौसठ राशि उत्पन्न होती है, अतः चौसठ का घनमूल चार होता है।

प्र. 416 क्षेत्रफल किसे कहते हैं?

उत्तर लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई से जहाँ दो की विवक्षा हो, एक की न हो उसे प्रतर क्षेत्र या वर्ग रूप क्षेत्र कहते हैं और लम्बाई को चौड़ाई से गुणा करने पर जो फल आता है उसे क्षेत्रफल कहते हैं। जैसे- चार हाथ लम्बे और पाँच हाथ चौड़े क्षेत्र का क्षेत्रफल बीस हाथ होता है।

प्र. 417 घन क्षेत्रफल किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई तीनों की विवक्षा हो उसे घन क्षेत्र कहते हैं और उसके क्षेत्रफल को घन क्षेत्रफल या खातफल कहते हैं। जैसे- चार हाथ लम्बे, चार हाथ चौड़े और पाँच हाथ ऊँचे क्षेत्र का खात फल $4 \times 4 \times 5 = 80$ हाथ हुआ।

प्र. 418 व्यास या परिधि किसे कहते हैं?

उत्तर गोलाकार क्षेत्र के बीच में जितना विस्तार होता है उसे व्यास कहते हैं और गोलाकार क्षेत्र की गोलाई के प्रमाण को परिधि कहते हैं।

प्र. 419 परिधि और क्षेत्रफल का नियम क्या है?

उत्तर सामान्य रूप से व्यास से तिगुनी परिधि होती है और परिधि को व्यास की चौथाई से गुणा करने पर क्षेत्रफल होता है तथा क्षेत्रफल को ऊँचाई या गहराई से गुणा करने पर खातफल होता है।

प. 420 मान के कितने भेद हैं?

उत्तर मान के दो भेद हैं- लौकिक मान और लोकोत्तर मान।

प्र. 421 लौकिक मान किसे कहते हैं?

उत्तर लोक में प्रचलित मान को लौकिक मान कहा जाता है। उसके छः भेद हैं- मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान। अन्न-धान्य आदिक के माप करने के बरतनों आदिक को मान कहते हैं। तराजू को उन्मान कहते हैं। चुल्लू आदिक को अवमान कहते हैं। जैसे- एक चुल्लू जल इत्यादि। एक आदि को गणिमान कहते हैं। जैसे- एक, दो, तीन। गुंजा आदि को प्रतिमान कहते हैं। जैसे- रत्ती, मासा आदि। घोड़े की लम्बाई आदिक देखकर उसका मूल्य आँकना तत्प्रतिमान कहलाता है।

प्र. 422 लोकोत्तर मान के कितने भेद हैं?

उत्तर लोकोत्तर मान के चार भेद हैं- द्रव्यमान, क्षेत्रमान, कालमान और भावमान।

प्र. 423 द्रव्यमान जघन्य और उत्कृष्ट किस रूप में होता है?

उत्तर एक परमाणु जघन्य द्रव्यमान है और सर्व द्रव्यों का समूह उत्कृष्ट द्रव्यमान है।

प्र. 424 क्षेत्रमान जघन्य और उत्कृष्ट किस रूप में रहता है?

उत्तर एक प्रदेश जघन्य क्षेत्रमान है और समस्त आकाश उत्कृष्ट क्षेत्रमान है।

प्र. 425 कालमान जघन्य और उत्कृष्ट किस रूप में होता है?

उत्तर एक समय जघन्य कालमान है और सर्वकाल उत्कृष्ट कालमान है।

प्र. 426 भावमान जघन्य और उत्कृष्ट रूप में किस तरह होता है?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव का पर्याय श्रुतज्ञान जघन्य भावमान है और केवलज्ञान उत्कृष्ट भावमान है।

प्र. 427 द्रव्यमान के कितने भेद होते हैं?

उत्तर द्रव्यमान के दो भेद होते हैं- संख्यामान और उपमामान।

प्र. 428 संख्यामान के कितने भेद हैं?

उत्तर संख्यामान के तीन भेद हैं- संख्यात, असंख्यात और अनन्त।

प्र. 429 संख्यात, असंख्यात और अनन्त के उदाहरण क्या है?

उत्तर जो संख्या पाँचों इन्द्रियों का विषय है वह संख्यात है। संख्यात के ऊपर जो संख्या अवधिज्ञान का विषय है वह असंख्यात है। तथा असंख्यात के ऊपर जो संख्या केवलज्ञान के विषय भाव को प्राप्त होती है वह अनन्त है।

प्र. 430 क्षय सहित या अन्त होने वाले (अर्धपुद्गल परिवर्तन) काल को भी अनन्त कहा जा सकता है क्या?

उत्तर हाँ! क्षय सहित होने वाला ऐसा काल इसलिए अनन्त (परीतानन्त) कहा जाता है क्योंकि छद्मस्थ जीवों के द्वारा उसका अन्त नहीं पाया जाता है।

प्र. 431 उपमामान के कितने भेद हैं?

उत्तर उपमामान के आठ भेद हैं- पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और लोक।

प्र. 432 पल्य किसे कहते हैं?

उत्तर भूमि के गहरे गड्ढे को पल्य कहते हैं। उस पल्य के आधार से परिगणित काल को पल्य या पल्योपम कहा जाता है।

प्र. 433 पल्य यह संज्ञा कितने वर्षों की उपमा के लिए प्रयुक्त होती है?

उत्तर पल्य यह संज्ञा असंख्यात वर्ष के लिए प्रयुक्त होती है।

प्र. 434 असंख्यात वर्ष तक की संख्या तक पहुँचने के लिए कितनी संख्याओं को पार करना पड़ता है?

उत्तर असंख्यात वर्ष तक पहुँचने के लिए समय आवली आदि से लेकर अट्ट तक की संख्याओं को पार करना पड़ता है।

प्र. 435 समय किसे कहते हैं?

उत्तर मंदगति से एक परमाणु को आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक जाने में जितना काल लगता है उसे

समय कहते हैं। यह काल की इकाई (सबसे जघन्य अवस्था) है।

प्र. 436 आवली किसे कहते हैं?

उत्तर असंख्यात समयों की एक आवली कही जाती है।

प्र. 437 उच्छ्वास किसे कहते हैं?

उत्तर संख्यात आवलियों का एक उच्छ्वास होता है।

प्र. 438 स्तोक किसे कहते हैं?

उत्तर सात उच्छ्वासों का एक स्तोक होता है।

प्र. 439 लव किसे कहते हैं?

उत्तर सात स्तोकों का एक लव होता है।

प्र. 440 घड़ी (घटी) या नाली किसे कहते हैं?

उत्तर 38 1/2 लव (24 मिनट) की एक घड़ी होती है।

प्र. 441 मुहूर्त्त किसे कहते हैं?

उत्तर दो घड़ी का एक मुहूर्त्त होता है।

प्र. 442 अन्तर्मुहूर्त्त किसे कहते हैं?

उत्तर एक समय से ऊपर तथा मुहूर्त्त से एक समय न्यून को अन्तर्मुहूर्त्त कहते हैं।

प्र. 443 दिन-रात किसे कहते हैं?

उत्तर तीस मुहूर्त्त (24 घण्टों) का एक दिनरात होता है। इसे अहोरात्र भी कहते हैं।

प्र. 444 पक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर पन्द्रह दिनरात का एक पक्ष होता है।

प्र. 445 माह किसे कहते हैं?

उत्तर दो पक्षों का एक माह या मास होता है।

प्र. 446 ऋतु किसे कहते हैं?

उत्तर दो माह की एक ऋतु होती है।

प्र. 447 अयन किसे कहते हैं?

उत्तर तीन ऋतुओं का एक अयन होता है या षण्मासिक एक अयन होता है।

प्र. 448 वर्ष किसे कहते हैं?

उत्तर दो अयनों का एक वर्ष होता है।

प्र. 449 युग किसे कहते हैं?

उत्तर पाँच वर्ष का एक युग होता है।

प्र. 450 पूर्वाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है।

प्र. 451 पूर्व किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख पूर्वाङ्गों का एक पूर्व होता है।

प्र. 452 पर्वाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी पूर्वों का एक पर्वाङ्ग होता है।

प्र. 453 पर्व किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख पर्वाङ्गों का एक पर्व होता है।

प्र. 454 नयुताङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी पर्वों का एक नयुताङ्ग होता है

प्र. 455 नयुत किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख नयुताङ्गों का एक नयुत होता है।

प्र. 456 कुमुदाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी नयुतों का एक कुमुदाङ्ग होता है।

प्र. 457 कुमुद किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख कुमुदाङ्गों का एक कुमुद होता है।

प्र. 458 पद्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी कुमदों का एक पद्माङ्ग होता है।

प्र. 459 पद्म किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख पद्माङ्गों का एक पद्म होता है।

प्र. 460 नलिनाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी पद्मों का एक नलिनाङ्ग होता है।

प्र. 461 नलिन किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख नलिनाङ्गों का एक नलिन होता है।

प्र. 462 कमलाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी नलिनों का एक कमलाङ्ग होता है।

प्र. 463 कमल किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख कमलाङ्गों का एक कमल होता है।

प्र. 464 त्रुटितांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी कमलों का एक त्रुटितांग होता है।

प्र. 465 त्रुटित किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख त्रुटितांगों का एक त्रुटित होता है।

प्र. 466 अटटांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी त्रुटितों का एक अटटांग होता है।

प्र. 467 अटट किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख अटटांगों का एक अटट होता है।

प्र. 468 अममांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी अटटों का एक अममांग होता है।

प्र. 469 अमम किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख अममांगों का एक अमम होता है।

प्र. 470 हाहांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी अममों का एक हाहांग होता है।

प्र. 471 हाहा किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख हाहांगों का एक हाहा होता है।

प्र. 472 हूहूअंग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी हाहा का एक हूहूअंग होता है।

प्र. 473 हूहू किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख हूहूअंगों का एक हूहू होता है।

प्र. 474 लतांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी हूहू का एक लतांग होता है।

प्र. 475 लता किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख लतांगों को एक लता कहते हैं।

प्र. 476 महालतांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लताओं को एक महालतांग कहते हैं।

प्र. 477 महालता किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख महालतांगों को एक महालता कहते हैं।

प्र. 478 शीर्षप्रकंपित किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी महालता को एक शीर्षप्रकंपित कहते हैं।

प्र. 479 हस्तप्रेलित किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख शीर्षप्रकंपित को एक हस्तप्रेलित कहते हैं।

प्र. 480 अचलात्म किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी हस्तप्रेलित को एक अचलात्म कहते हैं।

प्र. 481 पल्य के कितने भेद हैं?

उत्तर पल्य के तीन भेद हैं- व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य और अद्धापल्य।

प्र. 482 प्रथम पल्य के साथ व्यवहार यह संज्ञा क्यों पड़ी?

उत्तर उद्धारपल्य और अद्धापल्य व्यवहार मूल होने से प्रथम पल्य का नाम व्यवहार पल्य पड़ा।

प्र. 483 द्वितीय पल्य के साथ उद्धार यह संज्ञा क्यों पड़ी?

उत्तर द्वितीय पल्य की संज्ञा उद्धार पल्य होने का कारण उससे उद्धृत निकाले गये रोमों के आधार से द्वीप और समुद्रों की गणना की जाती है।

प्र. 484 तृतीय पल्य की संज्ञा अद्धा पल्य क्यों पड़ी?

उत्तर अद्धा; काल को कहते हैं अतः इससे मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी और देवादिक की आयु मापी जाती है।

प्र. 485 व्यवहार पल्य किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाणांगुल से मापे गये योजन बराबर लम्बे-चौड़े और गहरे अर्थात् दो हजार कोस गहरे और दो हजार कोस चौड़े गोल गड्ढे में एक दिन से लेकर सात दिन तक के जन्मे हुए मेढे के बालों को कैंची से ऐसा काटकर कि जिसे फिर काटा न जा सके, खूब ठोककर भर दो। यह व्यवहार पल्य है। सौ-सौ वर्ष में एक रोम निकालने पर जितने समय में वह गड्ढा खाली हो उतने काल को व्यवहार-पल्योपमकाल कहते हैं।

प्र. 486 उद्धार पल्य किसे कहते हैं?

उत्तर व्यवहार पल्य के प्रत्येक रोम के बुद्धि द्वारा इतने टुकड़े करो कि जितने असंख्यात कोटि वर्ष के जितने समय होते हैं और उन्हें दो हजार कोस गहरे और दो हजार कोस चौड़े गोल गड्ढे में भर दो। उसे उद्धार पल्य कहते हैं। उसमें से प्रति समय एक-एक रोम निकालने पर जितने समय में वह खाली हो उतने काल को उद्धार पल्योपम कहते हैं।

प्र. 487 अद्धापल्य किसे कहते हैं?

उत्तर उद्धार पल्य के प्रत्येक रोम के पुनः इतने टुकड़े करो कि जितने सौ वर्ष में जितने समय होते हैं और उन्हें पूर्वोक्त प्रमाण गड्ढे में भर दो। उसे अद्धापल्य कहते हैं। उसमें से प्रति समय एक-एक रोम निकालने पर जितने समय में वह गड्ढा खाली हो उतने काल को अद्धापल्योपम कहते हैं।

प्र. 488 सागर किसे कहते हैं?

उत्तर दस कोड़ा-कोड़ी व्यवहार पल्यों का एक व्यवहार सागरोपम, दस कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों का एक उद्धार सागरोपम और दस कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यों का एक अद्धा सागरोपम होता है।

प्र. 489 सूच्यंगुल किसे कहते हैं?

उत्तर अद्धापल्य के जितने अर्द्धच्छेद हों उतनी जगह अद्धापल्य को रखकर परस्पर में गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उतने आकाश प्रदेशों की मुक्तावली (मोतियों की पंक्ति सदृश) करने पर एक सूच्यंगुल होता है। अर्थात् एक अंगुल लम्बे प्रदेशों का प्रमाण एक सूच्यंगुल कहलाता है।

प्र. 490 अर्द्धच्छेद किसे कहते हैं?

उत्तर किसी राशि के आधा-आधा होने के वारों को अर्द्धच्छेद कहते हैं। अर्थात् जो राशि जितनी बार समरूप

से आधी-आधी हो सकती है उसके उतने ही अर्द्धच्छेद होते हैं। जैसे- सोलह के अर्द्धच्छेद चार होते हैं क्योंकि सोलह राशि चार बार आधी-आधी हो सकती है-8, 4, 2, 1 ।

प्र. 491 प्रतरांगुल किसे कहते हैं?

उत्तर सूच्यंगुल के वर्ग को प्रतरांगुल कहते हैं।

प्र. 492 घनांगुल किसे कहते हैं?

उत्तर सूच्यंगुल के घन को घनांगुल कहते हैं। वह घनांगुल एक अंगुल लम्बे, एक अंगुल चौड़े और एक अंगुल ऊँचे स्थल स्थित प्रदेशों का परिमाण जानना।

प्र. 493 अंगुल के कितने भेद है?

उत्तर अंगुल के तीन भेद हैं- उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल।

प्र. 494 उत्सेधांगुल किसे कहते हैं?

उत्तर आठ यव मध्यों (जौ के बीच के भागों) का एक उत्सेधांगुल होता है।

प्र. 495 यवमध्य किसे कहते हैं?

उत्तर आठ जूं का एक यवमध्य होता है।

प्र. 496 एक जूँ का प्रमाण क्या है?

उत्तर आठ लीख प्रमाण एक जूँ है।

प्र. 497 एक लीख कितने प्रमाण होती है?

उत्तर कर्म-भूमिज-मनुष्य सम्बंधी केश के अग्रभाग से आठ गुने प्रमाण एक लीख होती है।

प्र. 498 कर्म-भूमिज-मनुष्य से सम्बंधित केश के अग्र-भाग का प्रमाण कितना है?

उत्तर जघन्य-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र-भाग से आठ गुने प्रमाण कर्म-भूमिज-मनुष्य से सम्बन्धित केश का अग्रभाग होता है।

प्र. 499 जघन्य-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्रभाग का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर मध्यम-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्रभाग से आठ गुने प्रमाण जघन्य-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र भाग का प्रमाण होता है।

प्र. 500 मध्यम-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र-भाग का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर उत्तम-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र-भाग से आठ गुने प्रमाण मध्यम-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र-भाग का प्रमाण हेाता है।

प्र. 501 उत्तम-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र-भाग का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर आठ रथरेणु मिलकर एक उत्तम भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्रभाग का प्रमाण होता है।

प्र. 502 रथरेणु का प्रमाण कितना है?

उत्तर आठ त्रस-रेणु का एक रथरेणु होता है।

प्र. 503 त्रस-रेणु का प्रमाण कितना है?

उत्तर आठ त्रुटिरेणु का एक त्रस-रेणु होता है।

प्र. 504 त्रुटि-रेणु किसे कहते हैं?

उत्तर आठ संज्ञासंज्ञा का एक त्रुटि-रेणु होता है।

प्र. 505 संज्ञासंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर आठ उत्संज्ञासंज्ञा मिलकर एक संज्ञासंज्ञा नामक स्कन्ध होता है।

प्र. 506 उत्संज्ञासंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर अनन्तानंत परमाणुओं के संघात (मिलने) से एक उत्संज्ञासंज्ञा नामक स्कन्ध उत्पन्न होता है।

प्र. 507 उत्सेधांगुल से क्या-क्या मापा जाता है?

उत्तर उत्सेधांगुल से देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यञ्चों के शरीर की ऊँचाई, देवों के निवास स्थान तथा नगरादि और अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमाओं की ऊँचाई मापी जाती है।

प्र. 508 प्रमाणांगुल किसे कहते हैं?

उत्तर उत्सेधांगुल से पाँच सौ गुना प्रमाणांगुल होता है। यही अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती भरत का आत्मांगुल होता है। उस समय उसी आत्मांगुल से ग्राम, नगर आदि का माप किया जाता था।

प्र. 509 प्रमाणांगुल से क्या-क्या मापा जाता है?

उत्तर प्रमाणांगुल से द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड, सरोवर और भरत आदि क्षेत्रों का माप प्रमाणांगुल से ही होता है।

प्र. 510 आत्मांगुल किसे कहते हैं?

उत्तर भरत और ऐरावत क्षेत्र में जिस-जिस काल में जो मनुष्य हुआ करते हैं उस-उस काल में उन्हीं मनुष्यों के अंगुल का नाम आत्मांगुल है।

प्र. 511 आत्मांगुल से क्या-क्या माप किया जाता है?

उत्तर झारी, कलश, दर्पण, भेरी, शय्या, गाड़ी, हल, मूसल, अस्त्र, सिंहासन, चवँर, छत्र, मनुष्य के निवास स्थान, नगर, उद्यान आदिक का माप अपने-अपने समय के आत्मांगुल से होता है।

प्र. 512 योजन किसे कहते हैं?

उत्तर चार कोस का एक योजन होता है। (दो हजार धनुष का एक कोस होता है।)

प्र. 513 योजन से क्या-क्या मापा जाता है?

उत्तर इस योजन के द्वारा जीवों के शरीर, नगर, मंदिर आदि को मापा जाता है।

प्र. 514 महायोजन किसे कहते हैं?

उत्तर दो हजार कोस का एक महायोजन होता है।

प्र. 515 महायोजन से क्या-क्या मापा जाता है?

उत्तर महायोजन से पर्वत, द्वीप, समुद्र आदि को मापा जाता है।

प्र. 516 एक धनुष का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर चार हाथ का एक धनुष होता है।

प्र. 517 एक हस्त का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर दो वितस्ति का एक हस्त होता है।

प्र. 518 एक वितस्ति (बालिश्त) का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर दो पाद की एक वितस्ति होती है।

प्र. 519 एक पाद का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर छह अंगुल का एक पाद होता है।

प्र. 520 जगच्छ्रेणी (जगत्-श्रेणी) किसे कहते हैं?

उत्तर पल्य के अर्द्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण घनांगुल को रखकर उन्हें परस्पर में गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसे जगच्छ्रेणी कहते हैं। वह राशि सात राजु लम्बी आकाश के प्रदेशों की पंक्ति प्रमाण जानना चाहिए।

प्र. 521 जगत्प्रतर या प्रतरलोक किसे कहते हैं?

उत्तर जगच्छ्रेणी के वर्ग को अर्थात् जगत्श्रेणी को जगत् श्रेणी से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उसे जगत्-प्रतर या प्रतरलोक कहते हैं। वह जगत्प्रतर; जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे और चौड़े क्षेत्र में जितने प्रदेश आयें उतना जानना चाहिए।

प्र. 522 घनलोक किसे कहते हैं?

उत्तर जगत्-श्रेणी के घन को लोक अथवा घनलोक कहते हैं। वह घनलोक जगत् श्रेणी प्रमाण लम्बे, चौड़े और ऊँचे क्षेत्र में जितने प्रदेश आयें उतना जानना चाहिए।

प्र. 523 राजू किसे कहते हैं?

उत्तर जगत् श्रेणी के सातवे भाग को राजू कहते हैं।

प्र. 524 राजू की उपमा क्या है?

उत्तर मान लीजिये कि एक हजार किलो वजन वाला लोहे का गोला स्वर्ग लोक से छोड़ा जावे (गिराया जावे) और वह गोला छह माह तक जहाँ तक की दूरी तय करे उतने क्षेत्र प्रमाण को एक राजू जानना चाहिए। ऐसे चौदह राजू प्रमाण लोक होता है।



पापों के क्षय के लिये पापों के त्यागी की पूजा करो।

For the sake of destroying your past sins, offer your service to those who have completely renounced all sins.

•••

ध्यान रखना.... जन्म से नहीं कर्म से पूज्य बनते हैं।

Always keep in mind that one does not become worshipful by birth, but becomes worshipful through their own deeds.

अध्याय - 6.
लोक रचनादि

प्र. 525 लोक कहाँ पर स्थित है?

उत्तर समस्त आकाश के मध्य में लोक स्थित है। तथा उसके बाहर सर्व दिशाओं में अनन्त आकाश है जो अलोकाकाश कहलाता है।

प्र.526 सम्पूर्ण लोक को किसने बनाया है?

उत्तर यह सम्पूर्ण लोक स्वाभाविक रूप से अकृत्रिम है, किसी के द्वारा रचाया हुआ नहीं है, न इसका आदि है और न अन्त है, यह नित्य और शाश्वत रूप है।

प्र.527 लोक का आकार किस तरह का है?

उत्तर अपने दोनों पैरों को फैलाकर और दोनों हाथों को अपनी कमर के दोनों ओर रखकर खड़े हुए पुरुष सदृश लोक का आकार है अथवा वेत्रासन सदृश आधे मृदंग को खड़ा करके उसके ऊपर पूरे मृदंग को खड़ा रखने जैसा आकार वाला लोक आकार है।

प्र.528 लोक का विस्तार कितना है?

उत्तर लोक का विस्तार दक्षिणोत्तर दिशारूप से सर्वत्र सात राजू मोटा है। पूर्व से पश्चिम दिशाओं में नीचे सात राजू, ऊपर की ओर क्रमशः घटता हुआ मध्य लोक में एक राजू, फिर क्रम से बढ़ता हुआ ब्रह्मलोक के पास पांच राजू, तदुपरान्त क्रम से घटता हुआ अन्त में एक राजू प्रमाण चौड़ा है।

प्र.529 लोक की ऊँचाई कितनी है?

उत्तर लोक की ऊँचाई अधोलोक से लेकर ऊपर अन्त तक चौदह राजू प्रमाण है।

प्र.530 सम्पूर्ण लोक का घन-फल कितना है?

उत्तर सम्पूर्ण लोक का घनफल सात राजू का घन अर्थात् तीन सौ तैतालीस घन राजू प्रमाण है।

प्र.531 अधोलोक का क्षेत्रफल और घनफल कितना है?

उत्तर अधोलोक की चौड़ाई का मुख (प्रारम्भ) एक राजू, भूमि सात राजू फिर इन दोनों को जोड़कर आधा करने पर चार राजू होते हैं यह अधोलोक का क्षेत्रफल है, इस चार राजू को पद अर्थात् ऊँचाई सात राजू से गुणा करने पर अट्ठाईस वर्ग राजू अधोलोक का क्षेत्रफल होता है। इस क्षेत्रफल का दक्षिणोत्तर विस्तार सात राजू से गुणा करने पर एक सौ छियानवे घन राजू अधोलोक का घनफल होता है।

प्र.532 ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल और घनफल कितना है?

उत्तर अर्ध ऊर्ध्वलोक की चौड़ाई का मुख (नीचे से प्रारम्भ) एक राजू भूमि (ऊपर अंत) पाँच राजू इन दोनों को जोड़कर आधा करने से तीन राजू होते हैं, इस तीन राजू को पद अर्थात् ऊँचाई साढ़े तीन राजू से गुणा करने पर इक्कीस बटा दो वर्ग राजू अर्ध ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल होता है। इस क्षेत्रफल को दक्षिणोत्तर विस्तार सात राजू से गुणा करने पर एक सौ सैतालीस बटा दो घन राजू अर्ध ऊर्ध्वलोक का घनफल

प्राप्त होता है। इससे दुगुणा व्यालीस वर्ग राजू और एक सौ सैतालीस घन राजू क्रमशः पूरे ऊर्ध्व लोक का क्षेत्रफल और घनफल प्राप्त होता है।

प्र.533 आगम में अधोलोक की रचना किस तरह की विधिवत् वर्णित की गई है?

उत्तर जिनागम में वर्णित है कि मेरु पर्वत के नीचे सात राजू प्रमाण अधोलोक है। मेरु पर्वत के तल से लेकर छः राजू में रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा नाम की सात पृथ्वियाँ हैं। इसके नीचे एक राजू प्रमाण स्थान भूमि बिना निगोद आदिक पाँच स्थावरों से युक्त स्थावरलोक या कलकल लोक है। (विशेष वर्णन आगे कहेंगे)

प्र.534 मध्यलोक का स्वरूप किस तरह का है?

उत्तर मेरु पर्वत की ऊँचाई प्रमाण मध्यलोक है। जहाँ असंख्यात द्वीप समुद्रों के बीचों बीच मेरु पर्वत है जो एक हजार योजन पृथ्वी के अंदर जड़रूप से स्थित है। निन्यानवे हजार योजन बाहर अर्थात् पृथ्वी पर है और चालीस योजन ऊँची जिसकी चूलिका है।

प्र.535 ऊर्ध्वलोक का स्वरूप कैसा है?

उत्तर ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई; मध्यलोक की ऊँचाई एक लाख चालीस योजन से कम सात राजू प्रमाण है। मेरु पर्वत की चूलिका से एक बाल का अन्तर देकर लोकान्त तक अर्थात् सात राजू पर्यन्त ऊर्ध्वलोक है। ऊर्ध्वलोक में सोलह स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश, पञ्च अनुत्तर एवं सिद्धलोक की रचना है।

प्र.536 सम्पूर्ण लोक का आधार क्या है? और वह आधार किस रूप में है?

उत्तर घनोदधि वातवलय, घनवातवलय और तनुवातवलय ये तीन वातवलय लोक का आधार हैं। जैसे- वृक्ष छाल से घिरा होता है वैसे ही लोक इन वातवलयों घिरा हुआ है। जिस तरह किसी खिलोने की नली को मुख के द्वारा सावधानी पूर्वक धीरे-धीरे फूके जाने पर वायु के दबाव से एक हल्की सी गेंद उस वायु के बीच ऊपर उठी (या उड़ती-सी) रहती है उसी तरह सभी ओर से व घने रूप से बड़े प्रमाण में वायु के दबाव से यह तीन लोक अनन्त आकाश के बीचोंबीच उस वायु रूपी वातवलयों के आधार से टिका हुआ है।

प्र.537 तीनों वातवलयों का रंग कैसा है?

उत्तर तीनों वातवलयों का रंग क्रमशः हल्का पीत गोमूत्रवत्, हल्का हरित मूंगवत् और अनेक रंगों से मिश्रित है।

प्र.538 लोक में तीनों वातवलयों की मोटाई कहाँ, कितनी है?

उत्तर लोकाकाश के अधोभाग में, दोनों पार्श्वभागों में नीचे से एक राजू ऊँचाई अर्थात् पञ्च स्थावर लोक पर्यन्त तीनों वातवलय प्रत्येक बीस-बीस हजार योजन मोटे हैं। दोनों पार्श्वभागों में एक राजू के ऊपर सप्तम पृथ्वी के निकट आठों दिशाओं में तीनों वातवलय यथाक्रम से सात, पाँच, और चार योजन मोटे हैं। फिर क्रमशः घटते हुए मध्यलोक की आठों दिशाओं में पाँच, चार और तीन योजन मोटे रह जाते हैं। आगे क्रमशः बढ़ते हुए ब्रह्मलोक की आठों दिशाओं में सात, पाँच और चार योजन मोटे हो जाते हैं।

फिर ऊपर क्रमशः घटते हुए लोकाग्र के पार्श्व भाग में पाँच, चार और तीन योजन मोटे रह जाते हैं। अन्त में ये तीनों ही वातवलय लोक शिखर पर क्रमशः दो कोस, एक कोस और पन्द्रह सौ पचत्तर धनुष प्रमाण मोटे रह जाते हैं।

प्र.539 लोक का मध्य स्थान कौन-सा कहलाता है?

उत्तर लोक मध्यलोक में स्थित मेरु पर्वत के नीचे वज्र व वैडूर्य पटलों के बीच में चौकोर संस्थान रूप से अवस्थित आकाश के आठ प्रदेश लोक का मध्य कहलाते हैं।

प्र.540 लोक में कौन-से स्वर्ग आदिक और लोकान्त तक की ऊँचाई तक कितने राजू के प्रमाण रूप लोक होता है?

उत्तर लोक मध्य से ऊपर ऐशान स्वर्ग डेढ़ राजू, माहेन्द्र स्वर्ग तक तीन राजू, ब्रह्मस्वर्ग तक साढ़े तीन राजू, कापिष्ठ स्वर्ग तक चार राजू, महाशुक्र स्वर्ग तक साढ़े चार राजू, सहस्रार स्वर्ग तक पाँच राजू, प्राणत स्वर्ग तक साढ़े पाँच राजू, अच्युत स्वर्ग तक छः राजू और लोकान्त तक सात राजू ऊँचाई है।

प्र.541 लोक में अधोलोक सम्बन्धी कौन-सी भूमि तक कितने राजू का प्रमाण होता है?

उत्तर लोक मध्य से शर्करा पृथ्वी तक एक राजू, उसके नीचे पुनः पाँचों पृथ्वियाँ क्रमशः एक-एक राजू प्रमाण में हैं। इस तरह सप्तम पृथ्वी तक छः राजू और कलकल नामक लोक से नीचे लोकान्त तक सात राजू होते हैं।

प्र.542 लोक की चौड़ाई कहाँ कितनी है?

उत्तर लोक के नीचे अधोलोक के मूल में चौड़ाई सात राजू, मध्यलोक में एक राजू, ब्रह्मलोक के तिर्यक् में पाँच राजू और लोक के अग्रभाग रूप सर्वोच्य स्थान पर एक राजू चौड़ाई है।

प्र.543 लोक में कौन-से जीव कहाँ पाये जाते हैं?

उत्तर पृथ्वीकायिक आदि पाँच स्थावर जीव सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं, परन्तु त्रस जीव समुद्घातादि अवस्थाओं के बिना त्रस नाड़ी में ही रहते हैं।

प्र.544 त्रस नाड़ी कहाँ है और वह कितनी लम्बी, चौड़ी और ऊँची है?

उत्तर त्रस नाड़ी लोक के मध्य में है और वह एक राजू लम्बी, एक राजू चौड़ी तथा कुछ कम तेरह राजू ऊँची है।

प्र.545 त्रस नाड़ी यह नाम क्यों पड़ा, क्या त्रस नाड़ी में त्रस जीव मात्र ही रहते हैं या स्थावर जीव भी रहते हैं तथा त्रस जीव त्रस नाड़ी के सम्पूर्ण स्थान में रहते हैं या कुछ विशेषता है?

उत्तर त्रस जीवों के रहने का स्थान मात्र त्रस नाड़ी ही है अतः त्रस जीवों के रहने के स्थान का सार्थक नाम त्रस नाड़ी पड़ा। स्थावर जीव तो लोक में त्रसनाड़ी के अन्दर बाहर सर्वत्र पाये जाते हैं। तथा त्रस नाड़ी में भी त्रस जीव कुछ कम तेरह राजू के स्थान में ही पाये जाते हैं।

प्र.546 त्रस नाड़ी में त्रस जीवों से रहित स्थान कौन-कौन-सा है?

उत्तर त्रस नाड़ी में स्थित सप्तम महातमः पृथ्वी के मध्य भाग में ही नारकी रहते हैं उसके नीचे वे त्रस जीव

नहीं रहते हैं।

सातवी पृथ्वी के नीचे कलकल लोक के एक राजू प्रमाण क्षेत्र में त्रसों के बिना पंच स्थावर जीव मात्र ही रहते हैं। ऊर्ध्वलोक में भी सर्वार्थसिद्धि विमान तक ही त्रस जीव रहते हैं। लोक के अग्रभाग में त्रसादि नामकर्म या अष्टकर्म रहित सिद्ध परमेष्ठियों का निवास है।

प्र. 547 उपपाद की अपेक्षा त्रस जीव त्रस नाड़ी के बाहर किस तरह से पाये जाते हैं?

उत्तर त्रस नाड़ी के बाहर रहने वाला कोई स्थावर जीव मरण करके त्रस पर्याय में उत्पन्न होने के लिए त्रस नाड़ी की ओर आ रहा है; उस समय उस जीव के विग्रहगति में ही त्रसनामकर्म का उदय आ जाने से जितने समय तक वह त्रसनाड़ी के बाहर विग्रहगति में रहता है, उतने समय तक उपपाद की अपेक्षा उस त्रस जीव का त्रसनाड़ी के बाहर सद्भाव पाया जाता है।

प्र.548 मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा त्रसजीव त्रसनाड़ी के बाहर किस तरह से पाया जाता है?

उत्तर त्रस नाड़ी के भीतर रहने वाला कोई त्रसजीव त्रस नाड़ी के बाहर स्थावर जीव में उत्पन्न होने के लिए मरण से पूर्व मारणान्तिक समुद्घात करता है; मरण से पूर्व उस जीव के त्रसनामकर्म का उदय पाया जाने से त्रसनामकर्म सहित वह जीव त्रसनाड़ी के बाहर पाया जाता है।

प्र.549 लोक पूरण समुद्घात की अपेक्षा त्रसजीव त्रसनाड़ी के बाहर किस रूप में पाया जाता है?

उत्तर लोकपूरण समुद्घात में जब केवली भगवान् के आत्मप्रदेश समस्त लोक में फैलते हैं, उस समय भी त्रसनाड़ी के बाहर त्रसजीव (केवली भगवान का त्रसनामकर्म का उदय होने से) पाये जाते हैं।

प्र.550 रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथ्वी के कितने भाग हैं?

उत्तर रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथ्वी के तीन भाग हैं- खरभाग, पंकभाग और अब्बहुल भाग।

प्र.551 खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग का बाहल्य (मोटाई) का प्रमाण कितना है?

उत्तर खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग का बाहल्य क्रमशः सोलह हजार योजन, चौरासी हजार योजन और अस्सी हजार योजन है। अतः प्रथम पृथ्वी की मोटाई (बाहल्य) एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण है।

प्र.552 खरभाग में कितने बाहल्य प्रमाण वाली कितनी और कौन-सी उप पृथ्वियाँ हैं?

उत्तर खरभाग में एक-एक हजार योजन मोटी 1. चित्रा, 2. वज्रा, 3. वैडूर्या, 4.लोहिता, 5. मसारकल्पा, 6.गोमेदा, 7.प्रवाला, 8.ज्योतिरसा, 9.अञ्जना, 10.अञ्जनमूलिका, 11.अङ्का, 12.स्फटिका, 13.चन्दना, 14.सर्वार्थका, 15.बकुला और 16.शैला ये सोलह उप पृथ्वियाँ हैं। विशेष- इन पृथ्वियों के बीच में किसी में किसी प्रकार का अन्तराल नहीं है।

प्र.553 इन चित्रा आदि पृथ्वियों की लम्बाई, चौड़ाई कितनी है?

उत्तर इन चित्रा आदि पृथ्वियों की लम्बाई, चौड़ाई पंकभाग व अब्बहुल भाग की तरह लोक प्रमाण है। तिर्यक् में ये पृथ्वियाँ वातवलयों तक फैली हुई हैं।

प्र.554 शर्करा आदिक पृथ्वियों की मोटाई कितनी है?

उत्तर द्वितीय शर्करा प्रभा पृथ्वी की मोटाई 32,000 योजन, बालुका प्रभा की 28,000 योजन, पंकप्रभा की 24,000 योजन, धूमप्रभाकी 20,000 योजन, तमःप्रभा की 16,000 योजन और महातमःप्रभा की 8,000 योजन मोटाई है।

प्र.555 रत्नप्रभादि सप्त पृथ्विीयों में पटलों (पाथड़ों) की संख्या कितनी है?

उत्तर रत्नप्रभा पृथ्वी में 13 पटल, शर्कराप्रभा में 11 पटल, बालुकाप्रभा में 9 पटल, पंकप्रभा में 7 पटल, धूमप्रभा में 5 पटल, तमःप्रभा में 3 पटल और महातमःप्रभा में 1 पटल है। इस तरह सातों पृथ्विवयों में कुल 49 पटल हैं। ये पटल एक दूसरे से संश्लिष्ट (सटे) हैं।

प्र.556 नरक और नारकी किसे कहते हैं?

उत्तर रत्नप्रभादिक सप्त पृथ्विवयों के पटलों में होने वाले कुएँ के समान बिलों को नरक कहते हैं और उन नरकों में रहने वाले नारकी कहलाते हैं।

प्र.557 पृथ्वी-पटलों में होने वाले नरक-बिलों के नाम किस रूप में होते हैं?

उत्तर पृथ्वी-पटलों में होने वाले नरक-बिलों के नाम इन्द्रक, श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक रूप में होते हैं।

प्र.558 नरक-बिलों की इन्द्रक आदि संज्ञा क्यों है?

उत्तर जो अपने पटल के सर्व बिलों के बीचोंबीच में होता है, उसे इन्द्रक बिल कहते हैं। इस इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं एवं विदिशाओं में जो बिल पंक्तिरूप से स्थित होते हैं, उन्हें श्रेणिबद्ध बिल कहते हैं। जो श्रेणिबद्ध बिलों के बीच-बीच में बिखरे हुए पुष्पों के समान यत्र-तत्र स्थित हैं, उन्हें प्रकीर्णक बिल कहते हैं। यह रचना अधोलोक की पृथ्विवयों सम्बन्धी प्रत्येक पटल में रहती है।

प्र.559 सप्त पृथ्विवयों के पटलों में नरक बिल कितने हैं और उन बिलों का विन्यास कहाँ व किस तरह से है?

उत्तर प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के तेरह पटलों में तेरह इन्द्रक बिल हैं। दूसरी आदि पृथ्विवयों में पटलों की संख्यानुसार ही क्रमशः ग्यारह, नौ, सात, पाँच, तीन और एक इन्द्रक बिल हैं, इस तरह कुल बिल संख्या उनन्चास है।

प्रथम भूमि के प्रथम पटल में स्थित इन्द्रक बिल की एक-एक दिशा में 49-49 और विदिशाओं में 48-48 श्रेणिबद्ध बिल हैं। द्वितीयादि इन्द्रक बिल से लेकर सप्तम पृथ्वी स्थित अन्तिम इन्द्रक बिल तक श्रेणिबद्ध बिलों की संख्या एक-एक कम होते हुए अन्तिम इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं में तो एक-एक श्रेणिबद्ध बिल मिलता है। परन्तु विदिशाओं में श्रेणिबद्ध बिलों का अभाव है। सातवी पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का अभाव है।

प्र.560 सप्त पृथ्विवयों में श्रेणीबद्ध नरक-बिलों की सम्पूर्ण संख्या कितनी है?

उत्तर रत्नप्रभादि सप्त पृथ्विवयों में श्रेणीबद्ध रूप सम्पूर्ण नरक-बिलों की संख्या नौ हजार छह सौ चार है।

प्र.561 प्रथम पृथ्वी से लेकर छठी पृथ्वी तक प्रकीर्णक नरक-बिलों की सम्पूर्ण संख्या कितनी है?

उत्तर प्रथम पृथ्वी से लेकर छठी पृथ्वी तक प्रकीर्णक नरक-बिलों की सम्पूर्ण संख्या तेरासी लाख नब्बै हजार

तीन सौ सैंतालीस है।

प्र.562 रत्नप्रभादि सप्त पृथ्वियों में स्थित नरक-बिलों की संख्या कितनी-कितनी है?

उत्तर रत्नप्रभादि सप्त पृथ्वियों में स्थित नरक-बिलों की संख्या क्रमशः तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पांच कम एक लाख और मात्र पाँच है।

प्र.563 सप्त पृथ्वियों के सम्पूर्ण नरक-बिलों की संख्या कितनी है?

उत्तर सप्त पृथ्वियों के सम्पूर्ण नरक-बिलों की संख्या चौरासी लाख है।

प्र.564 नरक-बिलों का विस्तार और आकार कितना और कैसा होता है?

उत्तर इन्द्रक नामक नरक-बिल संख्यात योजन विस्तार वाले ही होते हैं। श्रेणीबद्ध नरक-बिल असंख्यात योजन विस्तार वाले और प्रकीर्णकों में कुछ प्रकीर्णक बिल संख्यात योजन और कुछ असंख्यात योजन विस्तार वाले होते हैं। ये नरक-बिल गोल, चौकोर और त्रिकोण आकार वाले होते हैं।

प्र.565 कौन-सी पृथ्वी पर्यन्त के कितने नरक-बिलों में नारकी जीवों के लिए कैसी तीव्र उष्ण की वेदना होती है?

उत्तर प्रथम पृथ्वी से लेकर पांचवी पृथ्वी के चार भागों में से तीन भागों पर्यन्त में स्थित 82,25,000 नरक-बिलों में नारकी जीवों के लिए लोहे के गोले को पिघलाने जैसी तीव्र उष्ण वेदना होती है।

प्र.566 कौन-सी पृथ्वी से कौन-सी पृथ्वी पर्यंत वाले कितने नरक-बिलों में स्थित नारकी जीवों के लिए कैसी अत्यन्त शीत वेदना होती है?

उत्तर पाँचवी पृथ्वी के शेष चौथाई भाग में तथा छठी और सातवी पृथ्वी में स्थित 1,75,000 नरक-बिलों में नारकी जीवों के लिए लोहे के पानी को गोले रूप जमाने जैसी अत्यन्त शीत वेदना होती है।

प्र.567 रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम सीमन्तक नामक इन्द्रक बिल का विस्तार कितना है?

उत्तर रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम सीमन्तक नामक इन्द्रक बिल का विस्तार मनुष्य क्षेत्र सदृश पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है।

प्र.568 महातमःप्रभा पृथ्वी के अवधिस्थान नामक अन्तिम बिल का विस्तार कितना है?

उत्तर महातमःप्रभा पृथ्वी के अवधिस्थान नामक अन्तिम बिल का विस्तार जम्बूदीप सदृश एक लाख योजन प्रमाण है।

प्र.569 नारकियों के उत्पत्ति स्थान कहाँ पर और कैसे आकार वाले हैं?

उत्तर नारकियों के उत्पत्ति स्थान नरक-बिलों के उपरिम भाग में अनेक प्रकार के शस्त्रों से युक्त अधोमुख कण्ठ वाले, भीतर गोल तथा बाहर सात, तीन, दो, एक और पाँच कोने वाले होते हुए उष्ट्रिका, कुम्भी आकार रूप अनेक मुखाकार होते हैं।

प्र.570 नारकियों के उत्पत्ति स्थानों की चौड़ाई और ऊँचाई कितनी है?

उत्तर नारकियों के उत्पत्ति स्थानों की चौड़ाई प्रथम पृथ्वी से लेकर सातवीं पृथ्वी तक क्रमशः एक कोस, दो कोस, तीन कोस, एक योजन, दो योजन, तीन योजन और सौ योजन प्रमाण है। तथा ऊँचाई अपनी-

अपनी अवगाहना से पाँच गुणी है।

प्र.571 उत्पत्ति स्थानों में उत्पन्न होते ही नारकियों की क्या स्थिति होती है?

उत्तर उत्पत्ति स्थानों में उत्पन्न होते ही नारकी तीक्ष्ण शस्त्रों पर गिरते हुए सातों पृथ्वियों के नरक-बिलों में क्रमशः 7 योजन 3ष्ठ कोस, 15 योजन 2 कोस, 31 योजन 1 कोस, 62 योजन 2 कोस, 125 योजन, 250 योजन तथा 500 योजन ऊपर उछलते हैं और पुनः शस्त्रों पर आ पड़ते हैं।

प्र.572 नारकियों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है?

उत्तर प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के अन्तिम पटल में स्थित नारकियों के शरीर की ऊँचाई 7 धनुष 3 हाथ और 6 अंगुल प्रमाण होती है। शेष द्वितीयादि पृथ्वियों के अन्तिम पटल में रहने वाले नारकियों के शरीर की ऊँचाई क्रमशः दूनी-दूनी होते हुए सप्तम पृथ्वी के पटल में रहने वाले नारकियों के शरीर की ऊँचाई 500 धनुष प्रमाण होती है।

प्र.573 नारकियों की कौन-सी विक्रिया होती हैं?

उत्तर नारकियों की देवों सम पृथक विक्रिया न होकर अपृथक विक्रिया होती है।

प्र.574 अपृथक विक्रिया को नारकी किस तरह किया करते हैं?

उत्तर अपृथक विक्रिया को करते हुए नारकी अपने वैक्रियक शरीर को ही सर्प, व्याघ्र, भेड़िया, उल्लू, कौआ, बिच्छू, गृद्ध, कुत्ता, रीछ आदि तिर्यञ्च रूप तथा त्रिशूल, अग्नि, बरछी, तलवार, मुद्गर और सेमर वृक्ष आदि रूप बनाते हैं।

प्र.575 नरकों का वातावरण कैसा होता है?

उत्तर नरकों का सम्पूर्ण वातावरण महादुःखमय होता है। हजार बिच्छुओं के युगपत् काटे जाने पर जितनी वेदना होती है उससे भी अधिक वेदना नरक भूमि के स्पर्श मात्र से होती है।

प्र.576 नरकों में नारकियों को होने वाले दुःख कौन-कौन-से हैं?

उत्तर नरकों में नारकियों के लिए क्षेत्रीय, नारकी जीवों से उत्पन्न मानसिक, वाचनिक और कायिक तथा देवकृत भी अनेक असहनीय दुःख प्राप्त होते हैं जैसे-

- तीन लोक के अनाज खाने जैसी भूख लगना।
- समुद्र के जैसे जल पी जाने वाली प्यास सताना।
- आपसी लड़ाई द्वारा बैर भंजाना।
- देवों द्वारा लड़ाया, भड़काया जाना।
- शस्त्रों पर गिराया जाना।
- यन्त्रों में पेला जाना।
- भाड़ में झोका जाना।
- कढ़ाई में तलाया जाना।

- शस्त्रों से छेदा और काटा जाना।
- जलती ज्वालाओं में पकाया जाना।
- पत्तों से तन कट जाना।
- गरम पुतली से चिपकाना।
- लोह रस पिलाया जाना।
- पारे की तरह तन का पिघल जाना।
- तन के तिल-तिल सम टुकड़े किये जाना।
- सिंह, भालू, कुत्ता, सर्प, गिद्ध और कौआ आदिक हिंसक तिर्यञ्चों द्वारा तन का भक्षण किया जाना इत्यादि।

प्र.577 नारकियों के लिए कहाँ तक कौन, कैसे लड़ाते भिड़ाते हैं?

उत्तर नारकियों के लिए तृतीय बालुका प्रभा पृथ्वी तक, असुरकुमार देवों में मिथ्या दृष्टि व पापिष्ठ स्वभाव वाले अम्बावरीष नामक दुष्ट देव नारकियों का बैर स्मरण कराकर उन्हें लड़ाते और भिड़ाते हुए मनोरञ्जन करते हैं।

प्र.578 नारकियों का भोजन किस तरह का होता है?

उत्तर नारकी जीव सड़े हुए माँस से भी अधिक दुर्गन्धित मिट्टी का आहार करते हैं।

प्र.579 नरकों में नारकियों का अवधिज्ञान कितने क्षेत्र तक होता है?

उत्तर सातों पृथ्वियों में क्रमशः नारकियों का अवधिज्ञान चार कोस, साढ़े तीन कोस, तीन कोस, ढाई कोस, दो कोस, डेढ़ कोस और एक कोस तक की वस्तु को जानता है।

प्र.580 रत्नप्रभादि पृथ्वियों में जन्म व मरण का अन्तरकाल कितना होता है?

उत्तर रत्नप्रभादि पृथ्वियों में नारकियों का जन्म व मरण के अधिक से अधिक अन्तरकाल का प्रमाण क्रमशः चौबीस मुहूर्त्त, सात दिवस, एक पक्ष, एक माह, दो माह, चार माह और छह माह है। अन्यथा हर समय जन्म-मरण है।

प्र.581 नरक गति से निकलने वाले जीवों की उत्पत्ति कहाँ-कहाँ पर होती है?

उत्तर नरक गति से निकले हुए जीव मनुष्य गति और तिर्यञ्च गति में ही उत्पन्न होते हैं। सातवी पृथ्वी से निकला हुआ जीव तिर्यञ्च गति में ही जन्म लेता है।

प्र.582 नरक गति से आकर जीव मनुष्य व तिर्यञ्च गति में कौन-कौन-सी अवस्था को प्राप्त होता है?

उत्तर ऐसा जीव कर्मभूमिज, गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य और तिर्यञ्चों में ही जन्म लेता है।

प्र.583 सप्तम पृथ्वी से निकला जीव तिर्यञ्च गति में ही क्यों जन्म लेता है?

उत्तर क्योंकि सप्तम पृथ्वी से निकला जीव एक बार पुनः नरक में जावेगा यह नियोग है अतः वहाँ से निकल कर क्रूर तिर्यञ्च होता है और भयानक-अतीव पाप कर पुनः नरक में जाता है।

प्र.584 नरकों से निकले नारकी किन-किन अवस्थाओं में पैदा नहीं होते हैं?

उत्तर नरकों से निकले जीव एकेन्द्रिय, विकलत्रय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, भोगभूमि, लब्ध्यपर्याप्तक, सम्मूर्च्छन और देव पर्याय के जीव रूप में उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र.585 नरकगति से निकले जीव कौन-से पदधारी अवस्थाओं में उत्पन्न नहीं होते हैं?

उत्तर नरकगति से निकले जीव नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र और चक्रवर्ती पदधारी अवस्थाओं में कदापि उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र.586 तीर्थंकर प्रकृति बंध वाला जीव नीचे कितनी पृथ्वियों तक उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर तीर्थंकर प्रकृति बंध वाला जीव नीचे तीन पृथ्वियों तक उत्पन्न हो सकता है।

प्र.587 तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने वाला जीव किस कारण नरक पृथ्वियों में जाता है?

उत्तर जिस मनुष्य ने सम्यक्त्व धारण के पूर्व नरकायु का बंध कर लिया है, पश्चात् सम्यक्त्व को प्राप्त कर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया है ऐसा जीव तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला कहलाता है। वह नीचे तीसरी पृथ्वी तक के नरकों में उत्पन्न हो सकता है।

प्र.588 कौन-सी पृथ्वी तक बद्धायुष्क जीव सम्यक्त्व के साथ उत्पन्न होता है?

उत्तर नरक-बद्धायुष्क जीव सम्यक्त्व के साथ प्रथम पृथ्वी तक ही उत्पन्न होता है। उससे नीचे जाने वाले का सम्यक्त्व यहीं छूट जाता है।

प्र.589 तीर्थंकर प्रकृति बंध वाला सम्यक्त्व से च्युत जीव दूसरी तीसरी पृथ्वी में तीर्थंकर प्रकृति बंध सम्यक्त्व बिना कैसे करता है?

उत्तर तीर्थंकर प्रकृति बंध वाला जीव दूसरी, तीसरी पृथ्वी में जाकर अर्न्तमुहूर्त्त में सम्यग्दृष्टि बनकर पुनः तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने लगता है।

प्र.590 कौन-कौन-से जीव नरकों में उत्पन्न नहीं होते हैं?

उत्तर एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीव नरकों में उत्पन्न नहीं होते तथा नरक गति से नरक गति में जीव, देवगति के जीव, भोग भूमि के जीव, चौबीस कामदेव एवं तीर्थंकरों के माता-पिता नरकों में उत्पन्न नहीं होते।

प्र.591 कौन-कौन-से जीव कौन-कौन-सी नरक-पृथ्वियों तक उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव प्रथम पृथ्वी तक, सरीसृप (छाती के बल से चलने वाले) द्वितीय पृथ्वी तक, पक्षी तृतीय पृथ्वी तक, भुजंगादि सर्प चतुर्थ पृथ्वी तक, सिंह पांचवी पृथ्वी तक, स्त्री छठी पृथ्वी तक, महामत्स्य एवं मनुष्य सप्तम पृथ्वी तक उत्पन्न हो सकते हैं।

प्र.592 संहनन की अपेक्षा कौन-से संहनन वाले जीव कौन-सी नरक पृथ्वी तक उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिका इन छह संहननों वाले संज्ञी जीव तीसरी पृथ्वी तक, असंप्राप्तासृपाटिका रहित पांच संहनन वाले पांचवी पृथ्वी तक, अर्धनाराच पर्यन्त चार संहनन वाले छठी पृथ्वी तक और वज्रवृषभ नाराच संहनन वाले सातवी पृथ्वी तक उत्पन्न हो सकते हैं।

प्र.593 रत्नप्रभादि सप्त नरक पृथ्वियों में क्रमशः जीव अधिक से अधिक निरन्तर कितनी बार उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर रत्नप्रभादि सप्त नरक पृथ्वियों में जीव क्रमशः अधिक से अधिक निरन्तर या बीच में एक पर्याय का अन्तर होते हुए भी निरन्तर कहलाते हुए-आठ बार, सात बार, छह बार, पाँच बार, चार बार, तीन बार और दो बार उत्पन्न हो सकता है।

प्र.594 अन्य पर्याय का अन्तर करने का तात्पर्य क्या है?

उत्तर हाँ! जैसे असंज्ञी प्रथम पृथ्वी तक उत्पन्न हो सकता है उसे द्वितीय बार नरक में जाने का भंग घटाने के लिए संज्ञी में आने के बाद एक बार असंज्ञी में जन्म दिलाना पड़ेगा क्योंकि नरक से निकला जीव असंज्ञी में जन्म नहीं लेता वह संज्ञी में जन्म लेकर, पुनः असंज्ञी में जन्मधारण कर नरक जावेगा तब ही अन्य पर्याय का अन्तर करते हुए भी निरन्तर का भंग (भेद) घटेगा या बनेगा। इसी तरह सम्मूर्च्छन जन्म वाले महामत्स्य को सप्तम पृथ्वी में द्वितीय बार जन्म दिलाने के लिए उसे वहाँ से निकलकर गर्भज तिर्यञ्च बनना पड़ेगा फिर सम्मूर्च्छन महामत्स्य बनकर सप्तम पृथ्वी जावेगा। उसी तरह सप्तम पृथ्वी से निकलकर जीव मनुष्य नहीं होता अतः क्रूर तिर्यञ्च बन फिर मनुष्य होकर सप्तम पृथ्वी जावेगा। इस तरह एक पर्याय का अन्तर करके भी नरक जाने पर निरन्तर कहलाता है।

प्र.595 रत्नप्रभादि सप्त नरक-भूमियों में नारकियों की होने वाली लेश्या कैसी होती है?

उत्तर प्रथम और द्वितीय पृथ्वी के नारकियों के कपोत लेश्या, तृतीय पृथ्वी के उपरिम बिलों के नारकियों में कपोत लेश्या और नीचे के बिलों के नारकियों में नील लेश्या, चतुर्थ पृथ्वी के नारकियों में नील लेश्या, पंचम पृथ्वी के उपरितन बिलों के नारकियों में नील लेश्या और नीचे के बिलों के नारकियों में कृष्ण लेश्या, षष्ठ पृथ्वी के नारकियों में कृष्ण और सप्तम पृथ्वी के नारकियों में परम कृष्ण लेश्या होती है।

प्र.596 नारकियों में द्रव्य लेश्या किस प्रकार होती है?

उत्तर नारकियों में द्रव्य लेश्या (शारीरिक रंग) आयु प्रमाण काल तक एक समान ही रहती है।

प्र.597 नारकियों में भाव लेश्या में परिवर्तन किस तरह का होता है?

उत्तर नारकियो में भाव लेश्या अन्तर्मुहूर्त्त में परिवर्तनशील होती है। अर्थात् स्व-स्व कापोत आदि लेश्याओं में मंद-मंदतर-मन्दतम आदि अनेक अवान्तर भेद होते हैं।

प्र.598 नारकियों का शरीर किस संस्थान रूप होता है?

उत्तर नारकियों का शरीर हुण्डक संस्थान रूप असमान-कुरूप होता है।

प्र.599 नरक गति में उत्पन्न होने के कारण क्या हैं?

उत्तर नरक गति में उत्पन्न होने के कारण बहुत आरम्भ रूप हिंसा, बहुत परिग्रह में आशक्ति, मिथ्यात्व की प्रबलता, मद्य मधु माँस का सेवन, देव, शास्त्र, गुरु का अवर्णवाद, मुनिहत्या, परधन हरण और परस्त्री में आशक्ति आदि हैं।

प्र.600 सप्तम नरक-पृथ्वी से निकला नारकी जीव सम्यग्दृष्टि क्यों नहीं बन सकता?

उत्तर क्योंकि उसका क्रूर तिर्यंच में जन्म लेकर मिथ्यादृष्टि रहना एवं पुनः नरक जाने रूप कार्यों में प्रवृत्त होकर नरक में पुनः एक बार उत्पन्न होना यह नियोग है। या निश्चित स्वभाव है।

प्र.601 छठी पृथ्वी से निकला नारकी जीव क्या प्राप्त कर सकता है?

उत्तर छठी पृथ्वी से निकला प्राणी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर सकता है।

प्र.602 पाँचवी पृथ्वी से निकला नारकी जीव क्या प्राप्त कर सकता है?

उत्तर पाँचवी पृथ्वी से निकला नारकी जीव सकल संयम की प्राप्ति कर सकता है।

प्र.603 चतुर्थ पृथ्वी से निकला जीव कौन-सी अवस्था प्राप्त कर सकता है?

उत्तर चतुर्थ पृथ्वी से निकला जीव केवली व मोक्ष अवस्था प्राप्त कर सकता है।

प्र.604 प्रथम, द्वितीय और तृतीय पृथ्वी से निकला जीव कौन-सी विशिष्ट अवस्था प्राप्त कर सकता है?

उत्तर प्रथम, द्वितीय और तृतीय पृथ्वी से निकला जीव त्रि-लोक का कल्याणकारी व पूज्य तीर्थंकर का पद प्राप्त कर सकता है।

प्र.605 तीर्थंकर के गर्भ में आने के छह माह पूर्व तीर्थंकर जन्म नगरी में जब रत्नों की वर्षा प्रारम्भ हो जाती है तब नरक से आने वाली आत्मा की वहाँ क्या स्थिति होती होगी?

उत्तर ऐसी मंगल बेला में सम्यग्दृष्टि देवगण तीर्थंकर बनने वाले नारकी जीव के चारों ओर कोट रूप बाढ़ लगाकर पहरा देते हैं और उस तीर्थंकर बनने वाली आत्मा को किञ्चित कष्ट नहीं होने देते।

प्र.606 प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकियों की जघन्य आयु कितनी होती है?

उत्तर प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकियों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की होती है।

प्र.607 प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर अंतिम महातमःप्रभा पृथ्वी पर्यन्त नारकियों की उत्कृष्ट आयु कितनी होती है?

उत्तर सातों पृथ्वियों में क्रमशः एक सागरोपम, तीन सागरोपम, सात सागरोपम, दस सागरोपम, सत्तरह सागरोपम, बाईस सागरोपम और तैंतीस सागरोपम नारकियों की उत्कृष्ट आयु होती है।

प्र.608 द्वितीय आदिक पृथ्वियों में नारकियों की होने वाली जघन्य आयु का प्रमाण कितना है?

उत्तर द्वितीय आदिक पृथ्वियों में नारकियों की होने वाली जघन्य आयु का प्रमाण अपनी ऊपर वाली पूर्व पृथ्वी की उत्कृष्ट आयु के प्रमाण रूप है।

प्र.609 रत्नप्रभादि सप्त पृथ्वियों में नारकियों के लिए कौन-कौन-से सम्यग्दर्शनों की प्राप्ति संभव है?

उत्तर रत्नप्रभादि सप्त पृथ्वियों में नारकियों के लिए उपशम एवं क्षयोपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति संभव है।

प्र.610 प्रथम नरक पृथ्वी से लेकर तृतीय नरक पृथ्वी तक रहने वाले नारकियों के लिए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में निमित्त कारण कौन-कौन-से हैं?

उत्तर प्रथम नरक पृथ्वी से लेकर तृतीय नरक पृथ्वी तक नारकियों के लिए सम्यग्दर्शन के निमित्त जातिस्मरण, धर्मश्रवण और और तीव्र वेदनानुभव ये तीन निमित्त हैं। जिनमें से किसी एक निमित्त-

कारण से सम्यक्त्व प्राप्त हो सकता है।

प्र.611 चतुर्थ नरक पृथ्वी से लेकर सप्तम नरक पृथ्वी तक सम्यक्त्व प्राप्ति के निमित्त-कारण कौन-कौन-से हैं?

उत्तर चतुर्थ नरक पृथ्वी से लेकर सप्तम नरक पृथ्वी तक सम्यक्त्व प्राप्ति के निमित्त-कारण जातिस्मरण एवं तीव्र वेदनानुभव ये दो ही हैं।

प्र.612 नरक पृथ्वियों में धर्म श्रवण होना कैसे संभव होता है?

उत्तर पूर्वभव के परिचित देव तृतीय नरक भूमि तक जाकर उपकार के निमित्त नारकियों के लिए धर्मोपदेश देते हैं, अतः तृतीय पृथ्वी तक धर्मश्रवण निमित्त संभव है।

प्र.613 तृतीय पृथ्वी के नीचे धर्म-श्रवण निमित्त संभव क्यों नहीं है?

उत्तर प्रथम कारण कि तृतीय पृथ्वी के नीचे देवों का गमन नहीं है। द्वितीय कारण वहाँ के क्षेत्र का वातावरण अनुकूल न होने से तथा परस्पर में परोपकार की भावना नहीं होने से; वहाँ के सम्यग्दृष्टि नारकी अन्य नारकियों को सम्बोधित नहीं करते अतः वहाँ धर्म श्रवण निमित्त संभव नहीं है।

प्र.614 प्रथम पृथ्वी में नारकियों की पर्याप्त अवस्था में कौन-से सम्यग्दर्शन पाये जाते हैं?

उत्तर प्रथम पृथ्वी में नारकियों की पर्याप्त अवस्था में उपशम, क्षायिक और क्षयोपशम ये तीनों सम्यग्दर्शन पाये जाते हैं।

प्र.615 प्रथम पृथ्वी में अपर्याप्त अवस्था में नारकियों के कौन-से सम्यग्दर्शन पाये जाते हैं?

उत्तर प्रथम पृथ्वी में अपर्याप्त अवस्था में नारकियों के क्षायिक सम्यग्दर्शन तथा कृतकृत्य वेदक की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन पाया जाता है।

प्र.616 कृतकृत्य वेदक की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन कैसे घटता है?

उत्तर क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख जीव जब तक मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी चतुष्क का क्षय नहीं कर देता तब तक वह कृतकृत्य वेदक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि कहलाता है और एक मत से वह मरण कर दूसरी गति में जाते समय उस जीव के अपर्याप्त अवस्था में ऐसी कृतकृत्य वेदक क्षायोपशमिक अवस्था घटित होती है।

प्र.617 द्वितीयादिक पृथ्वियों में जाते समय नारकियों की अपर्याप्त अवस्था में कोई सम्यग्दर्शन घटित होता है क्या?

उत्तर नहीं। क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम पृथ्वी के आगे उत्पन्न नहीं होते।

प्र.618 मध्यलोक में स्थित शुभनाम वाले असंख्यात द्वीप समुद्रों में से मध्यस्थित शुभ नाम वाले कुछ द्वीप, समुद्रों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर जम्बूद्वीप, लवणोदधि समुद्र, धातकीखण्ड द्वीप, कालोदधि समुद्र, पुष्करवर द्वीप, पुष्करवर समुद्र, वारुणीवर द्वीप, वारुणीवर समुद्र, क्षीरवर द्वीप, क्षीरवर समुद्र, घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, क्षौद्रवर द्वीप, क्षौद्रवर समुद्र, नन्दीश्वर द्वीप, नन्दीश्वर समुद्र, अरुणवर द्वीप, अरुणवर समुद्र, अरुणभास द्वीप,

अरुणभास समुद्र, कुण्डलवर द्वीप, कुण्डलवर समुद्र, शंखवर द्वीप, शंखवर समुद्र, रुचकवर द्वीप, रुचकवर समुद्र, भुजगवर द्वीप, भुजगवर समुद्र, कुशवर द्वीप, कुशवर समुद्र और क्रौंचवर द्वीप तथा क्रौंचवर समुद्र इस तरह मध्य लोक में शुभ नाम वाले प्रारम्भ स्थित सोलह द्वीप-समुद्र हैं। (मूलाचार भाग 2)

प्र.619 लवणोदधि आदिक समुद्रों का स्वाद कैसा है?

उत्तर वारुणीवर, लवणोदधि, घृतवर और क्षीरवर ये चार समुद्र अपने-अपने नामानुसार स्वाद वाले हैं। कालोदधि, पुष्करवर और स्वयंभूरमण ये तीन समुद्र जल सदृश स्वाद वाले हैं और शेष समुद्र इक्षुरस सदृश स्वाद वाले हैं।

प्र.620 सभी द्वीप और समुद्र मध्यलोक में किस तरह स्थित हैं?

उत्तर सभी द्वीपों और समुद्रों में प्रथम द्वीप जम्बूद्वीप; थाली सदृश गोल वृत्ताकार रूप में तथा अन्य समुद्र व द्वीप चूड़ीसम वलयाकृति रूप में स्थित हैं। जो एक दूसरे को घेरे हुए हैं।

प्र.621 सर्व द्वीप और समुद्रों का विस्तार कितना है?

उत्तर नाभिसम मेरु पर्वत है जिसके, ऐसा मध्य स्थित जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन का है। उसके आगे लवण समुद्र से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त द्वीप समुद्रों के विस्तार क्रमशः दुगने-दुगने रूप में हैं।

प्र.622 सर्व समुद्र कितनी गहराई वाले हैं?

उत्तर चित्रा भूमि की मोटाई एक हजार योजन है और सर्वसमुद्र एक हजार योजन गहराई वाले हैं। अर्थात् सर्व समुद्रों का तल भाग चित्राभूमि को भेदकर वज्रापृथ्वी पर स्थित है।

प्र.623 ढाईद्वीप किसे कहा जाता है?

उत्तर जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप को ढाई द्वीप कहा गया है।

प्र.624 मानुषोत्तर पर्वत किसे कहते हैं?

उत्तर पुष्करार्ध द्वीप को इष्वाकार रूप से मध्य से भेद करने वाला एवं ढाई द्वीप की सीमा बतलाने वाला पर्वत तथा जिस पर्वत के आगे मनुष्यों की गति नहीं होती है और मनुष्य उसके भीतर ढाई द्वीप में ही पाये जाते हैं ऐसी सीमांकन करने वाला पर्वत मानुषोत्तर पर्वत कहलाता है।



पूजा किये बिना कोई पूज्य नहीं बनता।

No one in this world becomes worthy of worship without first completing their spiritual task.

•••

बिना मुनि बने कोई निश्चय की प्राप्ति नहीं कर सकता।

Without entering the holy state of a monk, one cannot achieve the ultimate certainty of the soul.

अध्याय - 7.
द्वीप, पर्वत, काल- परिवर्तनादि

प्र. 625 ढाई द्वीप के बाहर स्थित भूमियाँ कौन-सी भूमियाँ कहलाती हैं ?

उत्तर ढाई द्वीप की सीमा पर स्थित मानुषोत्तर पर्वत से लेकर अंतिम स्वयंप्रभ पर्वत तक असंख्यात द्वीप समुद्रों में होने वाली भूमियाँ जघन्य भोगभूमियाँ कहलाती हैं।

प्र. 626 स्वयंप्रभ पर्वत कहाँ पर स्थित है?

उत्तर स्वयंप्रभ (नागेन्द्र) पर्वत; अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप के बीचोंबीच (मध्य) में वलयाकार रूप से अवस्थित है।

प्र. 627 ढाई द्वीप के बाहर जघन्य भोगभूमियों तक कौन-से जीव पाए जाते हैं ?

उत्तर ऐसी जघन्य भोगभूमियों में संज्ञी पंचेन्द्रिय एवं पंच स्थावर तिर्यञ्चों का सद्भाव है। हाँ वहाँ पृथ्वी, जल, वायु आदि स्थावर जीव भी पाये जाते हैं।

प्र. 628 ढाई द्वीप के बाहर स्वयंप्रभ पर्वत तक स्थित समुद्रों में कौन-से जीवों का अभाव है?

उत्तर इन मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वत के मध्यस्थित समुद्रों में विकलत्रय व जलचर जीवों का अभाव है।

प्र. 629 स्वयंप्रभ पर्वत के बाहर स्थित स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र का वातावरण किस प्रकार का होता है?

उत्तर स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्र का वातावरण दुषमा सुषमा काल रूप कर्मभूमि के प्रकार का होता है।

प्र. 630 स्वयंभूरमण द्वीप में कौन-से जीव पाये जाते हैं ?

उत्तर स्वयंभूरमण द्वीप में मनुष्यों के अलावा कर्मभूमि सदृश सकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रियादि सर्व तरह के तिर्यंच जीव पाये जाते हैं।

प्र. 631 स्वयंभूरमण समुद्र में कौन-से जीव पाये जाते हैं?

उत्तर स्वयंभूरमण समुद्र में तन्दुल मच्छ, राघव मच्छ आदि सकलेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय आदि विकलेन्द्रिय जीव भी पाये जाते हैं।

प्र. 632 स्वयंभूरमण द्वीप स्थित स्वयंप्रभ पर्वत के बाह्य भाग में पाये जाने वाले तिर्यंच क्या देशसंयम धारण कर सकते हैं?

उत्तर हाँ! वहाँ रहने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय (बहुसंख्यक) तिर्यंच जातिस्मरण या देवों से संबोधन पाकर अणुव्रत धारण कर स्वर्गिक (बहुसंख्यक) देव स्थानों की पूर्ति करते हैं, अर्थात् कल्पवासी देव स्थानों (पर्यायों) को प्राप्त करते हैं। (जम्बूद्वीप या मध्यलोक वर्णन देखें जैनागम संस्कार अ.13, पृ.118 पर)

प्र. 633 वृषभगिरि पर्वत कहाँ पर स्थित है?

उत्तर वृषभगिरि पर्वत; भरत क्षेत्र के मध्य में स्थित षड्खण्डों के विभाजक रूप विजयार्ध पर्वत की उत्तर दिशि में स्थित मध्य म्लेच्छखण्ड के बीचों-बीच गोलाकार रूप में स्थित है।

प्र. 634 वृषभगिरि पर्वत की क्या विशेषता है?

उत्तर चक्रवर्ती द्वारा षट्खण्डों पर विजय प्राप्ति के उपरान्त चक्रवर्ती का नाम वृषभगिरि के ऊपर अंकित किया जाता है यह इस पर्वत की विशेषता है।

प्र. 635 विजयार्ध पर्वत कैसा और कितने विस्तार वाला है?

उत्तर विजयार्ध पर्वत भरत क्षेत्र में पूर्व-पश्चिम लम्बायमान पच्चीस योजन ऊँचा एवं पचास योजन चौड़े विस्तार वाला है।

प्र. 636 विजयार्ध पर्वत के ऊपर क्या विशेष रचना है?

उत्तर विजयार्ध पर्वत में भूतल से दस योजन ऊपर जाकर इसकी उत्तर-दक्षिण दिशा में विद्याधरों के नगरों की दो शाश्वत श्रेणियाँ हैं। वहाँ दक्षिण श्रेणी में पचपन और उत्तर श्रेणी में साठ नगर हैं। इन श्रेणियों से भी दस योजन ऊपर जाकर उसी प्रकार दक्षिण व उत्तर दिशा में अभियोग देवों की श्रेणियाँ हैं। इसके ऊपर नौ कूट हैं पूर्व दिशा के कूट पर सिद्धायतन (जिनमंदिर) है और शेष कूटों पर यथायोग्य नामधारी व्यन्तर व भवनवासी देव रहते हैं।

प्र. 637 विजयार्ध पर्वत के मूल भाग में क्या विशेषता है?

उत्तर विजयार्ध पर्वत के मूल भाग में पूर्व व पश्चिम दिशाओं में तमिस्र व खण्डप्रताप नाम की दो लम्बी गुफाएँ हैं जिनमें क्रमशः गंगा व सिन्धु नदी प्रवेश करती हैं। इन गुफाओं के भीतर बहु मध्यभाग में दोनों तटों से उन्मग्ना एवं निमग्ना नाम की दो नदियाँ निकलती हैं जो गंगा और सिन्धु में मिल जाती हैं।

प्र. 638 उन्मग्ना और निमग्ना नदियों की क्या विशेषता है?

उत्तर उन्मग्ना नदी के कुण्ड में डाली हुई वस्तु नीचे से ऊपर की ओर आ जाती है और निमग्ना नदी में डाली हुई वस्तु ऊपर से नीचे की ओर चली जाती है।

प्र. 639 विजयार्ध नामक पर्वत मात्र भरत क्षेत्र में ही है या अन्य क्षेत्र में भी है?

उत्तर भरत क्षेत्र की भांति ऐरावत क्षेत्र के मध्य में भी एक विजयार्ध है जिसका सम्पूर्ण कथन भरतस्थ विजयार्धवत् ही है, कूटों व तन्निवासी देवों के नाम भिन्न हैं। विदेह क्षेत्र के बत्तीस उपविदेहों में प्रत्येक के मध्य पूर्वापर लम्बायमान विजयार्ध पर्वत हैं, जिनका सम्पूर्ण वर्णन भरत के विजयार्धवत् है। विशेषता यह है कि यहाँ उत्तर व दक्षिण दोनों श्रेणियों में पचपन-पचपन नगर हैं, इनके ऊपर नौ-नौ कूट हैं, परन्तु उनके व उन पर रहने वाले देवों तथा प्रमुख नदियों के नाम भिन्न हैं। (त्रि.सा.)

प्र. 640 विजयार्ध पर्वत के ऊपर कौन-सी भूमि अवस्थित होती है और वहाँ कौन-सा काल चलता है?

उत्तर विजयार्ध पर्वत पर सदा कर्म भूमि अवस्थित होती हैं और वहाँ हमेशा एक सदृश दुषमा-सुषमा (वर्तमान अवसर्पिणी के चतुर्थकाल के समान) काल चलता रहता है।

प्र. 641 विजयार्ध पर्वत के ऊपर स्थित अकृत्रिम विजयार्ध श्रेणियों से विद्याधर मनुष्यों या दुषमासुषमा काल से सम्बन्धित मनुष्यों के लिए संयम धारण की योग्यता, कैवल्य की उपलब्धि और मोक्ष

की प्राप्ति सदा काल सम्भव होती है क्या?

उत्तर हाँ! वहाँ सदाकाल दुषमासुषमा काल का वातावरण होने से उत्तम संहननादि के भी निमित्त मिलने पर संयम, कैवल्य और मोक्ष की प्राप्ति सदा संभव है।

प्र. 642 विजयार्ध पर्वत के विद्याधरों का विदेह क्षेत्रादि में गमना-गमन आज भी संभव होता है क्या?

उत्तर विद्याधर-मनुष्य विद्याओं के स्वामी होते हैं वे आकाशगामनी विद्याओं द्वारा ढाई द्वीप में कभी भी, कहीं भी गमनागमन कर सकते हैं।

प्र. 643 आज इस भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में चतुर्थ काल के समान इस पंचम काल में विद्याधर क्यों नहीं दिखाई देते?

उत्तर चतुर्थ काल में यहाँ भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में भी विजयार्ध श्रेणी जैसा दुषमासुषमा काल का वातावरण था। आयु, उत्सेधादि समान थे और लोग बड़े पुण्यवान भी थे अतः विजयार्ध श्रेणी के तद्भव मोक्षगामी हनुमान व अधोगामी रावण जैसे विद्याधरों का निवास इस आर्यखण्ड में सहज संभव था लेकिन आज वहाँ के विद्याधरों का अदृश्यरूप में आना-जाना सम्भव होते हुए भी साक्षात्कार होना असंभव है।

प्र. 644 युग परिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर दो कल्पों का एक युग होता है ऐसे कल्पकालों के परिवर्तन का नाम युग परिवर्तन कहलाता है।

प्र. 645 कल्पकाल किसे कहते हैं?

उत्तर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिलकर एक कल्पकाल कहे जाते हैं।

प्र. 646 कल्पकाल में काल संख्या कितनी होती है?

उत्तर दस-दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम काल प्रमाण वाले क्रमशः उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी (काल का संयुक्त) रूप कल्पकाल की काल संख्या बीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है।

प्र. 647 उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में होने वाले छह-छह कालों के नाम और उनमें काल संख्या का विभाजन किस तरह से है?

उत्तर

	षट्कालों के नाम	**काल संख्या**
अवसर्पिणी	सुषमासुषमा काल	-चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम
	सुषमा काल	-तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम
	सुषमादुषमा काल	-दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम
	दुषमासुषमा काल	-ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम
	दुषमा काल	-इक्कीस हजार वर्ष
	अतिदुषमा काल	-इक्कीस हजार वर्ष
उत्सर्पिणी	दुषमादुषमा काल	-इक्कीस हजार वर्ष
	दुषमाकाल	-इक्कीस हजार वर्ष

दुषमासुषमाकाल	-ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम
सुषमादुषमाकाल	-दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम
सुषमाकाल	-तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम
अतिसुषमाकाल	-चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम

प्र. 648 इन कालों में भोग भूमि व कर्म भूमि की व्यवस्था कब-कब होती है ?

उत्तर अवसर्पिणी के प्रथम तीन कालों में एवं उत्सर्पिणी के अंत के तीन कालों में भोगभूमि तथा अवसर्पिणी के अंत तीन कालों में एवं उत्सर्पिणी के प्रथम तीन कालों में कर्मभूमि की व्यवस्था होती है।

प्र.649 उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी की भावात्मक व्याख्या किस तरह की है ?

उत्तर शारीरिक ऊँचाई, आयु, बल, ऋद्धि और तेज आदिक जिन समयों में उत् अर्थात् उत्कृष्ट या वृद्धि को प्राप्त होते चले जाते हैं वह उत्सर्पिणी और जिन समयों में अव अर्थात् अनुत्कृष्ट या हीन होते चले जाते हैं वह अवसर्पिणी काल कहलाता है।

प्र. 650 सुषमा, दुःषमा का लक्षण क्या है ?

उत्तर 'समा' काल के विभाग को कहते हैं तथा सु और दुर् उपसर्ग क्रम से अच्छे और बुरे अर्थ में आते हैं। सु और दुर् को समा के साथ जोड़ने पर तथा व्याकरणानुसार 'स' को 'ष' कर देने से सुषमा और दुःषमा शब्दों की सिद्धि होती है। जिसका अर्थ सुखद् या दुःखद काल होता है।

प्र. 651 सुषमा-सुषमाकाल आदि की भोगभूमियों में पृथ्वी का वातावरण किस तरह का होता है?

उत्तर इन भोग भूमियों में भूमि; धूल, धूम, अग्नि और हिम से रहित तथा कण्टक, बर्फ एवं द्वि, त्रि और चतुरिन्द्रिय रूप विकलेन्द्रिय जीवों से रहित होती है, तथा इन कालों में भूमि; तन, मन और नयनों को सुखदायक, रत्नों से भरी व दर्पणवत् दर्शित होती है।

प्र. 652 भोग-भूमियों का प्राकृतिक सौंदर्य और अधिक किस तरह का है ?

उत्तर भोगभूमियों में कोमल घास व फलों से लदे वृक्ष, कमलों से परिपूर्ण वापिकाएँ, सुन्दर भवन, कल्पवृक्षों से परिपूर्ण पर्वत और सुन्दर नदियाँ हैं, तथा जहाँ दिन-रात्रि का भेद, शीत व गर्मी की वेदना का अभाव रहता है।

प्र. 653 भोग-भूमि में मनुष्यों की प्रकृति किस तरह की होती है ?

उत्तर भोग-भूमि में अनुपम लावण्य से परिपूर्ण सुख सागर में मग्न, मार्दव एवं आर्जव गुण से सहित मन्द कषायी सुशीलतापूर्ण भोग-भूमि में मनुष्य होते हैं। वे मनुष्य गुणियों के गुणों में अनुरक्त, जिन पूजन करते हैं। उपवासादि संयम के धारक परिग्रह रहित यतियों को आहार दान देने में तत्पर रहते हैं। (ति.प.365-367)

प्र.654 भोग-भूमि के मनुष्य किस कार्य से रहित होते हैं ?

उत्तर भोग-भूमि के मनुष्य मांसाहार के उदम्बर फलों के सेवन से रहित, असत्य के व्यवहार से रहित, परस्त्री भोग और परवस्तु हरण की भावना से रहित होते हैं। तथा उनके तन से मल, मूत्र का स्राव नहीं होता है।

प्र. 655 भोग-भूमि के मनुष्यों में विक्रिया और आभरण की क्या विशेषता होती है?

उत्तर भोग-भूमि के मनुष्य विक्रिया से बहुत से शरीरों को बनाकर अनेक प्रकार के भोगों को; पूर्ण आयु पर्यंत भोगते हैं तथा स्वभाव से ही मुकुट, हार आदि आभूषणों से युक्त होते हैं।

प्र. 656 भोग-भूमि में मनुष्यों के लिए भोज्य व्यञ्जन एवं अलंकार भवन आदि रूप भोगोपभोग पदार्थ किस तरह उपलब्ध होते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में सर्व भोगोपभोग पदार्थ वहाँ भोग-भूमिज जीवों के पुण्य से सुस्थित कल्प वृक्षों से प्राप्त होते हैं। (कल्पवृक्षों का सुन्दर विवरण इसी कृति के प्रारम्भ में प्रथमानुयोग के विषय में वर्णित किया गया है।)

प्र. 657 भोग-भूमि में जीवों का गर्भधारण व जन्म-मरण किस तरह होता है?

उत्तर भोग-भूमि में मनुष्य और तिर्यञ्चों की नौ मास आयु शेष रहने पर गर्भ रहता है और मृत्यु-समय आने पर युगल बालक-बालिका जन्म लेते हैं। नवमास पूर्ण होने पर गर्भ से युगल निकलते ही तत्काल माता-पिता मरण को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् पुरुष की छींक आने से और स्त्री की जंभाई आने से मृत्यु हो जाती है।

प्र. 658 उत्तम, मध्यम एवं जघन्य भोगभूमिज जीवों को अंगूठे-चूसने, उपवेशन (बैठना) आदि सप्त अवस्थाओं में कितना-कितना काल आपेक्षित (लगता) है?

उत्तर उत्तम, मध्यम और जघन्य भोग-भूमिज जीवों को अंगूठा चूसने, उपवेशन, अस्थिरगमन, स्थिर गमन, कलागुणों की प्राप्ति, तारुण्य और सम्यग्दर्शन रूप इन सप्त अवस्थाओं में क्रमशः 3-3, 5-5 और 7-7 दिनों का काल आपेक्षित होता है। अर्थात् उत्तम भोगभूमि का जीव 21 दिनों में सम्यग्दर्शन तक की अवस्था प्राप्त करने के योग्य हो पाता है। इसी तरह मध्यम भोग-भूमि में 35 दिनों में तथा जघन्य भोगभूमि में 49 दिनों में सम्यक्त्व की भी प्राप्ति के योग्य हो पाता है।

प्र. 659 भोग-भूमिज मनुष्यों के लिए अंगूठे से क्या महत्त्व प्रदर्शित होता है?

उत्तर भोग-भूमिज मनुष्यों के अंगूठे से अमृत झरता है जिसे वे चूसा करते हैं और वह अमृत उनके अविलम्ब शारीरिक विकास में कारण बनता है।

प्र. 660 भोग-भूमिज मनुष्य; जीवन में कितनी कलाओं में निपुण होते हैं?

उत्तर भोग-भूमिज मनुष्य पूर्ण जीवन में अक्षरकला, चित्रकला, गणित, गन्धर्व (संगीत) और शिल्प आदि चौसठ कलाओं में स्वभाव से अतिशय निपुण होते हैं।

प्र. 661 उत्तम, मध्यम और जघन्य रूप अशाश्वत भोग-भूमियों में जीवों के ऋद्धि, तेज आदि सदा समान ही रहते हैं क्या या कोई विशेषता है?

उत्तर अवसर्पिणी काल सम्बन्धी भोग-भूमियों में जीवों के शारीरिक उत्सेध, आयु, बल, ऋद्धि (विक्रिया) और तेज आदि हीन-हीन होते चले जाते हैं। (भोग-भूमियों में उत्सेध, आहारादि देखिये जैनागम संस्कार अध्याय 13 पृ. 65)

प्र. 662 भोग-भूमियों में तिर्यञ्चों के सद्भाव एवं अनके आहार सम्बन्धी क्या विशेषता है?

उत्तर भोग-भूमियों में गाय, सिंह, हाथी, शृंगाल, शूकर, सारंग, रोझ, भैंस, बन्दर, गवय, कोयल, तोता, कबूतर और राजहंस आदि तिर्यञ्च; कल्पवृक्षों से प्राप्त शाकाहार का मनवांछित स्वादिष्ट भोग करते हैं।

प्र. 663 वर्तमान दुषमसुषमा काल (चतुर्थकाल) कब प्रारम्भ हुआ था?

उत्तर ऋषभनाथ तीर्थंकर के निर्वाण होने के पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मास के व्यतीत होने पर दुषमसुषमा नामक चतुर्थ काल प्रारम्भ हुआ था।

प्र. 664 दुषमा काल प्रारम्भ के कितने वर्ष पूर्व महावीर भगवान् को निर्वाण प्राप्त हुआ?

उत्तर दुषमा नामक पञ्चम काल के प्रारम्भ में तीन वर्ष आठ मास एक पक्ष के शेष रहने पर तीर्थंकर महावीर भगवान् को निर्वाण की प्राप्ति हुयी थी।

प्र. 665 भगवान महावीर के निर्वाण के उपरान्त कौन-से अनुबद्ध केवली हुए थे?

उत्तर भगवान महावीर के निर्वाणोपरान्त गौतम स्वामी, सुधर्मस्वामी और जम्बूस्वामी तीन अनुबद्ध केवली हुए थे।

प्र. 666 केवलियों के निर्वाणोपरान्त ग्यारह अंग और चौदह पूर्व ज्ञान (द्वादशांग) रूप सम्पूर्णश्रुत के ज्ञाता कौन-से पाँच श्रुतकेवली हुए थे?

उत्तर प्रथम श्रुतकेवली विष्णु आचार्य हुए। द्वितीय श्रुतकेवली नन्दिमित्र आचार्य हुए। तृतीय श्रुतकेवली अपराजित आचार्य हुए। चतुर्थ श्रुतकेवली गोवर्धन आचार्य हुए और पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहु आचार्य हुए।

प्र. 667 श्रुतकेवली मुनीश्वरों के उपरान्त ग्यारह अंग और दस पूर्व ज्ञान के ज्ञाता कौन-से मुनीश्वर हुए थे?

उत्तर ग्यारह अंग और दस पूर्व ज्ञान के ज्ञाता हुए-

1. विशाखाचार्य, 2.प्रोष्ठिल आचार्य (चन्द्रगुप्त मौर्य), 3.क्षत्रिय आचार्य (कृतिकार्य) 4.जयसेन आचार्य, 5.नागसेन आचार्य, 6.सिद्धार्थ आचार्य, 7.धृतषेण आचार्य और 8. विजयसेन आचार्य।

प्र. 668 अनेक अंगपूर्वों के ज्ञाता आचार्यों के उपरान्त अन्तिम अंगांशधर श्रुत ज्ञाता आचार्य कौन थे?

उत्तर अन्तिम अंगांशधर श्रुतज्ञाता धरसेन आचार्य थे।

प्र.669 धरसेन आचार्य ने कौन-से सुयोग्य शिष्यों के लिए अपना ज्ञान प्रदान किया था?

उत्तर धरसेनाचार्य ने महामुनि पुष्पदन्त और महामुनि भूतबली नामक दो महान सुयोग्य शिष्यों के लिए अपना

ज्ञान प्रदान किया था।

प्र. 670 पुष्पदन्त, भूतबली नामक महान आचार्यों ने प्राकृतभाषा में कौन-से महान ग्रन्थ की रचना कब की थी?

उत्तर पुष्पदन्त, भूतबली इन महान आचार्यों ने प्राकृतभाषा में षट्खण्डागम नामक महान ग्रन्थ की रचना लगभग वीर-निर्वाण संवत् 600 से 650 के बीच की थी।

प्र. 671 आचार्य कुन्दकुन्द देव ने 'षट्खण्डागम' महान ग्रन्थ पर कौन-से नाम वाली विस्तृत टीका लिखी थी?

उत्तर आचार्य कुन्दकुन्द देव ने 'षट्खण्डागम' महान ग्रन्थ पर सर्वप्रथम 'परिकर्म' नामक विशाल टीका लिखी थी।

प्र.672 आचार्य कुन्दकुन्द देव के श्री गुरुवर का शुभनाम क्या था?

उत्तर आचार्य कुन्दकुन्द देव के श्री गुरुवर का शुभ नाम जिनचन्द्र स्वामी था। (आचार्य कुन्द-कुन्द विरचित अनेक (40) ग्रन्थों के नाम तमिल साहित्य से प्राप्त हैं- देखिये सन्दर्भ- जैनागम संस्कार अध्याय 10, प्र. 16 पर।)

प्र. 673 'षट्खण्डागम' ग्रन्थ में सिद्धांत विषयक छह खण्ड कौन-से नाम वाले वर्णित हैं?

उत्तर षट्खण्डागम ग्रन्थ में 1.जीवट्ठाण, 2.खुद्दाबन्ध, 3.बन्धस्वामित्व विचय, 4.वेदना, 5.वर्गणा और 6. महाबंध नाम से छह खण्डरूप में विषय वर्णित किया गया है। (जो सोलह पुस्तकों में विभाजित है।)

प्र.674 'षट्खण्डागम' ग्रन्थ पर विशाल रूप धवला नामक टीका बनाने का सौभाग्य कौन से महान आचार्य को प्राप्त हुआ?

उत्तर षट्खण्डागम महान सैद्धान्तिक ग्रन्थ पर विशाल धवला नामक टीका लिखने का सौभाग्य आचार्य वीरसेन स्वामी को प्राप्त हुआ था।

प्र.675 'कषायपाहुड़' सैद्धान्तिक महान ग्रन्थ को किन विशिष्ट आचार्यों ने कब विरचित किया था?

उत्तर कषायपाहुड़ इस सैद्धान्तिक महान ग्रन्थ की रचना आचार्यगुणधर, आचार्य आर्यमंक्षु व आचार्य नागहस्ति और आचार्य यतिवृषभ ने लगभग वीर-निर्वाण संवत् 500 से 660 के बीच की थी।

प्र.676 कषायपाहुड़ महान ग्रन्थ पर कौन-से महान आचार्यों ने कितनी विशाल कौन-सी नामवाली टीका विरचित की थी?

उत्तर कषायपाहुड़ महान ग्रन्थ पर आचार्य वीरसेन स्वामी ने 20 हजार श्लोक प्रमाण एवं शेष टीका उनके ही शिष्य आचार्य जिनसेन स्वामी ने गुरु समाधि के उपरान्त 40 हजार श्लोक प्रमाण 'जयधवला' नामक टीका विरचित की थी।

प्र. 677 दुषमा नामक पंचम काल में श्रुततीर्थ का व्युच्छेद कब हो जावेगा?

उत्तर इस दुषमा काल में धर्म प्रवर्तक श्रुततीर्थ का व्युच्छेद वीर-निर्वाण के बाद 20317 वर्षों में हो जावेगा।

प्र. 678 दुषमा काल में कौन-से अन्तिम मुकुटधारी राजा ने किनके चरणों में दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण

की थी ?

उत्तर दुषमा काल में अन्तिम मुकुट धारी राजा सम्राट चन्द्रगुप्त ने स्वामी भद्रबाहु श्रुतकेवली के चरणों में दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण की थी।

प्र.679 पंचम (दुषमा) काल में धर्म द्रोही कल्की व उपकल्की कब उत्पन्न होता है ?

उत्तर पंचम काल में पाँच सौ वर्षों में एक उपकल्की एवं एक हजार वर्ष में एक कल्की उत्पन्न होता है।

प्र.680 ऐसे धर्म द्रोही कल्की; मुनियों पर किस तरह बाधा उत्पन्न करता है ?

उत्तर धर्म द्रोही कल्की; मुनियों से आहार पर भी शुल्क मांगता है (उनकी अंजुली का एक ग्रास आहार ले लेता है) और मुनिराज अन्तराय कर निराहार लौट आते हैं।

प्र. 681 धर्म द्रोही कल्की को देवता किस तरह सबक देते हैं ?

उत्तर धर्मद्रोही कल्की को असुर; जीवन से रहित कर देते हैं।

प्र. 682 ऐसे विकट समय में कल्की के प्राणान्त होने के उपरांत धर्म का संरक्षण किस तरह होता है?

उत्तर ऐसे विकट समय में अर्थात् प्रत्येक एक हजार वर्ष में एक मुनि को अवश्य रूप से अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है और मुनिवर शास्त्रों का और आयतनों (जिनमंदिर आदि) के संरक्षण का उपाय बतलाते हैं।

प्र.683 इस दुषमा नामक पंचम काल में अन्तिम कल्की के समय कौन-से मुनिराज अवधिज्ञान के धारक होंगे ?

उत्तर इस पंचमकाल के अंत में वीरांगज नामक मुनिराज अवधिज्ञान के धारक होंगे।

प्र.684 पंचम काल के अन्त में वीरांगज नामक मुनिराज के समय कौन-सी आर्यिका एवं श्रावक व श्राविका रहेंगी?

उत्तर वीरांगज नामक मुनिराज के समय सर्वश्री नामक आर्यिका, अग्निदत्त नामक श्रावक तथा पंगुश्री नामक श्राविका रहेंगी।

प्र.685 अन्तिम कल्की के द्वारा उपसर्ग किये जाने पर अर्थात् वीरांगज मुनि का शुल्क के रूप में ग्रास उठा लिये जाने पर चतुर्विध संघ की क्या प्रतिक्रिया होगी ?

उत्तर अन्तिम कल्की द्वारा बाधा उत्पन्न होने पर वीरांगज मुनि आदि चतुर्विध संघ कार्तिक कृष्ण अमावस्या को सल्लेखना पूर्वक देह त्याग कर सौधर्म स्वर्ग में देव पर्याय को प्राप्त होंगे।

प्र.686 चतुर्विध संघ के समाधि मरण के दिन कौन-सी घटना घटेगी?

उत्तर उस दिन क्रोध को प्राप्त हुआ असुर देव; कल्की के प्राणान्त कर देगा और सूर्यास्त के समय अग्नि विनष्ट हो जावेगी।

प्र.687 धर्मद्रोही कल्की पाप के भार से कौन-सी गति में जाकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर धर्मद्रोही 21 कल्की एक सागर की आयु से युक्त होकर धम्मा नरक (प्रथम पृथ्वी रत्नप्रभा) में जाकर उत्पन्न होते हैं।

प्र.688 दुषमादुषमा नामक छठा काल कब प्रारम्भ होता है ?

उत्तर अन्तिम कल्की के पश्चात् तीन वर्ष आठ मास और एक पक्ष के बीत जाने पर महाविषम वह अतिदुषमा नामक छठा काल प्रारम्भ होता है। (छह कालों में आयु उत्सेध व आहार वर्णन देखें जैनागम संस्कार अ.13)

प्र.689 अतिदुषमा काल में मनुष्यों का शरीर किस वर्ण का होता है ?

उत्तर दुषमा-दुषमा काल में मनुष्यों का शरीर धूमवर्ण (कृष्णवर्ण) का होता है।

प्र.690 अतिदुषमा काल में मनुष्यों का आहार किस तरह का होता है ?

उत्तर ऐसे अतिदुषमा काल में मनुष्यों का आहार मूल, फल व आमिष आदिक होता है वे उसी को खाकर अपनी उदर पूर्ति करते हैं।

प्र.691 अतिदुषमा काल में क्या मनुष्य भवनों में निवास करते हैं ?

उत्तर नहीं! ऐसे अतिदुषमा काल में मनुष्यों के लिए भवन, वृक्ष और वस्त्रादि दिखाई नहीं देते।

प्र.692 दुषमादुषमा नामक काल में मनुष्यों को होने वाले शारीरिक दुःख कौन-से होते हैं?

उत्तर ऐसे अतिदुषमा काल में मनुष्य प्रायः पशुओं जैसा आचरण करने वाले क्रूर, बहरे, अन्धे, काने, गूंगे दुर्गन्धित व जूँ, लीख युत केश सह रहते हैं। वे मनुष्य बन्दर जैसे रूपवाले एवं कुबड़े, बोने और व्याधि युक्त शरीर वाले होते हैं।

प्र.693 ऐसे छठे काल के मुनष्य किस स्वभाव वाले होते हैं ?

उत्तर छठे काल के मनुष्य क्रोधी, अति-कषायी, अति-पापिष्ठ, दीन-दरिद्र और स्वजन जनों से विहीन स्वभाव वाले होते हैं।

प्र.694 ऐसे छठे काल में आगमन और निर्गमन वे मनुष्य किस रूप में करते हैं?

उत्तर ऐसे छठे काल में नरक और तिर्यंच गति से आये हुए जीव यहाँ जन्म लेते हैं, तथा यहाँ से मरण कर घोर नरक व तिर्यंच गति में जन्म लेते हैं।

प्र.695 छठे काल में कौन-कौन सी हानियाँ होती चली जाती हैं?

उत्तर छठे काल में जीवों की ऊँचाई, आयु और शक्ति की हानि होती चली जाती है।

प्र.696 छठे काल का अन्त किस तरह से होता है?

उत्तर उनन्चास दिन कम इक्कीस हजार वर्षों के व्यतीत होने पर जीवों को भयप्रदायक घोर प्रलय-काल प्रवृत्त होता है।

प्र.697 छठे काल के अन्त में प्रलय किस तरह प्रवृत्त होता है ?

उत्तर प्रलय के समय पर्वत व शिलादि को चूर्ण कर देने वाली सात दिनों तक संवर्तक वायु चलती है। वृक्ष और पर्वतों के भंग होने से मनुष्य एवं तिर्यंच, वस्त्र और स्थान की अभिलाषा करते हुए बहुत प्रकार से विलाप करते हैं। इस समय पृथक्-पृथक् संख्यात व सम्पूर्ण बहत्तर युगल गंगा-सिन्धु नदियों की वेदी और विजयार्द्धवन (व विजयार्ध पर्वत की गुफाओं) में प्रवेश करते हैं। इस समय देव और विद्याधर

दयार्द्र चित्त होकर मनुष्य और तिर्यंचों में से संख्यात जीव राशि को उन सुरक्षित प्रदेशों में ले जाकर रखते हैं। उस समय गम्भीर गर्जना से सहित मेघ तुहिन और क्षार जल तथा विष जल में से प्रत्येक सात दिन तक बरसाते हैं। इसके अतिरिक्त वे मेघ के समूह धूम, धूलि वज्र एवं जलती हुई दुष्प्रेक्ष्य ज्वाला, इनमें से हर एक को सात दिन तक बरसाते हैं। उनन्चास दिनों के इस क्रम से भरत क्षेत्र के भीतर आर्य खण्ड में चित्रा पृथ्वी के ऊपर स्थित वृद्धिंगत एक योजन की भूमि जलकर नष्ट हो जाती है। वज्र और महाग्नि के बल से आर्यखण्ड की बढ़ी हुई भूमि अपने पूर्ववर्ती स्कन्ध स्वरूप को छोड़कर लोकान्त (मध्यलोकान्त) तक पहुँच जाती है। उस समय आर्य खण्ड शेष भूमियों के समान दर्पण तल के सदृश कान्ति से स्थित और धूलि एवं कीचड़ की कलुषता से रहित हो जाता है। वहां पर उपस्थित (सुरक्षित) मनुष्यों की ऊँचाई 1 हाथ, आयु 16 या 15 वर्ष प्रमाण और शक्ति आदिक तदनुसार ही होते हैं। (प्रमाण-म.पु./73/447-459, त्रि.सा./864-867)।

प्र.698 शांतिपूर्ण वातावरण के साथ उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ किस तरह से होता है?

उत्तर उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ में सात दिनों तक पुष्कर मेघ सुखोत्पादक जल को बरसाते हैं, जिससे वज्राग्नि से जली हुई सम्पूर्ण पृथ्वी शीतल हो जाती है। क्षीर मेघ सात दिनों तक क्षीरजल वर्षाते हैं, इस प्रकार क्षीर जल से भरी हुई यह पृथ्वी उत्तम कान्ति से युक्त हो जाती है। इसके पश्चात् सात दिन तक अमृतमेघ अमृत की वर्षा करते हैं। इस प्रकार अमृत से अभिषिक्त भूमि पर लतागुल्म इत्यादि उगने लगते हैं। उस समय रसमेघ सात दिनों तक दिव्य रस की वर्षा करते हैं। इस दिव्य रस से परिपूर्ण वे सब (पदार्थ) रस वाले हो जाते हैं। विविध रसपूर्ण औषधियों से भरी हुई भूमि सुस्वाद रूप परिणत हो जाती है। पश्चात् शीतल गन्ध को ग्रहण कर वे मनुष्य और तिर्यंच विजयार्ध की गुफाओं से बाहर निकल आते हैं।

प्र.699 प्रलय समाप्ति और सुभिक्ष्य होने पर मनुष्य किस तरह आचरण करते हैं?

उत्तर उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ में मनुष्य; पशुओं जैसा आचरण करते हुए क्षुधित होकर वृक्षों के फल, मूल व पत्ते इत्यादि का सेवन करते हैं।

प्र.700 युग का प्रारम्भ किस काल में होता है?

उत्तर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप युग का प्रारम्भ श्रावण कृष्णा पड़िवा के दिन रुद्र मुहूर्त्त के रहते हुए सूर्य का शुभ उदय होने पर अभिजित नक्षत्र के प्रथम योग में युग का प्रारंभ होता है।

प्र.701 उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी दुषमा दुषमा काल में जीवों की उन्नति किस तरह से होती है?

उत्तर उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी दुषमा दुषमा नामक प्रथम काल के प्रारम्भ में शरीर की ऊँचाई एक हाथ प्रमाण होती है। इसके आगे तेज, बल, बुद्धि आदि सब काल स्वभाव से उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं।

प्र.702 उत्सर्पिणी काल के दुषम नामक दूसरे काल में मनुष्यों की अवस्था किस तरह की होती है?

उत्तर दुषम नामक दूसरे काल के प्रारम्भ में मनुष्यों को शरीर की ऊँचाई 3 हाथ प्रमाण होती है। इस काल में

20,000 वर्ष बीतने के उपरांत 1 हजार वर्ष शेष रहने पर 14 कुलकरों की उत्पत्ति होने लगती है। कुलकर म्लेछ सदृश लोगों के लिए न्यायनीति का उपदेश देते हैं।

प्र.703 उत्सर्पिणी काल के दुषम सुषमा नामक तृतीय काल में मनुष्यों की क्या अवस्था होती है?

उत्तर उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी दुषम सुषमा नामक तृतीय काल के प्रारम्भ में शरीर की ऊँचाई सात हाथ प्रमाण होती है। मनुष्य पाँच वर्ण वाले शरीर से युक्त, मर्यादा, विनय एवं लज्जा से सहित सन्तुष्ट और सम्पन्न होते हैं। इस काल में 24 तीर्थंकर होते हैं। उनके समय में 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण और नौ प्रतिनारायण रूप 63 श्लाका पुरुष क्रमशः उत्पन्न होते हैं। इस काल के अन्त में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण होती है।

प्र.704 उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी सुषमादुषमा, सुषमा, सुषमासुषमा नामक काल के मनुष्य व तिर्यंचों के शरीर, भोग इत्यादिक किस प्रकार होते हैं?

उत्तर उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी सुषमा दुषमा, सुषमा, सुषमासुषमा चतुर्थ, पंचम एवं छठे काल के जीवों के शरीरादि; अवसर्पिणी काल सम्बन्धी जघन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट भोगभूमि सदृश हुआ करते हैं परन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि यहाँ उत्सर्पिणी काल में जघन्य से उत्कृष्ट की ओर शरीरादिक वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

प्र.705 भोगभूमि के जीव मरणोपरान्त किस गति में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर भोगभूमि के मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच मरणोपरान्त भवनत्रिक (भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क) देवों में उत्पन्न होते हैं तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्य व तिर्यंच सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों में उत्पन्न होते हैं।

प्र.706 कुभोगभूमियाँ कहाँ स्थित हैं?

उत्तर लवण समुद्र के भीतरी चारों दिशाओं में चार द्वीप, चार विदिशाओं में चार द्वीप और आठ अन्तर दिशाओं में आठ द्वीप, हिमवन पर्वत (कुलाचल), भरत क्षेत्र सम्बन्धी विजयार्ध पर्वत, शिखरी कुलाचल और ऐरावत सम्बन्धी विजयार्ध पर्वत, इन चारों पर्वतों के दोनों अन्तिम भागों के निकट एक-एक अर्थात् आठ द्वीप हैं। इस तरह लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट के कुल द्वीपों की संख्या (4+4+8+8=24) 24 है। इसके बाह्य तट पर भी 24 द्वीप हैं, अतः लवण समुद्र सम्बन्धी 48 द्वीप होते हैं। इसी तरह कालोदधि समुद्र के दोनों तटों के 48 द्वीप हैं। कुल मिलाकर 96 संख्या रूप द्वीपों में कुभोगभूमि की रचना है।

प्र.707 कुभोग भूमि में मनुष्यों के जन्मादिक किस तरह होते हैं?

उत्तर कुभोग भूमि में मनुष्यों के जन्मादिक जघन्य भोगभूमि सदृश होते हैं तथा उनकी आयु का प्रमाण एक पल्योपम है।

प्र.708 कुभोग भूमि के जीवों का आहार किस तरह का होता है?

उत्तर कुभोगभूमि के जीवों का आहार कल्पवृक्षों के फल, अमृतमय तृण व मधुर मिट्टी होता है।

प्र.709 भोग भूमि में जाकर कौन-से जीव जन्मधारण करते हैं?

उत्तर मिथ्यात्व भाव से सहित होते हुए भी मन्द कषायी; अष्ट मूलगुण पालक, जिनपूजक, निर्ग्रन्थों को दान देने वाले; भोग भूमि में उत्पन्न होते हैं। तथा कितने ही जीव मिथ्यात्व के साथ मनुष्य आयु का बंध कर पश्चात् सम्यग्दर्शन या तीर्थंकर के पाद मूल में क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ऐसे बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव भोगभूमि में जन्म लेते हैं। बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि तिर्यंच अथवा दान की अनुमोदना करने वाले तिर्यञ्च जीव भी भोग-भूमि में उत्पन्न होते हैं।

प्र.710 कुभोग भूमि में कौन-से जीव जन्म धारण करते हैं?

उत्तर मिथ्यात्व-सह जिनभेष धारण कर माया प्रवृत्ति करने वाले, धर्म की अवज्ञा करने वाले, ज्योतिष एवं मंत्रादि विद्याओं द्वारा आजीविका करने वाले, धनलोलुपी, तीन गारव (रस, ऋद्धि और शारीरिक शक्ति का अभिमान) धारण करने वाले, चार संज्ञाओं (आहार, भय, मैथुन और परिग्रह) में सदा संलग्न रहने वाले, गृहस्थों के विवाह व आरम्भ-सारम्भ के कार्य कराने वाले, अपने दोषों का अपरिमार्जन करने वाले, पर जनों पर दोष लगाने वाले, पंचाग्नि तप तपने वाले, मौन भंगकर आहार करने वाले, दुर्भावना रखने वाले, अपवित्रता से रहने वाले, सूतक वालों से एवं रजस्वला स्त्री के स्पर्श से युक्त तथा नीच गौत्रीय सम्बन्ध से युक्त रहने वाले, सदोष दान तथा कुपात्रों को दान देने वाले जीव मरण कर कुभोग भूमि में जन्म धारण करते हैं।

प्र.711 कुभोग भूमि में मनुष्यों का आकार कैसा होता है?

उत्तर कुभोग भूमि के मनुष्यों की आकृतियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। कोई मनुष्य एक टांग वाले, कोई पूँछ वाले, कोई लम्बे कान वाले (जिस कान को ओढ़कर वे शयन भी कर सकते हैं), किन्हीं मनुष्यों के मुख हाथी, गाय और मेढ़ा के आकार वाले भी होते हैं।

प्र.712 मध्यलोक (मनुष्य लोक एवं तिर्यग्लोक) में कितने अकृत्रिम जिनालय हैं?

उत्तर मध्यलोक में मनुष्य लोक सम्बन्धी 398, तथा मनुष्य लोक से आगे तिर्यक् लोक सम्बन्धी नन्दीश्वर द्वीप में 52, कुण्डलगिरि पर 4 और रुचक गिरि पर 4 इस तरह 60 अकृत्रिम जिनालय (चैत्यालय) हैं। मध्यलोक में कुल अकृत्रिम जिनालयों की संख्या (398 + 60)=458 है।

प्र.713 मध्यलोक में किस-किस पर्वत पर कितने-कितने अकृत्रिम जिनालय हैं?

उत्तर

सुदर्शन मेरु के चार वनों में	16	अकृत्रिम जिनालय
छह कुलाचल पर्वतों पर	6	अकृत्रिम जिनालय
चौतीस विजयार्ध पर्वतों पर	34	अकृत्रिम जिनालय (32 उपविदेह, 1 भरत, 1 ऐरावत)
चार गजदन्त पर्वतों पर	4	अकृत्रिम जिनालय
जम्बू, शाल्मलि दो वृक्षों पर	2	अकृत्रिम जिनालय

सोलह वक्षार पर्वतों पर 16 अकृत्रिम जिनालय
जम्बूद्वीप सम्बन्धी
एक मेरु आदि में कुल]- 78 अकृत्रिम जिनालय

इसी तरह धातकीखण्ड द्वीप के दो मेरु आदि सम्बन्धी तथा पुष्करार्धद्वीप के दो मेरु आदि सम्बन्धी मिलाकर कुल 78 × 5 = 390 अकृत्रिम जिनालय होते हैं।

अर्थात् पंच मेरु आदि सम्बन्धी	390	अकृत्रिम जिनालय
चार इष्वाकार पर्वतों के	4	अकृत्रिम जिनालय
मानुषोत्तर पर्वत के	4	अकृत्रिम जिनालय
नन्दीश्वर द्वीप के	52	अकृत्रिम जिनालय
कुण्डलगिरि के	4	अकृत्रिम जिनालय
रुचकगिरि के	4	अकृत्रिम जिनालय

मध्यलोक सम्बन्धी कुल-458 अकृत्रिम जिनालय होते हैं।

[पञ्च मेरु पर्वत एवं पञ्च मेरु पर्वत के अकृत्रिम जिनालयों के स्वरूप का वर्णन देखिये इसी ग्रन्थ के प्रश्न 132 से प्रश्न 157 तक]

प्र.714 कुलाचल पर्वत कहाँ स्थित हैं एवं वहाँ अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं ?

उत्तर ढाई द्वीप में भरत, हेमवत आदि सात क्षेत्रों के विभाजन करने वाले पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी नामक पर्वत इस ढाई द्वीप (जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड द्वीप और पुष्करार्ध द्वीप) में कुल 30 कुलाचल रूप पर्वत हैं जिन पर्वतों के पूर्व दिशा के कूट पर एक-एक जिनायतन रूप अकृत्रिम चैत्यालय स्थित है। [विजयार्ध का विशेष वर्णन एक कूट पर स्थित जिनालय का वर्णन देखें प्रश्न क्र. 635 से 643 पर]

प्र.715 विजयार्ध इस नाम की सार्थकता क्या है ?

उत्तर विजयार्ध नामक पर्वतों से चक्रवर्ती की षट्खण्डों में से तीन खण्ड तक पहुँच कर अर्ध विजय की सूचना मिल जाती है अतः अर्ध विजय का सूचक विजयार्ध पर्वत कहा जाता है।

प्र.716 ढाई द्वीप में कितने विजयार्ध पर्वत हैं और वे कहाँ स्थित हैं?

उत्तर ढाई द्वीप में पाँच भरत, पाँच ऐरावत तथा एक सौ साठ विदेह क्षेत्रों में कुल 170 विजयार्ध पर्वत हैं और जिनके पूर्व दिशा स्थित एक-एक कूट (सिद्धकूट) पर एक-एक अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं।

प्र.717 पांच म्लेच्छ खण्डों में एवं विजयार्ध पर्वत पर काल परिवर्तन का क्या नियम होता है ?

उत्तर पांच म्लेच्छ खण्डों में एवं विजयार्ध पर्वत पर मात्र दुषमासुषमा काल के आदि और अंत की तरह काल परिवर्तन चलता रहता है।

प्र.718 गजदन्त पर्वत कहाँ हैं और उन पर्वतों पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं?

उत्तर मेरु पर्वत की विदिशाओं में हाथी दन्त के आकार वाले, शाश्वत, तिरछे रूप से आयताकार, क्रमशः

रजत, तप्तस्वर्ण, स्वर्ण और वैडूर्यमणि के वर्ण वाले सौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन और माल्यवान नामक महारमणीय चार महापर्वत हैं। जिन चारों पर्वतों के ऊपर प्रथम सिद्धायतन कूट हैं जिन पर अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं। इसी तरह की चार और मेरु पर्वतों की रचना जानना चाहिए।

प्र.719 जम्बू वृक्ष कहाँ है और उस अकृत्रिम वृक्ष पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित है?

उत्तर नील कुलाचल (पर्वत) के निकट, सीता नदी के पूर्व तट पर सुदर्शन मेरु की ईशान दिशा में उत्तर कुरु क्षेत्र में जम्बूवृक्ष स्थित है। जिसके स्कन्ध से ऊपर वज्रमय अर्धयोजन चौड़ी और आठ योजन लम्बी उसकी चार शाखाएँ हैं। जिस वृक्ष की जो शाखा उत्तरकुरु गत नील कुलाचल की ओर गई है, उस पर अकृत्रिम जिन मंदिर शोभायमान है।

प्र.720 शाल्मली वृक्ष कहाँ है एवं उस अकृत्रिम वृक्ष पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित है?

उत्तर जम्बू वृक्ष की भाँति सीतोदा नदी के तट पर, निषध कुलाचल के समीप, सुदर्शन मेरु की नैऋत्य दिशा में देवकुरु क्षेत्र में शाल्मली वृक्ष स्थित है। शाल्मली वृक्ष की दक्षिण शाखा पर अकृत्रिम जिनालय सुशोभित है। (इसी तरह शुभनाम वाले दो-दो वृक्ष धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीप में भी पाये जाते हैं।)

प्र.721 वक्षार पर्वत कहाँ पर हैं और उन अकृत्रिम पर्वतों पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं?

उत्तर पूर्व व पश्चिम विदेह में सीता व सीतोदा नदी के दोनों तटों पर उत्तर-दक्षिण लम्बायमान, चार-चार संख्या में कुल 16 वक्षार पर्वत हैं। वे पर्वत एक ओर निषध और नील पर्वतों को स्पर्श करते हैं और दूसरी ओर सीता व सीतोदा नदियों को स्पर्श करते हैं। प्रत्येक वक्षार पर्वतों के चार-चार कूटों में से नदी की तरफ वाले प्रथम कूट पर अकृत्रिम सिद्धायतन जिनालय स्थित हैं, शेष कूटों पर व्यन्तर देवों के निवास हैं (इसी तरह धातकी खण्ड द्वीप में 32 वक्षार पर्वतों पर 32 तथा पुष्करार्ध द्वीप में भी 32 वक्षार पर्वतों पर 32 अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं।)

प्र.722 विदेह क्षेत्र में किन ईति रूप अशुभ स्थितियों का अभाव होता है?

उत्तर विदेह क्षेत्र में दुर्भिक्ष नहीं होता, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शलभ (टिड्डी), शुक, स्वचक्र और परचक्र उपद्रव (स्व-पर नीति पीड़ा) रूप सात इतियाँ नहीं होती, महामारी नहीं होती तथा विदेह क्षेत्र में कुदेव, कुलिंग और कुमत नहीं होते।

प्र.723 विदेह क्षेत्रों में किस तरह के विशिष्ट वातावरण का सद्भाव रहता है?

उत्तर विदेह क्षेत्रों में केवलज्ञानियों, तीर्थंकर आदिक शलाका पुरुषों और ऋद्धि सम्पन्न साधुओं का सदा सद्भाव रहता है। प्रत्येक विदेह क्षेत्र में यदि पृथक्-पृथक् एक-एक तीर्थंकर, चक्रवर्ती और अर्धचक्रवर्ती अर्थात् नारायण और प्रतिनारायण हों तो अधिक से अधिक एक सौ साठ हो सकते हैं अथवा जघन्य रूप से मात्र बीस ही होते हैं।

प्र.724 इष्वाकार पर्वत कहाँ हैं और अकृत्रिम पर्वतों पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं?

उत्तर धातकीखण्ड द्वीप की उत्तर व दक्षिण दिशा में लम्बायमान दो इष्वाकार पर्वत हैं, जिनसे यह द्वीप पूर्व व पश्चिम रूप दो भागों में विभक्त हो जाता है। दोनों पर्वतों पर चार-चार कूट हैं। जिन कूटों में प्रथम कूट पर अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं, शेष कूटों पर व्यन्तरों के निवास हैं। इसी तरह के इष्वाकार पर्वतों पर जिनालयों की रचना पुष्करार्ध द्वीप में जानना चाहिए।

प्र.725 मानुषोत्तर पर्वत कहाँ है और उस अकृत्रिम पर्वत पर कहाँ, किस तरह अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं?

उत्तर पुष्करवर द्वीप के मध्य में स्वर्णमयी मानुषोत्तर पर्वत है उस अकृत्रिम मानुषोत्तर पर्वत पर नैऋत्य और वायव्य इन दो दिशाओं को छोड़कर अवशेष छह दिशाओं में पंक्ति स्वरूप तीन-तीन कूट हैं तथा उन कूटों के अभ्यन्तर अर्थात् मनुष्यलोक की ओर चार दिशाओं में चार जिन मंदिर रूप अकृत्रिम जिनालय सुशोभित होते हैं।

प्र.726 नंदीश्वर द्वीप कहाँ पर है और उस द्वीप में अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं?

उत्तर इस मध्यलोक में एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन प्रमाण विस्तार वाला अष्टम द्वीप नंदीश्वर द्वीप है जिसकी चारों दिशाओं में एक-एक अंजनगिरि है। यह पर्वत 1000 योजन गहरा, 84,000 योजन ऊँचा और 84,000 योजन प्रमाण विस्तार युक्त समवृत्त है। अंजनगिरि की चारों दिशाओं में एक-एक लाख योजन विस्तार वाली चार-चार वापिकाएँ (जलाशय) हैं। वापियों के बहु मध्य भाग में दही के सदृश वर्णवाला 1000 योजन गहरा, 10,000 योजन ऊँचा और 10,000 योजन प्रमाण विस्तार वाला गोल एक-एक दधिमुख पर्वत है, वापियों के दोनों बाह्य कोनों पर दो-दो रतिकर पर्वत हैं जो 250 योजन गहरे, 1000 योजन ऊँचे और 1000 योजन विस्तार वाले गोल हैं। इस तरह चार अंजनगिरि, सोलह दधिमुख और बत्तीस रतिकर मिलकर 52 पर्वत हैं। प्रत्येक पर्वत पर 100 योजन लम्बे, 50 योजन चौड़े एवं 75 योजन ऊँचे एक-एक अकृत्रिम जिनालय (चैत्यालय) हैं। जिनमें अष्ट प्रातिहार्य युक्त 108-108 अकृत्रिम जिन प्रतिमाएँ सुशोभित होती हैं। (क.दी.भा.3)

प्र.727 नंदीश्वर द्वीप में कौन, कब महापूजा किया करते हैं?

उत्तर अष्टाह्निक पर्व के समय नन्दीश्वर द्वीप में प्रत्येक दिशा के 13-13 चैत्यालयों में चारों निकाय के इन्द्र अपने परिवार के साथ अनवरत 64 प्रहर तक दो-दो प्रहर के क्रम से महापूजा किया करते हैं। (त्रि.सा.)

प्र.728 कुण्डलवर द्वीप में कुण्डलगिरि कहाँ है और उस अकृत्रिम गिरि पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं?

उत्तर ग्यारहवें स्थान पर स्थित कुण्डलवरद्वीप अपने बहुमध्य भाग में कुण्डलाकार कुण्डलगिरि पर्वत को धारण किये हुए है जिस पर्वत के शिखर पर पूर्वादि चतुर्दिशाओं में चार-चार कूट हैं। उनके अभ्यन्तर भाग में अर्थात् मनुष्यलोक की तरफ एक-एक सिद्धवर कूट नामक या जिनकूट नामक कूटों पर

अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं।

प्र.729 रुचकवर द्वीप कौन-सा अकृत्रिम द्वीप है और उस द्वीप में रुचकवर गिरि कहाँ है और कहाँ अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं?

उत्तर रुचकवर यह तेरहवाँ द्वीप है इस द्वीप के बहुमध्यभाग में स्वर्णमय रुचकवर पर्वत है। ऐसे रुचकगिरि के ऊपर पूर्वादि चार दिशाओं में पृथक्-पृथक् आठ-आठ कूट हैं, जिनके अभ्यन्तर दिशा की ओर चार दिशाओं में चार कूट हैं और सर्व अभ्यन्तर चार दिशाओं में चार जिनेन्द्र कूट हैं। जिन चार कूटों पर अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं। इस तरह कुल कूट 44 हैं।

प्र.730 तीर्थकरों की जननी माँ की सेवा में करने वाली तथा तीर्थंकरों के जन्म के समय सेवा कर विशिष्ट पुण्यार्जन करने वाली देवियाँ कहाँ निवास करती हैं और वे देवियाँ ढाई द्वीप में आकर किस तरह से कब अपनी कुशलता प्रकट करती हैं?

उत्तर रुचकगिरि के ऊपर पूर्व दिशा के आठ कूटों में जो आठ देवकुमारियाँ निवास करती हैं, ये भृङ्गार (झारी) धारण कर जिन-माता की सेवा करती हैं। दक्षिण आदि दिशाओं के आठ-आठ कूटों पर निवास करने वाली आठ-आठ देवकुमारियाँ हाथ में दर्पण लेकर, तीन छत्र धारण कर एवं चंवर धारण कर क्रमशः तीर्थंकर-माता की सेवा करती हैं। अभ्यन्तर कूटों की पूर्वादिक चार दिशाओं में निवास करने वाली चार देवकुमारियाँ तीर्थंकर के जन्म-काल में सर्व दिशाओं को निर्मल करती हैं। इनके अभ्यन्तर कूटों की पूर्वादिक चार दिशाओं के भवनों में निवास करने वाली चार देव कुमारियाँ तीर्थंकर के जन्म समय में जात कर्म (गर्भशोधन) करने में कुशलता प्रकट करती हैं।



खोजना है तो... पुण्य को बढ़ाने का और कर्मों को खपाने का मार्ग खोजो।

If you feel the need to search... then search for the path that increases your merit and reduces your shortcomings.

•••

शरीर की नहीं; आत्मा की सुंदरता महत्वपूर्ण है।

It is not the external beauty of the physical body that matters; the inner beauty of the soul is what is truly important.

अध्याय - 8.
जीवों की अवगाहनादि

प्र. 731 वलयाकार स्वयंभूरमण समुद्र के आगे इस मध्यलोक सम्बन्धी कौन-सी रचना है? और वहाँ मुख्यत: कौन-से जीवों का सद्भाव पाया जाता है?

उत्तर स्वयंभूरमण समुद्र के आगे मध्यलोक सम्बन्धी त्रस नाड़ी के शेष भाग सम्बन्धी चारों विशाल कोनों में कर्म भूमि-सम भूमि एवं तादृश तिर्यंचों का सद्भाव पाया जाता है।

प्र.732 मध्यलोक के अन्तिम चतुर् कोणों के तिर्यंच किस तरह के होते हैं?

उत्तर मध्यलोक के अन्तिम चतुर् कोणों में उत्कृष्ट अवगाहना वाले तिर्यंच पाये जाते हैं।

प्र.733 तिर्यंचों की उत्कृष्ट अवगाहना कहाँ-कहाँ पाई जाती है?

उत्तर तिर्यंचों की उत्कृष्ट अवगाहना; स्वयंभूरमण द्वीप के स्वयंप्रभ पर्वत के आगे (बाहरी) भाग में स्थित स्वयंभूरमण द्वीप, स्वयंभूरमण समुद्र में और अन्तिम चारों कोनों में रहने वाले तिर्यंचों के पायी जाती है।

प्र.734 स्वयंभूरमण समुद्र में एकेन्द्रिय धारक कौन-से जीव की कितनी उत्कृष्ट अवगाहना पायी जाती है?

उत्तर स्वयंभूरमण समुद्र में एकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक कमल की उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना दो कोस अधिक एक हजार योजन पायी जाती है।

प्र.735 स्वयंप्रभ पर्वत के बाद द्वीन्द्रिय आदिक जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण क्या है?

उत्तर स्वयंप्रभ पर्वत के बाद द्वीन्द्रियों में शंख का बारह योजन अवगाहना वाला शरीर है, त्रीन्द्रियों में गोपालिका या खर्जूरक प्राणी का शरीर तीन कोश का है, चतुरिन्द्रियों में भ्रमर का शरीर एक योजन का अर्थात् चार कोश का है और पंचेन्द्रियों में महामत्स्य का उत्कृष्ट शरीर एक हजार योजन लम्बा है।

प्र.736 जिस तरह द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव संमूर्च्छन होते हैं उसी तरह पंचेन्द्रियों में महामत्स्य भी क्या संमूर्च्छन होता है?

उत्तर हाँ! महामत्स्य भी संमूर्च्छन होता है।

प्र.737 सम्मूर्च्छन जीव का लक्षण क्या है?

उत्तर गर्भ और उपपाद जन्म के अतिरिक्त अन्य योनि से उत्पन्न होने वाले जीव अर्थात् अनेक पुद्गल परमाणुओं के मिल जाने पर जन्म लेने वाले जीव सम्मूर्च्छन जीव कहलाते हैं।

प्र.738 जम्बूद्वीप को वलयाकार (चूड़ी आकार) रूप से वेष्टित करने वाले एवं दुगने-दुगने विस्तार वाले असंख्यात दीप व समुद्रों की परिधि (गोलाई रूप किनारे) का ज्ञान करने हेतु जम्बूद्वीप की परिधि का आगमानुसार विस्तार कितना है?

उत्तर जम्बूद्वीप का विस्तार जब एक लाख योजन है (अर्थात् दो हजार कोश का एक महायोजन ग्रहण करना

चाहिए) तब जम्बूद्वीप की परिधि का प्रमाण तीन लाख सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोश, अट्ठाईस सौ धनुष साढ़े तेरह अंगुल और एक जौ प्रमाण है। (मू.चा.भाग 1,पृ.228)

प्र.739 लवण समुद्र में मत्स्य कितने प्रमाण वाले होते हैं?

उत्तर लवण समुद्र में मत्स्य अठारह योजन की अवगाहना वाले हैं तथा गंगा, सिन्धु आदि नदियों के प्रवेश स्थान में अर्थात् समुद्र के प्रारम्भ में मत्स्य नव योजन लम्बे हैं।

प्र.740 कालोदधि समुद्र में मत्स्यों की अवगाहना का प्रमाण क्या है?

उत्तर कालोदधि समुद्र में मत्स्य छत्तीस योजन के हैं और वहाँ भी समुद्र के प्रारम्भ में नदियों के प्रवेश स्थान में मत्स्यों की अवगाहना अठारह योजन की है। (मत्स्यों की यह अवगाहना उपलक्षण समझकर अन्य जलचरों की अवगाहना का भी प्रमाण समझ लेना चाहिए) (मू.चा. भाग 2)

प्र.741 लवणोदधि, कालोदधि और स्वयंभूरमण समुद्र के अतिरिक्त शेष समुद्रों में क्या मत्स्य आदि जलचर जीव होते हैं या नहीं? और अगर नहीं तो क्यों नहीं?

उत्तर उपर्युक्त तीन समुद्रों के अतिरिक्त शेष समुद्रों में मत्स्य, मकर एवं अन्य द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय-पर्यन्त कोई भी जलचर जीव नहीं होते हैं क्योंकि अन्य समुद्रों में जघन्य भोगभूमि हुआ करती है।

प्र.742 स्वयंभूरमण समुद्र में जलचर जीवों की अवगाहना का उत्कृष्ट प्रमाण अगर एक हजार योजन का है तो जलचरों में जघन्य अवगाहना वाला जीव कौन-सा है?

उत्तर जलचरों में सबसे जघन्य अवगाहना धारक जीव कुन्थु होता है। (मू.चा. भाग 2)

प्र.743 द्वि-इन्द्रियादिक पर्याप्तक कौन-से जीव कितनी जघन्य अवगाहना के धारक होते हैं?

उत्तर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में क्रमशः अनुंधरी, कुन्थु, काणमक्षिका, सिक्थक (तन्दुल) मत्स्य के क्रम से जघन्य अवगाहना होती है। इसमें प्रथम की अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तर-उत्तर की अवगाहना क्रम से संख्यातगुणी-संख्यातगुणी अधिक अधिक है। (गो.सा.जी.का.गा.96)

प्र.744 अपर्याप्त और पर्याप्त का आश्रय कर जलचर, स्थलचर और नभचरों के शरीर का प्रमाण कितना है?

उत्तर जलचर अपर्याप्तक, स्थलचर अपर्याप्तक और नभचर अपर्याप्तक सम्मूर्च्छन तिर्यंचों की जघन्य अवगाहना एक वितस्ति अर्थात् बारह अंगुल प्रमाण है। (यह प्रमाण स्वयंभूरमण समुद्र व वहाँ कर्मभूमि की अपेक्षा से जानना।)

प्र.745 जलचर गर्भज अपर्याप्तक और थलचर गर्भज अपर्याप्तकों की उत्कृष्ट देह अवगाहना नभचर, थलचर संमूर्च्छन पर्याप्तकों की उत्कृष्ट देह अवगाहना तथा नभचर और गर्भज पर्याप्तक-अपर्याप्तकों की उत्कृष्ट देह अवगाहना कितनी है? (अन्तिम द्वीप की कर्मभूमि की अपेक्षा)

उत्तर इन उपर्युक्त जीवों की उत्कृष्ट देह अवगाहना धनुष पृथक्त्व प्रमाण है।

प्र.746 पृथक्त्व शब्द का तात्पर्य क्या है?

उत्तर पृथक्त्व शब्द का अर्थ तीन के ऊपर और नव से नीचे की संख्या है जिसकी पृथक्त्व संज्ञा है।

प्र.747 जलचर, थलचर, गर्भज पर्याप्तकों के उत्कृष्ट शरीर का प्रमाण कितना है?

उत्तर जलचर-गर्भज पर्याप्तकों का उत्कृष्ट शरीर (अन्तिम समुद्र की अपेक्षा) पाँच सौ योजन प्रमाण है। स्थलचर-गर्भज पर्याप्तक अर्थात् (उत्कृष्ट) भोगभूमिज तिर्यंचों का शरीर तीन कोश प्रमाण है।

प्र.748 पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और मनुष्य इनके उत्कृष्ट शरीर का प्रमाण क्या है?

उत्तर सूक्ष्म और बादर पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीव द्रव्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण शरीर वाले हैं। और पर्याप्तक मनुष्यों का उत्कृष्ट शरीर भोगभूमि की अपेक्षा तीन कोश प्रमाण वाला है।

प्र.749 द्रव्य अंगुल से क्या तात्पर्य है? और उसका असंख्यातवाँ भाग क्या है?

उत्तर आठ जौ से निष्पन्न अंगुल में असंख्यात आकाश प्रदेश हैं उसके असंख्यात भाग करने पर एक भाग में भी असंख्यात प्रदेश हैं। इस असंख्यातवें भाग को द्रव्यांगुल का असंख्यातवाँ भाग कहते हैं।

प्र.750 सर्व जघन्य शरीर किन जीवों का होता है? और कब?

उत्तर सर्व जघन्य शरीर सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के तृतीय समय में होता है।

प्र.751 सर्व जघन्य शरीर होने में तृतीय समय से क्या तात्पर्य है?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध अपर्याप्तक जीव के जन्म लेने के तृतीय समय में सर्व जघन्य शरीर होता है, क्योंकि प्रथम और द्वितीय समय में प्रदेशों का विस्फूर्जन-फैलाव होने से अथवा पूर्व शरीर के समीपवर्ती होने से बड़ा शरीर रहता है। पुनः तृतीय समय में प्रदेशों का निचय के अनुसार अवस्थान हो जाने से सर्वजघन्य शरीर हो जाता है। (मू.चा.भा.2 गा.1090)

प्र.752 बादर और सूक्ष्म जीव किन्हें कहते हैं?

उत्तर बादर नाम कर्मोदय से जो बाधाकर और बाधित शरीर वाले होते हैं वे बादर जीव कहलाते हैं। सूक्ष्म नाम कर्मोदय से जो न बाधिक होते हैं और न बाधा देते हैं ऐसे जीव सूक्ष्म कहलाते हैं।

प्र.753 पृथ्वी कायिक जीवों का आकार किस तरह का होता है?

उत्तर पृथ्वी कायिक जीवों का आकार मसूरिका सदृश गोल होता है।

प्र.754 जलकायिक जीवों का आकार किसके सदृश होता है?

उत्तर जलकायिक जीवों का आकार कुश के अग्रभाग पर पड़ी हुई ओस की गोल-गोल बिन्दु के समान होता है।

प्र.755 अग्निकायिक जीवों का आकार किसके समान होता है?

उत्तर अग्निकायिक जीवों का आकार सुइयों के समूह के आकार जैसा होता है।

प्र.756 वायुकायिक जीवों का आकार कैसा होता है?

उत्तर वायुकायिक जीवों का आकार पताका लहराती ध्वजा जैसा होता है।

प्र.757 प्रत्येक एवं साधारण बादर-सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों का तथा विकलेन्द्रिय जीवों का

आकार किस तरह का होता है?

उत्तर उपर्युक्त जीवों का आकार अनेक तरह का होता है अर्थात् ये सब हुण्डक संस्थान रूप होते हैं।

प्र.758 पंचेन्द्रिय जीवों के शरीर का आकार किस तरह का होता है?

उत्तर पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्यों के शरीर का आकार छह संस्थान रूप होता है। (छह संस्थान वर्णन देखिये जैनागम संस्कार अ.17, पृ.167)

प्र.759 श्रोत्रेन्द्रिय का आकार किस तरह का होता है?

उत्तर श्रोत्रेन्द्रिय का आकार जौ की नाली सदृश होता है।

प्र.760 चक्षु इन्द्रिय का आकार कैसा होता है?

उत्तर चक्षु इन्द्रिय का आकार मसूरिका जैसा होता है।

प्र.761 घ्राणेन्द्रिय का आकार किसके समान होता है?

उत्तर घ्राणेन्द्रिय का आकार अतिमुक्तक-तिल के पुष्प के समान होता है।

प्र.762 जिह्वा इन्द्रिय का आकार किस तरह का होता है?

उत्तर जिह्वा इन्द्रिय का आकार अर्धचन्द्र के समान या खुरपे के समान होता है।

प्र.763 स्पर्शन इन्द्रिय का आकार किसके समान होता है?

उत्तर स्पर्शन इन्द्रिय के अनेकों आकार होते हैं, जो समचतुरस्र आदि भेद से व्यक्त होते हैं। (समचतुरस्र आदि छह संस्थान देखिये जैनागम संस्कार अ.17, पृ.167)

प्र.764 मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में कौन-से संस्थान पाये जाते हैं?

उत्तर मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में छहों संस्थान पाये जाते हैं।

प्र.765 देवों में कौन-सा संस्थान पाया जाता है?

उत्तर देवों में मात्र समचतुरस्र संस्थान ही पाया जाता है।

प्र.766 नारकियों में कौन-सा संस्थान होता है?

उत्तर नारकियों में मात्र हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है।

प्र.767 पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट शक्ति युक्त स्पर्शन इन्द्रिय की विषय-ग्रहण शक्ति कितनी होती है?

उत्तर पृथ्वी कायिकादिक पांचों स्थावर अपनी-अपनी उत्कृष्ट शक्ति युक्त स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा चार सौ धनुष पर्यन्त मार्ग में स्थित स्पर्श को ग्रहण कर लेते हैं।

प्र.768 द्वीन्द्रिय जीव की अपनी इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण शक्ति कितनी होती है?

उत्तर द्वीन्द्रिय जीव रसना इन्द्रिय द्वारा चौंसठ धनुष तक स्थित रस को ग्रहण कर लेते हैं। वे ही द्वीन्द्रिय जीव स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा आठ सौ धनुष पर्यन्त मार्ग में स्थित स्पर्श को ग्रहण कर लेते हैं।

प्र.769 त्रीन्द्रिय जीव की अपनी इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण शक्ति कितनी होती है?

उत्तर त्रीन्द्रिय जीव घ्राणेन्द्रिय द्वारा सौ धनुष पर्यन्त स्थित गन्ध को ग्रहण कर लेते हैं। ये ही तीन इन्द्रिय जीव

स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा सोलह सौ धनुष पर्यन्त मार्ग में अवस्थित स्पर्श को ग्रहण कर सकते हैं और रसना इन्द्रिय द्वारा एक सौ अट्ठाईस धनुष पर्यन्त मार्ग में स्थित रस को ग्रहण कर लेते हैं।

प्र.770 चतुरिन्द्रिय जीव की अपनी इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण शक्ति कितनी होती है?

उत्तर चतुरिन्द्रिय जीव के चक्षु इन्द्रिय का विषय-ग्रहण उनतीस सौ चौवन योजन कहा है। ये ही जीव स्पर्श द्वारा तीन हजार दो सौ धनुष पर्यन्त स्थित स्पर्श को विषय कर लेते हैं, ये ही जीव रसना द्वारा दो सौ छप्पन धनुष पर्यन्त स्थित रस को ग्रहण कर लेते हैं और घ्राणेन्द्रिय द्वारा दो सौ धनुष तक स्थित गन्ध को अपना विषय बना लेते हैं।

प्र.771 असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव की अपनी इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण शक्ति कितनी है?

उत्तर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के श्रोत्र इन्द्रिय का विषय आठ हजार धनुष है। ये ही जीव स्पर्श द्वारा छह हजार चार सौ धनुष प्रमाण पर्यन्त मार्ग में स्थित स्पर्श को ग्रहण कर सकते हैं, रसना इन्द्रिय द्वारा ये पाँच सौ बारह धनुष पर्यन्त रस को ग्रहण कर सकते हैं, घ्राणेन्द्रिय द्वारा चार सौ धनुष पर्यन्त स्थित गन्ध को ग्रहण कर लेते हैं तथा चक्षु इन्द्रिय द्वारा उनसठ सौ आठ योजन प्रमाण मार्ग में स्थित रूप को ग्रहण कर लेते हैं।

प्र.772 संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव की अपनी पंचेन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण शक्ति कितनी है?

उत्तर संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के श्रोत्र इन्द्रिय का विषय बारह योजन प्रमाण है। अर्थात् वे बारह योजन में उत्पन्न हुए शब्दों को सुन लेते हैं। ये ही जीव अपनी स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय के द्वारा नव-नव योजन तक स्थित स्पर्श, रस और गन्ध द्रव्यों को ग्रहण कर लेते हैं। तथा चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन, एक कोश बारह सौ पन्द्रह धनुष, एक हाथ दो अंगुल और कुछ अधिक जौ का चतुर्थ भाग प्रमाण है।

प्र.773 चक्षु इन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र को कौन कहाँ से कब अपना विषय बना सकता है?

उत्तर भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड स्थित अयोध्या नगरी के बीच में बने हुए अपने महल के ऊपरी भाग से भरत आदि चक्रवर्ती मकर संक्रान्ति के दिन उदय होते हुए सूर्य के भीतर के जिनबिम्ब का दर्शन करते हैं। तात्पर्य यह है कि चक्रवर्ती अधिक-से-अधिक इतनी दूरी तक के पदार्थ को चक्षु द्वारा जान लेते हैं। (विशेष वर्णन देखें-मू.चा.भाग 2, पृष्ठ 246) (इन्द्रियधारी मनुष्य और तिर्यंचों की आयु प्रकरण देखिये-जैनागम संस्कार अध्याय 13 पृ.121, पृ.133)



क्रोध की अधिकता मान कषाय का उदाहरण है।

To have an excess of anger in your nature is a clear example of the internal passion of pride.

एकेन्द्रिय आदि जीवों के पाई जाने वाली इंद्रियों के उत्कृष्ट विषय क्षेत्रादि का दर्शक यंत्र-

इंद्रिय	एकेन्द्रिय धनुष वि.क्षे.	द्वीन्द्रिय धनुष वि.क्षे.	त्रीन्द्रिय धनुष वि.क्षे.	चतुरिन्द्रिय धनुष वि.क्षे.	असं.पं. धनुष	वि.क्षे. योजन	सं.पंचे. योजन वि.क्षेत्र	विषय	योग्यता	आकृति
स्पर्शन	400	800	1600	3200 0	6400	0	9	8 प्रकार का स्पर्श	अबद्ध	अनेक
रसना	0	64	128	256 0	512	0	9	5 विध रस	सपृष्ट	अनियत
घ्राण	0	0	100	200 0	400	0	9	द्विविध गंध	सपृष्ट	खुरपा
चक्षु	0	0	0	0 2954	0	5908	46263 1	पंच प्रकार रूप	स्पृष्ट अस्पृष्ट	तिलपुष्प मसूर
श्रोत्र	0	0	0	0 0	800	0		12 शब्द तथा 7 स्वर	स्पृष्ट	यवनली

प्र.774 संसारी जीवों की आहार, शरीर आदि पर्याप्तियों की पूर्णता एक समान काल में होती है या कोई विशेषता है?

उत्तर तिर्यंच जीवों की पर्याप्तियाँ अन्तर्मुहूर्त्त या उत्कृष्ट रूप से एक समय कम दो घड़ी काल रूप अन्तर्मुहूर्त्तकाल में और मनुष्यों की उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त में पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं। तथा उपपाद से जन्म लेने वाले देव और नारकियों के शरीर अवयवों की रचना रूप पर्याप्तियों की पूर्णता प्रति समय होती है। (मू.चा.भा.2)

प्र.775 देव, नारकियों के पर्याप्तियों की पूर्णता प्रतिसमय और शेष जीवों की अन्तर्मुहूर्त्त में होती है, ऐसा क्यों?

उत्तर क्योंकि जिस काल में देव, नारकियों के आहार आदि पर्याप्ति रूप कारणों की पूर्णता होती है उसी काल में उनके शरीर के सर्व अवयव रूप कार्यों की रचना पूर्ण हो जाती है। पुनः तिर्यञ्च और मनुष्यों के लघु काल के द्वारा आहार आदि कारणों की पूर्णता रूप पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं किन्तु शरीर आदि कार्यों की पूर्णता बहुत काल में हो पाती है। अतः उपपाद जन्म वालों के प्रति पर्याप्तियों का काल प्रतिसमय और अन्य के प्रति अन्तर्मुहूर्त्त सार्थक है।

प्र.776 देव-गण उपपाद शय्याओं पर अन्तर्मुहूर्त्त में ही दिव्य शरीर से किस तरह परिपूर्ण हो जाते हैं?

उत्तर भवनवासी देवादि से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त देव-स्थानों व विमानों में जो उपपाद शिलाएँ हैं उनका आकार बन्द हुई सीप के सदृश है। उन शिलाओं पर सभी अलंकारों से विभूषित, मणियों से खचित, श्रेष्ठ पर्यंक रूप शय्याएँ हैं। उन शय्याओं में वे देव शोभन शरीर आदि आकार और वर्ण से प्रतिसमय में पर्याप्त होकर सर्वाभरण से विभूषित और सम्पूर्ण यौवन वाले हो जाते हैं। जिस विमान की उपपाद

शिला की महाशय्या पर वे देव उत्पन्न होते हैं उस शय्या पर समय-समय में दिव्य रूप से परिपूर्ण हो जाते हैं। अर्थात् एक अन्तर्मुहूर्त्त में ही वे देव दिव्य आहार आदि वर्गणाओं को ग्रहण करते हुए दिव्य रूप और यौवन से परिपूर्ण हो जाते हैं।

प्र.777 अन्तर्मुहूर्त्त में रचित होने वाला देवों का शरीर और कौन-कौन-सी विशेषताओं को धारण करने वाला होता है?

उत्तर ऐसा दिव्य शरीर हाथ-पैर, मस्तक, कण्ठ आदि को विभूषित करने वाले भूषण अर्थात् शरीर के सभी अवयव, उनके अलंकार और नाना गुण भी पूर्ण हो जाते हैं तथा वह शरीर नव यौवन से सम्पन्न हो जाता है। जो कि परम रमणीय, सर्वालंकार से समन्वित, अतिशय सुन्दर और सर्वजनों को आह्लादित करने वाला होता है। सर्व देव अवधिज्ञान से भी सम्पन्न होते हैं।

प्र.778 देवों का शरीर कौन-कौन-सी अवस्थाओं से रहित और गुणों से सहित होता है?

उत्तर देवों का शरीर बाल्य वृद्धावस्था से रहित, मलमूत्र व पसीना से रहित, स्वर्णसम कान्तिमान, समचतुरस्र संस्थान युक्त, धातु-उपधातु से रहित निर्मल, सर्वजन मनोहारी रूप सौन्दर्य से युक्त और जिनका निःश्वास सभी की घ्राणेन्द्रिय को आह्लादित करने वाला सुगन्धित होता है।

प्र.779 क्या देवों (व देवियों) के शरीर में सप्त धातुए नहीं पायी जाती हैं?

उत्तर हाँ! देवों के सिर, भौंह, नेत्र, नाक, कान, काँख और गुह्य प्रदेश आदि स्थानों में बाल नहीं होते हैं। हाथ और पैर की अँगुलियों के अग्रभाग में नख नहीं होते हैं। श्मश्रु-मूंछ-दाढ़ी के बाल नहीं होते हैं एवं सम्पूर्ण शरीर में उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म बाल अर्थात् रोम भी नहीं होते हैं। उनके दिव्य शरीर में चर्म-मांसादि को प्रच्छादित करने वाला, वसा-मांस और हड्डियों में होने वाला चिकना रस, रुधिर-खून, मूत्र, विष्ठा तथा वीर्य, पसीना आदि कुछ भी नहीं होते हैं तथा हड्डी और शिरा समूह भी नहीं होते हैं। अर्थात् देवों के शरीर में सात प्रकार की धातुएँ और उपधातुएँ कुछ भी नहीं होती अतः उनका दिव्य रूप होता है। (मू.चा.गा.1054)

प्र.780 पुनः देवों का दिव्य शरीर किस तरह से निर्मित होता है?

उत्तर उत्तम वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से युक्त अनन्त दिव्य परमाणुओं, जो कि सर्व गुणों से विशिष्ट वैक्रियिक शरीर के योग्य हैं ऐसे पुद्गल परमाणुओं से जिनके शरीर के सभी अवयव बनते हैं वे देव अपने द्वारा संचित शुभकर्म के माहात्म्य से ऐसे दिव्य वैक्रियिक शरीर को ग्रहण करते हैं।

प्र.781 देवों के वैक्रियिक शरीर की गुणाधिक रूप अन्य तरह की विशेषता क्या है?

उत्तर विविध प्रकार की क्रिया अर्थात् अणिमा, महिमा आदि विक्रिया करना जिसका प्रयोजन है उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं। देवों का शरीर मनुष्य जाति नामक कर्मोदय से सहित मनुष्य जीवों के आकार के सदृश रहता है। यह प्रशस्त नामक कर्मोदय से निर्मित होने से शुभनाम युक्त होता है, मृदु-मन्थर-विलास आदि से संयुक्त प्रशस्त गतिवाला है, शोभन स्वर से युक्त है एवं शोभन रूप से मनोहर भी रहता है। गति, नृत्य आदि के साथ देवों के शरीर में मनुष्यों के समान केश, नख आदि के आकार सभी

विद्यमान रहते हैं जैसे कि सुवर्ण व पाषाण की प्रतिमा में सर्व आकार बनाये जाने पर वह अतिशय सुन्दर दिखती है उसी प्रकार से इनके शरीर में भी अतिशय सुन्दरता पायी जाती है। (मू.चा.गा. 1056)

प्र.782 देवों का शरीर अतिशय सुन्दर होते हुए भी किस अपेक्षा से मनुष्यों से उत्कृष्टता को प्राप्त नहीं होता?

उत्तर क्योंकि देव पर्याय में देवों का शरीर संयम का आधार नहीं है। इन्द्रिय सुख कारक-पुण्य कर्म की विचित्रता उन्हें जीवन पर्यन्त भोगों में ही तत्पर बनाये रखती है। जबकि मनुष्य का शरीर संयम का आधार और त्याग-तपस्या व परिषह और उपसर्गों में सहनशीलता के योग्य होता है। विशिष्ठ पुण्यशाली मनुष्य चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से व्रत-नियम-संयम को जिस शरीर के माध्यम से धारण कर पाते हैं ऐसा शरीर आत्मा का उपकारक होने से अपनी उदारता के कारण औदारिक शरीर कहा जाता है तब देव-शरीर से भी श्रेष्ठ प्रशंसनीय व उत्कृष्टता को प्राप्त होता है। अतः कहा भी है कि 'नरकाया को सुरपति तरसे सो दुर्लभ प्राणी'। इस अपेक्षा से मनुष्यों का शरीर देवों से भी महत्त्वपूर्ण है। (देवों के प्रकार आदि देखिये- जैनागम संस्कार अ. 13, प्र.70)

प्र.783 भवनवासी और व्यन्तर देवों के निवास स्थलों के नाम व लक्षण क्या हैं?

उत्तर उपर्युक्त देवों के निवास स्थलों के नाम भवन, भवनपुर और आवास हैं। जो निवास स्थान पृथ्वी के नीचे अर्थात् रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग और पंक भाग में हैं उन्हें भवन कहते हैं, जो निवास स्थान मध्यलोक की समभूमि पर हैं एवं द्वीप-समुद्रों के ऊपर हैं, उन्हें भवनपुर कहते हैं तथा जो स्थान पृथ्वी से ऊँचे हैं और द्रह (तालाब) एवं पर्वतादिकों के ऊपर हैं, उन्हें आवास कहते हैं।

प्र.784 देवगति के देव अत्यन्त शक्तिवान होते हैं और उन्हें भय की आशंका नहीं होती अतः उनके आवान्तर भेदों में आत्मरक्ष की व्यवस्था क्यों है?

उत्तर यद्यपि इन्द्र आदि देवों को किसी प्रकार का भय नहीं है, फिर भी उनकी विभूति का द्योतन करने के लिए तथा प्रीति की प्रकर्षता का कारण होने से दूसरों पर प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए आत्मरक्ष कल्पित किये जाते हैं जिसे लखकर इन्द्र आदिक को परम प्रीति उत्पन्न होती है।

प्र.785 भवनवासी देवों के दस भेदों में दो-दो इन्द्र किस-किस नाम के धारक होते हैं?

उत्तर असुरकुमार नामक भवनवासी देवों में चमर और वैरोचन, नागकुमार देवों में भूतानन्द और धरणानन्द, विद्युत्कुमारों के घोष और महाघोष, सुपर्णकुमारों के वेणुदेव और वेणुधारी, अग्निकुमारों के अग्निशिखी और अग्निवाहन, वातकुमारों के वेलम्ब और प्रभञ्जन, स्तनितकुमारों के हरिषेण और हरिकान्त, उदधिकुमारों के जलप्रभ और जलकान्त, द्वीपकुमारों के पूर्ण और वशिष्ठ तथा दिक्कुमारों के अमितगति और अमितवाहन इस तरह सुन्दर नामवाले कुल बीस इन्द्र होते हैं।

प्र.786 भवनवासियों में असुरकुमार आदि देवों के मुकुटों में कौन-से चिह्न होते हैं?

उत्तर क्रमशः चूड़ामणि, सर्प, गरुड़, हाथी, मगर, वर्धमान (स्वस्तिक), वज्र, सिंह, कलश और अश्व ऐसे प्रसिद्ध चिह्न होते हैं।

प्र.787 भवनवासी देवों के निवास स्थान कहाँ पर किस तरह स्थित हैं?

उत्तर रत्नप्रभा पृथ्वी के पंकबहुल भाग में इस जम्बूद्वीप से तिरछे दक्षिण एवं उत्तर दिशा में असंख्यात द्वीप समुद्रों के बाद क्रमशः दक्षिणेन्द्र, उत्तरेन्द्र एवं उनके परिवार वाले असुरकुमारों के भवन हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी के खर भाग में ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर इस जम्बूद्वीप से तिरछे दक्षिण एवं उत्तर दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बाद क्रमशः दक्षिणेन्द्र, उत्तरेन्द्र एवं उनके परिवार वाले शेष नौ कुमारों के भवन हैं। इनमें किन्हीं-किन्हीं के भवनपुर एवं आवास भी होते हैं, परन्तु असुरकुमार देवों के केवल भवन रूप ही निवास स्थान होते हैं, भवनपुर और आवास नहीं होते हैं।

प्र.788 इन देव भवनों की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई के साथ-साथ क्या विशेषता हैं?

उत्तर इन भवनों की लम्बाई, चौड़ाई का जघन्य प्रमाण संख्यात योजन और उत्कृष्ट प्रमाण असंख्यात योजन है। वे समस्त भवन चौकोर होते हैं। उनका बाहुल्य (ऊँचाई) तीन सौ योजन है। प्रत्येक भवन के बीच में सौ योजन ऊँचा एक पर्वत है और प्रत्येक पर्वत पर एक-एक चैत्यालय है। भवनों की भूमि और दीवारें रत्नमयी होती हैं। वे भवन सतत प्रकाशवान रहते हैं और सर्वेन्द्रियों को सुख देने वाली चन्दनादि वस्तुओं से सिक्त होते हैं।

प्र.789 दस प्रकार के भवनवासी देवों के भवनों की संख्या कितनी-कितनी है?

उत्तर असुरकुमार देवों के 64 लाख भवन हैं। नागकुमार देवों के 84 लाख भवन हैं। सुपर्णकुमार देवों के 72 लाख भवन हैं। द्वीप कुमारों के 76 लाख भवन हैं। उदधिकुमारों के 76 लाख भवन हैं। स्तनित कुमारों के 76 लाख भवन हैं। विद्युत कुमारों के 76 लाख भवन हैं। दिक्कुमारों के 76 लाख भवन हैं। अग्निकुमारों के 76 लाख भवन हैं तथा वायुकुमारों के 96 लाख भवन हैं।

प्र.790 भवनवासी इन्द्रों के भवनों की संख्या कितनी-कितनी है?

उत्तर भवनवासी के दक्षिणेन्द्रों में चमरेन्द्र के 34 लाख, भूतानन्द के 44 लाख, वेणु के 38 लाख, पूर्ण के 40 लाख, जलप्रभ के 40 लाख, घोष के 40 लाख, हरिषेण के 40 लाख, अमितगति के 40 लाख, अग्निशिखी के 40 लाख, और वेलम्ब के 50 लाख भवन हैं। इसी प्रकार उत्तरेन्द्र में वैरोचन के 30 लाख, धरणानन्द के 40 लाख, वेणुधारी के 34 लाख, वशिष्ठ के 36 लाख, जलकान्त के 36 लाख, महाघोष के 36 लाख, हरिकान्त के 36 लाख, अमित वाहन के 36 लाख, अग्निवाहन के 36 लाख और प्रभंजन के 46 लाख भवन हैं। (इन्द्रों की इस भवन संख्या में उनके परिवार वाले देवों के भवनों की संख्या भी सम्मिलित है) (क.दी.भा.-3)

प्र.791 असुरकुमार आदि देवों के चैत्यवृक्षों के नाम किस प्रकार हैं?

उत्तर असुरकुमार आदि देवों के चैत्यवृक्षों के नाम क्रमशः पीपल, सप्तपर्ण, शाल्मली, जामुन, वेतस, कदम्ब, प्रियंगु, शिरीष, पलाश और राजद्रुम (चारोली-चिरोंजी का वृक्ष) हैं।

प्र.792 उपर्युक्त वृक्षों के लिए चैत्यवृक्ष क्यों कहा जाता है?

उत्तर चैत्यवृक्षों के मूल भाग की चारों दिशाओं में पद्मासन से स्थित पांच-पांच जिन प्रतिमाएँ हैं अतः इन्हें

चैत्यवृक्ष कहते हैं। प्रतिमाओं के आगे प्रत्येक दिशा में रत्नमय, उत्तुंग पाँच-पाँच मानस्तम्भ हैं। इन मानस्तम्भों के ऊपर चारों दिशाओं में सात-सात प्रतिमाएँ विराजमान हैं। जिनकी सम्यग्दृष्टि देवगण बड़ी श्रद्धा से पूजन भक्ति किया करते हैं तथा मिथ्यादृष्टि देव कुलदेवता मानकर उपासना करते हैं।

प्र.793 भवनवासी देवों के भवनलोक में अकृत्रिम- चैत्यालयों की संख्या कितनी है?

उत्तर भवनवासी देवों के भवनलोक में सात करोड़ बहत्तर लाख अकृत्रिम चैत्यालय हैं। जिनमें देव-देवाङ्नाएँ भक्ति-भाव पूर्वक नृत्य, संगीत एवं मधुर गान आदि-सह जिनपूजन किया करते हैं। (भवनों की जितनी संख्या है, अकृत्रिम चैत्यालयों की उतनी ही संख्या है।)

प्र.794 भवनवासी देवों में आहार और श्वासोच्छ्वास का क्या नियम है?

उत्तर असुरकुमार देव 1000 वर्ष में आहार ग्रहण करते हैं और एक पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। नागकुमार सुपर्णकुमार और द्वीपकुमार $12\frac{1}{2}$ दिन में आहार ग्रहण करते हैं तथा $12\frac{1}{2}$ मुहूर्त्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं उदधिकुमार, स्तनितकुमार और विद्युतकुमार 12 दिन में आहार ग्रहण करते हैं एवं 12 मुहूर्त्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। तथा दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार देव $7\frac{1}{2}$ दिन में आहार ग्रहण करते हैं और $7\frac{1}{2}$ मुहूर्त्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

प्र.795 देवों का आहार किस तरह से और किस तरह का ग्रहण किया जाता है?

उत्तर देवों को अपने समय से आहार ग्रहण की इच्छा होते ही उनके कण्ठ से अति स्निग्ध और अनुपम अमृतमय आहार निर्झरित हो जाता है।

प्र.796 भवनवासी देवों का गमन किस निमित्त से कहाँ-कहाँ तक होता है?

उत्तर भक्ति-सह इन्द्र आदि देवगण तीर्थंकरों के पञ्चकल्याणकों के निमित्त ढाई द्वीप में तथा जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजन के निमित्त नंदीश्वर द्वीप पर्यन्त जाते हैं। शीलादि गुणों के धारी मनुष्य या मुनिवरों की सेवा पूजन व परीक्षा हेतु भी जाते हैं।

प्र.797 असुरकुमार देव और कहाँ तक गमन करते हैं?

उत्तर असुरकुमार देव क्रीड़ा या सहायता या शत्रुता निभाने के लिए ऊर्ध्वरूप से अन्य की सहायता बिना ऐशान स्वर्ग तक और दूसरे देवों की सहायता से अच्युत स्वर्ग पर्यन्त गमन करते हैं तथा अधोलोक में तीसरी पृथ्वी तक जाते हैं।

प्र.798 भवनवासी देवों के उत्कृष्ट आयु कितनी होती है?

उत्तर भवनवासी देवों के दक्षिणेन्द्रों में चमर, भूतानन्द, वेणु, पूर्ण और जलप्रभ आदि छह देवों की उत्कृष्ट आयु क्रमशः 1 सागर, 3 पल्य, $2\frac{1}{2}$ पल्य, 2 पल्य एवं $1\frac{1}{2}$ पल्य होती है।

उत्तरेन्द्रों में वैरोचन, धरणानन्द, वेणुधारी, वशिष्ठ एवं जलकान्त आदि छह देवों की उत्कृष्ट आयु क्रमशः साधिक 1 सागर, साधिक 3 पल्य, साधिक $2\frac{1}{2}$ पल्य, साधिक 2 पल्य एवं साधिक $1\frac{1}{2}$ पल्य होती है।

प्र.799 भवनवासी देवों की जघन्यायु कितनी होती है?

उत्तर भवनवासी देवों की जघन्यायु दस हजार वर्ष की होती है।

प्र.800 आयु की अपेक्षा भवनवासी देवों में कितनी शक्ति (सामर्थ्य) होती है?

उत्तर जो देव दस हजार वर्ष की आयु वाला होता है, वह अपनी शक्ति से एक सौ मनुष्यों का हनन करने में समर्थ होता है, तथा वह देव डेढ़ सौ धनुष प्रमाण लम्बे, चौड़े और मोटे क्षेत्र को बाहुओं से वेष्टित करने और उखाड़ने में समर्थ होता है।

एक पल्योपम आयु वाला देव पृथ्वी के छह खण्डों को उखाड़ने तथा वहाँ रहने वाले मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों का हनन करने में समर्थ होता है

एक सागरोपम काल की आयु वाला देव समग्र जम्बूद्वीप को उखाड़कर फेंक देने व तहस-नहस करने और उसमें रहने वाले नर पशुओं का हनन करने में समर्थ होता है।

प्र.801 देव एक समय में कितनी दूरी तय कर सकता है?

उत्तर संख्यात वर्ष की आयु वाला देव एक समय में संख्यात योजन की दूरी तय कर (जा, आ) सकता है।

प्र.802 भवनवासी देवों के अवधिज्ञान की प्रवृत्ति ऊर्ध्व, अधः दिशा रूप कितने क्षेत्र में है?

उत्तर भवनवासी देव स्व-स्व भवन में स्थित होकर अपने अवधिज्ञान से ऊर्ध्व दिशा में मेरु पर्वत के शिखर पर्यन्त क्षेत्र के पदार्थों को जान सकते हैं। अधो दिशा में अपने-अपने भवनों के नीचे-नीचे अल्प क्षेत्र पर्यन्त के पदार्थों को जान सकते हैं।

प्र.803 भवनवासी देवों के अवधिज्ञान का विषय क्षेत्र तिर्यक् रूप से एवं काल की अपेक्षा किस प्रकार है?

उत्तर भवनवासी देवों का अवधिज्ञान अबाधित रूप से तिर्यक् (तिरछे) क्षेत्र में जघन्य रूप से पच्चीस योजन तक विषय करता है। काल की अपेक्षा एक दिन के भीतर की वस्तु को विषय करता है। उत्कृष्ट रूप से क्षेत्र एवं काल की अपेक्षा असुरकुमार देवों के अवधिज्ञान का प्रमाण क्रमशः असंख्यात करोड़ योजन एवं असंख्यात वर्ष मात्र है। शेष देवों के अवधिज्ञान का प्रमाण, क्षेत्र एवं काल की अपेक्षा क्रमशः उत्कृष्ट रूप से असंख्यात हजार योजन व असंख्यात वर्ष और असुरकुमारों के अवधिज्ञान के काल से संख्यात गुणा कम है।

प्र.804 भवनवासी देवों के शरीर का उत्सेध (ऊँचाई) कितना होता है एवं विक्रिया कितनी होती है?

उत्तर असुरकुमारों के शरीर की ऊँचाई 25 धनुष और शेष देवों की ऊँचाई दस धनुष मात्र होती है। दस प्रकार के भवनवासी देव अनेक रूपों की विक्रिया करते हुए अपने-अपने अवधिज्ञान के क्षेत्र को पूरित करते हैं। विक्रिया द्वारा निर्मित उनके शरीरों की ऊँचाई अनेक प्रकार की होती है।

प्र.805 असुरकुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर असुरकुमार देवों का शरीर कृष्णवर्ण का होता है।

प्र.806 नागकुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर नागकुमार देवों का शरीर कालश्यामल सदृश वर्ण का होता है।

प्र.807 सुपर्णकुमार और द्वीपकुमार देवों के शरीर का वर्ण किस तरह का होता है?

उत्तर सुपर्णकुमार और द्वीपकुमार देवों के शरीर का वर्ण श्यामल वर्ण का होता है।

प्र.808 उदधिकुमार और स्तनितकुमार देवों के शरीर का वर्ण कैसा होता है?

उत्तर उदधिकुमार और स्तनितकुमार देवों का शरीर कालश्यामल वर्ण का होता है।

प्र.809 विद्युत्कुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर विद्युत्कुमार देवों का शरीर बिजली के सदृश वर्ण का होता है।

प्र.810 दिक्कुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर दिक्कुमार देवों का शरीर श्यामल वर्ण का होता है।

प्र.811 अग्निकुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर अग्निकुमार देवों का शरीर प्रज्वलित अग्नि सदृश वर्ण का होता है।

प्र.812 वातकुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर वातकुमार देवों का शरीर नवीन कुवलय (नीलकमल) के सदृश वर्ण का होता है।

प्र.813 असुरकुमारादि देवों के प्रवीचार सम्बन्धी क्या नियम है?

उत्तर असुरकुमार आदि देवों का प्रवीचार (कामवासना) सामान्य मनुष्य की तरह काय-प्रवीचार रूप होता है।

प्र.814 निम्न निकाय के देवों की गति को देव-दुर्गति क्यों कहा जाता है?

उत्तर निम्न निकाय के देव अत्यधिक भोग लालसा के साथ मिथ्यात्व सेवन तथा पारस्परिक ईष्या की भावना के कारण इनकी गति देव-दुर्गति कही जाती है।

प्र.815 भवनवासी देवों में उत्पत्ति के क्या कारण हैं?

उत्तर मिथ्यात्व सेवन-सह पापानुबंधी पुण्य करने वाले, ज्ञान और चारित्र में दृढ़ शंका वाले, संक्लेश परिणामों वाले, दोषपूर्ण चारित्रवाले, उन्मार्गगामी, निदान भावों से युक्त, पापों की प्रमुखता से सहित, कामिनी के विरह रूपी ज्वर से जर्जरित, कलहप्रिय और पापिष्ठ एवं अविनयी संज्ञी व असंज्ञी जीव भवनवासी देवों में उत्पन्न होते हैं। जो क्रोध, मान, माया और लोभ कषायों में आसक्त हैं, दुश्चारित्र वाले हैं तथा वैर-भाव में रुचि रखते हैं, वे असुरों में उत्पन्न होते हैं। (क.प्र.भा.3)

प्र.816 देव-दुर्गतियों में उत्पत्ति के क्या कारण हैं?

उत्तर समाधिमरण के विराधित करने पर कितने ही जीव कन्दर्प, किल्विष, आभियोग्य और सम्मोह आदि देव-दुर्गतियों में उत्पन्न होते हैं। जो सत्यवचन से रहित हैं, बहुजन में हँसी करते हैं और जिनका हृदय कामासक्त रहता है, वे निश्चय से कन्दर्प देवों में उत्पन्न होते हैं।

जो भूतिकर्म, मन्त्राभियोग्य और कौतूहलादि से संयुक्त हैं तथा लोगों की वंचना करने में प्रवृत्त रहते हैं, वे वाहन देवों में उत्पन्न होते हैं।

तीर्थंकर, संघ, प्रतिमा एवं आगम-ग्रन्थादिक के विषय में प्रतिकूल, दुर्विनयी तथा प्रलाप करने वाले जीव किल्विषिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

कुमार्ग का उपदेश करने वाले, जिनेन्द्रोपदिष्ट मार्ग के विरोधी और मोह से मुग्ध जीव सम्मोह जाति के देवों में उत्पन्न होते हैं।

प्र.817 व्यन्तर देवों के आठ भेदों में प्रत्येक के दो-दो इन्द्रों के नाम कौन- से हैं?

उत्तर व्यन्तर देवों में किन्नरों के किंपुरुष और किन्नर, किंपुरुषों के सत्पुरुष और महापुरुष, महोरगों के महाकाय और अतिकाय, गन्धर्वों के गीतरति और गीतयश, यक्षों के मणिभद्र और पूर्णभद्र, राक्षसों के भीम और महाभीम, भूतों के स्वरूप और प्रतिरूप, पिशाचों के काल और महाकाल इस तरह कुल सोलह इन्द्र होते हैं।

प्र.818 व्यन्तर देवों के निवास स्थान कहाँ पर हुआ करते हैं?

उत्तर रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में जम्बूद्वीप से तिरछे दक्षिण एवं उत्तर दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बाद क्रमशः दक्षिणेन्द्र, उत्तरेन्द्र एवं उनके परिवार वाले किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत और पिशाच इन सात प्रकार के व्यन्तर देवों के आवास हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी के पंकबहुल भाग में जम्बूद्वीप से तिरछे दक्षिण एवं उत्तर दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बाद क्रमशः दक्षिणेन्द्र, उत्तरेन्द्र एवं उनके परिवार वाले राक्षस नाम व्यन्तरों के आवास हैं। चित्रा और वज्रा पृथ्वी की सन्धि से प्रारम्भ कर मेरु पर्वत की ऊँचाई तक तथा मध्यलोक का विस्तार जहाँ तक है वहाँ के समस्त क्षेत्र में व्यन्तर देव यथायोग्य भवनपुरों, आवासों एवं भवनों में रहते हैं।

प्र.819 नीचोपपाद आदि व्यन्तर देवों का निवास कहाँ पर है?

उत्तर चित्राभूमि (पृथ्वी) से एक हाथ ऊपर नीचोपपाद देव स्थित हैं। इनसे दस हजार हाथ ऊपर दिग्वासी देव हैं। इनसे दस हजार हाथ ऊपर अन्तरवासी और उनसे दस हजार हाथ ऊपर कूष्माण्ड देव निवास करते हैं। इनसे बीस हजार हाथ ऊपर उत्पन्न देव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर अनुत्पन्न देव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर प्रमाणक देव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर गन्धदेव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर महागन्धदेव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर भुजङ्गदेव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर प्रीतिकदेव और इनसे बीस हजार हाथ ऊपर आकाशोत्पन्न व्यन्तर देव निवास करते हैं।

प्र.820 व्यन्तर देवों के चैत्यवृक्ष कौन-से हैं? उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर व्यन्तर देवों के क्रमशः अशोक, चम्पा, नागकेशर, तुम्बुरु, वट, कण्टकतरु, तुलसी और कदम्ब नामक चैत्यवृक्ष हैं। (ये वृक्ष चैत्यप्रतिमा युत पृथ्वी कायिक हैं।)

चैत्यवृक्षों के मूल की प्रत्येक दिशा में पल्यङ्कासन से युक्त चार-चार जिन प्रतिमाएँ हैं। प्रत्येक प्रतिमा के आगे एक-एक मानस्तम्भ है जो नाना प्रकार की मोतियों की मालाओं एवं दिव्य घण्टाजाल आदि से सुशोभित हैं।

प्र.821 व्यन्तर देव सम्बन्धी जिन-भवनों का प्रमाण कितना है?

उत्तर जगत्प्रतर के संख्यात भाग में तीन सौ योजनों के वर्ग का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण जिनमंदिर व्यन्तर लोक में हैं।

प्र.822 व्यन्तर देवों में आहार व श्वासोच्छ्वास का क्या नियम है?

उत्तर जिन व्यन्तर देवों की आयु पल्य प्रमाण है उनका पाँच दिन के अन्तर से आहार होता है और पाँच मुहूर्त्त के बाद उच्छ्वास होता है। जिन व्यन्तर देवों की आयु मात्र दस हजार वर्ष है, उनका आहार दो दिन बाद और उच्छ्वास (यहाँ के) सात श्वासोच्छ्वास (काल) के पश्चात् होता है। किन्नर आदि व्यन्तर देव तथा देवियाँ दिव्य एवं अमृतमय आहार का उपभोग मन से ही करते हैं, उनके कवलाहार (ग्रासाहार) नहीं होता है।

प्र.823 व्यन्तर देवों की विक्रिया शक्ति एवं गमन शक्ति कितनी होती है?

उत्तर दस हजार वर्ष की आयु वाला व्यन्तर देव उत्कृष्ट रूप से सौ रूपों की, जघन्य रूप सात रूपों और मध्यम रूप से विविध रूपों की विक्रिया करता है।

शेष व्यंतर देवों में से प्रत्येक देव अपने-अपने अवधिज्ञान का जितना क्षेत्र है, उतने प्रमाण क्षेत्र को विक्रिया बल से पूर्ण करता है संख्यात वर्ष प्रमाण आयु वाला व्यन्तर देव एक समय में संख्यात योजन और असंख्यात वर्ष प्रमाण आयु वाला देव असंख्यात योजन जाता है।

प्र.824 व्यन्तर देवों की आयु कितनी होती है?

उत्तर व्यन्तर देवों की उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण, मध्यम आयु असंख्यात वर्ष प्रमाण और जघन्यायु दस हजार वर्ष प्रमाण होती है।

प्र.825 व्यन्तर देवों में सामर्थ्य (शक्ति) कितनी होती है?

उत्तर दस हजार वर्ष प्रमाण आयु वाला प्रत्येक व्यन्तर देव एक सौ मनुष्यों का हनन एवं रक्षण करने में समर्थ होता है। वह देव अपनी शक्ति से एक सौ पचास धनुष प्रमाण विस्तार एवं बाहल्य से युक्त क्षेत्र को उखाड़ कर अन्यत्र रख सकता है। एक पल्य प्रमाण आयु वाला व्यन्तर देव अपनी भुजाओं से छह खण्डों को उलटने में समर्थ है और उनमें स्थित मनुष्यों का हनन तथा रक्षण करने में समर्थ होता है।

प्र.826 व्यन्तर देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र कितना है?

उत्तर दस हजार वर्ष प्रमाण आयु वाले व्यन्तर देवों के अवधिज्ञान का विषय ऊपर और नीचे जघन्य रूप से पाँच कोस तथा उत्कृष्ट रूप से पचास कोस प्रमाण है। पल्योपम प्रमाण आयु वाले व्यन्तर देव अपने अवधि ज्ञान से नीचे और ऊपर एक-एक लाख योजन प्रमाण विषय को देखते और जानते हैं।

प्र.827 व्यन्तर देवों की शारीरिक अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर किन्नर आदि आठों व्यन्तर देवों संबन्धी प्रत्येक की ऊँचाई दस धनुष प्रमाण होती है।

अध्याय- 9.

ज्योतिषि, विमानवासी व गुणस्थानादि

प्र.828 ज्योतिषि देवों का स्वरूप क्या है?

उत्तर जिस प्रकार एक गोले के दो खण्ड करके उन्हें ऊर्ध्व मुख रखा जावे तो चौड़ाई का भाग ऊपर और गोलाई वाला सँकरा भाग नीचे रहता है। उसी प्रकार ऊर्ध्व मुख अर्द्ध गोले के सदृश ज्योतिषि देवों के विमान स्थित हैं। विमानों का मात्र नीचे का गोलाकर भाग ही हमारे द्वारा दृश्यमान होता है तथा ज्योतिषि देवों के विमान पृथ्वीकायिक होते हैं।

प्र.829 राहु-केतु के विमानों का क्या स्वरूप है? एवं सूर्य -चन्द्र ग्रहण किसे कहते हैं?

उत्तर राहु का विमान, चन्द्र विमान के नीचे और केतु का विमान, सूर्य विमान के नीचे गमन करता है। प्रत्येक छः माह के बाद पूर्णिमा और अमावस्या के अंत में राहु चन्द्रमा को और केतु सूर्य को आच्छादित करता है, इसी का नाम ग्रहण कहा जाता है।

प्र. 830 सूर्य चन्द्र आदि की किरणों का स्वरूप क्या है?

उत्तर चन्द्रमा की किरणें शीतल होती हैं; जिनका प्रमाण बारह हजार है। सूर्य की किरणें तीक्ष्ण (उष्ण) होती हैं; जिनका प्रमाण बारह हजार है। शुक्र की किरणें तीव्र प्रकाश से उज्जवल होती हैं, उनका प्रमाण ढाई हजार है। शेष ज्योतिषी देवों की किरणें मंद प्रकाश वाली हैं।

प्र.831 विसदृश प्रमाण वाली परिधियों (वीथियों) को सूर्य चन्द्र; समान काल में कैसे समाप्त (पूर्ण करते हैं?

उत्तर सूर्य और चन्द्र प्रथम वीथी में हाथीवत्, मध्यम वीथी में घोड़ेवत् और अंतिम वीथी में सिंहवत् गमन करते हैं। अर्थात् प्रथमादि वीथी से आगे जाते समय सीधी गति से एवं बाह्यादि वीथी से पीछे आते समय मन्द गति से गमन करते हैं। इस प्रकार विषम वीथियों को समान काल में पूरा कर लेते हैं।

प्र.832 ज्योतिषि देवों का गमन किस गति से होता है?

उत्तर ज्योतिषि देवों में चन्द्रमा की गति सबसे मंद है। सूर्य; चन्द्रमा की अपेक्षा शीघ्रगामी है। ग्रह; सूर्य से भी अधिक शीघ्र गामी है। नक्षत्र; ग्रह से भी अधिक शीघ्रगामी है और तारागण उससे भी अधिक शीघ्रगामी हैं। उदाहरणार्थ-

चन्द्रमा अभ्यन्तर वीथी में एक मिनिट में 4,22,797 $\frac{31}{1647}$ मील चलता है। अभ्यन्तर वीथी में सूर्य का एक मिनिट में 4,37,623 $\frac{11}{18}$ मील चलता है।

प्र.833 ज्योतिषि देवों के संचार (भ्रमण) से रात और दिन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर ज्योतिषि देवों के संचार से काल के विभाग रूप व्यवहार होता है। जम्बूद्वीप की वीथी के पास 180 योजन की अभ्यंतर (प्रथम) वीथी में जब सूर्य भ्रमण करता है; तब दिन अठारह मुहूर्त्त (चौदह घण्टा चौबीस मिनिट) का और रात्रि बारह मुहूर्त्त (नौ घण्टा छत्तीस मिनिट) की होती है। किन्तु जब वही

सूर्य बाह्य (अंतिम) परिधि में भ्रमण करता है तब दिन 12 मुहूर्त्त का और रात्रि 18 मुहूर्त्त की होती है। श्रावण माह में कर्क राशि पर स्थित सूर्य अभ्यंतर परिधि में भ्रमण करता है। माघ माह में मकर राशि पर स्थित सूर्य बाह्य परिधि में भ्रमण करता है। क्षेत्र की दूरी और गति की हीनाधिकता से दिन छोटे-बड़े होते हैं। भ्रमण द्वारा दो सूर्य, एक परिधि को 30 मुहूर्त्त में पूरा करते हैं।

प्र.834 दक्षिणायन- उत्तरायन किस तरह प्रारम्भ होते हैं?

उत्तर सूर्य के प्रथम वीथी में स्थित होने से दक्षिणायन का और अंतिम वीथी में स्थित होने से उत्तरायन का प्रारम्भ होता है। श्रावण माह से पौष माह तक (183 दिन) सूर्य दक्षिणायन तथा माघ माह से आषाढ़ माह तक (183 दिन) उत्तरायन रहता है।

प्र.835 युग किसे कहते हैं? और उसका प्रारम्भ कब से होता है?

उत्तर पाँच वर्ष का एक युग होता है और दक्षिणायन के प्रारम्भ से युग का प्रारम्भ होता है।

प्र.836 ढाई वर्ष में एक अधिक मास की प्राप्ति कैसे होती है?

उत्तर सूर्य गमन की गलियाँ 184 हैं। एक गली से दूसरी गली दो-दो योजन (8000 मील) की दूरी पर हैं। एक गली से दूसरी गली में प्रवेश करता हुआ सूर्य उस मध्य के दो योजन अन्तराल को पार करते हुए जाता है। इन पूरे अंतरालों को पार करने का काल बारह योजन है क्योंकि उसका एक दिन में एक अन्तराल पार करने का काल एक मुहूर्त्त (48 मिनिट) है। अत: एक दिन में एक मुहूर्त्त की, तीस दिन में (एक मास में) 30 मुहूर्त्त अर्थात् एक दिन की और बारह माह में बारह दिन की, ढाई वर्ष में तीस दिन (एक मास) की और पाँच वर्ष स्वरूप एक युग में दो माह की वृद्धि होती है।

प्र.837 चन्द्रमा सम्बन्धी देवों की की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर चन्द्रमा सम्बन्धी देवों की उत्कृष्ट आयु एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य की है।

प्र.838 सूर्य सम्बन्धी देवों की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर सूर्य सम्बन्धी देवों की उत्कृष्ट आयु एक हजार वर्ष अधिक एक पल्य है।

प्र.839 शुक्र सम्बन्धी देवों की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर शुक्र सम्बन्धी देवों की उत्कृष्ट आयु सौ वर्ष अधिक एक पल्य है।

प्र.840 गुरु सम्बन्धी देवों की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर गुरु सम्बन्धी देवों की उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण है।

प्र.841 शेष ग्रहों सम्बन्धी देवों कीउत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर शेष ग्रहों सम्बन्धी देवों की उत्कृष्ट आयु अर्द्ध पल्य प्रमाण है।

प्र.842 ताराओं सम्बन्धी देवों की की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर ताराओं सम्बन्धी देवों की उत्कृष्ट आयु पल्य के चतुर्थ भाग प्रमाण है।

प्र.843 समस्त ज्योतिषि देवों की जघन्य आयु कितनी है?

उत्तर समस्त ज्योतिषि देवों की जघन्य आयु पल्य के आठवें भाग प्रमाण है।

प्र.844 ज्योतिष्क देवांगनाओं की आयु कितनी होती है?

उत्तर ज्योतिष्क देवांगनाओं की आयु स्व-स्व देवों की आयु के अर्द्धभाग प्रमाण होती है।

प्र.845 ज्योतिषि देवों के अवधिज्ञान का विषय कितना है?

उत्तर ज्योतिषि देवों के अवधिज्ञान का विषय भवनवासी देवों के अवधिज्ञान के विषय से असंख्यात गुणा है।

प्र.846 ज्योतिषि देवों के शरीर की अवगाहना कितनी है?

उत्तर ज्योतिषि देवों के शरीर की अवगाहना (ऊँचाई) सात धनुष प्रमाण है।
(ज्योतिषि देवों के भेद आदि का वर्णन देखें- जैनागम संस्कार, अ.13, पृ.125)

प्र.847 ज्योतिष्क देवों के विमानों संबंधी अकृत्रिम चैत्यालयों का प्रमाण कितना है?

उत्तर ज्योतिष्क देवों के विमान असंख्यात हैं और सभी विमानों में एक-एक अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं। अतः उनकी संख्या असंख्यात है। (स्वर्गादिक में रहने वाले वैमानिक देवों के भेद आदि का वर्णन देखें- जै.सं., अ.-13, पृ.127)

प्र.848 मध्यलोक से स्वर्ग विमान कितने ऊपर हैं?

उत्तर सुदर्शन मेरु पर्वत (एक लाख चालीस योजन प्रमाण वाला मध्यलोक में स्थित है; ऐसे सुमेरु पर्वत) की चूलिका से उत्तम भोगभूमिज मनुष्य के एक बाल की मोटाई प्रमाण ऊपर से स्वर्ग विमान का प्रारम्भ है।

प्र.849 स्वर्गों की सौधर्म आदि संज्ञा (नाम) क्यों है?

उत्तर स्वर्गों में सुधर्मा नामक सभा इत्यादिक के साहचर्य से सौधर्म स्वर्ग एवं शेष इन्द्रों के नाम के साहचर्य से स्वर्गों के उपर्युक्त नाम प्रचलित हैं।

प्र.850 ग्रैवेयक यह संज्ञा क्यों है?

उत्तर लोकाकाश को पुरुषाकार माना है, उस लोक रूप पुरुष के ग्रीवा-स्थानीय भाग में होने वाले विमानों को ग्रैवेयक विमान कहते हैं।

प्र.851 स्वर्गों में, स्वर्ग विमान कितने विस्तार वाले हैं?

उत्तर स्वर्गों में इन्द्रक विमान संख्यात योजन विस्तार वाले हैं। श्रेणीवत् विमान असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं और प्रकीर्णक विमानों में, कुछ संख्यात योजन विस्तार वाले और कुछ असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं।

प्र.852 वैमानिक देवों संबंधी पटलों की संख्या कितनी है?

उत्तर वैमानिक देवों संबंधी पटलों की संख्या त्रेसठ (63) है।

प्र.853 वैमानिक देवों के इन्द्रक विमान कितने हैं? और वे कहाँ-कहाँ स्थित हैं?

उत्तर एक-एक पटल में एक-एक ही इन्द्रक विमान होने से इन्द्रक विमानों की संख्या भी त्रेसठ (63) ही है।

सौधर्म युगल में इक्तीस (31) इन्द्रक, सानतकुमार युगल में सात (7) इन्द्रक, ब्रह्म युगल में चार (4) इन्द्रक, लान्तव युगल में दो (2) इन्द्रक, शुक्र युगल में एक (1) इन्द्रक, शतार युगल में एक (1) इन्द्रक, आनत आदि चार स्वर्गों में छः (6) इन्द्रक, तीन अधस्तन ग्रैवेयकों में तीन (3) इन्द्रक हैं। तीन मध्यम ग्रैवेयकों में तीन (3) इन्द्रक हैं। तीन उपरिम ग्रैवेयकों में तीन (3) इन्द्रक हैं। नौ अनुदिशों में एक (1) इन्द्रक है, पाँच अनुत्तरों में एक (1) इन्द्रक विमान है।

प्र.854 स्वर्गादिक में रहने वाले वैमानिक देवों के श्रेणीबद्ध विमान किस तरह स्थित हैं?

उत्तर पैंतालीस लाख योजन प्रमाण विस्तार वाले (मनुष्य क्षेत्र के समान प्रमाण वाले) प्रथम ऋतु नामक इन्द्रक विमान की चारों दिशाओं में बासठ-बासठ श्रेणीबद्ध विमान हैं। इसके आगे दूसरे, तीसरे, चौथे आदि इन्द्रकों में वे उत्तरोत्तर एक-एक कम (इकसठ, साठ, उन्सठ) आदि होते हुये अनुदिश और अनुत्तर इन्द्रक विमानों की चारों दिशाओं में मात्र एक-एक ही विमान अवशेष रहते हैं। एक लाख योजन प्रमाण विस्तार वाले (जम्बूद्वीप समान प्रमाण वाले) अंतिम सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान की चारों दिशाओं में एक-एक श्रेणीबद्ध विमान है।

(प्रथम कल्प से लेकर नवग्रैवेयक तक प्रकीर्णक विमान भी अनेक संख्या में बिखरे हुये हैं।)

प्र.855 सौधर्म कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर सौधर्म कल्प में इन्द्रक आदि (इन्द्रक, श्रेणीबद्ध, प्रकीर्णक) विमान बत्तीस लाख हैं।

प्र.856 ईशान कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं ?

उत्तर ईशान कल्प में इन्द्रक आदि अट्ठाईस लाख विमान हैं।

प्र.857 सानतकुमार कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर सानतकुमार कल्प में इन्द्रक आदि विमान बारह लाख हैं।

प्र.858 माहेन्द्र कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर माहेन्द्र कल्प में इन्द्रक आदि आठ लाख विमान हैं।

प्र.859 ब्रह्म कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर ब्रह्म कल्प में इन्द्रक आदि चार लाख विमान हैं।

प्र.860 लान्तव कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर लान्तव कल्प में इन्द्रक आदि पचास हजार विमान हैं।

प्र.861 महाशुक्र कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर महाशुक्र कल्प में इन्द्रक आदि चालीस हजार विमान हैं।

प्र.862 सहस्रार कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर सहस्रार कल्प में इन्द्रक आदि छः हजार विमान हैं।

प्र.863 आनत आदि कल्पों में इन्द्रक आदि कितने विमान हैं?

उत्तर आनत आदि कल्पों में इन्द्रक आदि सात सौ विमान हैं।

प्र.864 अधस्तन तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं।

उत्तर अधस्तन तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान एक सौ ग्यारह हैं।

प्र.865 मध्यम तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर मध्यम तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान एक सौ सात हैं।

प्र.866 उपरिम तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर उपरिम तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान इक्यानवै हैं।

प्र.867 अनुदिशों में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर अनुदिशों में इन्द्रक आदि विमान नौ हैं।

प्र.868 अनुत्तरों में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर अनुत्तरों में इन्द्रक आदि विमान पाँच हैं।

प्र.869 स्वर्गादिक के संपूर्ण विमान किस आधार पर अवस्थित हैं?

उत्तर सौधर्म-ईशान कल्प के विमान जल के ऊपर अवस्थित हैं। सानत कुमार माहेन्द्र कल्पों के विमान वायु के ऊपर अवस्थित हैं। ब्रह्म स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग तक के विमान जल और वायु के ऊपर अवस्थित हैं। और आनतादि से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त के सभी विमान शुद्ध आकाश तक में अवस्थित हैं। (क.दी. भाग-3, पृ.43)

प्र.870 सौधर्म आदि कल्पों में विमानों का वर्ण किस तरह है?

उत्तर सौधर्म और ईशान कल्प के स्वर्ग विमान पाँचों वर्ण वाले हैं। तथा सानतकुमारादि युगल के विमान कृष्ण वर्ण से रहित शेष चार वर्ण वाले हैं।

प्र.871 ब्रह्म और लान्तव कल्प में विमान किस वर्ण वाले हैं?

उत्तर ब्रह्म और लान्तव कल्पों के विमान कृष्ण एवं नील वर्ण से रहित शेष तीन वर्ण वाले हैं।

प्र.872 महाशुक्र और सहस्रार कल्पों के विमान किस वर्ण वाले हैं?

उत्तर महाशुक्र और सहस्रार कल्पों में विमान कृष्ण, नील, रक्त रहित दो वर्ण वाले हैं।

प्र.873 आनतादि विमान किस वर्ण वाले हैं?

उत्तर आनतादि से लेकर अनुत्तर पर्यन्त सभी विमान कृष्ण, नील, रक्त (लाल) एवं पीत वर्ण से रहित होते हैं; मात्र शुक्ल वर्ण वाले हैं।

प्र.874 स्वर्गों में स्थित मानस्तंभ कहाँ और किस तरह के होते हैं?

उत्तर इन्द्रों के सभा-मण्डप के आगे एक योजन विस्तीर्ण, छत्तीस योजन ऊँचा, पाद-पीठ से युक्त वज्रमय मानस्तंभ होता है। इसका आकार गोल और व्यास एक योजन का होता है। और इसमें एक-एक कोश विस्तार वाली बारह धाराएँ होती हैं तथा उन मानस्तंभों पर तीर्थंकरों के आभरणों से पूरित करण्डक स्थित होते हैं।

विमानों के वर्ण व उनका अवस्थान

कल्प का नाम	वर्ण	आधार
सौधर्म-ईशान	पंच वर्ण	घन वात
सनत्कुमार माहेन्द्र	कृष्ण रहित-4	जल वायु दोनों
ब्रह्म-लांतव	कृष्ण नील रहित 3	जल व वायु दोनों
महाशुक्र-सहस्त्रार	श्वेत व हरित	जल व वायु दोनों
आनतादि चार	श्वेत	शुद्ध आकाश
ग्रैवेयक आदि	श्वेत	शुद्ध आकाश

प्र.875 कौन-से क्षेत्र के तीर्थकरों के आभरणों से कौन से मानस्तंभों के करण्डक पूरित होते हैं?

उत्तर सौधर्म स्वर्ग में स्थित मानस्तंभों पर स्थित करण्डक भरत क्षेत्र संबंधी तीर्थंकरों के आभरणों से पूरित होते हैं। ईशान स्वर्ग में स्थित मानस्तंभों पर स्थित करण्डक ऐरावत क्षेत्र संबंधी तीर्थंकरों के आभरणों से पूरित होते हैं। सानतकुमार और माहेन्द्र कल्प में स्थित मानस्तंभों पर स्थित करण्डक क्रमशः पूर्व विदेह संबंधी और पश्चिम विदेह संबंधी तीर्थंकरों के आभरणों से पूरित होते हैं।

प्र.876 स्वर्ग के इन्द्र आदि देवों का और देवांगनाओं का उत्पत्ति स्थान कहाँ पर है?

उत्तर मानस्तंभ के समीप इन्द्र का उत्पाद गृह आठ योजन लम्बा, चौड़ा और ऊँचा है। उसके मध्य में रत्नों की दो शय्यायें हैं। आरण स्वर्ग पर्यंत दक्षिण कल्पों की समस्त देवांगनाएँ सौधर्म कल्प में और अच्युत स्वर्ग पर्यंत उत्तर कल्पों की समस्त देवांगनाएँ ऐशान कल्प में ही उत्पन्न होती हैं। उत्पत्ति के बाद उपरिम कल्पों के देव अपनीअपनी देवांगनाओं को अपने- अपने स्थान पर ले जाते हैं।

प्र.877 सौधर्म-ऐशान स्वर्गों में कितने-कितने विमानों में देव और देवांगनाओं की उत्पत्ति होती है?

उत्तर सौधर्म-स्वर्ग में छःलाख विमान और ऐशान स्वर्ग में चार लाख विमान शुद्ध विमान हैं; जहाँ मात्र देवांगनाओं की ही उत्पत्ति होती है। इन्हीं स्वर्गों में क्रम से छब्बीस लाख और चौबीस लाख विमानों में देव और देवांगनाओं दोनों की उत्पत्ति होती है। देवांगनाएँ मूल शरीर के साथ ही अपने नियोगी देवों के साथ जाती हैं।

प्र.878 स्वर्गादिक में देव पर्याय में जन्म लेने के बाद किस प्रकार का वातावरण देखा जाता है?

उत्तर स्वर्गादिक में देव उत्पत्ति के समय वहाँ स्थित देवगण आनंद वाद्य बजाते हैं, जय-जय के अनेक स्तुतियों के शब्द करते हैं। उन शब्दों को सुनकर प्राप्त हुये वैभव और अपने परिवार को देखकर तथा अवधिज्ञान से अपने पूर्वजन्म को ज्ञात कर वे नवीन-देव धर्म की प्रशंसा करते हैं तथा परम स्नान (अमृत-बाबड़ी में) करने के बाद पट्ट रूप अभिषेक इत्यादि एवं अलंकारों को प्राप्त कर सम्यग्दृष्टि देव स्वयं जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक पूजन करते हैं तथा मिथ्यादृष्टि देव अन्य देव द्वारा सम्बोधे

जाने के उपरांत, ये कुल देवता हैं; ऐसा मानकर जिनेन्द्र पूजन करते हैं। ये सभी देव सुखसागर में निमग्न होने के कारण अपने व्यतीत हुये काल को नहीं जान पाते।

प्र.879 कल्पवासी देव धार्मिक अनुष्ठानों में किस तरह मध्यलोक में आकर धार्मिक पुण्य लाभ प्राप्त करते हैं?

उत्तर कल्पवासी देव तीर्थंकरों की महापूजा और उनके पञ्चकल्याणक महोत्सवों में जाते हैं किन्तु अहमिन्द्र देव तो अपने ही स्थान पर स्थित रहकर मणिमय मुकुटों पर अपने हाथों को मुकलित रूप में जोड़कर नमस्कार करते हैं। वे इन्द्र गर्भ और जन्मादि कल्याणकों में उत्तर शरीर से ही जाया करते हैं और उनके मूल शरीर तो सुख पूर्वक स्व (जन्म) स्थानों में ही स्थित रहते हैं।

प्र.880 इन्द्रभवनों के सामने जिनेन्द्र देव के दर्शन हेतु क्या व्यवस्था होती है?

उत्तर समस्त इन्द्र भवनों के आगे न्यग्रोध वृक्ष होते हैं, इनमें एक-एक वृक्ष पृथ्वीकायिक और जम्बूवृक्ष के सदृश होते हैं। इसके मूल (मध्य) में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिनेन्द्र प्रतिमा होती है, जिनके चरणों में इन्द्रादिक प्रणाम करते हैं, पूजन करते हैं तथा जो प्रतिमायें स्मरण मात्र से ही पाप को हरने वाली होती हैं।

प्र.881 सौधर्म-ईशान आदि इन्द्रों की एक-एक प्रधान देवी की कितनी परिवार (सहयोगी) देवियाँ होती हैं?

उत्तर सौधर्म-ऐशान संबंधी सोलह हजार, सानतकुमार-माहेन्द्र संबंधी आठ हजार, ब्रह्मेन्द्र संबंधी चार हजार, लान्तव इन्द्र संबंधी दो हजार, महाशुक्र इन्द्र संबंधी एक हजार, सहस्रार इन्द्र संबंधी पाँच सौ, आनत आदि चार इन्द्र संबंधी ढाई सौ सहयोगी देवियाँ होती हैं।

प्र.882 वैमानिक देवों के आहार संबंधी नियम क्या है?

उत्तर एक सागरोपम काल पर्यन्त आयु वाले देवों का दिव्य अमृतमय आहार एक हजार वर्ष में संपन्न और श्वासोच्छ्वास एक पक्ष में संपन्न होता है। इसी तरह जितने सागरोपम हों उतने हजार वर्ष में आहार का एवं उतने पक्ष में श्वासोच्छ्वास का नियम जानना चाहिए।

प्र.883 देवगति में एक भवावतारी कौन-कौन सी भव्य आत्मायें हैं?

उत्तर देवगति में एक भवावतारी निकट भव्यात्माएँ सौधर्म इन्द्र, शचि देवी, लोकपाल (सोम, यम, वरुण और धनद-कुबेर), सानत कुमारादि दक्षिणेन्द्र, लौकान्तिक देवर्षि और सर्वार्थसिद्धि विमान में उत्पन्न होने वाले सर्वदेव अपने-अपने स्थान से आकर (दुष्मा-सुषमा काल) (चतुर्थ युग) संबंधी मनुष्य भव प्राप्त कर निर्ग्रंथ मुनि बन उसी पर्याय से निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

प्र.884 वैमानिक देवों में सम्यग्दर्शन संबंधी क्या नियम है?

उत्तर वैमानिक देवों में पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था में औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन हो सकता है। अपर्याप्त अवस्था में औपशमिक सम्यग्दर्शन; द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन के साथ मरने वाले जीवों की अपेक्षा घटित होता है। देवांगनाओं के अपर्याप्त अवस्था में एक भी

सम्यग्दर्शन नहीं होता। पर्याप्त अवस्था में नवीन उत्पत्ति की अपेक्षा औपशमिक और क्षायोपशमिक ये दो सम्यग्दर्शन हो सकते हैं।

प्र.885 मिथ्या दृष्टि जीव देव पर्याय में कहाँ तक उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि जीव का उत्पाद नवम ग्रैवेयक तक हो सकता है।

प्र.886 अनुदिश और अनुत्तर विमानों में सम्यग्दर्शन का क्या नियम है?

उत्तर नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों में सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं।

प्र.887 वैमानिक देवों के अवधिज्ञान का विषय क्षेत्र कितना है?

उत्तर सौधर्म-ऐशान कल्प के देव अपने अवधिज्ञान से नरक संबंधी प्रथम पृथ्वी पर्यन्त, सानतकुमार-माहेन्द्र कल्प के देव दूसरी पृथ्वी पर्यन्त, ब्रह्मादि चार स्वर्गों के देव तृतीय पृथ्वी पर्यन्त, शुक्र आदि चार स्वर्गों के देव चतुर्थ पृथ्वी पर्यन्त, आनत आदि चार स्वर्गों के देव पाँचवी पृथ्वी पर्यन्त, नौ ग्रैवेयक वासी देव छठी पृथ्वी पर्यन्त और अनुदिश एवं अनुत्तर वासी देव संपूर्ण लोक नाड़ी को देखते हैं। प्रत्येक वैमानिक देव अपने-अपने विमान के ध्वजदण्ड से ऊपर के क्षेत्र की बात नहीं जान सकते।

प्र.888 वैमानिक देवों की विक्रिया का क्षेत्र कितना है?

उत्तर वैमानिक देवों की विक्रिया का क्षेत्र उनके अवधिज्ञान क्षेत्र प्रमाण है।

प्र.889 देवगति में देवों की लेश्या का आगमानुसार वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर भवनत्रिक (भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क) देवों की अपर्याप्त अवस्था में कृष्ण, नील, कापोत तीन अशुभ लेश्यायें हैं और पर्याप्त अवस्था में पीत लेश्या का जघन्य अंश होता है।

वैमानिक देवों की पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था में शुभ लेश्या ही होती हैं। जिनमें सौधर्म-ऐशान स्वर्ग में मध्यम पीत लेश्या, सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग में उत्कृष्ट पीत एवं जघन्य पद्मलेश्या, ब्रह्मादि छ:स्वर्गों में मध्यम पद्म लेश्या, शतार-सहस्रार स्वर्गों में उत्कृष्ट पद्म एवं जघन्य शुक्ल लेश्या, आनत आदि चार स्वर्गों में मध्यम शुक्ल लेश्या, 9 ग्रैवेयक में मध्यम शुक्ल लेश्या एवं 9 अनुदिश तथा 5 अनुत्तर में उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है।

प्र.890 स्वर्गों में देवांगनाओं की उत्कृष्ट एवं जघन्य आयु कितनी है?

उत्तर स्वर्गों में देवांगनाओं की जघन्य आयु कुछ कम एक पल्य एवं उत्कृष्ट आयु पचपन पल्य प्रमाण होती है।

प्र.891 घातायुष्क किसे कहते हैं? और वह कहाँ तक होता है?

उत्तर जो देव अधिक स्थिति बाँधकर पश्चात् संक्लेश परिणामों के निमित्त अध:स्तन स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं, उनके इस उत्पन्न होने को घातायुष्क कहते हैं। ऐसे देवों की उत्पत्ति शतार-सहस्रार स्वर्गों तक ही होती है। आगे के स्वर्गों में उनकी उत्पत्ति नहीं होती, इस कारण आयु के साथ कुछ अधिक का संबंध शतार-सहस्रार स्वर्ग तक ही होता है।

प्र.892 देवों में घातायुष्क की व्यवस्था का उदाहरण किस तरह घटित होता है?

उत्तर मान लीजिए किसी मनुष्य ने अपनी संयम अवस्था में अच्युत कल्प में 22 सागरोपम प्रमाण आयु का बंध किया। पश्चात् संयम की विराधना और बाँधी हुई आयु की अपवर्तना कर असंयत सम्यग्दृष्टि हो गया। पश्चात् मरण कर यदि सहस्रार कल्प में उत्पन्न हुआ तो वहाँ की साधारण आयु; जो अठारह सागरोपम ही है, उससे घातायुष्क संबंधी देव की आयु अंतर्मुहूर्त्त कम अर्द्धसागर अधिक होगी। यदि वही पुरुष संयम की विराधना के साथ ही सम्यक्त्व की विराधना कर मिथ्यादृष्टि हो जाता है और पश्चात् मरण कर उसी सहस्रार कल्प में उत्पन्न होता है तो उसकी आयु वहाँ की निश्चित अठारह सागर की आयु से पल्य के असंख्यातवें भाग से अधिक होगी। ऐसे जीव को घातायुष्क मिथ्यादृष्टि कहते हैं। (क.दी.भाग-3)

प्र.893 कौन-से जीव वैमानिक देवों में कहाँ तक उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर असंयत सम्यग्दृष्टि और देशसंयमी मनुष्य और तिर्यंच सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न हो सकते हैं। जो मुनि द्रव्य से (शारीरिक बाहरी मुद्रा से) निर्ग्रन्थ अवस्था के धारक हैं और भाव से वे मिथ्यादृष्टि हुये हों अथवा वे मुनि असंयत सम्यग्दृष्टि हुये हों अथवा वे मुनि देशसंयमी हुये हों अर्थात् उन मुनि का गुणस्थान पहला या चौथा या पंचम हो गया है ऐसे वे मुनि अंतिम ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न हो सकते हैं। सम्यग्दृष्टि महाव्रती मुनि सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न हो सकते हैं। सम्यग्दृष्टि भोगभूमिज मनुष्य व तिर्यञ्च सौधर्म-ऐशान स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न हो सकते हैं और मिथ्यादृष्टि भोगभूमिज मनुष्य व तिर्यञ्च एवं तापसी (अन्यमती) साधु उत्कृष्टता से भवनत्रिक पर्यन्त ही उत्पन्न हो सकते हैं। चरक और परिव्राजक संन्यासी ब्रह्म कल्प (स्वर्ग) पर्यन्त और आजीवक साधु अच्युत कल्प तक उत्पन्न हो सकते हैं। अर्थात् अन्य लिंगियों का (जैन मत से भिन्न भेषधारियों का) उत्पाद सोलहवें स्वर्ग से आगे नहीं होता तथा स्त्रियों का उत्पाद भी सोलहवें स्वर्ग तक ही हो सकता है।

प्र.894 वैमानिक देवों की सामर्थ्य (शक्ति) कितनी होती है?

उत्तर वैमानिक देवों में एक पल्योपम प्रमाण आयु वाला देव पृथ्वी के छः खण्डों को उखाड़ने में, उनमें स्थित मनुष्यों-तिर्यञ्चों का हनन और पोषण करने में समर्थ होता है। और सागरोपम प्रमाण काल पर्यन्त जीवित रहने वाला देव जम्बूद्वीप को पलटने और उसमें स्थित मनुष्य और तिर्यञ्चों का हनन और पोषण करने में समर्थ होता है।

प्र.895 देवगति के किन देवों का जन्म तिर्यञ्चों की एकेन्द्रिय पर्याय में हो सकता है?

उत्तर देवगति के ईशान स्वर्ग पर्यन्त देवों का जन्म एकेन्द्रिय पर्याय में हो सकता है।

प्र.896 देवगति के कौन-से देव संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय में ही उत्पन्न होते हैं?

उत्तर देवगति के सानतकुमार स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त के देव संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य व तिर्यञ्च ही होते हैं।

प्र.897 तिर्यञ्च पर्याय में कौन-से देव उत्पन्न नहीं होते हैं?

उत्तर तिर्यञ्च पर्याय में तेरहवे स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त देव उत्पन्न नहीं होते हैं। अर्थात् वे शुक्ल लेश्या के साथ मनुष्य में ही उत्पन्न होते हैं।

प्र.898 देवगति के देव क्या भोगभूमि में उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर नहीं! देवगति के देव मरण कर भोगभूमि में उत्पन्न नहीं हो सकते हैं।

प्र.899 सर्वार्थसिद्धि विमान से ईषत् प्राग्भार पृथ्वी (सिद्धशिला) कितने ऊपर स्थित है?

उत्तर सर्वार्थसिद्धि के इन्द्रक विमान के ध्वजदण्ड से बारह योजन प्रमाण ऊपर जाकर कोई ईषत् प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वी अवस्थित है।

प्र.900 इषत् प्राग्भार नामक पृथ्वी से कितने ऊपर जाकर सिद्धों का निवास है?

उत्तर ईषत् प्राग्भार नामक पृथ्वी से ऊपर सात हजार पचास धनुष जाकर सिद्धों का निवास है। अर्थात् अष्टम पृथ्वी से ऊपर लोक के अन्त में चार हजार धनुष मोटा घनोदधि वातवलय है, दो हजार धनुष मोटा घनवातवलय है, और 1575 धनुष मोटा तनुवातवलय है। सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलय में रहते हैं, इनकी उत्कृष्ट अवगाहना 525 धनुष है। वातवलयों के प्रमाण से उत्कृष्ट अवगाहना घटा देने पर अष्टम पृथ्वी से कितने योजन ऊपर सिद्धों का निवास है यह प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

प्र.901 सिद्धों के निवास क्षेत्र के व्यास का प्रमाण कितना है?

उत्तर सिद्धों के निवास क्षेत्र के व्यास का प्रमाण मनुष्य लोक के समान पैंतालीस लाख योजन है।

प्र.902 सिद्धों की अवगाहना कितनी होती है?

उत्तर सिद्धों के आत्मप्रदेशों की अवगाहना अंतिम शरीर से किञ्चित् न्यून होकर पाँच सौ पच्चीस धनुष उत्कृष्ट, साढ़े तीन हाथ जघन्य और मध्यम अनेक प्रकार की अवगाहना यथायोग्य रूप से होती है।

प्र.903 सिद्धों का सुख कैसा और कितना अनुपम होता है?

उत्तर संसार में चक्रवर्तियों के सुख से भोगभूमि स्थित जीवों का सुख अनंतगुणा है। भोगभूमिज जीवों से धरणेन्द्र का सुख अनंतगुणा है। धरणेन्द्र से स्वर्गिज देवेन्द्रों का सुख अनंतगुणा है। स्वर्गिज देवेन्द्रों से अहमिन्द्र का सुख अनंतगुणा है। अहमिन्द्रों या इन सबके त्रिकालवर्ती सुख से भी सिद्धों का एक क्षण का सुख अनंतगुणा है अर्थात् उनके सुख की कोई तुलना या उपमा नहीं है वह अतिशय-अनुपम है।

प्र.904 सुख कितने प्रकार का होता है?

उत्तर सुख मुख्यतः दो प्रकार का होता है- एक अभ्युदय और एक मोक्ष।

प्र.905 अभ्युदय सुख किसे कहते हैं?

उत्तर स्वर्गिक या चक्रवर्ती आदि राजाओं के सुख को अभ्युदय का सुख कहते हैं।

प्र.906 मोक्ष सुख किसे कहते हैं?

उत्तर अतीन्द्रिय अनंत आत्मिक सुख को मोक्ष सुख कहते हैं।

प्र.907 संक्षेप और ओघ किसे कहते हैं?

उत्तर संक्षेप और ओघ यह गुणस्थान की संज्ञा (नाम) है।

प्र.908 गुणस्थान कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर गुणस्थान मोह तथा योग से उत्पन्न होते हैं।

प्र.909 विस्तार तथा आदेश किसे कहते हैं?

उत्तर विस्तार तथा आदेश ये मार्गणा की संज्ञा हैं।

प्र.910 मार्गणा कैसे उत्पन्न होती हैं?

उत्तर मार्गणा अपने-अपने योग्य कर्मों के उदय आदि से उत्पन्न होती हैं।

प्र.911 सामान्य और विशेष किसे कहते हैं?

उत्तर एक अपेक्षा से गुणस्थान की सामान्य और मार्गणा की विशेष संज्ञा है। (गुणस्थानों का वर्णन देखिये जै.सं.अ.-18 पृ. 181)

प्र.912 प्ररूपणा किसे कहते हैं?

उत्तर चौदह गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, मार्गणा और उपयोग का जिसमें प्ररूपण किया जाये उसे बीस प्ररूपणा कहते हैं। [प्ररूपणाओं के साथ ध्यान, आश्रव, जाति और कुलकोटि को मिला देने से चौबीस ठाना कहलाते हैं। आश्रव एवं ध्यान का वर्णन आगे अनुयोगों में किया जावेगा।]

प्र.913 प्रथम गुणस्थान में कौन से भाव होते हैं?

उत्तर प्रथम गुणस्थान में (कर्म के उदय से होने वाले) औदयिक भाव होते हैं। (गो.जी.का.11)

प्र.914 द्वितीय गुणस्थान में कौन से भाव होते हैं?

उत्तर द्वितीय गुणस्थान में कर्म निरपेक्ष पारिणामिक भाव होते हैं।

प्र.915 मिश्र गुणस्थान में कौन से भाव होते हैं?

उत्तर मिश्र गुणस्थान में कर्म के क्षयोपशम से होने वाले क्षायोपशमिक भाव होते हैं।

प्र.916 चतुर्थ गुणस्थान में कौन-से भाव होते हैं?

उत्तर चतुर्थ गुणस्थान में कर्म के उपशम से होने वाले औपशमिक, कर्म के क्षय से होने वाले क्षायिक और कर्म के क्षयोपशम से होने वाले क्षायोपशमिक इस प्रकार ये तीन भाव होते हैं।

प्र.917 कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत इन गुणस्थानों में कौन से भाव होते हैं?

उत्तर इन तीनों गुणस्थानों में चारित्रमोहनीय की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव होते हैं।

प्र.918 अप्रमत्त विरत से ऊपर अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और उपशांत मोह इन गुणस्थानों में कौन से भाव होते हैं?

उत्तर इन 8 वें, 9 वें, 10 वें और 11 वें गुणस्थानों में (उपशम श्रेणी में) चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम की अपेक्षा औपशमिक भाव ही होते हैं।

प्र.919 अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणमोह इन गुणस्थानों में कौन-से भाव होते हैं?

उत्तर इन चार गुणस्थानों में (क्षपक श्रेणी में) चारित्र मोहनीय के क्षय की अपेक्षा क्षायिक भाव होते हैं।

प्र.920 सयोगकेवली, अयोग केवली और सिद्धों की अपेक्षा कौन-से भाव होते हैं?

उत्तर इन अवस्थाओं में कर्मक्षय की अपेक्षा क्षायिक भाव होते हैं।

प्र.921 गुणस्थानों में औदयिक भाव कहाँ तक पाये जाते हैं?

उत्तर गुणस्थानों में कर्म-उदय की अपेक्षा औदयिक भाव प्रथम गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं।

प्र.922 गुणस्थानों में क्षायोपशमिक भाव कहाँ तक पाये जाते हैं?

उत्तर गुणस्थानों में कर्म-क्षयोपशम की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव प्रथम गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं।

प्र.923 गुणस्थानों में क्षायिक भाव कहाँ तक पाये जाते हैं?

उत्तर गुणस्थानों में कर्म-क्षय की अपेक्षा क्षायिक भाव चतुर्थ गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक तथा गुणस्थानीत सिद्धों में भी पाये जाते हैं।

प्र.924 गुणस्थानों में औपशमिक भाव कहाँ तक पाये जाते हैं?

उत्तर गुणस्थानों में कर्म उपशम की अपेक्षा औपशमिक भाव चतुर्थ गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं।

प्र.925 गुणस्थानों में पारिणामिक भाव कहाँ तक पाये जाते हैं?

उत्तर गुणस्थानों में कर्मनिरपेक्ष पारिणामिक भावों में से जीवत्व और अभव्यत्व भाव मात्र प्रथम गुणस्थान तक, जीवत्व और भव्यत्व भाव चौदहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं।

प्र.926 सिद्धों में कौन-सा पारिणामिक भाव पाया जाता है?

उत्तर सिद्धों में कर्म-निरपेक्ष पारिणामिक भावों में से मात्र, जीवत्व-भाव पाया जाता है। (गो.क.का.गा. 821)

प्र.927 किसी मत में सिद्धों के जीवत्व भाव क्यों नहीं माना गया? और आगम से कैसे माना गया है?

उत्तर किसी मत से द्रव्य रूप दस प्राणों के अभाव में सिद्धों के जीवत्व भाव को स्वीकार नहीं किया गया है परंतु आगम में सिद्धों के ज्ञान-दर्शन रूप भाव प्राणों का सद्भाव होने से जीवत्व रूप पारिणामिक भाव को स्वीकार किया गया है। अर्थात् मुख्य नय से भी सिद्ध भगवान जीव हैं। इसमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि ज्ञान-दर्शन रूप भाव प्राणों का अनुभव करने से वर्तमान में भी जीवत्व से युक्त हैं।

प्र.928 मिथ्यादृष्टि जीव के श्रद्धान में विपरीतता किस तरह की होती है?

उत्तर मिथ्यादृष्टि जीव समीचीन गुरुओं के पूर्वापर विरोधादि दोषों से रहित और हित के करने वाले वचनों का भी यथार्थ श्रद्धान नहीं करता। किन्तु इसके विपरीत आचार्याभासों (मिथ्या आचार्यों) के द्वारा

उपदष्टि या अनुपदिष्ट असद्भाव का अर्थात् पदार्थ के विपरीत स्वरूप का इच्छानुसार श्रद्धान करता है। (गो.सा.जी.का.गा.18)

प्र.929 मिथ्यादृष्टि के कितने भेद हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि के दो भेद हैं। 1. स्वस्थान मिथ्यादृष्टि 2. सातिशय मिथ्यादृष्टि। जो जीव मिथ्यात्व में लवलीन है उसे स्वस्थान मिथ्यादृष्टि कहते हैं। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख जीव के जो अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणाम होते हैं उससे युक्त जीव को सातिशय मिथ्यादृष्टि कहते हैं। (क.दी.भा-1)

प्र.930 अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर जहाँ सम-समयवर्ती जीवों के परिणाम भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणामों से समान और असमान दोनों तरह के हों उसे अधःप्रवृत्तकरण, जहाँ सम-समयवर्ती जीवों के परिणाम समान और असमान दोनों तरह के और भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम असमान ही हों उसे अपूर्वकरण तथा जहाँ एक समयवर्ती अनेक जीवों के परिणामों में (विशुद्धि की अपेक्षा) निवृत्ति-भेद नहीं पाया जावे, परन्तु भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणामों में सर्वथा भेद ही पाया जावे उसे अनिवृत्तिकरण जानना चाहिए।

प्र.931 जीव को सासादन गुणस्थान कब प्राप्त होता है?

उत्तर प्रथमोपशम सम्यक्त्व अथवा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अंतमुहूर्त्त मात्र काल में से जब जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट छः आवली प्रमाण काल शेष रहे, उतने काल में अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी के भी उदय में आने से सम्यक्त्व की विराधना होने पर सम्यग्दर्शन की जो अव्यक्त अतत्व-श्रद्धान रूप परिणति होती है, उसे सासादन गुणस्थान कहते हैं। अथवा अनंतानुबंधी कषाय में से किसी एक का उदय आने पर सम्यक्त्व परिणामों के छूटने पर और मिथ्यात्व प्रकृति का उदय न होने से, मिथ्यात्व परिणाम न होने पर मध्य के काल में जो परिणाम होते हैं उसे सासादान गुणस्थान कहते हैं। (क.दी.भा-1)

प्र.932 चारित्रमोहनीय के भेद रूप अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यक्त्व का घात कैसे करती है?

उत्तर अनन्तानुबन्धी कषाय में सम्यक्त्व और चारित्र दोनों के घात करने का स्वभाव है अर्थात् वह द्वि-स्वभाव वाली है। यह कषाय सम्यक्त्व का घात भी करती है और अप्रत्याखनावरणादि कषायों का अनन्त प्रवाह भी बनाये रखती है, इस तरह अनन्तानुबन्धी कषाय का द्विस्वभावपना सिद्ध होने से सासादान गुणस्थान की पृथक् सिद्धि होती है।

प्र.933 सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थानवर्ती जीव द्वारा प्राप्ति के अयोग्य स्थान कौन-से हैं?

उत्तर मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव सकलसंयम या देशसंयम को धारण नहीं कर सकता। मिश्र गुणस्थान में नवीन आयु का बंध नहीं होता तथा मिश्र गुणस्थानवर्ती का मारणान्तिक समुद्घात और मरण भी नहीं होता है।

प्र.935 असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में श्रद्धान की अपेक्षा क्या विशेषता है?

उत्तर सम्यग्दृष्टि जीव आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान करता है किन्तु स्वयं के अज्ञानवश गुरु के उपदेश से, विपरीत अर्थ का भी श्रद्धान कर लेता है, तो भी वह सम्यग्दृष्टि ही है।

सूत्र के आश्रय से आचार्यादि के द्वारा आगम दिखाकर समीचीन पदार्थ के समझाने पर भी यदि वह जीव पूर्व में अज्ञान से किये हुए अतत्त्व श्रद्धान को न छोड़े तो वह जीव उसी काल से मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। (गो.सा.जी.का. गा.27, 28)

प्र.935 क्षायोपशमिक या वेदक सम्यग्दर्शन के प्रकरण में जो उदयाभावीक्षय कहा जाता है, उसका अर्थ क्या है?

उत्तर उदयाभावी क्षय का अर्थ है कि बिना फल दिये ही सर्वघाति (अनन्तानुबंधी चतुष्क, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व) प्रकृतियों के वर्तमान निषेकों की बिना फल दिये ही निर्जरा होना है।

प्र.936 प्रमाद के पन्द्रह भेद कौन-से होते हैं?

उत्तर चार विकथाएँ-स्त्रीकथा, भक्त (भोजन) कथा, राष्ट्रकथा, अवनिपाल (राजा) कथा। चारकषाएँ-क्रोध, मान, माया, लोभ। पंचइन्द्रिय-स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। एक निद्रा (पांच निद्राओं में से कोई एक)। एक प्रणय (स्नेह) इस तरह कुल पन्द्रह- प्रमाद होते हैं।

प्र.937 अप्रमत्तविरत गुणस्थान के कितने भेद हैं?

उत्तर अप्रमत्तविरत गुणस्थान के स्वस्थान अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त रूप दो भेद होते हैं।

प्र.938 स्वस्थान अप्रमत्त किसे कहते हैं?

उत्तर जो प्रमाद रहित साधु धर्म-ध्यान में लवलीन (षट्-आवश्यक आदि मूलगुणों एवं स्वाध्याय-तत्त्वचिंतवनादि में तत्पर) रहते हैं उन्हें स्वस्थान अप्रमत्त विरत गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

प्र.939 सातिशय अप्रमत्त किसे कहते हैं?

उत्तर जो अप्रमत्तविरत उपशमश्रेणी अथवा क्षपक श्रेणी चढ़ने के अभिमुख होता हुआ चारित्र मोह की इक्कीस प्रकृतियों का उपशम या क्षय करने में निमित्तभूत तीन करणों में सर्व प्रथम अधःकरण परिणाम को करता है वह साधु; सातिशय अप्रमत्तवर्ती गुणस्थान वाला कहलाता है।

प्र.940 श्रेणी चढ़ने वाला पात्र कौन होता है?

उत्तर सातवें गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि ही श्रेणी चढ़ सकते हैं।

प्र.941 कौन-से सम्यग्दृष्टि कौन-सी श्रेणी चढ़ सकते हैं और कौन-से सम्यग्दृष्टि श्रेणी नहीं चढ़ सकते हैं?

उत्तर क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी भी चढ़ सकता है और क्षपक श्रेणी भी चढ़ सकता है किन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि केवल उपशम श्रेणी ही चढ़ सकता है, क्षपक श्रेणी नहीं चढ़ सकता तथा प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि श्रेणी नहीं चढ़ सकते हैं।

प्र.942 पुनः प्रथमोपशम सम्यक्त्व अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वाला जीव किस विधि से श्रेणी चढ़ने का पात्र बन सकता है?

उत्तर सर्व प्रथम; प्रथमोपशम सम्यक्त्व वाला प्रथमोपशम सम्यक्त्व को छोड़कर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व को ग्रहण करे। फिर अधःकरण; अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणामों के द्वारा पहले अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन करे और अन्तर्मुहूर्त्तकाल तक विश्राम लेकर पुनः अधःकरण आदि रूप परिणामों के द्वारा या तो दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम करके द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाये या उनका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाये तब श्रेणी चढ़ने का पात्र हो सकता है।

प्र.943 विसंयोजन किसे कहते हैं?

उत्तर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ के कर्म परमाणुओं को अन्य बारह और नोकषाय रूप परिणमाने (बदलने) को विसंयोजन कहते हैं।

प्र.944 मुनिराज द्वारा उपशमश्रेणी अधिक से अधिक कितनी बार प्राप्त की जा सकती है?

उत्तर मुनिराज द्वारा उपशम श्रेणी अधिक से अधिक चार बार प्राप्त की जा सकती है, परन्तु एक भव में दो बार ही प्राप्त की जा सकती है। पाँचवी बार नियम से मोक्ष प्राप्त करने वाली क्षपक श्रेणी ही होती है।

प्र.945 भव्यात्माओं के अपूर्वकरण परिणामों द्वारा कौन-कौन-से आवश्यक कार्य होते हैं?

उत्तर भव्यात्माओं के अपूर्वकरण परिणामों द्वारा चार आवश्यक कार्य होते हैं। प्रथम गुणश्रेणी निर्जरा, द्वितीय गुणसंक्रमण, तृतीय स्थिति खण्डन और चतुर्थ अनुभाग खण्डन ये चारों ही कार्य पूर्ववद्ध कर्मों में होते हैं। इन परिणामों के द्वारा जीव मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों का क्षपण, उपशमन करने के लिए उद्यत होते हैं।

प्र.946 गुणश्रेणी निर्जरा का स्वरूप क्या है?

उत्तर जीवों के गुणित रूप से उत्तरोत्तर समयों में कर्म परमाणुओं का झरना (निर्जरित होना) गुणश्रेणी निर्जरा कहलाती है। जैसे किसी जीव के पहले समय में दस कर्म परमाणु उदय में आये, फिर दूसरे समय में दस × असंख्यात परमाणु उदय में आये इसी तरह तीसरे, चौथे आदि समयों में लगातार असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे कर्मपरमाणुओं का उदय में आना गुणश्रेणी निर्जरा है।

प्र.947 चतुर्थ गुणस्थान में क्या निरन्तर असंख्यात गुणी निर्जरा होती है?

उत्तर नहीं, चतुर्थ असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में असंख्यात गुणी निर्जरा कदापि नहीं होती, बल्कि कहते हैं कि करणलब्धि के काल मात्र में असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

प्र.948 असंख्यात गुणी निर्जरा का प्रारम्भ कौन-से स्थान से होता है?

उत्तर असंख्यात गुणी निर्जरा का प्रारम्भ संयम (व्रत) से होता है। सिद्धांत ग्रन्थों के अनुसार पंचम गुणस्थान (देशसंयत स्थान) से निरन्तर गुण-श्रेणी रूप असंख्यातगुणी निर्जरा प्रारम्भ होती है। (धवल पु. 8/83, ज.ध.पु.12)

प्र.949 गुणसंक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ पर प्रति समय असंख्यात गुणश्रेणीक्रम से परमाणु प्रदेश अन्य प्रकृति रूप परिणमें, उसे

गुणसंक्रमण कहते हैं।

प्र.950 स्थितिखण्डन किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मों की स्थिति के उपरिम अंश, खण्ड या पोरों को खरोंचकर नष्ट कर देने को स्थिति-खण्डन या स्थिति काण्डकघात कहते हैं।

प्र.951 अनुभाग खण्डन किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मों के अनुभाग के उपरिम अंश, खण्ड या पोरों को खरोंचकर नष्ट कर देने को अनुभाग खण्डन या अनुभाग काण्डकघात कहते हैं।

प्र.952 स्थितिखण्डन या अनुभाग खण्डन से जीवों को क्या लाभ है?

उत्तर विशुद्ध परिणामों द्वारा स्थिति खण्डन या अनुभाग खण्डन करने से जीवों का स्थिति सत्त्व व अनुभाग सत्त्व हीन हो जाता है।

प्र.953 पूर्व स्पर्धक किन्हें कहते हैं?

उत्तर जो स्पर्धक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पूर्व में पाये जाते हैं, उनको पूर्व स्पर्धक कहते हैं।

प्र.954 अपूर्वस्पर्धक किन्हें कहते हैं?

उत्तर अनिवृत्तिकरण रूप परिणामों के निमित्त से जिनका अनुभाग अनन्तगुणा क्षीण कर दिया जाता है उनको अपूर्व स्पर्धक कहते हैं।

प्र.955 बादरकृष्टि किन्हें कहते हैं?

उत्तर जिनका अनुभाग अपूर्वस्पर्धक से भी अनन्तगुणा क्षीण हो जाता है उनको बादरकृष्टि कहते हैं।

प्र.956 सूक्ष्मकृष्टि किन्हें कहते हैं?

उत्तर जिनका अनुभाग बादरकृष्टि से भी अनन्तगुणा क्षीण हो जाता है उनको सूक्ष्मकृष्टि कहते हैं। (ये सभी कार्य नवम गुणस्थान में होते हैं।)

प्र.957 अनुभाग किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मों के फल देने की शक्ति को अनुभाग कहते हैं।

प्र.958 अविभाग प्रतिच्छेद किसे कहते हैं?

उत्तर अनुभाग शक्ति के सबसे छोटे अंश को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं।

प्र.959 समय प्रबद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर संसारावस्था में प्रतिसमय बँधने वाले कर्म या नोकर्म के समस्त परमाणुओं के समूह को समयप्रबद्ध कहते हैं।

प्र.960 वर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर विवक्षित समयप्रबद्ध में सबसे कम अनुभाग शक्ति के अंश अर्थात् अविभाग प्रतिच्छेद जिस परमाणु में पाये जाते हैं, उसे वर्ग कहते हैं।

प्र.961 वर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर समान संख्या वाले अविभाग प्रतिच्छेद जिनमें पाये जायें, उन सब वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं।

प्र.962 स्पर्धक किसे कहते हैं?

उत्तर जिनमें अविभागी प्रतिच्छेदों की समान वृद्धि पायी जाये उन वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं।

प्र.963 उपशान्त-कषाय और क्षीणकषाय गुणस्थान में क्या अन्तर है?

उत्तर उपशान्त-कषाय जीव के यद्यपि मोह का उदय नहीं है फिर भी मोहनीय कर्म की सत्ता है किन्तु क्षीणकषाय जीव के मोहनीय कर्म का उदय भी नहीं है और अस्तित्व भी नहीं है। फिर भी दोनों के ही परिणामों में कषायों का अभाव है अतः दोनों के यथाख्यात चारित्र होता है और दोनों ही बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहों से रहित होने के कारण निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं।

प्र.964 तेरहवें गुणस्थान में केवली भगवान को कौन-सी नव लब्धियों का अपूर्व लाभ होता है?

उत्तर केवली भगवान को क्षायिक-सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक-ज्ञान, क्षायिक-दर्शन, क्षायिक-दान, क्षायिक-लाभ, क्षायिक-भोग, क्षायिक-उपभोग और क्षायिक-वीर्य (शक्ति) इन नव लब्धियों का अपूर्व लाभ प्राप्त होता है।

प्र.965 गुणस्थानों में संसारी जीव किस क्रम-रीति से चढ़ता-उतरता है?

उत्तर 1. अनादि मिथ्यादृष्टि जीव करणलब्धि के प्रभाव से सम्यक्त्वघातक प्रकृतियों के उपशम से असंयत सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

2. सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से चतुर्थ गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

3. सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से मिश्र नामक तृतीय गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

4. सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व एवं पाँच पापों के एकदेश त्याग रूप परिणामों से देशविरत नामक पञ्चम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

5. सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व एवं प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से होने वाले चारित्र रूप परिणाम से अप्रमत्तविरत नामक सप्तम गुणस्थान को प्राप्त करते हैं।

(तात्पर्य यह है कि मिथ्यादृष्टि जीव सीधे सासादन और प्रमत्तविरत गुणस्थानों को प्राप्त नहीं करते हैं।)

6. सासादन गुणस्थानवर्ती जीव ऊपर सम्बन्धी किसी भी गुणस्थान को प्राप्त नहीं होते बल्कि नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान को ही प्राप्त करते हैं।

7. मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव सम्यक्त्व-प्रकृति के उदय से चतुर्थ गुणस्थान को प्राप्त होते हैं अथवा मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

8. अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानवर्ती उपशम सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं।

9. वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना और दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों का

अर्थात् सप्त प्रकृतियों का क्षय होने पर क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं।

10. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से पंचम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

11. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से सप्तम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

12. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव मिश्र प्रकृति के उदय से तीसरे गुणस्थान को, अनन्तानुबन्धी के उदय से दूसरे गुणस्थान को और मिथ्यात्व के उदय से प्रथम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

13. पंचम गुणस्थानवर्ती जीव प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से सप्तम गुणस्थान को प्राप्त करते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीव अविशुद्धि के योग से नीचे के चारों गुणस्थानों को भी प्राप्त हो सकते हैं।

14. षष्ठ-गुणस्थानवर्ती जीव नीचे के पाँचों गुणस्थानों को प्राप्त होते हैं।

15. षष्ठ-गुणस्थानवर्ती जीव अप्रमत्तविरत गुणस्थान पर्यन्त जाते हैं, उससे ऊपर नहीं जाते हैं।

16. सप्तम गुणस्थानवर्ती जीव अपूर्वकरण को, छठे गुणस्थान को और मरण की अपेक्षा देवगति सम्बन्धी चतुर्थ गुणस्थान को (इस तरह तीन गुणस्थानों) को प्राप्त होते हैं। उपशम श्रेणी वाले आठवें नौवें एवं दसवें गुणस्थानवर्ती जीव चढ़ने की अपेक्षा अनन्तर ऊपर के ग्यारहवें गुणस्थान तक, गिरने की अपेक्षा अनन्तर नीचे (दसवें आदि) और मरण की अपेक्षा देवगति सम्बन्धी चतुर्थ गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

17. ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव गिरने की अपेक्षा दसवें आदि निचले और मरण की अपेक्षा चौथे गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

18. क्षपकश्रेणी वाले जीव आठवें और नौवें गुणस्थानवर्ती जीव चढ़ने की अपेक्षा अनन्तर ऊपर के दसवें गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

19. क्षपक क्षेणी वाले दसवें गुणस्थानवर्ती जीव नियम से बारहवें गुणस्थानों को प्राप्त होते हैं और वहाँ से क्रम से आगे के गुणस्थानों को प्राप्त होते हुए मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

प्र.966 मरण किन गुणस्थानों में होता है?

उत्तर तृतीय गुणस्थान तथा क्षपकश्रेणी के चारों गुणस्थान और तेरहवें गुणस्थान को छोड़कर शेष गुणस्थानों में मरण होता है।

प्र.967 किस गुणस्थान में मरणकर जीव, किस गति को प्राप्त होता है?

उत्तर प्रथम और चतुर्थ गुणस्थान से मरणकर जीव चारों गतियों में से किसी भी गति में जा सकता है। सासादन गुणस्थान में मरणकर जीव नरक गति में नहीं जाता। चौदहवें गुणस्थान से निर्वाण होता है (अर्थात् पण्डित-पण्डित मरण होता है) और शेष सात गुणस्थानों से मरण कर जीव नियम से देवगति में जन्म लेता है।

प्र.968 किन-किन अवस्थाओं में जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं?

उत्तर 1. मिश्र गुणस्थान वाले जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

2. निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्था को धारण करने वाले मिश्रकाययोगी जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

3. क्षपकश्रेणी सम्बन्धी आठवें, नौंवें, दसवें एवं बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव मरण को प्राप्त नहीं होते।

4. उपशम श्रेणी चढ़ते हुए जीव अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग वाले (जब तक निद्रा और प्रचला की बन्ध-व्युच्छित्ति नहीं होती है) मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

5. प्रथमोपशम सम्यक्त्व वाले जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

6. तेरहवें गुणस्थान वाले जीव (केवली) मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

7. सातवें नरक के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ गुणस्थान वाले जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

8. अनन्तानुबन्धी कषाय की विसंयोजना करके मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले जीव अन्तर्मुहूर्त्त तक मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

9. क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख जीव जब तक मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क का क्षय नहीं कर देता है अर्थात् जब तक कृतकृत्यता (या कृतकृत्य वेदकता) रहती है तब तक मरण को प्राप्त नहीं होते हैं। (जयधवला पु.2, 215 से 220)

10. सिद्ध जीव सांसारिक जन्म मरण से रहित होते हैं।

क्र.	गुणस्थान	आरोहण क्रम	अवरोहण क्रम
1.	मिथ्यादृष्टि अनादि नि. सादि नि.	 उपशम सम्यक्त्व सहित 4,5,7 में 3,4,5,7 में	
2.	सासादन स.दृ.	×	1
3.	मिश्र	4 में	1
4.	असंयत- उपशम सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्य. क्षयोपशमिक सम्य.	 5,7 में 5,7 में 5,7 में	 3,2 , 1 में 3,1 में
5.	संयतासंयत	7 में	4,3,2,1 में
6.	प्रमत्तसंयत	7 में	5,4,3,2,1 में
7.	अप्रमत्तसंयत	8 में	6 में मरण की अपेक्षा चौथे में आ जाता है।
8.	अपूर्वकरण	9 में	7 में –''–
9.	अनिवृत्तिकरण	10 में	8 में –''–
10.	सूक्ष्मसम्पराय	11,12 में	9 में –''–
11.	उपशांत कषाय	×	10 में –''–
12.	क्षीण कषाय	13 में	×
13.	सयोग केवली	14 में	×
14.	अयोग केवली	सिद्ध	×

ध. 12 के आधार पर

प्र.969 कौन-से मत से कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि का मरण होता है?

उत्तर लब्धिसार के मत से कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि का मरण होता है।

प्र.970 कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न नहीं होते हैं?

उत्तर कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त्त है, जिस काल के व्यतीत होते ही जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि बन ही जाता है। उस अन्तर्मुहूर्त्त के चार भागों में से प्रथम भाग में मरण प्राप्त जीव देवों में, दूसरे भाग में मरण प्राप्त जीव देवों और मनुष्यों में, तीसरे भाग में मरण प्राप्त जीव देव, मनुष्य और तिर्यञ्चों में तथा चौथे भाग में मरण प्राप्त जीव चारों गतियों में से किसी भी गति में उत्पन्न होते हैं।

प्र.971 चौदह गुणस्थानों में आयुकर्म को छोड़कर अन्य सातकर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा (असंख्यात गुणी निर्जरा) किस प्रकार होती है?

उत्तर सम्यक्त्व-उत्पत्ति काल अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धी कर्म का विसंयोजन करने वाले, दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय करने वाले, कषायों का उपशम करने वाले 8, 9, 10वें गुणस्थानवर्ती जीव, उपशान्त कषाय, कषायों का क्षपण करने वाले 8, 9, 10 वें गुणस्थानवर्ती जीव, क्षीणमोह, सयोग केवली और अयोग केवली जिन, इन ग्यारह स्थानों में द्रव्य की अपेक्षा कर्मों की निर्जरा क्रम से असंख्यातगुणी-असंख्यातगुणी (गुणश्रेणी) अधिक अधिक होती जाती है।

प्र.972 क्या आगे-आगे के गुणस्थानों में निर्जरा के समान निर्जरा का काल भी अधिक-अधिक है?

उत्तर नहीं, निर्जरा से निर्जरा होने का काल विपरीत है। क्रम से उत्तरोत्तर संख्यात गुणा-संख्यातगुणा हीन है।

प्र.973 अयोगकेवली गुणस्थान में केवली भगवान की क्या विशेषता है?

उत्तर जो अठारह हजार शीलों के स्वामी हैं, जिनके कर्मों के आश्रव का द्वार बंद हो गया है तथा सत्त्व और उदय रूप अवस्था को प्राप्त कर्म रूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से जो उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सम्मुख हैं, ऐसे योग रहित केवली; चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवान होते हैं।

प्र.974 गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान का स्वरूप कैसा है?

उत्तर जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों से रहित हैं, अनन्तसुख रूपी अमृत का अनुभव करने वाले शांतिमय हैं, नवीन कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भाव कर्म रूपी अंजन से जो रहित हैं, जो नित्य हैं, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रकट हो चुके हैं, जो कृतकृत्य हैं अर्थात् जिनको कोई कार्य करना शेष नहीं है और जो लोक के अग्रभाग में निवास करने वाले हैं उसको सिद्ध भगवान कहते हैं।

अध्याय - 10.
जीवसमास व मार्गणादि

प्र.975 जीवसमास किन्हें कहते हैं?

उत्तर जिनमें जीव तथा जीव के भेद-प्रभेद समाहित किये जाते हैं वे जीवसमास कहलाते हैं।

प्र.976 जीवसमास के मुख्यतः कितने भेद हैं?

उत्तर जीवसमास अनेक भेद वाले होते हुए भी मुख्यतः चौदह, उन्नीस, सत्तावन और अण्ठानवे भेदों से विशेष प्रचलित हैं।

प्र.977 जीवसमास के चौदह भेद कौन-से हैं?

उत्तर एकेन्द्रिय जीव के दो भेद-बादर और सूक्ष्म। विकलत्रय जीव के तीन भेद-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय। पंचेन्द्रिय जीव के दो भेद- सैनी और असैनी। इस प्रकार इन सातों भेदों के पर्याप्त और अपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद और करने पर जीवसमास के चौदह भेद कहे जाते हैं।

प्र.978 जीवसमास के उन्नीस भेद कौन-से हैं?

उत्तर स्थावर के पृथिवी, जल, अग्नि और वायु कायिक एवं नित्य निगोद तथा इतरनिगोद इन छह प्रकार के जीवों के बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा दो-दो भेद, प्रत्येक वनस्पति के सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित की अपेक्षा दो भेद इस प्रकार एकेन्द्रिय जीव के चौदह भेद हुए। उनमें त्रस सम्बन्धी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सैनी और असैनी पंचेन्द्रिय के पाँच भेद मिलाने पर जीवसमास के उन्नीस भेद कहे जाते हैं।

प्र.979 जीवसमास के सत्तावन भेद कौन-से हैं?

उत्तर उपर्युक्त उन्नीस जीवसमासों के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद गिनने पर सभी सत्तावन जीवसमास होते हैं।

प्र.980 जीवसमास के अण्ठानवे भेद कौन-से हैं?

उत्तर जीवों के एकेन्द्रिय के उपर्युक्त 14 भेदों के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद हैं, अतः एकेन्द्रिय सम्बन्धी $14 \times 3 = 42$ भेद होते हैं।

विकलत्रय के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद हैं, अतः विकलत्रय के $3 \times 3 = 9$ भेद होते हैं। कर्मभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के संज्ञी और असंज्ञी की अपेक्षा दो भेद हैं। इन दोनों के जलचर, थलचर और नभचर की अपेक्षा तीन-तीन भेद होने से छः भेद होते हैं। ये ही छः प्रकार के जीव गर्भजन्म और सम्मूर्च्छन जन्म की अपेक्षा दो प्रकार के होते हैं। गर्भ जन्म वाले छः प्रकार के जीवों के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद हैं अतः $6 \times 2 = 12$ भेद होते हैं। सम्मूर्च्छन जन्म वाले छह प्रकार के जीवों के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद अतः $6 \times 3 = 18$ भेद होते हैं।

इस तरह कर्मभूमिज तिर्यंचों के 12 + 18 = 30 भेद होते हैं। भोगभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद हैं अत: 2 × 2 = 4 भेद होते हैं।

आर्यखण्ड के मनुष्यों के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन भेद होते हैं।

म्लेच्छखण्ड के मनुष्य के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो भेद होते हैं।

भोगभूमिज और और कुभोगभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद हैं।

देव और नारकियों के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद होते हैं।

इस प्रकार तिर्यंचों के 42 + 5 + 12 + 18 + 4 = 85 भेद, मनुष्यों के 3 + 2 + 4 = 9 भेद, देव में 2 भेद और नारकी में 2 भेद, ये सब मिलाकर जीवसमास के 85 + 9 + 4=98 भेद होते हैं। (गो.सा.जी.का. गाथा 70-80/क.प्र.भा.1, पृ.12-13)

प्र.981 योनि किसे कहते हैं?

उत्तर जीवों के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। (आकार योनि, गुणयोनि का वर्णन देखिये गो.सा.गाथा 81 से 89 तक)

प्र.982 गुणयोनि के चौरासी लाख भेद कौन से हैं?

उत्तर नित्य-निगोद, इतर-निगोद एवं पृथिवी, जल, अग्नि और वायुकायिक इन छह प्रकार के जीवों में से प्रत्येक की सात-सात लाख, प्रत्येक वनस्पति की दस लाख, विकलत्रयों में प्रत्येक की दो-दो लाख, देव-नारकी और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में प्रत्येक की चार-चार लाख और मनुष्यों की चौदह लाख- इस तरह सब मिलाकर जीवों के उत्पत्ति-स्थान रूप गुणयोनि के चौरासी लाख भेद आगम में बतलाये गये हैं।

प्र.983 कुल किसे कहते हैं?

उत्तर भिन्न-भिन्न शरीरों की उत्पत्ति में कारण भूत नोकर्म वर्गणा के भेदों को कुल कहते हैं।

प्र.984 आगम दृष्टि से किस जीव के कितने कुल होते हैं?

उत्तर **विभिन्न जीवों के कुल**-पृथिवीकायिक के 22 लाख कोटि, जलकायिक के 7 लाख कोटि, अग्निकायिक के 3 लाख कोटि, वायुकायिक के 7 लाख कोटि, वनस्पतिकायिक के 28 लाख कोटि, द्वीन्द्रिय के 7 लाख कोटि, त्रीन्द्रिय के 8 लाख कोटि, चतुरिन्द्रिय के 9 लाख कोटि, पंचेन्द्रिय जलचर के 12 1/2 लाख कोटि, पंचेन्द्रिय (छाती के सहारे चलने वाले) के 9 लाख कोटि, देव के 26 लाख कोटि, नारकी के 25 लाख कोटि और मनुष्य के 14 लाख कोटि।

प्र.985 समस्त संसारी जीवों के कुलों की संख्या का जोड़ कितना है?

उत्तर समस्त कुलों अथवा कुलकोटियों की संख्या का जोड़ एक कोड़ा-कोड़ी निन्यानवे लाख पचास हजार कोटि है। कहीं-कहीं मनुष्यों के कुलों की संख्या 12 लाख कोटि बतलायी गई है, अत: उनके

मत से समस्त कुलों का परिमाण एक कोड़ा-कोड़ी सत्तानवे लाख पचास हजार कोटि जानना चाहिए। (पर्याप्तियों का वर्णन देखें जैनागम संस्कार अ .17, पृ.171)

प्र.986 लब्ध्यपर्याप्तक जीव एक अन्तर्मुहूर्त्त में अधिक-से-अधिक कितने भवधारण कर सकता है?

उत्तर एक लब्ध्यपर्याप्तक जीव यदि निरन्तर जन्म-मरण करे तो एक अन्तर्मुहूर्त्त में अधिक-से-अधिक 66336 बार जन्म और उतने ही मरण कर सकता है। इन भवों में प्रत्येक भव का काल क्षुद्रभव प्रमाण है अर्थात् एक श्वास का अठारहवाँ भाग है।

प्र.987 एक अन्तर्मुहूर्त्त में कौन-कौन से लब्धपर्याप्तकों के कितने-कितने भव होते हैं?

उत्तर पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारण वनस्पतिकायिक के बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक इन ग्यारह प्रकार के लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में से प्रत्येक के 6012-6012 उत्कृष्ट भव की अपेक्षा एकेन्द्रियों के उत्कृष्ट भव 6012 × 11 = 66132 भव होते हैं। द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट 80 भव, त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट 60 भव, चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट 40 भव, असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट 8 भव, संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चों के उत्कृष्ट 8 भव और मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट 8 भव इस तरह सभी मिलाकर एक अन्तर्मुहूर्त्त काल में उत्कृष्ट भव 66336 होते हैं।

प्र.988 लब्ध्यपर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और पर्याप्त अवस्था किन-किन गुणस्थानों में होती हैं।

उत्तर लब्ध्यपर्याप्त अवस्था मात्र मिथ्यात्व गुणस्थान में होती है। वह भी सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न होने वाले मनुष्यगति और तिर्यञ्चगति के जीवों के होती है, अन्य जीवों के नहीं।

निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व, अविरतसम्यक्त्व, आहारक शरीर की अपेक्षा प्रमत्तविरत और सयोगकेवली जिन के समुद्घात के काल में कपाट, प्रतर और लोकपूरण अवस्था की अपेक्षा होती है।

पर्याप्त अवस्था सभी गुणस्थानों में होती है।

प्र.989 प्राण किसे कहते हैं?

उत्तर जिससे जीव की पहचान होती है उसे प्राण कहते हैं।

प्र.990 जीव की पहचान कौन-कौन से प्राणों से होती है?

उत्तर जीव की पहचान द्रव्य और भाव प्राणों से होती है।

प्र.991 द्रव्य प्राण किन्हें कहते हैं?

उत्तर संसार में जिनके संयोग से जीव जीवित और जिनके वियोग से मृत कहलाता है उन्हें द्रव्य प्राण कहते हैं।

प्र.992 भाव प्राण किन्हें कहते हैं?

उत्तर चेतन रूप ज्ञान और दर्शन आदि गुणों को भाव प्राण कहा जाता है, ये प्राण सिद्ध अवस्था में भी मौजूद रहते हैं।

प्र.993 द्रव्य प्राण कितने होते हैं और कौन-कौन-से होते हैं?

उत्तर द्रव्य प्राण दस होते हैं- 5 इन्द्रियाँ, 3 बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ।

प्र.994 कौन-से जीव के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर एकेन्द्रिय जीव के स्पर्शेन्द्रिय, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह 4 प्राण होते हैं ।

द्वीन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, कायबल, वचन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह 6 प्राण होते हैं ।

त्रीन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण, कायबल, वचन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह 7 प्राण होते हैं ।

चतुरिन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कायबल, वचनबल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह 8 प्राण होते हैं ।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, कायबल, वचनबल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह 9 प्राण होते हैं ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, कायबल, वचन बल, मन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह 10 प्राण होते हैं ।

प्र.995 अपर्याप्त अवस्था में जीवों के कितने प्राण होते हैं?

उत्तर अपर्याप्त अवस्था में वचनबल, मनबल और श्वासोच्छ्वास ये तीन प्राण नहीं होते हैं, अतः अपर्याप्तक एकेन्द्रिय आदि जीवों के क्रमशः तीन, चार, पाँच, छह, सात और सात होते हैं। (अपर्याप्त अवस्था में मिश्रकाययोग रूप बल और भाव इन्द्रिय जानना चाहिए)।

प्र.996 कौन-कौन से कर्म से कौन-से प्राण उत्पन्न होते हैं?

उत्तर मनोबल-प्राण और इन्द्रिय-प्राण वीर्यान्तराय कर्म और मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम रूप अंतरंग कारण से उत्पन्न होते हैं। काय-बलप्राण शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न होता है। श्वासोच्छ्वास प्राण श्वासोच्छ्वास और शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न होता है। वचन बल स्वर नामकर्म के साथ शरीर नामकर्म का उदय होने पर उत्पन्न होता है।

प्र.997 संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर जिन आहार, भय, मैथुन और परिग्रह रूप निमित्तों से संक्लेशित होकर जीव इस भव में और जिनके विषय का सेवन करने से जीव पर-भव में भी दारुण दुःख को प्राप्त होते हैं वे संज्ञायें कहलाती हैं।

प्र.998 कौन-कौन-सी संज्ञा कौन-कौन-से गुणस्थान तक होती है?

उत्तर आहार संज्ञा छठे गुणस्थान तक, भय संज्ञा आठवें गुणस्थान तक, मैथुन संज्ञा नवम गुणस्थान के सवेद भाग तक और परिग्रह संज्ञा दसवे गुणस्थान तक होती है।

प्र.999 अप्रमत्तादि गुणस्थानों में आहार संज्ञा क्यों नहीं होती है?

उत्तर अप्रमत्तादि गुणस्थानों में आहार संज्ञा इस कारण नहीं होती क्योंकि वहाँ आहार संज्ञा उत्पन्न होने का

कारण असाता वेदनीय कर्म का तीव्र उदय या उसकी उदीरणा का नहीं पाया जाना है।

प्र.1000 सप्तम आदि गुणस्थानों में जो भय आदि तीन संज्ञायें बतलायी गई हैं उसका कारण क्या है?

उत्तर सप्तम आदि गुणस्थानों में शेष संज्ञाओं का कथन उपचार से है क्योंकि तत्तत्कर्मों का उदय वहाँ पाया जाता है, फिर भी उनका वहाँ पर कार्य नहीं हुआ करता, जिसका कारण परम वैराग्य और ध्यान है।

प्र.1001 मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर प्रत्यक्ष ज्ञान में देखे गये जीवादि पदार्थों का जिनभावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में विचार-अन्वेषण किया जाय (या खोजा जाय) उनको मार्गणा कहते हैं। (मृग्यतेति मार्गणा)

प्र.1002 मार्गणा के भेद कितने होते हैं?

उत्तर मार्गणा के भेद चौदह हैं- 1. गति, 2.इन्द्रिय, 3. काय, 4.योग, 5.वेद, 6.कषाय, 7.ज्ञान, 8. संयम, 9. दर्शन, 10. लेश्या, 11. भव्यत्व, 12. सम्यक्त्व, 13. संज्ञी और 14. आहार।

प्र.1003 गति मार्गणा किसको कहते हैं?

उत्तर गति नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई जीव की पर्याय विशेष को गति कहते हैं। जिसके चार भेद हैं- नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति।

प्र.1004 इन्द्रिय मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर संसारी आत्मा के शारीरिक चिह्न विशेष को इन्द्रिय कहते हैं। जिसके द्रव्य और भाव रूप से दो भेद हैं।

प्र.1005 काय मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर त्रस, स्थावर नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई जीव की त्रस, स्थावर पर्याय विशेष को कायमार्गणा कहते हैं। एकेन्द्रिय स्थावर और द्वीन्द्रियादि त्रस काय कहलाते हैं।

प्र.1006 योग मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर पुद्गल विपाकी शरीर और अंगोपांग नामकर्म के उदय से मनोवर्गणा, वचनवर्गणा और कायवर्गणा के अवलम्बन से युक्त आत्मा को जो शक्ति; पुद्गल स्कन्धों को कर्म और नोकर्मरूप परिणमाने में समर्थ है, उसे भावयोग कहते हैं और उस शक्ति के धारी आत्मा के प्रदेशों में जो हलन-चलन होती है वह द्रव्ययोग है।

प्र.1007 योगों के कितने भेद हैं?

उत्तर सत्य, असत्य, उभय और अनुभय के भेद से मनोयोग और वचन योग के चार-चार भेद इस तरह आठ-भेद तथा औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मणकाय योग के भेद से काययोग के सात भेद तथा सम्पूर्ण रूप से पन्द्रह भेद हैं।

प्र.1008 वेद मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसक वेद नामक नोकषाय के उदय से जो रमण की इच्छा होती है वह भाववेद है। तथा अंगोपांग नामकर्म के उदय से चिह्नविशेष की रचना का होना द्रव्य वेद कहलाता है।

प.1009 कषाय मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर जो मुख्यतः सम्यक्त्व व चारित्र गुणों का घात करती है (रोकती है) उसे कषाय कहते हैं।

प्र.1010 कषाय के कितने भेद हैं?

उत्तर कषाय के मूल में चार भेद हैं क्रोध, मान, माया और लोभ। इनके उत्तर भेद पच्चीस हैं। (विशेष देखें जै.सं. पृष्ठ 163)

प्र.1011 ज्ञान मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा जीव; त्रिकाल विषयक द्रव्य, गुण और उसकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने, उसे ज्ञान कहते हैं। (पंचज्ञान देखें जैनागम सं.अ.10, पृष्ठ 79/ मतिज्ञान के भेद आगे कहेंगे।)

प्र.1012 ज्ञान मार्गणा के आठ भेद कौन-से हैं?

उत्तर मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ज्ञान।

प्र.1013 सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, सकल प्रत्यक्ष और विकल प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर मतिज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, केवलज्ञान को सकल प्रत्यक्ष तथा अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान को विकल प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं।

प्र.1014 संयम मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर अहिंसादि व्रतों का धारण, ईर्यादि समिति-पालन, क्रोधादि कषाय-निग्रह, त्रि-गुप्तियों की साधना और पंच इंद्रिय-विजय संयम कहलाता है।

प्र.1015 संयम मार्गणा के कितने भेद हैं?

उत्तर सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म-साम्पराय, यथाख्यात, संयमासंयम और असंयम ऐसे सात भेद हैं। (विशेष आगे कहेंगे।)

प्र.1016 दर्शन मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश को ग्रहण न करके सामान्य अंश का जो निर्विकल्प ग्रहण होता है, उसे दर्शन कहते हैं।

प्र.1017 दर्शन मार्गणा के चार भेद कौन-से हैं?

उत्तर चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

प्र.1018 लेश्या मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर कषाय से अनुरंजित मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं।

प्र.1019 लेश्या के छह भेद कौन-से हैं?

उत्तर कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

प्र.1020 भव्य मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर मुक्ति (मोक्ष) प्राप्ति की योग्यता वाला भव्य और उससे विपरीत अभव्य कहलाता है।

प्र.1021 सम्यक्त्व मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर जिनवर कथित; द्रव्य, पञ्चास्तिकाय और नव पदार्थों पर श्रद्धान करना सम्यक्त्व कहलाता है।

प्र.1022 सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेद कौन-से हैं?

उत्तर औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व, मिश्र, सासादन और मिथ्यात्व।

प्र.1023 संज्ञी मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से जो जीव शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलाप (भाषादि) को मन के अवलम्बन से ग्रहण करता है उसे संज्ञी कहते हैं और इससे विपरीत असंज्ञी कहलाता है। इस मार्गणा के ऐसे दो ही भेद हैं।

प्र.1024 आहार मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर औदारिकादि तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल वर्गणा को आहार कहते हैं। उसे जो ग्रहण करता है वह आहारक है। उससे रहित अनाहारक कहलाता है। इस मार्गणा के ऐसे दो भेद हैं। (इन मार्गणाओं का विशेष विषय आगे कहा जावेगा।)

प्र.1025 कौन-सी मार्गणाओं में किस अपेक्षा से जीवसमास का अन्तर्भाव होता है?

उत्तर इन्द्रिय और कायमार्गणाओं में स्वरूप-स्वरूपवत् सम्बन्ध की अपेक्षा अथवा सामान्य विशेष की अपेक्षा जीवसमास का अन्तर्भाव सम्भव है। क्योंकि इन्द्रिय तथा काय जीवसमास के स्वरूप हैं और जीवसमास स्वरूपवान हैं। तथा इन्द्रिय और काय विशेष हैं और जीवसमास सामान्य हैं।

प्र.1026 इन्द्रिय मार्गणा में पर्याप्ति का अन्तर्भाव किस अपेक्षा से होता है?

उत्तर धर्म और धर्मी संबंध की अपेक्षा पर्याप्ति का इन्द्रिय में अन्तर्भाव होता है क्योंकि इन्द्रिय धर्मी है, और पर्याप्ति धर्म है।

प्र.1027 श्वासोच्छ्वास प्राण, वचनबल प्राण तथा मनोबल प्राण का पर्याप्ति में अन्तर्भाव किस अपेक्षा संभव है?

उत्तर कार्यकारण संबंध की अपेक्षा श्वासोच्छ्वास प्राण, वचनबल प्राण तथा मनोबल प्राण का पर्याप्ति में अन्तर्भाव हो सकता है क्योंकि प्राण कार्य है और पर्याप्ति कारण है। पर्याप्तियाँ; इन्द्रिय और काय में अन्तर्भूत हैं, अतएव श्वासोच्छ्वास, वचनबल और मनोबल प्राण भी उन्हीं में अंतर्भूत हो जाते हैं।

प्र.1028 कायबल प्राण योग में किस अपेक्षा अन्तर्भूत हो जाता है?

उत्तर कायबल प्राण विशेष है और योग सामान्य है इसलिए सामान्य-विशेष की अपेक्षा योग मार्गणा में कायबल प्राण अंतर्भूत हो जाता है।

प्र.1029 ज्ञानमार्गणा में इन्द्रियों का अन्तर्भाव किस अपेक्षा से सम्भव होता है?

उत्तर कार्यकारण सम्बंध की अपेक्षा ज्ञानमार्गणा में इन्द्रियों का अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि ज्ञान कार्य के प्रति लब्धीन्द्रिय कारण है।

प्र.1030 गति मार्गणा में आयु प्राण का अन्तर्भाव किस अपेक्षा से सम्भव है?

उत्तर गति मार्गणा में आयु प्राण का अन्तर्भाव साहचर्य संबन्ध की अपेक्षा हो सकता है क्योंकि इन दोनों ही

कर्मों का उदय सहचर है साथ-साथ ही हुआ करता है।

प्र.1031 संज्ञाओं का अन्तर्भाव किस अपेक्षा से किस मार्गणा में होता है?

उत्तर आहार रतिपूर्वक होता अर्थात् आहार संज्ञा राग विशेष होने से राग का ही स्वरूप है और माया तथा लोभ कषाय ये दोनों ही राग विशेष होने से स्वरूपवान हैं। इसलिए स्वरूपवत् सम्बंध की अपेक्षा माया और लोभ कषाय में आहार संज्ञा का अन्तर्भाव होता है। इसी अपेक्षा से क्रोध तथा मान कषाय में भय संज्ञा का अन्तर्भाव होता है। कार्यकारण संबंध की अपेक्षा वेद कषाय में मैथुन संज्ञा का और लोभ कषाय में परिग्रह संज्ञा का अन्तर्भाव होता है। क्योंकि वेदकषाय तथा लोभकषाय कारण है और मैथुन संज्ञा तथा परिग्रह संज्ञा उनके क्रम से कार्य हैं।

प्र.1032 उपयोग का ज्ञान और दर्शन मार्गणा में अन्तर्भाव किस अपेक्षा से होता है?

उत्तर आगम में उपयोग; साकार और अनाकार रूप से दो भेद रूप है। यह घट है, यह पट है ऐसा विशेष रूप प्रतिभासित होना साकार उपयोग है जो कि ज्ञान रूप है, अतः इसका अन्तर्भाव ज्ञान मार्गणा में होता है। जिसमें कोई भी विशेष पदार्थ प्रतिभासित न होकर केवल महा सामान्य रूप ही विषय प्रतिभासित हो उसको अनाकार उपयोग कहते हैं जो दर्शन रूप है, अतः इसका अन्तर्भाव दर्शन मार्गणा में हो जाता है। (अन्तर्भाव प्रकरण गो.जी.गा. 5,6,7)

प्र.1033 साकार उपयोग रूप ज्ञानोपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर साकार उपयोग रूप ज्ञानोपयोग के पूर्व कथित रूप से मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान अथवा विभंगज्ञान, इस तरह आठ भेद हैं। (ज्ञान के लक्षण-जै.सं. पृ.79)

प्र.1034 अनाकार उपयोग रूप दर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर अनाकार उपयोग रूप दर्शनोपयोग के पूर्व कथित रूप से चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन, इस प्रकार चार भेद होते हैं।

प्र.1035 सान्तर और निरन्तर मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर जिन मार्गणाओं में अन्तर-विरह या विच्छेद पड़ता है उन्हें सान्तर मार्गणा कहते हैं और इससे विपरीत मार्गणाओं को निरन्तर मार्गणा कहते हैं।

प्र.1036 यहाँ अन्तर से क्या तात्पर्य है?

उत्तर किसी भी विवक्षित गुणस्थान या मार्गणास्थान को छोड़कर पुनः उसी स्थान को प्राप्त करने में जीव को बीच में जो समय लगता है उसको अन्तर-विरह या विच्छेद कहते हैं।

प्र.1037 सान्तर मार्गणाएँ कौन-सी हैं?

उत्तर सान्तर मार्गणाएँ आठ हैं- 1. उपशम सम्यक्त्व, 2. सूक्ष्मसाम्पराय संयम, 3. आहारक काययोग, 4.आहारक मिश्रकाययोग, 5. वैक्रियिक मिश्रकाययोग, 6.लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, 7. सासादन सम्यक्त्व और 8.मिश्र।

प्र.1038 आठ अन्तर मार्गणाओं का उत्कृष्ट और जघन्य अन्तर काल कितना होता है?

उत्तर नाना जीवों की अपेक्षा आठ अन्तर मार्गणाओं के उत्कृष्ट अन्तर काल क्रमशः 1. सात दिन, 2. छह महीना, 3. पृथक्त्व वर्ष, 4. पृथक्त्ववर्ष, 5.बारह मुहूर्त्त, 6. पल्य का असंख्यातवाँ भाग, 7. पल्य का असंख्यातवाँ भाग और 8. पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। तथा सर्व आठों का जघन्य अन्तर काल एक समय है।

प्र.1039 प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित पंचम, छट्ठे और सातवें गुणस्थान का उत्कृष्ट विरह-अन्तर काल कितना होता है?

उत्तर प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित पंचम गुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर काल चौदह दिन है, और छट्ठे, सातवे गुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर काल पन्द्रह दिन जानना चाहिए।

प्र.1040 वनस्पति काय में साधारण वनस्पति कायिक का लक्षण क्या है?

उत्तर जिन जीवों का शरीर साधारण नामकर्म के उदय के कारण निगोद रूप होता है, जहाँ एक शरीर में अनन्तानन्त जीव रहते हैं और जिनका आहार, श्वासोच्छ्वास, जीवन तथा मरण समान (एक साथ) होता है उन्हें साधारण वनस्पति कहते हैं।

प्र.1041 साधारण वनस्पति के भेद एवं उनमें विशेषता क्या है?

उत्तर साधारण वनस्पति के बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा दो भेद होते हैं। एक बादर निगोद शरीर में या एक सूक्ष्म निगोद शरीर में साथ ही उत्पन्न होने वाले अनन्तानन्त साधारण जीव या तो पर्याप्तक ही होते हैं या अपर्याप्तक ही होते हैं, किन्तु मिश्र रूप नहीं होते, क्योंकि उनके एक समान कर्मोदय का नियम है। (क.दी.पृ.28)

प्र.1042 प्रत्येक वनस्पति के भेद कौन-से हैं?

उत्तर प्रत्येक वनस्पति के 1.सप्रतिष्ठित प्रत्येक और 2. अप्रतिष्ठित प्रत्येक रूप दो भेद होते हैं।

प्र.1043 सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक का लक्षण क्या है?

उत्तर जिनके आश्रय से बादर निगोदिया जीव रहते हैं तथा जिनकी शिरा, सन्धि तथा पर्व आदि प्रकट न हुए हों, जिनका भंग करने पर समान भंग होता हो, तोड़ने पर जिनमें परस्पर तन्तु न लगे रहें एवं छेद (काटने) करने पर भी जिनकी पुनः वृद्धि हो जावे और जिसके स्कन्ध की छाल मोटी हो उनको सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक कहते हैं। (इन्हें उपचार से साधारण वनस्पति भी कहते हैं।)

प्र.1044 सप्रतिष्ठित प्रत्येक और साधारण वनस्पति में क्या अन्तर है?

उत्तर सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के आश्रित रहने वाले बादर निगोदिया जीव अपने शरीर का स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। साधारण वनस्पति में रहने वाले अनंतानंत जीव अपने शरीर का स्वतन्त्र अस्तित्व न रखकर एक शरीर के ही स्वामी होते हैं।

प्र.1045 अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक का लक्षण क्या है?

उत्तर जिनके आश्रय से बादर निगोदिया जीव नहीं रहते हैं तथा जिनकी शिरा, सन्धि और पर्व आदि की

रेखाएँ प्रकट हो चुकी हैं, तोड़ने पर जिनका समान भंग नहीं होता है एवं छिन्न हो जाने पर जो पुनः उत्पन्न नहीं होती हैं और जिनके स्कन्ध की छाल पतली होती है, उनको अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक कहते हैं।

प्र.1046 अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की विशेषता क्या है?

उत्तर अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक अपनी उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त सप्रतिष्ठित प्रत्येक ही रहती है।

प्र.1047 काय, कायिक आदि से क्या तात्पर्य है?

उत्तर वनस्पति-सामान्य (सर्व जगह प्रयुक्त शब्द) है, जैसे वनस्पति।

काय- अर्थात् जिससे जीव निकल चुका है, जैसे-वनस्पतिकाय।

कायिक- अर्थात् जिसमें जीव रह रहा है जैसे-वनस्पतिकायिक।

वनस्पति जीव- अर्थात् जो वनस्पति नामकर्म के साथ अन्य गति से मरण कर वनस्पति में जन्म लेने आ रहा है, अभी विग्रह गति में है। इस तरह पाँचों ही स्थावरों में चार-चार प्रकार पाये जाते हैं।

प्र.1048 एक निगोद शरीर में द्रव्य की अपेक्षा जीवों का प्रमाण कितना है?

उत्तर एक निगोद-शरीर में समस्त सिद्ध राशि का और सम्पूर्ण अतीत काल के समयों का जितना प्रमाण है, द्रव्य की अपेक्षा उनसे अनन्तगुणे जीव एक निगोद शरीर में पाये जाते हैं।

प्र.1049 नित्य निगोद और इतर निगोद का लक्षण क्या है?

उत्तर जो कभी भी या आज तक निगोद अवस्था से नहीं निकले हैं, उन्हें नित्य निगोद कहते हैं। जो निगोद से निकलकर तथा अन्य पर्यायों में जन्म लेकर पुनः निगोद में ही जन्म लेते हैं, उन्हें इतर निगोद कहते हैं।

प्र.1050 नित्य निगोदिया और इतरनिगोदिया जीवों के संसार-भ्रमण का काल कितना होता है?

उत्तर नित्य निगोदिया जीवों के संसार-भ्रमण का काल अनादि अनन्त और अनादि सान्त होता है। तथा इतर निगोदिया जीवों के संसार भ्रमण का काल सादिसान्त और सादि अनन्त होता है।

प्र.1051 सादि, अनादि सान्त और अनन्त से क्या तात्पर्य है?

उत्तर 1. सादि अर्थात् किसी विवक्षित अवस्था का प्रारम्भ होना है।

2. अनादि अर्थात् किसी विवक्षित अवस्था का प्रारम्भ नहीं हुआ वह अवस्था अनादि (हमेशा) काल से है।

3. सान्त अर्थात् कोई विवक्षित अवस्था जो अन्त (समापन) सहित होती है।

4. अनन्त अर्थात् कोई विवक्षित अवस्था जो कदापि अन्त-समापन को प्राप्त नहीं होती है।

प्र.1052 सिद्धान्तानुसार निगोदिया जीव किस कायिक में गर्भित किये जाते हैं?

उत्तर सिद्धान्तानुसार निगोदिया जीव वनस्पति कायिक में गर्भित किये जाते हैं।

प्र.1053 बादर निगोदिया जीव कहाँ-कहाँ नहीं पाये जाते हैं?

उत्तर पृथिवी, जल, अग्नि और वायु इन चार स्थावरों में, आहारक शरीर, देव, नारकियों का शरीर और केवली भगवान का शरीर इन आठ स्थानों में बादर निगोदिया जीव नहीं रहते हैं।

प्र.1054 कौन-से जीवों का शरीर निगोदिया जीवों से प्रतिष्ठित होता है?

उत्तर वनस्पतिकायिक जीवों का शरीर तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों का शरीर निगोदिया जीवों से प्रतिष्ठित (युक्त) होता है।

प्र.1055 स्थावर और त्रस काय वाले जीवों के कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर स्थावरकायिक जीवों के एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है और त्रस कायिक जीवों के चौदह गुणस्थान होते हैं। (यह सामान्य कथन है)।

प्र.1056 सत्य मनोयोग आदिक का क्या स्वरूप है?

उत्तर उदाहरणार्थ- घट को घट जानना या कहना सत्य है। घट को पट (चित्र) जानना या कहना असत्य है। कमण्डलु को घट कहना या जानना उभय है क्योंकि कमण्डलु भी घट के समान जल भरने के काम आता है अतः सत्य है और कमण्डलु का आकार घट जैसा नहीं है अतः असत्य है तथा सत्य और असत्य के निर्णय से रहित पदार्थ अनुभय है। जैसे किसी कार्य की अनुमति माँगने पर 'देखो' ऐसा कह देना अनुभय वचन योग है क्योंकि करने व नहीं करने वाले दोनों प्रकार के वचनों का अभाव है। सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप पदार्थों में जो मन और वचन की प्रवृत्ति होती है अर्थात् चार प्रकार के पदार्थों को जानने या कहने के लिए जीव जो प्रयत्न करता है, वह सत्य आदि पदार्थों के सम्बन्ध से चार प्रकार का मनोयोग और चार का प्रकार का वचन योग कहलाता है। (क.प्र.)

प्र.1057 मनोयोग किन गुणस्थानों में होता है?

उत्तर असत्य मनोयोग और उभय मनोयोग बारहवें गुणस्थान तक होते हैं और सत्य मनोयोग तथा अनुभय मनोयोग सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थान तक होते हैं।

प्र.1058 केवली भगवान के मनोयोग कैसे सम्भव है?

उत्तर इन्द्रियज्ञान से रहित होने के कारण अतीन्द्रिय सयोग केवली भगवान के मुख्य (भाव) रूप से तो मनोयाग नहीं है किन्तु अंगोपांग नामकर्म का उदय होने से हृदय में स्थित द्रव्यमन के लिए मनोवर्गणा के स्कन्ध निरन्तर आते रहते हैं, अतः मनोयोग को उपचार से माना गया है।

प्र.1059 वचनयोग किन गुणस्थानों में होता है?

उत्तर असत्य वचनयोग और उभय वचनयोग बारहवें गुणस्थान तक होते हैं और सत्य वचनयोग तथा अनुभय वचनयोग तेरहवें गुणस्थान तक होते हैं।

प्र.1060 औदारिक मिश्र काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर विग्रहगति के बाद मनुष्य अथवा तिर्यञ्च गति में जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं हो जाती तब तक अर्थात् अपर्याप्त अवस्था में उस जीव के कार्मण शरीर और औदारिक शरीर के निमित्त से

आत्मप्रदेशों का जो परिस्पन्दन होता है, उसे औदारिक मिश्र काययोग कहते हैं।

प्र.1061 औदारिक-मिश्र काययोग किन गुणस्थानों में होता है?

उत्तर औदारिक मिश्र काययोग प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, दूसरे सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान, चौथे असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान और तेरहवें सयोग केवली गुणस्थान में होता है।

प्र.1062 औदारिक काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था के अन्तर्मुहूर्त्त बाद पर्याप्त हो जाने पर औदारिक शरीर के निमित्त से जो आत्मप्रदेशों का परिस्पन्दन होता है उसे औदारिक काययोग कहते हैं। (साथ ही यथावसर मनोयोग और वचन भी होता है।)

प्र.1063 औदारिक काययोग के कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर औदारिक काययोग के प्रथम से लेकर तेरह गुणस्थान होते हैं। (गो.सा.क.का.(आ.म.)पृ.266)

प्र.1064 वैक्रियिक मिश्र काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर विग्रहगति के बाद देवगति और नरकगति में अपर्याप्त अवस्था के अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त कार्मण शरीर और वैक्रियिक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों का जो परिस्पन्दन होता है उसे वैक्रियिक मिश्र काययोग कहते हैं।

प्र.1065 वैक्रियिक-मिश्र काययोग में कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर वैक्रियिक मिश्र काययोग में मिथ्यात्व, सासादन और असंयत-सम्यग्दृष्टि ये तीन गुणस्थान होते हैं।

प्र.1066 वैक्रियिक काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर पर्याप्त अवस्था में वैक्रियिक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है उसे वैक्रियिक काययोग कहते हैं। (साथ ही यथावसर वचनयोग और मनोयोग भी होता है।)

प्र.1067 वैक्रियिक काययोग में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर वैक्रियिक काययोग में मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और असंयत सम्यग्दृष्टि ये चार गुणस्थान होते हैं।

प्र.1068 कोई-कोई औदारिक काय वाले भी विक्रिया करते देखे जाते हैं, उनका यहाँ से क्या सम्बन्ध है?

उत्तर बादर तेजकायिक और वायुकायिक तथा संज्ञी पर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च एवं मनुष्य तथा भोगभूमिज तिर्यञ्च-मनुष्य भी अपने औदारिक शरीर के द्वारा; जिनके कि शरीर में यह योग्यता पायी जाती है विक्रिया किया करते हैं, परन्तु उनका वैक्रियिक शरीर से सम्बन्ध नहीं है। अतः उनका यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है।

प्र.1069 आहारक मिश्र काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर छठे गुणस्थानवर्ती जिन मुनियों के मस्तक से जो श्वेत रंग का पुतला निकलने वाला है, उनके प्रथम अन्तर्मुहूर्त्त में जब तक आहारक शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं हो जाती तब तक औदारिक शरीर और आहारक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है, उसे आहारक मिश्र काययोग

कहते हैं।

प्र.1070 आहारक मिश्र और आहारक काययोग में कौन-सा गुणस्थान होता है?

उत्तर उपर्युक्त दोनों योगों में एक मात्र प्रमत्त संयत नामक छठा गुणस्थान होता है।

प्र.1071 आहारक काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तक से जो श्वेत रंग का पुतला निकलता है वह केवली के पास जाकर सूक्ष्म-पदार्थो का आहरण-ग्रहण करता है, अतः इस आहारक शरीर के द्वारा आत्मप्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है, उसे आहारक काययोग कहते हैं।

प्र.1072 कार्मण काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर यह जीव जब मरणोपरान्त नवीन शरीर की प्राप्ति हेतु विग्रह गति में जाता है तब कार्मण शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों का जो परिस्पन्दन होता है, उसे कार्मण काययोग कहते हैं।

प्र.1073 कार्मण काययोग में कौन-कौन से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर कार्मण काययोग में प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ गुणस्थानों की विग्रह गति की अवस्था तथा तेरहवें गुणस्थानवर्ती की समुद्घात के समय प्रतर और लोकपूरण अवस्था होती है।

प्र.1074 शरीरों के पाँच भेद कौन-से हैं?

उत्तर 1. औदारिक, 2.वैक्रियिक, 3.आहारक, 4.तैजस और 5.कार्मण।

प्र.1075 औदारिक शरीर का लक्षण क्या है?

उत्तर जिस शरीर की उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्म से होती है, ऐसे मनुष्य और तिर्यञ्चों के शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

प्र.1076 वैक्रियिक शरीर का लक्षण क्या है?

उत्तर जिस शरीर की उत्पत्ति उपपाद जन्म से होती है, ऐसे देव और नारकियों के शरीर को वैक्रियिक शरीर कहते हैं।

प्र.1077 आहारक शरीर का लक्षण क्या है?

उत्तर प्रमत्त संयत (मुनि) के संदेह निवारणार्थ एवं असंयम का परिहार करने हेतु निकलने वाला एक हस्त प्रमाण, शुभ्र, विशुद्ध जो पुतला होता है उसे आहारक शरीर कहते हैं।

प्र.1078 आहारक शरीर किस तरह की अधिक विशेषता वाला होता है?

उत्तर आहारक शरीर रसादि धातु रहित, संहननों से रहित होता हुआ समचतुरस्रसंस्थान से युक्त एवं चन्द्रकांत मणि के समान श्वेत तथा शुभ नामकर्म के उदय से शुभ अवयवों से युक्त हुआ करता है।

प्र.1079 आहारक शरीर के सम्बन्ध में संदेह निवारण से क्या तात्पर्य है?

उत्तर प्रमत्त-विरत किसी मुनिराज के लिए किसी सूक्ष्म पदार्थ के विषय में संदेह हो जाने पर आहारक शरीर उत्पन्न होता है और वह शरीर अन्तर्मुहूर्त्त मात्र में ढाई द्वीप स्थित किन्हीं केवली के दर्शन मात्र से या किन्हीं श्रुतकेवली के स्पर्श मात्र से संदेह (शंका) का समाधान पाकर लौट आता है और

मुनिराज संतृप्त हो जाते हैं।

प्र.1080 आहारक शरीर के साथ तीर्थवंदना या वंदन से क्या प्रयोजन है?

उत्तर किसी छठे गुणस्थानवर्ती मुनिराज का जब किसी तीर्थंकर के तप, ज्ञान और मोक्ष कल्याणक देखने का मन करता है या किसी केवली अथवा श्रुतकेवली की वंदना अथवा ढाई द्वीपस्थ अकृत्रिमादि जिनालयों, सिद्धादि क्षेत्रों की वंदना (दर्शन) करने का तीव्र भाव उत्पन्न होता है तब ऋद्धि सदृश आहारक पुतला निकलता है और उनके अभिप्रायनुसार अन्तर्मुहूर्त्त में दर्शन, वंदनादि कर उनके शरीर में प्रवेश कर जाता है और वे मुनिराज अतिसंतुष्टि का अनुभव करते हैं।

प्र.1081 आहारक शरीर के साथ असंयम के परिहार इस हेतु से क्या तात्पर्य है?

उत्तर आहारक शरीर से असंयम के परिहार के निम्न कारण हो सकते हैं-

(1) प्रासुक-अप्रासुक मार्ग का ज्ञान करना।

(2) मिथ्यादृष्टियों या असंयमीजनों का परीक्षण करना।

(3) चर्या के योग्य स्थल का या मार्ग का अवलोकन करना।

(4) निर्विकल्प समाधि (ध्यान) के या सल्लेखना के योग्य वातावरण का ज्ञान करना।

(5) तीर्थ या पूज्य आयतनों की जानकारी लेना इत्यादि।

उपर्युक्त बातें अनुकूल होगी तो असंयम का परिहार होगा और संयम की सुरक्षा हो सकेगी।

प्र.1082 आहारक शरीर क्या वाधित या व्याघात को प्राप्त नहीं होता?

उत्तर नहीं! यह आहारक शरीर दोनों ओर से व्याघात रहित है। न तो इस शरीर के द्वारा किसी अन्य पदार्थ का व्याघात होता है और न ही किसी दूसरे पदार्थ के द्वारा इस शरीर का व्याघात होता है। क्योंकि यह शरीर इतना सूक्ष्म हुआ करता है कि वज्रपटल को भी भेदकर चला जाये इसमें संदेह नहीं, यह इसकी सामर्थ्य है।

प्र.1083 आहारक शरीर की स्थिति कितने काल की होती है और क्या आहारक शरीर के काल में मरण भी सम्भव है?

उत्तर आहारक शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण ही है। आहारक शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने पर अर्थात् पूर्ण निर्मित होने पर कदाचित् आहारक ऋद्धि वाले मुनि का मरण भी हो सकता है। अर्थात् आहारक शरीर के काल में आयु का क्षय- या उसकी पूर्णता सम्भव है।

प्र.1084 तैजस शरीर का लक्षण क्या है?

उत्तर जिस शरीर के निमित्त से औदारिक आदि शरीरों में एक विशिष्ट प्रकार का तेज(दीप्ति) होता है, उसे तैजस शरीर कहा जाता हैं।

प्र.1085 कार्मण शरीर का लक्षण क्या है?

उत्तर अष्ट कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं।

प्र.1086 कार्मण शरीर और कार्मण काय में क्या अन्तर है?

उत्तर कार्मण शरीर कर्म क्षय के पूर्व सर्व संसारी जीवों के पाया जाता है, जबकि कार्मण काययोग विग्रह गति में या केवली समुद्घात में जब आत्मा के प्रदेशों का लोक में अधिक फैलाव होता है ऐसी प्रतर और लोकपूरण अवस्था में उपलब्ध होता है।

प्र.1087 विग्रह गति किसे कहते हैं?

उत्तर विग्रह अर्थात् शरीर, ऐसे नवीन शरीर-धारण हेतु जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं। अथवा विग्रह अर्थात् नोकर्म पुद्गलों के ग्रहण करने के निरोध के साथ जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं। अथवा विग्रह अर्थात् मोड़ा और ऐसे मोड़े के साथ जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं।

प्र.1088 विग्रहगति कितने प्रकार की होती है?

उत्तर विग्रहगति चार प्रकार की होती है, इषुगति या ऋजुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति और गोमूत्रिका गति।

प्र.1089 इषुगति किसे कहते हैं?

उत्तर इषु अर्थात् बाण, धनुष से छूटे हुए बाण के सदृश मोड़ा रहित गति को इषुगति कहते हैं।

प्र.1090 ऋजुगति का अर्थ क्या है?

उत्तर ऋजु अर्थात् सरल सीधा और जिसकी बिना मोड़ा लिए सीधी गति होती है वह इषुगति के समान ऋजुगति है। इषु या ऋजुगति मात्र एक समय वाली होती है।

प्र.1091 पाणिमुक्ता गति किसको कहते हैं?

उत्तर जैसे अञ्जुली के आगे-किनारे से नीचे गिरती हुई चीज की गति होती है वैसे ही संसारी जीवों की एक मोड़े वाली गति को पाणिमुक्ता गति कहते हैं। यह गति दो समय वाली होती है।

प्र.1092 लांगलिका गति किसे कहते हैं?

उत्तर जैसे हल दो मोड़े वाला होता है वैसे ही दो मोड़े वाली गति को लांगलिका गति कहते हैं। यह गति तीन समय वाली होती है।

प्र.1093 गोमूत्रिका गति किसे कहते हैं?

उत्तर जैसे चलती हुई गाय का मूत्र अनेक मोड़े बना देता है वैसे ही तीन मोड़े वाली गति को गोमूत्रिका गति कहा जाता है। यह गति चार समय वाली होती है।

प्र.1094 कौन-से क्षेत्र में पहुँचने या उत्पन्न होने वाले जीव के लिए तीन मोड़े लेना आवश्यक होता है?

उत्तर निष्कुट (कोणा) क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले जीव के लिए तीन मोड़े लेना आवश्यक होता है। लोक शिखर का कोण भाग निष्कुट क्षेत्र कहलाता है।

प्र.1095 विग्रह गति वाला जीव अधिक से अधिक कितने समय में आहारक (आहार पर्याप्ति योग्य) हो जाता है?

उत्तर विग्रह गतिवाला जीव एक अथवा दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहता हुआ चौथे समय में

नियम से आहारक हो जाता है। अर्थात् आहार ग्रहण करने लगता है।

प्र.1096 विग्रह गति पूर्ण करने वाले जीव के आहार का क्या लक्षण है?

उत्तर तीन शरीर और षट् पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल वर्गणाओं का ग्रहण आहार कहा जाता है।

प्र.1097 तीन शरीर और षट् पर्याप्तियों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर तथा आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये षट् पर्याप्तियाँ होती हैं।

प्र.1098 विग्रहगति चार मोड़े वाली क्यों नहीं होती है?

उत्तर लोक मध्य से लेकर ऊपर, नीचे और तिरछे क्रम से विद्यमान आकाश के प्रदेशों की पंक्तियों को श्रेणी कहते हैं। इस श्रेणी के अनुसार ही जीवों का गमन होता है। श्रेणी का उल्लंघन करके गमन नहीं होता। अतः ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर पहुँचने के लिए चार मोड़े लेने पड़े। (क.प्र.)

प्र.1099 देव और नारकियों के अतिरिक्त और कौन-से जीव पृथक् विक्रिया भी कर सकते हैं?

उत्तर देव और नारकियों के अतिरिक्त भोगभूमिज तिर्यंच और मनुष्य तथा चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया भी कर सकते हैं।(क.दी.भा.1,पृ.33)

प्र.1100 तैजस शरीर कितने प्रकार का होता है?

उत्तर तैजस शरीर दो प्रकार का होता है, निस्सरणात्मक और अनिस्सरणात्मक।

प्र.1101 निस्सरणात्मक तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर जो छठे गुणस्थानवर्ती ऋद्धिधारी मुनि से उत्पन्न होता है उसे निस्सरणात्मक तैजस शरीर कहते हैं। (विशेष-समुद्घात के वर्णन में कहेंगे।)

प्र.1102 अनिस्सरणाात्मक तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर जो सर्व संसारी जीवों के तेज या दीप्ति रूप में पाया जाता है उसे अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर कहते हैं। अथवा जो खाए गए अन्न-पान का पाचक होकर शरीर में भीतर स्थित रहता है वह अनिस्सरणात्मक तैजस कहलाता है।

प्र.1103 समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर मूल शरीर को बिना छोड़े जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है।

प्र.1104 समुद्घात के कितने भेद हैं?

उत्तर समुद्घात के सात भेद हैं- 1.वेदनासमुद्घात, 2.कषाय समुद्घात, 3.विक्रिया समुद्घात, 4.मारणान्तिक समुद्घात, 5.तैजस समुद्घात, 6. आहारक समुद्घात, और 7. केवली समुद्घात।

प्र.1105 वेदना समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर बहुत पीड़ा के कारण आत्म-प्रदेशों के बाहर निकलने को वेदना समुद्घात कहते हैं।

प्र.1106 कषाय समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर क्रोध, मानादि कषायों के निमित्त से आत्मप्रदेशों के बाहर निकलने को कषाय समुद्घात कहते हैं।

प्र.1107 विक्रिया समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर विक्रिया के हेतु आत्मप्रदेशों के बाहर निकलने को विक्रिया समुद्घात कहते हैं।

प्र.1108 मारणान्तिक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर मरण होने से पूर्व (अन्तर्मुहूर्त्त पहले) नवीन पर्याय धारण करने के क्षेत्र पर्यन्त आत्मप्रदेशों के बाहर निकलने को मारणान्तिक समद्घात कहते हैं।

प्र.1109 तैजस समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर शुभ या अशुभ तैजसऋद्धि के द्वारा तैजस शरीर के साथ आत्म-प्रदेशों का बाहर निकलना तैजस समुद्घात कहलाता है। अथवा जीवों के अनुग्रह और विनाश में समर्थ तैजस शरीर की रचना के लिए तैजस समुद्घात होता है।

प्र.1110 अशुभ तैजस समुद्घात का स्वरूप कैसा है?

उत्तर उग्रचारित्र वाले मुनि के अति-क्रोध को प्राप्त होने पर बाएँ कंधे से बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा और सूच्यांगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण मोटा, जपा-पुष्प या सिंदूर के ढेर जैसे रंग वाला शरीर निकलकर और बायीं प्रदक्षिणा कर अपने क्षेत्र में स्थित हुए जीवों का विनाश करके (भस्म करके) पुनः प्रवेश करते हुए उसी मुनि को (अशुभ तैजस के स्वामी को) जो व्याप्त करता है (घेरे में लेता है) वह अशुभ तैजस समुद्घात कहलाता है। (कहते हैं ऐसे मुनि मिथ्यात्व में जाकर मरण को प्राप्त हो जाते हैं।)

प्र.1111 शुभ तैजस समुद्घात का स्वरूप कैसा है?

उत्तर रोग, दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित जगत् के प्राणियों को देखकर जिनको दयापूर्वक अनुकम्पा प्रकट हुई है ऐसे उग्रतपस्वी, सकल संयमधारी, महाऋषि, मुनिवर के मूल शरीर न त्यागकर पूर्वोक्त देह के प्रमाण सौम्य आकृति वाला हंस व शंख के रंग वाला शरीर दायें कंधे से निकलकर दक्षिण प्रदक्षिणा देकर रोग, दुर्भिक्ष आदि को दूर कर (जलादि वर्षाकर) पुनः अपने स्थान में आकर मुनि शरीर में प्रवेश करे और इस ऋद्धिधारी मुनि को परम शांति व तृप्ति का कारण बने वह शुभ तैजस समुद्घात कहलाता है। (ऐसे मुनिराज स्वपर रक्षक होते हैं।)

प्र.1112 अशुभ तैजस के कारणस्वरूप द्वैपायन मुनि को क्या फल मिला था?

उत्तर क्रोध-रूपी अग्नि के द्वारा जिनका तप-रूप धन भस्म हो चुका था ऐसे द्वैपायन मुनि मरण कर अग्निकुमार नामक मिथ्यादृष्टि भवन-वासी देव हुए। (ह.पु./61/69, ध.पु.12/4,2,7, 19/21/4)

प्र.1113 आहारक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर आहारक ऋद्धिधारक प्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती मुनिराज के मस्तक से निकलने वाले आहारक शरीर के द्वारा आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना आहारक समुद्घात कहलाता है।

प्र.1114 केवली समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर केवली भगवान की आयु स्थिति के समान शेष तीन अघाती कर्मों की स्थिति करने के लिए दण्ड,

कपाट, प्रतर एवं लोकपूरण क्रिया में आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना केवली समुद्घात कहलाता है।

प्र.1115 केवली समुद्घात में कितना समय व्यतीत होता है?

उत्तर केवली समुद्घात में आठ समय सम्पूर्ण होते हैं- प्रथम समय में आत्मप्रदेशों को फैलाकर दण्डाकार लम्बे करते हैं। दूसरे समय में कपाटाकार चौड़े करते हैं, तीसरे समय में प्रतर रूप तिकोने करते हैं और चौथे समय में आत्मप्रदेशों से लोक को पूर देते हैं। पाँचवे समय से लोकपूरण से प्रतर रूप, छठे समय में प्रतर से कपाट रूप, सातवें समय में कपाट से दण्ड रूप और आठवें समय में पुनः शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

प्र.1116 केवली समुद्घात के द्वारा आत्म-प्रदेशों के बाहरी गमन से किस तरह चारों कर्मों में समानता प्राप्त हो जाती है?

उत्तर जिस तरह कपड़े को धोकर मात्र निचोड़ कर रख देने से कपड़ा देर से सूख पाता है, परन्तु कपड़े को धोकर, निचोड़ कर झटकार देने (झटके से फैला देने) से वह शीघ्र ही सूख जाता है, उसी तरह केवली; समुद्घात के द्वारा आयुकर्म के अलावा नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म की शीघ्र ही विशिष्ट निर्जरा होकर आयुकर्म से समानता प्राप्त हो जाती है।

प्र.1117 सर्व ही केवली समुद्घात करते हैं क्या?

उत्तर यतिवृषभ आचार्य के मत से सर्व ही केवली समुद्घात करके ही मुक्त होते हैं। परन्तु अन्य आचार्य के मत् से कुछ केवली; जिनके आयु कर्म से अन्य कर्मों की स्थिति अधिक है वे समुद्घात करते हैं, अन्यथा नहीं करते हैं।

प्र.1118 कौन-से केवली समुद्घात करते हैं कौन-से नहीं करते हैं?

उत्तर जो अधिक-से-अधिक छह महीने की आयु शेष रहने पर केवली होते हैं वे अवश्य ही समुद्घात करते हैं और जो छह महीने से अधिक आयु रहते हुए केवली होते हैं उनका कोई नियम नहीं है वे समुद्घात करें और न भी करें। (स्वा.का., गा.486, टीका)

प्र.1119 समुद्घात के काल में आत्मप्रदेशों का गमन एक ही दिशा में होता है या सर्व दिशाओं में होता है?

उत्तर आहारक और मारणान्तिक समुद्घात-अवस्था में आत्म-प्रदेशों का गमन एक ही दिशा में होता है। बाकी पाँच समुद्घातों में आत्म-प्रदेशों का गमन दसों दिशाओं में हुआ करता है।

प्र.1120 कर्म और नोकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से होने वाले ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों के समूह को कार्मणशरीर या कर्म कहते हैं। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजस नामकर्म के उदय से होने वाले चार शरीरों को नोकर्म कहते हैं।

प्र.1121 विस्रसोपचय का लक्षण क्या है?

उत्तर समस्त आत्मप्रदेशों से बंधे कर्म नोकर्म के प्रत्येक परमाणु पर जीवराशि से अनन्तगुणे विस्रसोपचय

रूप परमाणु सम्बद्ध हैं, जो कर्म या नोकर्म रूप तो नहीं हैं, परन्तु कर्म या नोकर्म होने के लिए उम्मीदवार हैं, उन परमाणुओं को विस्रसोपचय कहा जाता है।

प्र.1122 कर्म और नोकर्म का संचय कब और कैसे हुआ करता है?

उत्तर उत्कृष्ट योग को आदि लेकर जो-जो सामग्री उस-उस कर्म या नोकर्म के उत्कृष्ट संचय में कारण है तत्-तत् सामग्री के मिलने पर औदारिकादि पाँचों ही शरीर वालों के उत्कृष्ट स्थिति के अन्त समय में अपने-अपने कर्म और नोकर्म का उत्कृष्ट संचय (तद्योग्य परमाणुओं का मिलना) होता है।

प्र.1123 कर्मों के उत्कृष्ट संचय में छह आवश्यक कारण कौन-से होते हैं?

उत्तर कर्मों के उत्कृष्ट संचय में छह आवश्यक कारण-

1.भवाद्धा-भव या पर्याय सम्बन्धी परिभ्रमण का उत्कृष्ट काल भवाद्धा है।

2. आयुष्य- भुज्यमान (वर्तमान) आयु या स्थिति आयुष्य है।

3. योग- मन, वचन और काय योग है।

4. संक्लेश- कषाय विशेष रूप परिणाम संक्लिष्ट या संक्लेश है।

5. अपकर्षण- कर्म प्रदेशों की स्थिति और अनुभाग का अपवर्तन या घटना अपकर्षण है।

6. उत्कर्षण- कर्म प्रदेशों की स्थिति और अनुभाग का बढ़ना उत्कर्षण है।

प्र.1124 औदारिक आदि पाँच शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी-कितनी है?

उत्तर उत्कृष्ट स्थिति क्रमशः औदारिक शरीर की तीन पल्योपम, वैक्रियिक शरीर की तेतीस सागरोपम, आहारक शरीर की अन्तर्मुहूर्त्त, तैजस शरीर की छ्यासठ सागरोपम और कार्मण शरीर की उत्कृष्ट स्थिति सामान्यतया सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। (क्योंकि अधिक स्थिति में कम समाहित हैं) किन्तु विशेष रूप से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागरोपम है। नाम, गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति मात्र तेतीस सागरोपम है।

प्र.1125 औदारिक शरीर का उत्कृष्ट संचय कहाँ और कब होता है?

उत्तर औदारिक शरीर का उत्कृष्ट संचय तीन पल्योपम की आयु वाले देवकुरु तथा उत्तरकुरु में उत्पन्न होने वाले तिर्यंच और मनुष्यों के चरम (अंतिम), द्विचरम (उपान्त्य) समय में होता है।

प्र.1126 वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट संचय कहाँ होता है?

उत्तर वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट संचय, बाईस सागरोपम की आयु वाले आरण और अच्युत स्वर्ग के ऊपर के विमानों में रहने वाले देवों के ही होता है।

प्र.1127 अन्य देवों में उत्कृष्ट संचय क्यों नहीं होता है?

उत्तर क्योंकि वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट योग तथा उसके योग्य अन्य सामग्रियाँ अन्यत्र अनेक बार उपलब्ध नहीं होती हैं।

प्र.1128 आहारक शरीर का उत्कृष्ट संचय कब होता है?

उत्तर आहारक शरीर का उत्कृष्ट संचय आहारक शरीर का उत्थान (वृद्धि) करने वाले प्रमत्त विरत के ही होता है।

प्र.1129 कार्मण शरीर का उत्कृष्ट संचय कब होता हे?

उत्तर कार्मण शरीर का उत्कृष्ट संचय अनेक बार नरकों में भ्रमण करके सप्तम पृथिवी में उत्पन्न होने वाले जीव के होता है।

प्र.1130 प्रमत्तयोगियों के कौन-से योग में सबसे कम योगियों का प्रमाण है?

उत्तर एक समय में आहारक काययोग वाले जीव अधिक से अधिक चौवन होते हैं और आहारक मिश्र काययोग वाले अधिक से अधिक सत्ताईस होते हैं।

प्र.1131 तैजस शरीर का उत्कृष्ट संचय कहाँ और कब होता है?

उत्तर तैजस शरीर का उत्कृष्ट संचय सप्तम पृथिवी में दूसरी बार उत्पन्न होने वाले जीव के होता है।

प्र.1132 कौन-सी गति में कौन-से वेद वाले होते हैं?

उत्तर नरक गति में नपुंसक वेद, देवगति में पुरुष और स्त्रीवेद, मनुष्यगति में भोगभूमिजों के स्त्री-पुरुषवेद, कर्मभूमिजों के तीनों वेद, तिर्यञ्चगति में भोगभूमिजों के स्त्री-पुरुषवेद, कर्मभूमिजों के तीनों वेद पाये जाते हैं।

प्र.1133 कौन-से जीवों में द्रव्य व भाव वेद सम ही पाया जाता है?

उत्तर देव, नारकियों और भोगभूमिज मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों में द्रव्यवेद और भाववेद की समानता पाई जाती है।

प्र.1134 कौन-से जीवों में द्रव्य व भाव वेद विषम भी पाया जाता है?

उत्तर कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यञ्चों में वेद विषमता भी पायी जाती है। अर्थात् किन्हीं में तो जैसा द्रव्यवेद होता है वैसा ही भाव वेद होता है, और किन्हीं में द्रव्यवेद अन्य और भाव वेद अन्य हुआ करता है।

प्र.1135 एक ही पर्याय में भाववेद का परिवर्तन सम्भव है क्या?

उत्तर नहीं! जिस जीव के जिस-किसी विवक्षित पर्याय में जो भाववेद प्राप्त हुआ है, वहीं भाववेद जीवन भर तक रहता है, बदलता नहीं है। (धवला.पु. 1/348)

प्र.1136 तीनों वेदों की बाधाओं से सम्बन्धित आगमिक उदाहरण कौन-से हैं?

उत्तर पुरुषवेद की बाधा तृण की आग सदृश है। स्त्रीवेद की बाधा करीष (कंडे) की आग सदृश है और नपुंसक वेद की बाधा ईंट पकाने वाले अवे की आग सदृश होती है। (अर्थात् उत्तरोत्तर वृद्धि को लिए हुए हैं)

प्र.1137 द्रव्यवेद कौन-से गुणस्थान तक पाया जाता है?

उत्तर द्रव्यवेद की अपेक्षा स्त्रीवेद और नपुंसकवेद पाँचवें गुणस्थान तक तथा पुरुषवेद चौदहवें गुणस्थान तक पाया जाता है।

प्र.1138 भाववेद कौन-से गुणस्थान तक पाया जाता है?

उत्तर भाववेद की अपेक्षा तीनों वेदों का सद्भाव नवम गुणस्थान के पूर्वार्ध तक रहता है। इसके आगे वाले जीव वेद रहित होते हैं।

प.1139 वेदों पर वैराग्य का क्या प्रभाव होता है?

उत्तर वैराग्य भावना के बल से वेद सत्ता में रहते हुए भी उनका कार्य नहीं देखा जाता है।

प्र.1140 कषायों का उदय कौन-कौन से गुणस्थानों तक पाया जाता है?

उत्तर अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय दूसरे गुणस्थान तक, अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय चौथे गुणस्थान तक, प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय पाँचवें गुणस्थान तक और संज्वलन कषाय का उदय दसवें गुणस्थान तक पाया जाता है। हास्यादि छह नोकषायों का उदय आठवें गुणस्थान तक और शेष तीन वेदरूप कषायों का उदय नवम गुणस्थान के सवेद भाग तक पाया जाता है। ग्यारहवें गुणस्थान से कषाय रहित अकषाय अवस्था होती है।



अभेद भाव रख प्राणी मात्र की रक्षा व सेवा; चापलूसी नहीं कर्त्तव्य-निष्ठता है।

Having a feeling of non-duality and protecting all living beings is not flattery, but a deep sense of spiritual duty.

•••

कृतघ्न नहीं, बफेदार बन प्रत्युपकार करो। जो दूसरों पर हँसता है उस पर सारी दुनियाँ हँसती है।

Do not mock or make fun of anyone; the entire world eventually laughs at the one who laughs at others.

•••

तामसिक वृत्ति क्रूरता को जन्म देती है।

Possessing a cruel mentality or a harsh way of thinking only gives birth to further cruelty in the world.

झुके हुये वृक्ष-सम नम्र बनो, जिसमें सद्गति और सुख रूपी फल लग सकें।

Be humble and modest like a tree laden with fruit; it is upon such humility that the fruits of a good rebirth and virtues grow.

अध्याय - 11.
ज्ञान और सम्यक्त्वादि

प्र.1141 मतिज्ञान के तीन सौ-छत्तीस भेद किस तरह बनते हैं?

उत्तर अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये मतिज्ञान के भेद हैं इनमें प्रत्येक के बारह विषय हैं- बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव, एक, एक विध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव। इस तरह 4 × 12 = 48 भेद होते हैं। पाँच इन्द्रिय और मन की सहायता से होने के कारण 4 ×12 ×6 = 288 भेद हो जाते हैं। अवग्रह दो तरह का होता है अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह। उपर्युक्त भेद अर्थावग्रह की अपेक्षा से बनते हैं। व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मन के बिना होता है, उसमें ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान नहीं होता अतः बारह विषयों के चक्षु और मन के बिना होने वाला अवग्रह मात्र की अपेक्षा 12 × 4 = 48 भेद व्यञ्जनावग्रह के हो जाने से सब मिलाकर (288 + 48= 336) तीन सौ छत्तीस भेद हो जाते हैं।

प्र.1142 श्रुतज्ञान के मुख्य दो भेद कौन-से हैं?

उत्तर श्रुतज्ञान के मुख्य दो भेद एक अक्षरात्मक दूसरा अनक्षरात्मक रूप से कहे गये हैं।

प्र.1143 अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसको कहते हैं?

उत्तर जो ज्ञान; अक्षर के निमित्त से उत्पन्न नहीं होता किन्तु लिंग (चिह्न) के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे अनक्षरात्मक अथवा लिंगज श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे- शीतल वायु का स्पर्श होने पर शीतल वायु जानना तो मतिज्ञान है और उसके पश्चात् ही वात प्रकृति वाले को यह शीतलवायु हानिकारक है, ऐसा जानना अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

प्र.1144 अक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसको कहते हैं?

उत्तर अक्षर रूप शब्द के निमित्त से उत्पन्न होने वाले श्रुतज्ञान को अक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे-जीव है ऐसा कहने पर श्रोत्रेन्द्रिय के निमित्त से जो शब्द का ज्ञान हुआ वह तो मतिज्ञान है और उस ज्ञान के अनन्तर यह जीव नामक पदार्थ है, ऐसा जो ज्ञान हुआ वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

प्र.1145 श्रुतज्ञान के बीस भेद कौन-से हैं?

उत्तर श्रुतज्ञान के बीस भेद इस प्रकार हैं- पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृत-प्राभृत, प्राभृत-प्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास। (गो.सा.जी.का.गा.317)

प्र.1146 पर्याय-ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के जो सबसे जघन्य ज्ञान होता है उसको पर्यायज्ञान कहते हैं।

प्र.1147 सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के किस काल में पर्यायज्ञान पाया जाता है?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के अपने-अपने जितने भव अर्थात् एक अन्तर्मुहूर्त में अधिक से अधिक छह हजार बारह भव सम्भव हैं। उनमें भ्रमण करके अन्त के अपर्याप्त शरीर को तीन मोड़ों के द्वारा ग्रहण करने वाले जीव के प्रथम मोड़े के समय में यह सर्व जघन्य ज्ञान होता है।

प्र.1148 पर्यायज्ञान में क्या विशेषता है?

उत्तर पर्यायज्ञान के आवरण करने वाले कर्म के उदय का फल पर्यायज्ञान में नहीं होता, किन्तु इसके अनन्तर वाले पर्यायसमास ज्ञान में होता है। उस जीव में पर्याय रूप इतना जघन्य ज्ञान हमेशा निरावरण तथा प्रकाशमान रहता है।

प्र.1149 पर्यायज्ञान पर आवरण स्वीकार करने में क्या बाधा है?

उत्तर पर्यायज्ञान पर आवरण मानने से जीव के ज्ञानोपयोग का अभाव होने से जीव का ही अभाव हो जावेगा। अतः सूक्ष्म निगोदिया जीव का पर्यायज्ञान निरावरण माना गया है। (गो.सा.जी.का.गा. 319, 320)

प्र.1150 लब्ध्यक्षर रूप श्रुतज्ञान का आधार क्या है?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के प्रथम समय में उत्पन्न होने वाले लब्ध्यक्षर रूप पर्याय ज्ञान का आधार स्पर्शन इन्द्रियजन्य मतिज्ञान है। (जी.का.गा.322)

प्र.1151 अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं?

उत्तर अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो भेद हैं एक अंगप्रविष्ट और दूसरा अंगबाह्य।

प्र.1152 अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान किसको कहते हैं?

उत्तर तीर्थंकर भगवान ने सर्वज्ञत्व रूप अपने केवलज्ञान के द्वारा विश्व के सर्व पदार्थों को ज्ञातकर अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा जो समवशरण में स्थित जीवों को उपदेश दिया, उस जिनवाणी को उनके साक्षात् शिष्य मुनीश्वर गणधर परमेष्ठी ने स्मृतिपूर्वक बारह अंगों में संकलित (गूँथित) किया, जिसका नाम अंगप्रविष्ट हुआ।

प्र.1153 अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान के बारह भेद कौन-से हैं?

उत्तर अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान के बारह भेद-1. आचारांग, 2. सूत्रकृतांग, 3.स्थानांग, 4. समवायांग, 5. व्याख्याप्रज्ञप्तिांग, 6. धर्मकथांग, 7. उपासकाध्ययनांग, 8. अन्तकृद्दशांग, 9. अनुत्तरोपपादिकदशांग, 10. प्रश्नव्याकरणांग, 11. विपाक सूत्रांग और 12. दृष्टिवादांग।

प्र.1154 बारहवें दृष्टिवादांग के कितने भेद हैं?

उत्तर **दृष्टि वादांग के पाँच भेद हैं**- 1. परिकर्म, 2. सूत्र,3. प्रथमानुयोग, 4. पूर्वगत और 5. चूलिका।

इसमें परिकर्म के पाँच भेद हैं- 1. चंद्रप्रज्ञप्ति, 2. सूर्यप्रज्ञप्ति, 3. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, 4. द्वीपसागर प्रज्ञप्ति और 5. व्याख्याप्रज्ञप्ति।

पूर्वगत के भी चौदह भेद हैं- 1. उत्पादपूर्व, 2. आग्रायणीय पूर्व, 3. वीर्यप्रवाद पूर्व, 4. अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व, 5. ज्ञानप्रवाद पूर्व, 6. सत्यप्रवाद पूर्व, 7. आत्मप्रवाद पूर्व, 8. कर्मप्रवाद पूर्व,

9. प्रत्याख्यान पूर्व, 10. वीर्यानुवाद पूर्व, 11. कल्याणवाद पूर्व, 12. प्राणावाद पूर्व, 13. क्रिया विशालपूर्व और 14. त्रिलोक बिन्दुसार पूर्व।

चूलिका के भी पाँच भेद हैं- 1. जलगता, 2. स्थलगता, 3. मायागता, 4. आकाशगता और 5. रूपगता। (विशेष वर्णन-ज.ध., भा.1, पृ. 122-132)

प्र.1155 अंगबाह्य श्रुतज्ञान किसको कहते हैं?

उत्तर आर्ष परम्परा के आचार्यों ने, अल्पबुद्धि वाले शिष्यों पर अनुकम्पा कर उन अंग-पूर्वों के आधार पर जो ग्रन्थ रचे वे अंगबाह्य ग्रन्थ; अंगबाह्य श्रुत कहलाते हैं।

प्र.1156 अंगबाह्य श्रुतज्ञान के चौदह भेद कौन-से हैं?

उत्तर अंगबाह्य श्रुतज्ञान के चौदह भेद- 1. सामायिक, 2. चतुर्विंशतिस्तव, 3. वन्दना, 4. प्रतिक्रमण, 5. वैनयिक, 6. कृतिकर्म, 7. दशवैकालिक, 8. उत्तराध्ययन, 9. कल्पव्यवहार, 10. कल्पाकल्प, 11. महाकल्प्य, 12. पुण्डरीक, 13. महापुण्डरीक और 14. निषिद्धिका।

प्र.1157 द्वादशांग में वर्णित एवं अपुनरुक्त अक्षरों के कारण स्वरूप चौसठ मूल वर्ण कौन-से होते हैं?

उत्तर तेतीस व्यञ्जन, सत्ताईस स्वर और चार योगवाह इस तरह कुल चौंसठ वर्ण द्वादशांग में वर्णित हैं।

तेतीस व्यञ्जन- क् ख् ग् घ् ङ् त् थ् द् ध् न्
च् छ् ज् झ् ञ् प् फ् व् भ् म्
ट् ठ् ड् ढ् ण य् र् ल् व्, श् ष् स् ह्

सत्ताईस स्वर ह्रस्व- अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ

दीर्घ- आ ई ऊ ॠ 3 ए ऐ ओ औ

प्लुत- आ 3, ई 3, ऊ 3, ऋ 3, ऌ 3, ए 3, ओ 3, औ 3

(गोम्मटसार जीव काण्ड गा.352 में ए, ऐ ओ, औ को ह्रस्व भी माना है तथा दीर्घ स्वरों के आगे तीन (3) का अंक लिखकर प्लुत की संज्ञा दी है)।

चार योगवाह- अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय। (उदा.-कं, कः, $\overset{\times}{\text{क}}$, $\sqrt{\text{पं}}$)

प्र.1158 द्वादशांग के एक पद में कितने अक्षर होते हैं?

उत्तर द्वादशांग के एक पद में सोलह सौ चौंतीस कोटि, तिरासी लाख, सात हजार, आठ सौ अठासी (1634,83,07888) अक्षर होते हैं।

प्र.1159 द्वादशांग के समस्त पदों का प्रमाण कितना है?

उत्तर द्वादशांग के समस्त पद एक सौ बारह कोटि बयासी लाख अट्ठावन हजार पाँच (112, 82, 58005) हैं।

प्र.1160 अंगबाह्य के अक्षरों का प्रमाण कितना है?

उत्तर अंगबाह्य के अक्षरों का प्रमाण आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर (80108175) हैं।

प्र.1161 अवधिज्ञान के दो भेद कौन-से हैं?

उत्तर अवधिज्ञान के 1.भवप्रत्यय और 2.गुणप्रत्यय रूप से दो भेद हैं।

प्र.1162 भव प्रत्यय अवधिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर जिस ज्ञान के उत्पन्न होने में भव ही निमित्त हो अर्थात् जन्म लेते ही जो अवधिज्ञान प्रकट हो जाता है उसे भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं।

प्र.1163 भव प्रत्यय अवधिज्ञान किन जीवों के प्रकट होता है और किससे प्रकट होता है?

उत्तर भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव, नारकियों और तीर्थंकरों को प्रकट होता है और सर्वाङ्ग से प्रकट होता है।

प्र.1164 गुणप्रत्यय अवधिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर जो अवधिज्ञान सम्यग्दर्शन और तपश्चरणादि गुणों या क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे गुणप्रत्यय या क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान कहते हैं।

प्र.1165 गुणप्रत्यय अवधिज्ञान किन जीवों के किससे उत्पन्न होता है?

उत्तर गुणप्रत्यय अवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं पर्याप्त मनुष्यों तथा संज्ञी-पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के उत्पन्न होता है; सभी के नहीं होता है और यह ज्ञान शङ्खादि चिह्नों से उत्पन्न होता है।

प्र.1166 गुणप्रत्यय या क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान के छह भेद कौन-से हैं?

उत्तर गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के छह भेद-

1.अनुगामी- जो अवधिज्ञान अपने स्वामी (अवधिज्ञानधारक जीव) के साथ जाये उसे अनुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। इसके क्षेत्र, भव और उभय के भेद से तीन प्रकार होते हैं। (क) जो अवधिज्ञान दूसरे क्षेत्र में भी अपने स्वामी के साथ जाता है वह क्षेत्रानुगामी अवधिज्ञान है। (ख) जो दूसरे भव में भी साथ जाये वह भवानुगामी है। (ग) जो क्षेत्र तथा भव दोनों में साथ जाये वह उभयानुगामी है।

2. **अननुगामी**- जो अवधिज्ञान अपने स्वामी के साथ न जाये उसे अननुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। इसके भी क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी, उभयाननुगामी के भेद से तीन प्रकार होते हैं।

3.वर्धमान- जो शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह अपने अन्तिम स्थान तक बढ़ता जाये उसे वर्धमान अवधिज्ञान कहते हैं।

4. हीयमान- जो कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह अपने अन्तिम स्थान तक घटता जाये उसे हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं।

5.अवस्थित-जो सूर्यमण्डल के समान न घटे न बढ़े उसे अवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं।

6.अनवस्थित- जो चन्द्रमण्डल की तरह कभी कम हो, कभी अधिक हो उसे अनवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं।

प्र.1167 अवधिज्ञान के अन्य तरह से तीन भेद कौन-से हैं?

उत्तर अवधिज्ञान के अन्य विशिष्ट तरह के 1. देशावधि, 2.परमावधि और 3. सर्वावधि रूप से तीन भेद हैं।

प्र.1168 देशावधि ज्ञान किस गति में और किन जीवों के हो सकता है?

उत्तर देशावधि ज्ञान चारों गति के जीवों को हो सकता है और होकर छूट भी जाता है। अतः प्रतिपाति कहा जाता है।

प्र.1169 परमावधि और सर्वावधि अवधिज्ञान किन जीवों के होता है?

उत्तर परमावधि और सर्वावधि अवधिज्ञान चरम शरीरी (तद्भवमोक्षगामी) मुनिराजों के ही होता है, और यह अप्रतिपाति होता है।

प्र.1170 जघन्य देशावधिज्ञान अत्यल्प कितने क्षेत्र को जानता है?

उत्तर जघन्य देशावधिज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के तृतीय समय में जो जघन्य अवगाहना होती है, उतने प्रमाण क्षेत्र को जानता है। अर्थात् मानव की दृष्टि के अगोचर है।

प्र.1171 उत्कृष्ट देशावधिज्ञान कितने क्षेत्र व कितने काल को जानता है?

उत्तर उत्कृष्ट देशावधिज्ञान सम्पूर्ण लोक को क्षेत्र की अपेक्षा जानता है तथा एक समय कम एक पल्योपम की बात को काल की अपेक्षा जानता है।

प्र.1172 सर्वावधिज्ञान का जघन्य, उत्कृष्ट द्रव्यादि का प्रमाण कितना है?

उत्तर सर्वावधिज्ञान का जघन्य द्रव्य किसी अपेक्षा से एक परमाणु है और किसी अपेक्षा से अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध है तथा परमावधिज्ञान के उत्कृष्ट क्षेत्रादि से सर्वावधिज्ञान का क्षेत्रादि असंख्यात गुणा है।

प्र.1173 लोक के अधोभाग में अन्तिम नरक भूमि के नारकियों के अवधिज्ञान के विषय भूत क्षेत्र का प्रमाण कितना है?

उत्तर सातवी भूमि में नारकियों के अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण एक कोस है।

प्र.1174 लोक के ऊर्ध्वभाग में स्थित नव अनुदिश और पंच अनुत्तरों में स्थित देवों के अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण कितना है?

उत्तर नव अनुदिश और पंच अनुत्तरों में स्थित देवों के अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण सम्पूर्ण लोक-त्रस नाड़ी है। (अवधिज्ञान के विषय का विशेष वर्णन देखिये इसी कृति में गति वर्णन)

प्र.1175 मनःपर्ययज्ञान के दो भेद कौन-से हैं?

उत्तर मनःपर्ययज्ञान के ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो भेद कहे जाते हैं।

प्र.1176 ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर जो परकीय (अन्य के) अवक्र (सरल) मन स्थित रूपी पदार्थ को विषय करे उसे ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

प्र.1177 विपुलमति मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर जो परकीय अवक्र या वक्र मन-स्थित रूपी पदार्थ को जानता है और प्रश्न किये जाने पर या नहीं किये जाने पर भी मनःस्थित पदार्थ को विषय कर लेता है उसे विपुलमति मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

प्र.1178 मनःपर्ययज्ञान कहाँ से उत्पन्न होता है?

उत्तर शरीर में जहाँ द्रव्य मन होता है, उस स्थान पर आत्मा के जो प्रदेश हैं; वहाँ से मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न होता है। (क.दी.,पृ.47)

प्र.1179 मनःपर्ययज्ञान के स्वामी (धारक) कौन होते हैं?

उत्तर ऐसे मुनीश्वर जो सप्त ऋद्धियों में से किसी एक ऋद्धि के धारी हों और वर्धमान चारित्र रूप विशिष्ट चारित्र के धारी हों, वे मनःपर्ययज्ञान के स्वामी होते हैं।

प्र.1180 ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में कौन-सी मौलिक विशेषताएँ हैं?

उत्तर ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में 1. विशुद्धता की तारतम्यता की अपेक्षा, 2.प्रतिपात-अप्रतिपात की अपेक्षा, 3.वक्रता-अवक्रता की अपेक्षा और चिन्तवन की अपेक्षा बड़ी मौलिक विशेषता पायी जाती है। जैसे- 1.ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में अधिक विशुद्धता होती है। 2.ऋजुमति प्रकट होकर छूट जाता है, अतः प्रतिपाति कहा है जबकि, विपुलमति छूटता नहीं है अर्थात् केवलज्ञानोपत्ति का भी कारण है अतः अप्रतिपाति कहा गया। 3. ऋजुमति परकीय सरल मन से चिन्तित पदार्थ को जानता है, जबकि विपुलमति परकीय चिन्तित, अचिन्तित और अर्धचिन्तित पदार्थ को भी विषय बना लेता है।

प्र.1181 ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान कितने-कितने क्षेत्र व भव के परकीय मनोगत पदार्थों को विषय करते हैं?

उत्तर ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान का जघन्य क्षेत्र दो-तीन कोस और उत्कृष्ट सात-आठ योजन है तथा जघन्य काल दो-तीन भव और उत्कृष्ट काल सात-आठ भव है। विपुलमति मनःपर्ययज्ञान का जघन्य क्षेत्र आठ- नौ योजन तथा उत्कृष्ट क्षेत्र मनुष्य लोक प्रमाण (45 लाख योजन) है। तथा जघन्य काल सात-आठ भव और उत्कृष्ट परकीय मनोगत विषय ग्रहण काल पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

प्र.1182 मनःपर्ययज्ञान का जो मनुष्यलोक विषय क्षेत्र बतलाया है वह वृत्त (गोल) रूप ग्रहण करता है या विष्कम्भ रूप?

उत्तर यहाँ मनःपर्यय ज्ञान के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र मनुष्यलोक से मनुष्यलोक का विष्कम्भ ग्रहण करना चाहिए न कि वृत्त, क्योंकि मानुषोत्तर पर्वत के बाहर चारों कोणों में स्थित तिर्यंच और देवों के द्वारा चिन्तित त्रिकाल गोचर पदार्थ को भी विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी जानते हैं। कारण यह है कि मनःपर्ययज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र ऊँचाई में कम होते हुए भी समचतुरस्र घनप्रतर रूप 45 लाख योजन प्रमाण है। (गो.सा.गा.456, धवल पु.13/343-344, धवल 9/68, ज.ध.1/17-19)

प्र.1183 जैनागम संस्कार में वर्णित केवलज्ञान की परिभाषा से अन्य शब्दों में और भी कोई केवलज्ञान की परिभाषा प्रस्तुत कीजिये?

उत्तर अपने प्रतिपक्षी-चार घातिया कर्मों के नाश हो जाने से इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना निजात्मा

से सम्पूर्ण पदार्थों के गुणों की त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायों को जो एक ही क्षण में एक साथ जानता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं। (तुलना करें- जैनागम संस्कार अ.10,पृ.79)

प्र.1184 केवलज्ञान को असहाय क्यों कहते हैं?

उत्तर केवलज्ञानी अरिहंत भगवान अतिन्द्रिय होते हैं, वे विश्व के चराचर पदार्थों को इन्द्रिय और मन (अनिन्द्रिय) की सहायता के बिना जानते हैं अतः सर्वज्ञ कहलाते हैं तथा उनका केवलज्ञान इन्द्रिय और मन के बिना पदार्थों को विषय करने वाला होने से तथा अन्यज्ञानों में सूर्य सम अकेला प्रतिभाषित होने के कारण असहाय कहा जाता है।

प्र.1185 केवलज्ञान के लिये सकल-प्रत्यक्ष और अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान के लिए विकल-प्रत्यक्ष क्यों कहा जाता है?

उत्तर केवलज्ञान द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की सीमा से अतीत अर्थात् असीम को विषय करने वाला होने से सकल प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है और अवधि ज्ञान तथा मनःपर्यय ज्ञान द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की सीमापूर्वक जानने वाले होने से विकल प्रत्यक्षज्ञान कहलाते हैं। केवलज्ञानी स्वआत्मा से रूपी और अरूपी सर्व पदार्थों को जानते हैं, परन्तु अवधि और मनःपर्ययज्ञानी स्वआत्मा से रूपी पर पदार्थों को जानते हैं।

प्र.1186 केवलज्ञान अकेला होता है यह बात ठीक है, परन्तु केवलज्ञान क्या; अवधिज्ञान या मनःपर्ययज्ञान पूर्वक ही होता है ऐसा नियम है?

उत्तर भूत प्रज्ञापन नय की अपेक्षा नियम तो यह है कि केवलज्ञान; मति और श्रुतज्ञान पूर्वक भी हो सकता हैं, मति, श्रुत और अवधिज्ञान पूर्वक भी हो सकता है और भूतप्रज्ञापन-नय की अपेक्षा मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्ययज्ञान पूर्वक भी हो सकता है।

प्र.1187 कौन-कौन-से ज्ञान में कौन-कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञान प्रथम दो गुणस्थानों में होते हैं। किन्तु विशेषता यह है कि कुमति और कुश्रुतज्ञान एकेन्द्रिय आदि जीवों के भी पाये जाते हैं जबकि कुअवधिज्ञान संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के ही पाया जाता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान चौथे से बारहवें गुणस्थानों तक होते हैं। मनःपर्ययज्ञान छठे से बारहवें गुणस्थान तक होता है और केवलज्ञान तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानों में होता है तथा गुणस्थानातीत सिद्धों में भी रहता है।

प्र.1188 सामायिक संयम किसे कहते हैं?

उत्तर सर्व सावद्य योग का जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करना सामायिक संयम कहलाता है। जैसे- ''मैं सर्व प्रकार के सावद्य योग का त्याग करता हूँ''।

प्र.1189 सावद्ययोग किसे कहते हैं?

उत्तर मन, वचन और काय इन तीनों की हिंसा-जनक प्रवृत्ति को सावद्ययोग कहते हैं। अथवा असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प ये छह सावद्ययोग माने गये हैं। छह सावद्यकर्म करने वाले मनुष्य

सावद्यकर्मार्य कहलाते हैं।

प्र.1190 सुयोग्य अल्पसावद्य कर्मार्य और महान असावद्य कर्मार्य कौन कहलाते हैं?

उत्तर अहिंसादि पंच अणुव्रतों को धारण करने वाले श्रावक-श्राविकाएँ सुयोग्य अल्प-सावद्य कर्मार्य कहलाते हैं तथा अहिंसादि पंच महाव्रतधारी दिगम्बर मुनिराज महान असावद्य कर्मार्य कहलाते हैं।

प्र.1191 सावद्य कर्मार्य के छह भेद कौन-से हैं?

उत्तर 1.तलवार, धनुष आदि शस्त्र विद्या में निपुण असि कर्मार्य है।2. रुपये-पैसे की आमदनी, खर्च आदि के लेखे जोखे में निपुण मसि कर्मार्य है। 3. हल, कुलि (हाथ) दान्ती (नियंत्रण) आदि से कृषि करने वाले कृषि कर्मार्य है।4. चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों का, घृतादि का या रस व धान्यादि का तथा कपास, वस्त्र, मोती आदि अनेक तरह के द्रव्यों का क्रय-विक्रय करने वाले अनेक प्रकार के वाणकि कर्मार्य हैं। 5. बीजांकन या गणित आदि बहत्तर कलाओं में निपुण विद्या कर्मार्य हैं। तथा 6. धोबी, नाई, लुहार, कुम्हार और सुनार आदि शिल्प कर्मार्य हैं।

प्र.1192 सामायिक के विभिन्न प्रयुक्त प्रयोजनार्थ स्थान कौन-से हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग में सामायिक का प्रयुक्त प्रयोजन तीन स्थानों पर होता है।

1. मुनियों के सर्व सावद्ययोग का त्याग कर अहो-रात्रिक (दिन-रात) के प्रत्येक धार्मिक आवश्यकों में सामायिक चारित्र या सामायिक संयम के रूप में सामायिक का प्रयोग होता है।

2. मुनियों के षट् आवश्यकों में त्रिकाल समता-समायिक जिसे कि निर्वृत्ति पूर्वक खड्गासन, पद्मासनादि में स्थित होकर किया जाता है उस काल के लिए सामायिक का प्रयोग होता है।

3. श्रावकों के सामायिक शिक्षा-व्रतों के पालन में या सामायिक प्रतिमा में त्रिकाल सामायिक हेतु सामायिक का प्रयोग होता है।

प्र.1193 छेदोपस्थापना संयम किसे कहते हैं?

उत्तर छेद अर्थात् अहिंसादि महाव्रत के भेद पूर्वक अपने आपको संयम में उपस्थित करना, अथवा छेद अर्थात् सामायिक चारित्र से चलित होने पर अपने आप को उपस्थापना अर्थात् पुनः उसी चारित्र में निज को उपस्थित या उपस्थापित करना छेदोपस्थापना संयम कहलाता है।

प्र.1194 परिहार विशुद्धि संयम किसे कहते हैं?

उत्तर जिस संयम में जीवहिंसा के परिहार के साथ विशिष्ट तरह की विशुद्धि पायी जाती है उसे परिहार विशुद्धि संयम कहते हैं।

प्र.1195 परिहार विशुद्धि संयम किसे प्राप्त होता है?

उत्तर जो भव्य जन्म से लेकर तीस वर्ष तक (गृहस्थ जीवन के) सुख से संतुष्ट होकर मुनि दीक्षा पूर्वक सामायिक, छेदोपस्थापना संयम धारण करते हैं तथा तीर्थंकर के पाद मूल में (समवसरण में) आठ वर्ष तक प्रत्याख्यानपूर्व का अध्ययन करते हैं, (जीवों की उत्पत्ति व स्थान आदि का ज्ञान कर लेते हैं) ऐसे मुनि के महान परिहारविशुद्धि नामक संयम प्रकट होता है। जिस संयम के फलस्वरूप उनके

द्वारा किसी जीव का विघात नहीं होता है। ऐसे महान संयम के धारक मुनीश्वर तीन संध्याकालों को छोड़कर प्रतिदिन दो कोस विहार करते हैं।

प्र.1196 परिहार विशुद्धि संयम के धारक मुनीश्वर क्या रात्रि में भी गमन कर सकते हैं और वे वर्षायोग (चातुर्मास) करते हैं या नहीं?

उत्तर परिहार विशुद्धि संयम के धारक मुनि रात्रि में गमन नहीं करते हैं तथा उनके वर्षायोग में एक स्थल पर ठहरने का कोई नियम उपलब्ध नहीं होता है।

प्र.1197 सूक्ष्म साम्पराय संयम किसे कहते हैं?

उत्तर उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले मुनि के जहाँ संज्वलन लोभ का अत्यन्त सूक्ष्म उदय रहता है, उन मुनिराज के संयम को सूक्ष्म साम्पराय संयम कहते हैं।

प्र.1198 यथाख्यात संयम किसे कहते हैं?

उत्तर समस्त मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय हो जाने से जहाँ वास्तविक रूप से जैसा कहा गया है वैसा यथावस्थित आत्म-स्वभाव का प्राप्त हो जाना यथाख्यात संयम (या चारित्र) कहलाता है।

प्र.1199 संयमासंयम किसे कहते हैं?

उत्तर अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय या सद्अवस्था रूप उपशम और प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय की तरतमता (हीनाधिकाता) से तथा संज्वलन कषाय और नो कषायों के उदय से जो एकदेश चारित्र होता है उसे संयमासंयम कहते हैं।

प्र.1200 संयम और असंयम दोनों एक साथ किस अपेक्षा से होते हैं?

उत्तर जब त्रस जीवों की हिंसा त्याग आदि रूप स्थूल रूप पाँच अणुव्रत और तीन गुणव्रत, तथा चार शिक्षाव्रतों का पालन होता है तब संयम कहलाता है और स्थावर जीवों की हिंसा त्याग आदि रूप सूक्ष्मरूप महाव्रतों का पालन नहीं होता अतः असंयम कहलाता है। ऐसी दोनों अवस्था में युगपत् संयम और असंयम जहाँ घटित हों उसे संयमासंयम कहा जाता है। (व्रतों का वर्णन देखें जैनागम संस्कार अ.11,पृ.92-98)

प्र.1201 असंयम किसे कहते हैं?

उत्तर त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा तथा पंच इन्द्रिय सम्बन्धी विषयों का त्याग न होना असंयम कहलाता है।

प्र.1202 संयममार्गणा में कौन-कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर सामायिक और छेदोपस्थापना संयम छठे से लेकर नौवें गुणस्थान तक होते हैं। परिहार विशुद्धि संयम छठे और सातवें गुणस्थान में होता है। सूक्ष्मसाम्पराय संयम दसवें गुणस्थान में होता है। यथाख्यातसंयम ग्यारहवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक होता है। संयमासंयम पाँचवें गुणस्थान में होता है। तथा असंयम, प्रारम्भ के चार गुणस्थानों में होता है।

प्र.1203 दर्शन कब होता है और ज्ञान कब होता है?

उत्तर सामान्य अवलोकन का नाम दर्शन है, जो छदमस्थों के ज्ञान के पूर्व में हुआ करता है और केवलियों के युगपत् अर्थात् ज्ञान के साथ ही हुआ करता है। छदमस्थों का दर्शन पूर्वक विशेष जानने पर ज्ञान होता है।

प्र.1204 दर्शन तो चक्षुओं से देखने जैसी क्रिया है लेकिन चक्षु (नेत्रों) के अलावा वह अन्य इन्द्रियों से कैसे सम्भव है?

उत्तर सम्भव तो है; क्योंकि अन्य इन्द्रियाँ भी ज्ञान के पूर्व सामान्य को ग्रहण करती हैं जिसे दर्शन कहा जाता है, उसी दर्शन को ज्ञान के रूप में ग्रहण करते हुये कह दिया करते हैं कि मैंने स्पर्शनेन्द्रिय से हवा को देख लिया कि वह गर्म है या ठण्डी है। मैंने रसनेन्द्रिय से देख लिया कि कोई खाद्य वस्तु खट्टी है या मीठी है। मैंने घ्राणेन्द्रिय से देख लिया कि वस्तु सुगन्धित है या दुर्गन्धित है तथा मैंने कर्णेन्द्रिय से देख लिया कि आवाज है कि नहीं है। या कोई किसी से कहता है कि बाहर देख कर आओ कि हवा चल रही है कि नहीं अथवा हवा ठण्डी है या गर्म है इत्यादि। सार यही है कि चक्षु व अन्य इन्द्रियों से भी देखने-जानने रूप कार्य हुआ करते हैं।

प्र.1205 चक्षु दर्शन का लक्षण क्या है?

उत्तर चक्षु इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान से पूर्व पदार्थ का जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे चक्षु दर्शन कहते हैं।

प्र.1206 अचक्षुदर्शन का लक्षण क्या है?

उत्तर चक्षु इन्द्रिय के अलावा अन्य इन्द्रियों और मन से होने वाले ज्ञान के पूर्व पदार्थ का जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं।

प्र.1207 अवधिदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर अवधिज्ञान के पूर्व जो पदार्थ का सामान्य प्रतिभास होता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

प्र.1208 केवल दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर केवलज्ञान के साथ समस्त पदार्थों का जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे केवलदर्शन कहते हैं।

प्र.1209 दर्शन मार्गणा में कौन-कौन-से गुणस्थान घटित होते हैं?

उत्तर चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन प्रथम से बारहवें गुणस्थान तक होते हैं। अवधिदर्शन चौथे से बारहवें गुणस्थान तक होता है। केवलदर्शन तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में तथा उसके बाद गुणस्थानातीत सिद्धों में भी होता है।

प्र.1210 षट् लेश्याओं के नाम किसके समान वर्णों पर आधारित हैं?

उत्तर कृष्ण लेश्या काजल सदृश काले रंग पर, नील लेश्या नीलमणि सम नीले रंग पर, कापोत लेश्या कबूतर सदृश कापोती रंग पर, पीत लेश्या स्वर्ण सदृश पीले रंग पर, पद्मलेश्या गुलाबी रंग के कमल सम गुलाबी रंग पर और शुक्ल लेश्या शंख सदृश श्वेत रंग पर आधारित है।

प्र.1211 लेश्या के दो भेद कौन-से हैं?

उत्तर द्रव्य और भाव के रूप में लेश्या के दो भेद होते हैं।

1. शारीरिक वर्ण की अपेक्षा द्रव्य लेश्या कहलाती है।

2. आत्मिक परिणामों की अपेक्षा भाव लेश्या कहलाती है।

प्र.1212 चतुर्गति में कौन-से जीवों की कौन-सी द्रव्य लेश्या होती है?

उत्तर
- सम्पूर्ण नारकियों का कृष्ण वर्ण।
- कल्पवासी या विमानवासी देवों का तत्-तत् स्थान योग्य भाव लेश्या रूपवर्ण।
- भवनत्रिक देवों के छहों वर्ण।
- मनुष्य और तिर्यञ्चों के छहों वर्ण।
- देवों की विक्रिया का, छहों लेश्याओं में से किसी एक लेश्यारूप वर्ण।
- उत्तम भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यञ्चों का सूर्य सदृश वर्ण।
- मध्यम भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यञ्चों का चन्द्र सदृश वर्ण।
- जघन्य भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यञ्चों का कदली(केले) सदृश हरित वर्ण।
- बादर जलकायिक जीवों का शुक्ल वर्ण
- बादर अग्नि कायिक जीवों का पीत वर्ण।
- घनोदधि वातवलय में वात कायिक जीवों का गोमूत्र सदृश वर्ण।
- घनवातवलय सम्बन्धित वातकायिक जीवों का मूंगा सदृश वर्ण।
- तनुवातवलय सम्बन्धित वात कायिक जीवों का अनेक वर्णों से समन्वित वर्ण।
- सम्पूर्ण सूक्ष्म जीवों के शरीर का कापोत वर्ण।
- विग्रहगति में सम्पूर्ण जीवों का शुक्ल वर्ण। और
- निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था वाले जीवों का कापोत वर्ण होता है। (क.दी.भा.1)

(नरक-गति और देव-गति के विवरण में उनकी भाव लेश्याओं का वर्णन किया जा चुका है।)

प्र.1213 मनुष्यों में कौन-सी भाव लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर चतुर्थ गुणस्थान पर्यंत मनुष्यों में छहों लेश्याएँ, देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्त विरत गुणस्थानवर्ती जीवों में तीन शुभ लेश्याएँ तथा अपूर्वकरण से सयोग केवली पर्यन्त मनुष्यों में एक शुक्ल लेश्या ही होती है। भोगभूमि में सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के पर्याप्त अवस्था में पीत आदि तीन शुभ लेश्याएँ होती हैं और निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में कापोत लेश्या का जघन्य अंश होता है।

प्र.1214 तिर्यञ्चों में कौन-कौन-सी भाव लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीवों में कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चों में एवं संज्ञी पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चों में कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचों में कृष्ण आदि चार लेश्याएँ होती हैं। संज्ञी

पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचों में प्रथम से लेकर चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त छहों लेश्याएँ होती हैं। भोगभूमिस्थ पर्याप्त तिर्यंचों में पीत आदि तीन शुभ लेश्याएँ एवं निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में कापोत लेश्या का जघन्य अंश होता है।

प्र.1215 कौन-सी लेश्या किन गुणस्थानों में होती है?

उत्तर कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या चौथे गुणस्थान तक, तेजो लेश्या और पद्म लेश्या सातवें गुणस्थान तक और शुक्ल लेश्या तेरहवें गुणस्थान तक होती है।

प्र.1216 कृष्ण लेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर अत्यन्त क्रोधी होना, बैर भाव नहीं छोड़ना, भाण्डवचन बोलना, दयाधर्म से रहित होना, दुष्टस्वाभावी होना तथा किसी के वश न होना इत्यादि कृष्ण लेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1217 नील लेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर कार्य करने में मन्दता, बुद्धिहीनता, विवेक शून्यता, मायाचारिता और परिग्रह में अति आसक्तता इत्यादि नील लेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1218 कापोत लेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर दूसरों पर क्रोध करना, पर की निन्दा करना, अत्यधिक शोक करना, अत्यधिक भय करना, दूसरों से ईर्ष्या रखना, बहु-स्व-प्रशंसक होना, अविश्वास स्वभावी होना, निजगुण गायकों में संतोषी होना, हानि-लाभ में विवेक शून्यता होना, युद्ध में मरने का इच्छुक होना, आत्म प्रशंसकों को धन बाँटने वाला होना, और योग्य-अयोग्य का अविचारक होना इत्यादि कापोत लेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1219 पीत लेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर योग्यायोग्य का सुविचारक होना, सेव्य-असेव्य में विवेकपना होना, सर्व-जीवों पर उपकार भाव होना, तथा दया और दान में तत्परता का होना पीत लेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1220 पद्मलेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हें?

उत्तर त्याग तपस्या में अभिरुचि, भद्रता रूप परिणाम, उत्तम विचार, उद्यमशीलता, क्षमाशीलता, साधु व गुरुजनों की भक्ति-पूजा तथा सद्गुणानुवाद में लगनशीलता का होना पद्मलेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1221 शुक्ल लेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर सदा पक्षपात से रहितपना, निदान रहितपना, साम्य व्यवहारिकता, वीतराग-भाव में अभिरुचिता और पारिवारिक निर्मोहता इत्यादि शुक्ल लेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1222 लेश्याओं के प्रसंग में कषायों की तरतमता का एक उदाहरण दीजियेगा।

उत्तर षट् लेश्याओं से संबन्धित एक वृक्ष के उदाहरण में वृक्ष से आम तोड़ने हेतु- 1.वृक्ष को मूल से काटना, 2.डाल काटना, 3.टहनी काटना, 4.कच्चे और पके आम वाले गुच्छे को तोड़ना, 5.मात्र पके हुये आमों को तोड़ना और 6.नीचे जमीन पर स्वयं गिरे हुए आमों को उठाना; क्रमशः कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल रूप लेश्याओं में होने वाली कषायों की तीव्रतम, तीव्रतर और तीव्र तथा

मंद, मंदतर और मंदतम अवस्थाओं को दर्शाता है।

प्र.1223 भव्य कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर भव्य तीन प्रकार के होते हैं- 1.निकट (आसन्न) भव्य, 2.दूर भव्य और 3. दूरानुदूर (अभव्य सम) भव्य।

- जो कम से कम एक दो भव में और अधिक-से अधिक सात-आठ भवों में मोक्ष प्राप्त करने वाला हो, उसे निकट भव्य या आसन्न भव्य कहते हैं। जैसे- स्वर्ण पाषाण से स्वर्ण; पुरुषार्थ के माध्यम से प्राप्त हो जाता है।

-चिरकाल बाद अर्थात् जो अर्धपुद्गल परावर्तन (लघुअनन्तवत्) प्रमाण काल के भीतर मोक्ष प्राप्त करने वाला हो उसे दूर भव्य कहते हैं। जैसे- बन्ध्यापन के दोष से रहित स्त्री के बाह्य निमित्त के मिलने पर नियम से पुत्रोत्पत्ति होगी, वैसे ही इन जीवों को नियम से मोक्ष फल की प्राप्ति होगी।

-जो भव्य होने पर भी कभी मोक्ष प्राप्त न कर सके उसे दूरानुदूर (अभव्य सम) भव्य कहते हैं। ये दूरानुदूर भव्य जीव नित्यनिगोद में ही पाये जाते हैं। जैसे- बन्ध्यापने के दोष से रहित विधवा सती स्त्री में पुत्रोत्पत्ति की योग्यता होते हुए भी बाह्य निमित्त से दूर रहने पर कभी पुत्रोत्पत्ति नहीं होगी, वैसे ही नित्य निगोद में बाह्य सामग्री के अभाव होने से मोक्षफल की प्राप्ति नहीं होगी। और भी जैसे सिद्ध भगवान के निकट त्रिलोक को पलटाने की शक्ति होते हुए भी उस शक्ति की अभिव्यक्ति नहीं होती, उसी तरह दूरानुदूर भव्य की शक्ति प्रकट नहीं होती है।

प्र.1224 अभव्य किस तरह के कार्य के अयोग्य होते हैं?

उत्तर अभव्य जीव मोक्ष के साधन स्वरूप रत्नत्रय मय मोक्ष मार्ग के अयोग्य होते हैं। अतः उन्हें मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे- बन्ध्या स्त्री को पुत्रोत्पत्ति हेतु निमित्त मिले या न मिले परन्तु पुत्रोत्पत्ति नहीं होगी। वैसे ही अभव्य जीवों को कभी मोक्ष फल की प्राप्ति नहीं होगी। अभव्य जीव पानी में नहीं सीझने वाली ठर्रा मूंग सदृश हुआ करते हैं। उनमें धर्म के किसी भी निमित्त का प्रभाव कदापि नहीं पड़ता है।

प्र.1225 भव्य मार्गणा में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर भव्य जीव चौदह गुणस्थानों में रहते हैं और अभव्य जीवों का मात्र प्रथम गुणस्थान (मिथ्यात्व) ही रहता है।

प्र.1226 भव्यात्मा की क्या पहचान होती है?

उत्तर 1. जिसे यह महसूस हो कि कहीं मैं अभव्य तो नहीं हूँ।

2. जो प्रीति चित्त के साथ धर्म-वार्ता उपदेशादि को सुनता है।

3. जिसका मन धार्मिक क्रियाओं में आह्लाद को प्राप्त है। और

4. जो धार्मिक कार्य स्वार्थ (संसार बढ़ाने) हेतु नहीं बल्कि परमार्थ (कर्म-निर्जरा और मोक्ष) हेतु करता है वह भव्यात्मा कहलाता है।

प्र.1227 अभव्यात्मा की पहचान क्या है?

उत्तर 1. जिसे संसार खाली हो जाने की चिंता हो।
2. जो धर्म या धर्मकार्य से अतिदूर रहता हो।
3. जो धर्म या धर्मात्माओं की निंदा करता हो।
4. जो मात्र भोग व ख्याति के लिए धर्म करता हो।
5. जो दया भाव से रहित हो। और
6. जो उपकारक का उपकार न मानने वाला कृतघ्न हो, ऐसा जीव अभव्य हो सकता है।

प्र.1228 सर्व जीवों के मोक्ष होने पर यह संसार रिक्त (खाली) नहीं हो जावेगा क्या?

उत्तर नहीं! वैसे तो मोक्ष नहीं जाने वाले जघन्य युक्तानन्त अभव्य जीवों और अनन्तानन्त दूरानुदूर भव्य जीवों से यह संसार भरा रहेगा ही, परन्तु उन अनन्तानन्त जीवों से भी भरा रहेगा जो भव्य जीव अनन्तानंत राशि के रूप हैं, दूरभव्य हैं। एक निगोदिया के अन्दर अनंतनिगोद राशि अवगाहित है और ऐसे निगोदिया जीवों से यह लोक ठसाठस भरा हुआ है। अतः संसार जीव राशि से रिक्त होना असंभव है।

प्र.1229 निगोद राशि से निकलकर त्रसराशि में भ्रमण करने का काल अधिक-से अधिक कितना है?

उत्तर निगोद से निकलकर त्रस राशि में जन्म लेने काल साधिक (कुछ अधिक) दो हजार सागरोपम वर्ष है। इतने काल के बीच अगर मोक्ष नहीं हुआ तो पुनः निगोद में जन्म होता है, जहाँ एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण करते रहना पड़ता है।

प्र.1230 संसार-सागर से पार कराने वाला खेवटिया सदृश सम्यक्त्व का लक्षण करणानुयोग में किस रूप में बतलाया गया है?

उत्तर जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट या उपदेशित सप्ततत्त्व, नव-पदार्थ, षड् द्रव्य और पञ्चास्तिकायों के श्रद्धान करने को सम्यक्त्व कहते हैं। (सम्यक्त्व में सहायक कुछ विषयों का वर्णन द्रव्यानुयोग में भी किया जावेगा) [उपशम, वेदक या क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन का वर्णन देखें जैनागम संस्कार अ.9, पृ 75 पर तथा मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र या सम्यग्मिथ्यात्व का वर्णन देखें जैनागम सं.अ.18, पृ.182]

प्र.1231 प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन किसको प्राप्त होता है?

उत्तर जो जीव चारों गतियों में से किसी एक गति का धारक तथा भव्य संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक, विशुद्धि-सातादि के बन्ध के योग्य परिणति से युक्त, जागृत-स्त्यानगृद्धि आदि (स्त्यानगृद्धि, प्रचला-प्रचला, निद्रा-निद्रा) निद्राओं से रहित, साकार उपयोग युक्त और शुभ लेश्या-पीत, पद्म, शुक्ल का धारक होकर करणलब्धि से युक्त होता है वह अनादि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है। (गो.सा.गा.652)

प्र.1232 लब्धियाँ कितनी और कौन-सी हैं?

उत्तर लब्धियाँ पाँच होती हैं- 1.क्षयोपशम-लब्धि, 2.विशुद्धि लब्धि, 3. देशना लब्धि, 4. प्रायोग्य लब्धि, और 5. करण लब्धि।

प्र.1233 क्षयोपशम लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर जिस समय कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनन्तगुणा घटता हुआ उदय में आता है तब क्षयोपशम लब्धि होती है। क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग के अनन्तवें भाग मात्र देशघाती स्पर्द्धकों का उदयाभाव रूप क्षय और उदय को न प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकों का सद् अवस्था रूप उपशम की प्राप्ति का नाम क्षयोपशम लब्धि है।

प्र.1234 विशुद्धि लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर क्षयोपशम लब्धि की प्राप्ति होने पर साता-वेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध में कारण जो धर्मानुराग रूप शुभ परिणाम होता है उसकी प्राप्ति का नाम विशुद्धि लब्धि है।

प्र.1235 देशना-लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर छह द्रव्यों और नौ पदार्थों के उपदेश का लाभ देशना है, उस देशना से परिणत आचार्य आदि की प्राप्ति, उपदिष्ट अर्थ के ग्रहण, धारण और विचारण की शक्ति के समागम को देशनालब्धि कहते हैं।

प्र.1236 प्रयोग्य-लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर उपर्युक्त तीन लब्धियों से युक्त जीव प्रति समय विशुद्धि के बल से आयु के अलावा शेष सात कर्मों की स्थिति अन्तःकोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण मात्र शेष कर देता है, तथा पूर्व में जो अनुभाग था, उसमें अनन्त का भाग देने पर बहुभाग प्रमाण अनुभाग को छोड़कर शेष एक भाग प्रमाण अनुभाग को कर देता है। इस कार्य को करने की योग्यता के लाभ को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं।

प्र.1237 करणलब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर पंचम लब्धि की प्राप्ति के समय आत्मा के अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणाम उत्पन्न होते हैं, जिस कारण सम्यक्त्व के योग्य भव्यात्मा की तीनों करणों में क्रमशः निर्मल, निर्मलतर और निर्मलतम अवस्था होकर सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है, ऐसी सम्यक्त्व के पूर्व की अन्तिम लब्धि का नाम करण लब्धि कहलाता है।

प्र.1238 प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति किस तरह से होती है?

उत्तर अनिवृत्तिकरण का जो अन्तर्मुहूर्त्त काल है उसके व्यतीत होते हुए जब एक भाग काल शेष रहता है तब प्रथम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ अनादि मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व का अन्तरकरण करता है और सादि मिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहनीय का अन्तरकरण करता है। वह सत्ता में स्थित मिथ्यात्व प्रकृति के द्रव्य को सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति रूप परिणमाता है, इस विधि से प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। (क.प्र.)

प्र.1239 प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में क्या मरण होना सम्भव है?

उत्तर नहीं; प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में किसी जीव का मरण नहीं होता है।

प्र.1240 प्रथमोपशम सम्यक्त्व के छूटने पर क्या अवस्था होती है?

उत्तर उपशम सम्यक्त्व का अन्तर्मुहूर्त्त काल व्यतीत होने पर अनादि मिथ्यादृष्टि के तो मिथ्यात्व का उदय हो जाता है, तथा सादि मिथ्यादृष्टि या तो मिथ्यादृष्टि होकर वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व अथवा उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है या सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।

प्र.1241 अन्तरकरण किसको कहते हैं?

उत्तर जिस कर्म का अन्तरकरण करना हो उसकी प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थिति को छोड़कर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्त्त मात्र स्थिति के निषेकों का अभाव करने को अन्तरकरण कहते हैं।

प्र.1242 मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व का अन्तरकरण कैसे करता है और उसे कितना काल लगता है?

उत्तर मिथ्यादृष्टि जब मिथ्यात्व कर्म का अन्तरकरण करता है, तब उसे अन्तर्मुहूर्त्त काल लगता है। वह अनादिकाल से उदय में आने वाले मिथ्यात्व कर्म को अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण स्थिति सम्बन्धी निषेकों को छोड़कर उससे ऊपर के अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण स्थिति के निषेकों को अपने स्थान से उठाकर कुछ निषेकों को प्रथम स्थिति (नीचे की स्थिति) सम्बन्धी निषेकों में मिला देता है और कुछ निषेकों को द्वितीय स्थिति (ऊपर की स्थिति) सम्बन्धी निषेकों में मिला देता है। इस तरह वह तब तक करता रहता है जब तक अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण स्थिति के पूरे निषेक समाप्त न हो जावें। जब मध्यवर्ती समस्त निषेक ऊपर की अथवा नीचे की स्थिति में दे दिये जाते हैं और प्रथम स्थिति तथा द्वितीय स्थिति के बीच का अन्तरायाम मिथ्यात्व कर्म के निषेकों से सर्वथा शून्य हो जाता है तब अन्तरकरण पूर्ण हो जाता है।

प्र.1243 वेदक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर अनन्तानुबन्धी कषाय का अप्रशस्त उपशम अथवा विसंयोजन होने पर और मिथ्यात्व तथा सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का प्रशस्त उपशम या अप्रशस्त उपशम अथवा क्षयोन्मुख होने पर तथा देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर जो तत्त्वार्थ श्रद्धान होता है उसे वेदक सम्यक्त्व कहते हैं। इसी को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भी कहते हैं। क्योंकि सर्वघाती अनन्तानुबन्धी कषाय मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का उदयाभाव रूप क्षय तथा सदवस्था रूप उपशम होने पर और देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर वेदक सम्यक्त्व होता है। इससे इसी का दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है।

प्र.1244 अप्रशस्त उपशम या देशोपशम किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें विवक्षित प्रकृति उदय आने योग्य तो न हो किन्तु उसका स्थिति, अनुभाग घटाया बढ़ाया जा सके अथवा संक्रमण वगैरह किये जा सके उसे अप्रशस्त उपशम या देशोपशम कहते हैं।

प्र.1245 प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम किसको कहते हैं?

उत्तर जिसमें विवक्षित प्रकृति न तो उदय आने योग्य ही हो और न उसका स्थिति, अनुभाग घटाया जा सके तथा न संक्रमण वगैरह ही किया जा सके उसे प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम कहते हैं।

प्र.1246 वेदक सम्यग्दर्शन जीव के साथ कितने काल तक बना रह सकता है?

उत्तर वेदक सम्यग्दर्शन जीव के साथ जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट से छियासठ सागरोपम काल तक बना रह सकता है।

प्र.1247 क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का क्रम किस प्रकार है?

उत्तर असंयत, देशसंयत, प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि मनुष्य सर्वप्रथम तो अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के अन्त में अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का विसंयोजन करता है अर्थात् उन्हें बारह-कषाय और नव-नोकषाय रूप कर देता है। उसके पश्चात् दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ करता है।

प्र.1248 भव्यजीव दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ कहाँ करता है?

उत्तर इस विषय के समाधान में तीन मत उपस्थित हैं-

1. दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय होने का प्रारम्भ केवली के मूल में कर्मभूमि का उत्पन्न होने वाला मनुष्य ही करता है तथा निष्ठापन सर्वत्र होता है। (गो.सा.जी.का.गाथा-648)

2. ढाई द्वीप-समुद्रों में स्थित पन्द्रह कर्म भूमियों में जहाँ जिस काल में केवली तीर्थंकर होते हैं वहाँ उस काल में कर्मभूमिया मनुष्य (पुरुष) ही दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ करता है। (ष.खं. 6/1,9-8/सू.12)

3. दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय का प्रारम्भ कर्म भूमिज मनुष्य; जिस काल में केवली होते हैं या श्रुतकेवली उनके पादमूल में ही करता है, किन्तु निष्ठापन चारों गतियों में हो सकता है। (ध.6/1,9-8,11/246/1)

प्र.1249 दर्शन मोहनीय की क्षपणा का प्रस्थापक कौन कहलाता है?

उत्तर दर्शन मोहनीय की क्षपणा के लिए किये गए अधःकरण के प्रथम समय से लेकर जब तक जीव मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के द्रव्य को सम्यक्त्व प्रकृति रूप संक्रमण करता है तब तक उसे दर्शन मोहनीय की क्षपणा का प्रस्थापक कहते हैं।

प्र.1250 भव्यजीव दर्शन मोहनीय की क्षपणा का निष्ठापक कब कहलाता है?

उत्तर कृतकृत्य वेदक होने के प्रथम समय से लेकर आगे के समयों में दर्शनमोह की क्षपणा करने वाला जीव निष्ठापक कहलाता है।

प्र.1251 कृतकृत्य वेदक किसको कहते हैं?

उत्तर दर्शन मोहनीय की क्षपणा के लिए किये गये तीन करणों में से अनिवृत्तिकरण के अन्त समय में सम्यक्त्व प्रकृति के अन्तिम फालि के द्रव्य को नीचे के निषेकों में क्षेपण करने के पश्चात् अनन्तर समय से लगाकर अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त जीव कृतकृत्य वेदक कहा जाता है क्योंकि जिसने करने योग्य कार्य कर लिया है उसे कृतकृत्य कहते हैं सो दर्शन मोह की क्षपणा के योग्य कार्य अनिवृत्तिकरण काल के अन्त समय में हो ही जाता है। अतः वह कृतकृत्य वेदक कहा जाता है।

अथवा- क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख होता हुआ मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धि चतुष्क इन छह प्रकृतियों का क्षय कर चुकता है, मात्र सम्यक्त्व प्रकृति का उदय जब शेष रह जाता है तब वह कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि कहलाता है। यह सब कार्य मात्र अन्तर्मुहूर्त्त में होता है।

प्र.1252 भव्यजीव दर्शन मोह की क्षपणा का निष्ठापन कहाँ करता है?

उत्तर दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ करने वाला मनुष्य कृतकृत्य वेदक होने के पश्चात् आयु का क्षय होने से यदि मरण को प्राप्त होता है तो सम्यक्त्व ग्रहण करने से पहले बाँधी हुई आयु के अनुसार चारों गतियों में उत्पन्न होकर दर्शनमोहनीय की क्षपणा को पूर्ण करता है। उसमें इतना विशेष है कि कृतकृत्य वेदक के काल के चार भाग करके उनमें से यदि प्रथम भाग में मरण करे तो नियम से देव पर्याय में ही जन्म लेता है, दूसरे भाग में मरण करे तो देव या मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होता है, तीसरे भाग में मरण करे तो देव, मनुष्य या तिर्यञ्च पर्याय में उत्पन्न होता है और चौथे भाग में मरण करे तो चारों गतियों में से किसी भी गति में जन्म लेता है।

प्र.1253 क्षायिक सम्यग्दृष्टि की संसार में रहने की कितनी स्थिति होती है?

उत्तर क्षायिक सम्यग्दृष्टि की संसार में रहने रूप भवस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट रूप से चार भव या आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त्त कम दो पूर्व कोटी और तैंतीस सागरोपम वर्ष है।

प्र.1254 क्षायिक सम्यग्दृष्टि की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति कैसे घटित होती है?

उत्तर उपशम या क्षयोपशम सम्यग्दर्शन की तरह क्षायिक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होकर छूटता नहीं है। फिर भी क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होने के पश्चात् क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव के संसार में रहने की अपेक्षा से क्षायिक सम्यक्त्व की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कही है, क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि बनते ही मुनि बन एवं केवलज्ञान को भी पाकर मोक्ष को पा लेता है तब अन्तर्मुहूर्त्त की भवस्थिति पूर्ण हो जाती है और क्षायिक सम्यक्त्व अखण्ड रहते हुए सिद्धों की अनन्तकालिक स्थिति प्रारम्भ हो जाती है।

उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त-आठवर्ष कम दो पूर्व कोटी और तैंतीस सागरोपम वर्ष है क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम तो उस ही भव से मोक्ष पा लेता है जिस भव से उसने दर्शन मोह का क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त किया है। यदि क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने से पूर्व उसने परभव सम्बन्धी आयु बाँध ली हो तो वह तीसरे भव से मुक्त हो जाता है और यदि उसने मनुष्य या तिर्यञ्च की आयु बाँधी हो तो चौथे भव में अवश्य मुक्त हो जाता है। भव के साथ सम्यक्त्व की स्थिति पूर्ण होते हुये भी सम्यक्त्व मोक्षावस्था में साथ चला जाता है और कभी क्षायिक सम्यक्त्व का अभाव नहीं होता है।

प्र.1255 क्षायिक सम्यक्त्व किन गुणस्थानों में रहता है?

उत्तर क्षायिक सम्यक्त्व; चतुर्थ से चौदहवें गुणस्थान तक रहता है। (और गुणस्थानातीत सिद्धों में भी रहता है।)

प्र.1256 क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कितने गुणस्थानों में पाया जाता है?

उत्तर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है।

प्र.1257 औपशमिक सम्यक्त्व कितने गुणस्थानों में रहता है?

उत्तर 1. प्रथमोपशम सम्यक्त्व चौथे से सातवें गुणस्थान तक होता है।
2. द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है।

प्र.1258 द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कब, किसको और कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व उपशम श्रेणी चढ़ने के सम्मुख जीव को सातवें गुणस्थान में उत्पन्न होता है एवं क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन के पश्चात् उत्पन्न होता है। दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के उपशम के साथ-साथ चार अनन्तानुबन्धी कषायों के विसंयोजन अर्थात् अनन्तानुबन्धी का अप्रत्याख्यानादि रूप परिणमन होने से द्वितीयोपशम सम्यक्त्व प्रकट होता है।

प्र.1259 द्वितीयोपशम सम्यक्त्व जब श्रेणी चढ़ने के निमित्त सातवें गुणस्थान में उत्पन्न होता है और उपशम श्रेणी आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक होती है तब द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को चौथे, पाँचवे और छठे गुणस्थान में क्यों बतलाया गया है?

उत्तर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पूर्वक श्रेणी का आरोहण करके जब जीव ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे की ओर गिरता है तब छठे, पाचवें एवं चौथे गुणस्थान में भी पाया जाता है। इस अपेक्षा से द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है।

प्र.1260 द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन में मरण कब नहीं होता तथा मरण जब होता है तब कौन-सी गति होती है?

उत्तर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले जीवों का अपूर्वकरण गुणस्थान में प्रथम पाये में (भाग में) मरण नहीं होता है, सर्व गुणस्थानों (4 से 11 गु. तक) द्वितीयोपशम के काल में मरण होने पर जीव नियम से देवगति में जन्म लेता है।

प्र.1261 किस गति में कितने सम्यक्त्व होते हैं?

उत्तर प्रथम पृथ्वी में तीनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं। किन्तु छह पृथ्वियों में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता। तिर्यञ्चों, मनुष्यों और देवों में तीनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं, किन्तु तिर्यंचनियों में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है। इसी तरह भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में तथा देवियों में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है। मनुष्यनियों में भी भाव स्त्रीवेद की अपेक्षा कथन जानना चाहिए।

प्र.1262 मिश्र सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जहाँ ऐसे परिणाम हों जिन्हें न सम्यक्त्व रूप कह सकें और न मिथ्यात्व रूप अर्थात् जिस जीव के तत्त्व के विषय में श्रद्धान और अश्रद्धान रूप परिणाम हों, उसे मिश्र सम्यक्त्व कहते हैं। यह तीसरे गुणस्थान का नाम है।

प्र.1263 सासादन सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में कम-से-कम एक समय और अधिक से अधिक छहआवली प्रमाण काल शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ में से किसी एक प्रकृति का उदय आ जाने पर जिसने सम्यक्त्व की विराधना कर दी है, किन्तु मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ है उन आसादन रूप परिणामों को सासादन सम्यक्त्व कहते हैं। सासादन यह द्वितीय गुणस्थान का नाम है। ऐसा जीव निश्चित ही मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त करता है।

प्र.1264 मिथ्यात्व मार्गणा क्या है और इस भेद को सम्यक्त्व मार्गणा के भेदों में क्यों कहा है?

उत्तर जो जीव जिनेन्द्र देव के द्वारा देशित आप्त, आगम और पदार्थ का श्रद्धान नहीं करता है, परन्तु मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से कुगुरुओं के कहे हुए या बिना कहे हुए भी पदार्थ का विपरीत श्रद्धान करता है उसे मिथ्यात्व कहते हैं। इसी का नाम मिथ्यात्व गुणस्थान है। यह मिथ्यात्व ही सम्यक्त्व की पूर्वापर (सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व की व सम्यक्त्व छूटने के बाद की) अवस्था है अतः इसे भी उपचार से सम्यक्त्व मार्गणा में गर्भित किया गया है।

प्र.1265 संज्ञी जीव की पहचान हेतु जो शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलाप कहे जाते हैं उनका अर्थ क्या है?

उत्तर संज्ञी जीव की पहचान के चार हेतुओं के अर्थ इस तरह से हैं- 1.शिक्षा-हित का ग्रहण और अहित का त्याग जिसके द्वारा किया जा सके उसको शिक्षा कहते हैं। 2. क्रिया- इच्छापूर्वक हाथ पैर आदि के चलाने को क्रिया कहते हैं। 3. उपदेश- वचन अथवा चाबुकादि के द्वारा बताये हुए कर्त्तव्य को पर-उपदेश कहते हैं। और 4. आलाप- श्लोकादि के पाठ को आलाप कहते हैं। जो इन शिक्षादिकों को मन के अवलम्बन से ग्रहण-धारण करता है उसको संज्ञी कहते हैं और जिन जीवों में यह लक्षण घटित नहीं होता उनको असंज्ञी जीव कहते हैं।

प्र.1266 संज्ञी-असंज्ञी की पहचान और किस तरह से होती है?

उत्तर जो जीव प्रवृत्ति करने के पूर्व अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विचार कर तथा तत्त्व और कुतत्त्व या अतत्त्व का स्वरूप समझ सके और उसका जो नाम रखा गया हो उस नाम के द्वारा बुलाने पर आ सके, उन्मुख हो अथवा उत्तर दे सके उसको समनस्क या संज्ञी जीव कहते हैं और इससे जो विपरीत है उसको अमनस्क या असंज्ञी जीव कहते हैं।

प्र.1267 संज्ञी मार्गणा में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर संज्ञी जीव के प्रथम से बारह गुणस्थान तक होते हैं। तथा असंज्ञी जीव का प्रथम गुणस्थान ही होता है। केवली संज्ञी-असंज्ञी व्यपदेश से रहित है।

(विभिन्न आचार्यों ने असंज्ञी जीवों में भी निर्वत्यपर्याप्त अवस्था में दूसरा सासादन गुणस्थान भी माना है इस तरह उनके मत में असंज्ञी जीवों के दो गुणस्थान मिथ्यात्व और सासादन होते हैं। (गो.क. गा. 113, पं.सं.पृ.75)

प्र.1268 तेरहवें गुणस्थान के जीव संज्ञी मार्गणा में क्यों नहीं है?

उत्तर मन भी ईषत् (कथंचित्) इन्द्रिय है और तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवान् अतिन्द्रिय हैं, वे सर्व

पदार्थों को आत्मा के केवलज्ञान से जानते हैं उन्हें मन की आवश्यकता नहीं, वे इन्द्रियों के प्रयोग से रहित हैं अतः उन्हें संज्ञी मार्गणा में नहीं लिया गया है। किसी एक मत से पंचेन्द्रिय छदमस्थों के मन एक अस्थायी रचना है। प्रमाण- (1)जैनेन्द्र सि.को.भा. 4, देखें मन/(2) देखिये-रा.वा./5/18/6/468/30

प्र.1269 आहारक होते समय जीव किसके योग्य क्या ग्रहण करता है?

उत्तर शरीर नामक नामकर्म के उदय से देह (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इनमें से यथासंभव अर्थात् जब आवश्यक हो, किसी भी शरीर तथा वचन और द्रव्यमन रूप) बनने योग्य नोकर्म वर्गणाओं का जो ग्रहण होता है उसको आहार कहते हैं। (जी.का.गा.664)

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरों में से किसी भी एक शरीर के योग्य वर्गणाओं को तथा वचन और मन के योग्य वर्गणाओं को यथा-योग्य (आवश्यक) काल में जीव आहरण (ग्रहण) करता है अतः आहारक कहलाता है। (गो.सा.जी.का. 665)

प्र.1270 कौन-से जीव अनाहारक होते हैं, और कौन-से जीव आहारक होते हैं?

उत्तर विग्रहगति को प्राप्त होने वाले चारों गति सम्बन्धी जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करने वाले सयोग केवली, अयोगकेवली और समस्त सिद्ध इतने जीव तो अनाहारक होते हैं और इनको छोड़कर शेष सभी जीव आहारक होते हैं।

प्र.1271 आहार मार्गणा में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर आहारक जीव के प्रथम से तेरहवें गुणस्थान तक होते हैं। और अनाहारक जीव के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, त्रयोदश और चतुर्दशवाँ ऐसे पाँच गुणस्थान होते हैं।

प्र.1272 आहारक का जघन्य काल कितना है और वह कहाँ घटित होता है?

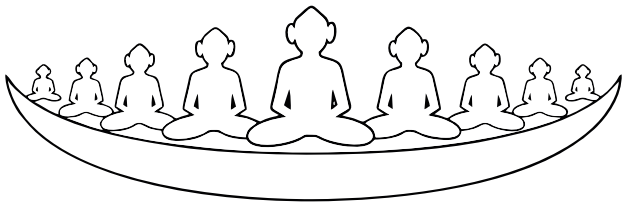
उत्तर आहारक का जघन्य काल तीन समय कम श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण है। विग्रह गति के तीन समय कम, श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण यह आहारक का जघन्य काल लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्म निगोदिया जीव के घटित होता है।

प्र.1273 अनाहारक का जघन्य और उत्कृष्ट काल कितना है और वह कहाँ घटित होता है?

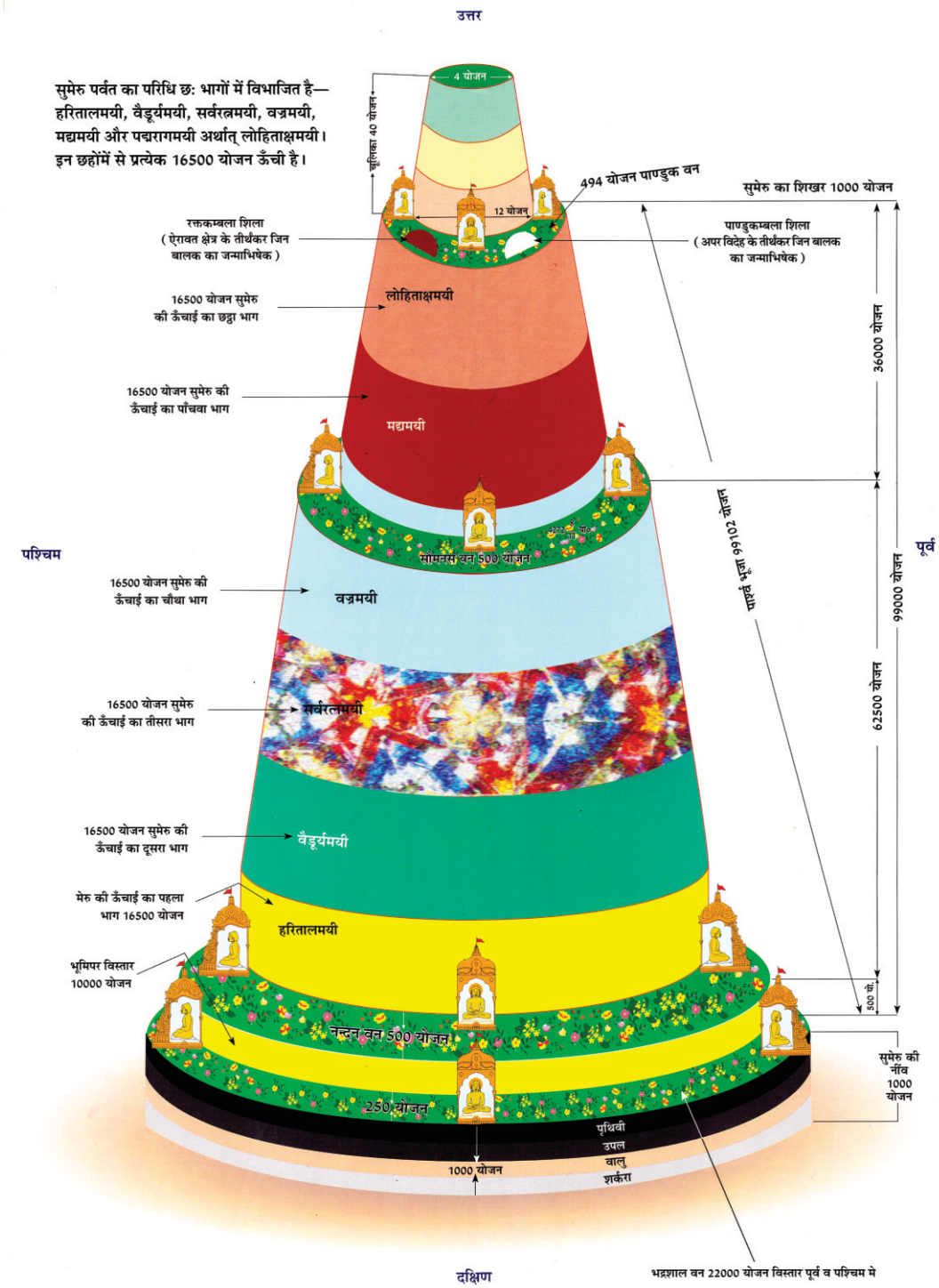
उत्तर अनाहारक का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। यह काल क्रमशः ऋजुगति में और तीन मोड़े वाली विग्रहगति में घटित होता है।

प्र.1274 सिद्ध गति में कौन-कौन-सी मार्गणाओं का अभाव है?

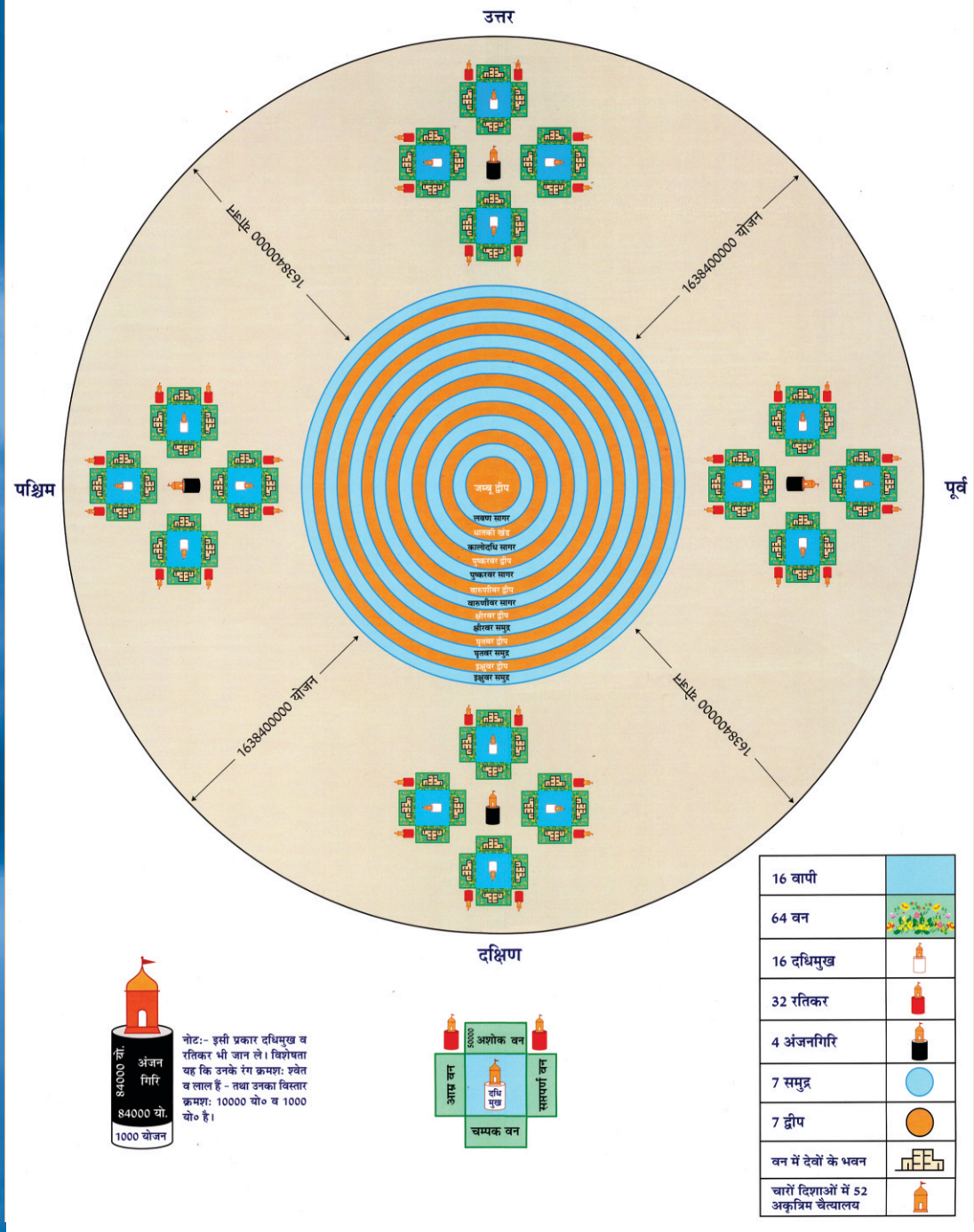
उत्तर सिद्धों में सिद्धगति के साथ केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और अनाहारक मार्गणाओं को छोड़कर शेष मार्गणाओं का अभाव है।



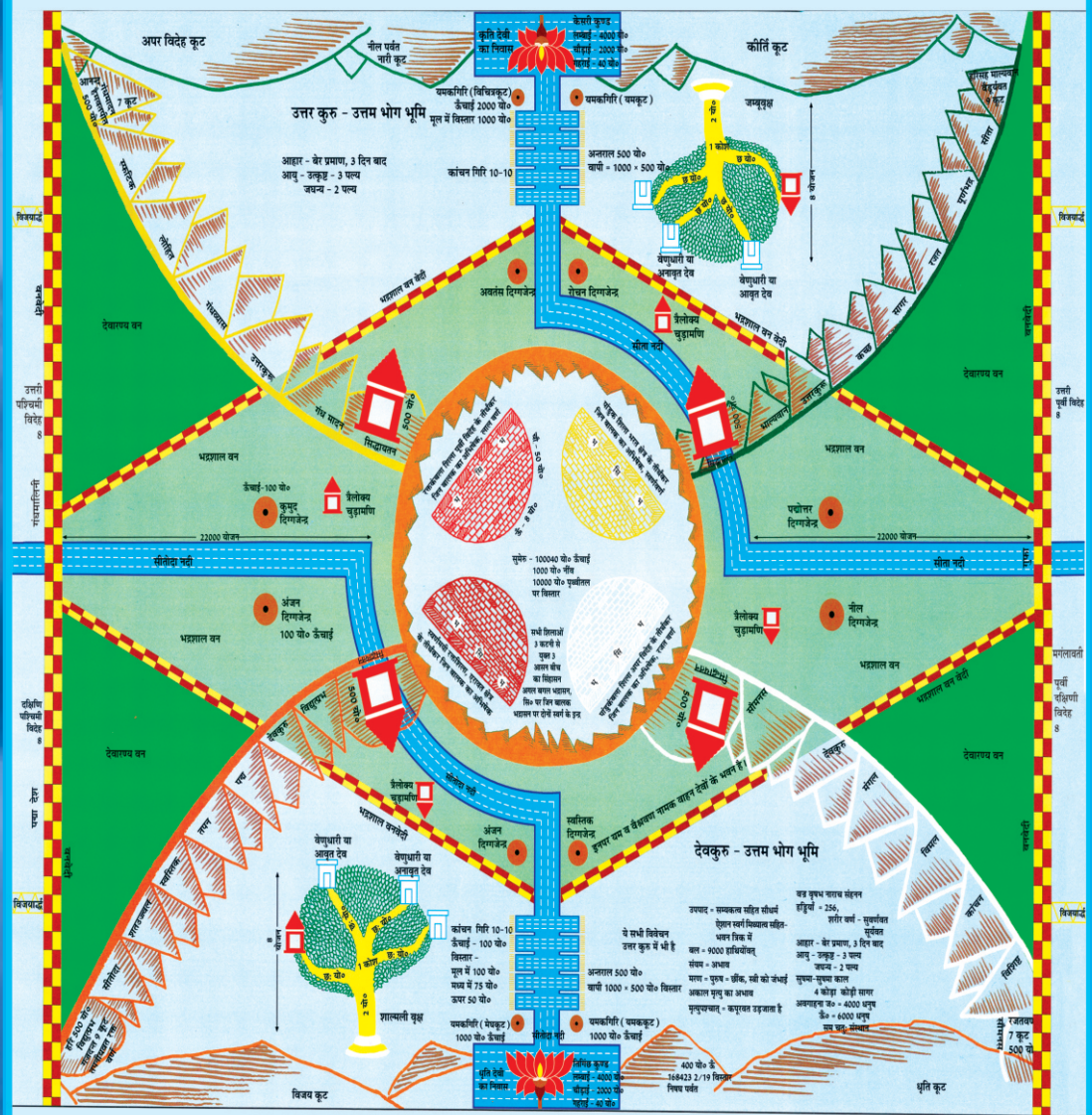
सुदर्शन मेरु का रचना



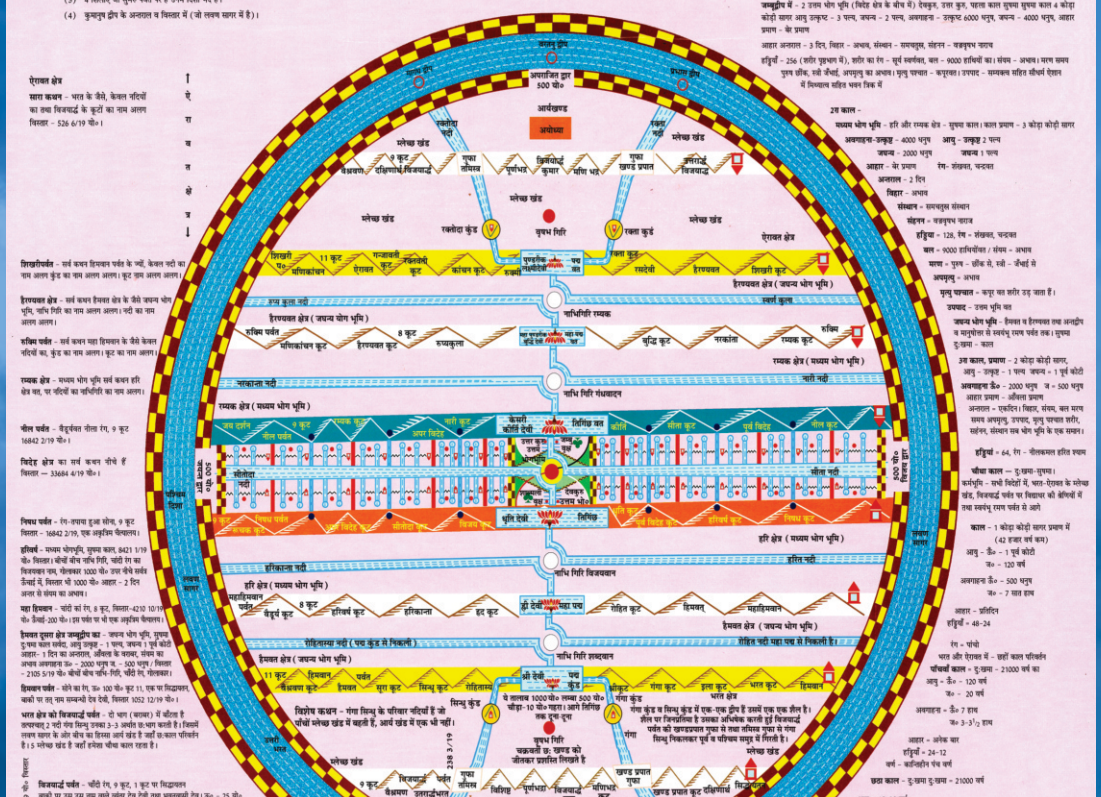
आठवाँ नन्दीश्वर द्वीप



सुमेरु पर्वत, चार गजदन्त तथा पर्वत पर चार शिलाएँ



जम्बूद्वीप



दृष्टि भेद - (1) पर्वत व कूट नाम में
(2) कांचन शैल की संख्या में
(3) 4 शिलायें जो सुमेरु पर्वत पर है उनमें दिशा भेद है।
(4) कुलाचल द्वीप के अनादान व विस्तार में (जो लवण सागर में है)।

ऐरावत क्षेत्र
सात कांचन - भरत के जैसे, केवल नदियों का तथा विजयार्द्ध के कूटों का नाम अलग
विस्तार - 526 6/19 यो॰

शिखरीपर्वत - सर्व कथन हिमवान पर्वत के ज्यों, केवल नदी का नाम अलग कुंड का नाम अलग अलग। कूट नाम अलग अलग।

हैरण्यवत क्षेत्र - सर्व कथन हैमवत क्षेत्र के जैसे जघन्य भोग भूमि, नाभि गिरि का नाम अलग अलग। नदी का नाम अलग अलग।

रुक्मि पर्वत - सर्व कथन महा हिमवान के जैसे केवल नदियों का, कुंड का नाम अलग। कूट का नाम अलग।

रम्यक क्षेत्र - मध्यम भोग भूमि सर्व कथन हरि क्षेत्र वत, पर नदियाँ का नाभिगिरि का नाम अलग।

नील पर्वत - वैडूर्यमय नीला रंग, 9 कूट
विस्तार - 16842 2/19, एक अकृत्रिम चैत्यालय।

हरिवर्ष - रम्यक भोगभूमि, सुरूपा वापी, 8421 1/19 यो॰ विस्तार। बीचों बीच नाभि गिरि, चारों ओर विजयवान नाम, पीतवर्ण 1000 यो॰ उच्च पीचे सर्व ऊँचाई में, विस्तार भी 1000 यो॰ आहार - 2 दिन अन्तर से संभव का अभाव।

महा हिमवान - चांदी सा रंग, 8 कूट, विस्तार-4210 10/19 यो॰ ऊँचाई-200 यो॰। इस पर्वत पर भी एक अकृत्रिम चैत्यालय।

हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोग भूमि) - जघन्य भोग भूमि, सुरूपा दुःखमा काल सर्वत्र, आयु जघन्य - 1 पल्य, जघन्य 1 पूर्व कोटि आहार- 1 दिन का अनादान, अभेदत्व के कारण, संभव का अभाव अवगाहना ऊँ - 2000 धनुष ज॰ - 500 धनुष। विस्तार - 2105 5/19 यो॰ बीचों बीच नाभि गिरि, पीली रंग, पीतवत्।

हिमवान पर्वत - सोने सा रंग, ऊँ॰ 100 यो॰ कूट 11, एक पर सिद्धायतन, बाकी पर उस नाम समान्नी देव रहेंगी, विस्तार 1052 12/19 यो॰।

भरत क्षेत्र को विजयार्द्ध पर्वत - दो भाग (कालम) में बाँटता है कन्फ्यूज़ 2 नदी गंगा सिन्धु उनका 3-3 अर्थात छः-भाग करती है। जिसमें लवण सागर के ओर बीच का हिस्सा आर्य खंड है जहाँ छः-काल परिवर्तन है। 5 म्लेच्छ खंड है जहाँ हमेशा चौथा काल रहता है।

विजयार्द्ध पर्वत - चाँदी रंग, 9 कूट, 1 कूट पर सिद्धायतन बाकी पर उस उस नाम वाले व्यंतर देव देवी तथा भवनवासी देव। ऊँ॰ - 25 यो॰, विस्तार - 50 यो॰ नींव ऊँ॰ से चौथाई अर्थात 25/4 = 6 1/4 यो॰। इस पर दक्षिण श्रेणी में 55 नगर तथा उत्तरी श्रेणी में 60 नगर हैं। ये विद्याधर के गगनचरी हैं इन में विद्याधर रहते हैं चौथा काल है विद्याधर तीन विद्याओं से पूजा तथा पूजा उपकथन पर कर्मों से पूजा होते हैं। ये मुक्ति पाने तक जा सकते हैं। तथा विद्याओं की छोड़कर संभव को चारण का विद्याधर मोक्ष भी जा सकते हैं।

जम्बू द्वीप का पूरा विस्तार से कथन :— इन सब असंख्यात द्वीप समुद्र के बीच में गोल (थाली के आकार का) 1,00,000 योजन विष्कम्भ वाला जम्बूद्वीप है। जिसके मध्य में नाभि के समान **मेरु पर्वत** (●) स्थित क्षेत्र के बहु मध्य भाग में वह पर्वत तीर्थंकरों के जन्माभिषेक का आसन बन माना जाता है। यह तीनों लोकों का मापदण्ड है। ये गोलाकार, पृथिवी तल पर 10000 योजन विस्तार तथा 1000वां योजन उत्सेध (ऊँचाई) वाला है तथा 1000 यो॰ नींव है। इस द्वीप में **भरत वर्ष, हैमवत वर्ष, हरि वर्ष** स्थित वर्ष, रम्यक वर्ष, हैरण्यवत वर्ष तथा ऐरावत वर्ष हैं। उन क्षेत्रों को विभाजित करने वाले अनुसार 5-5 100 हैं। ● - 4 नाभि गिरि हैं। जो दोनों कुरुओं के ठीक बीचोंबीच स्थित हैं। ये गिरियोंवत् स्थित क्षेत्र के मध्यान्त वर्ष में ये दोनों कुरुओं में गोल मोतीवत् के दीपों सदृश हैं। प्रत्येक एक स्थित हैं — पहले वन वेदी फिर वनखण्ड फिर फिर वेदिका फिर वनखण्ड फिर विभंग फिर वनखंडों इस प्रकार 8 क्षेत्र वन खंडों हैं चारि 32 क्षेत्र चारों दिशाओं के। एक एक क्षेत्र में बीचों बीच विजयार्द्ध है 32 विजयार्द्ध। उत्तरी पूर्वी व पश्चिमी में गंगा सिन्धु निकलती हैं। दक्षिणि पूर्वी व पश्चिम में रक्ता रक्तोदा निकलती हैं जो प्रत्येक क्षेत्र को छः भाग में बाँटती हैं। प्रत्येक में एक (नदी के तट पर) आर्य खण्ड 5 म्लेच्छ खण्ड। एक-एक वृषभ गिरि विभरत उस क्षेत्र को चक्रवर्ती अपनी प्रशस्ति लिखाते हैं, आर्य खंड के ठीक उपर वाले म्लेच्छ खंड के बीच में वृषभ गिरि।

इस प्रकार एक-एक स्थिति में - 8 भाग (आर्यखण्ड), 40 म्लेच्छ खंड, 4 वक्षार गिरि, 3 विभंग नदी, 3 विभंग कुंड (जिससे विभंग नदी) निकलती है। ये विभंग कुल कुलाचल पर हैं। विजयार्द्ध, 8-8 गंगा सिन्धु कुंड या रक्ता रक्तोदा कुंड ये कुलाचल के तल भाग में हैं जिससे गंगा सिन्धु, रक्ता रक्तोदा नदी निकलती हैं। प्रत्येक भाग को छः भाग में बाँटती हैं। प्रत्येक क्षेत्र सम्बन्धी 8-8-8 भागम, उत्तम मध्यम हैं जिसके द्वीप सीता सीतोदा नदी में हैं 12 अकृत्रिम चैत्यालय - 8 विजयार्द्ध पर 8, 4 वक्षार गिरि पर 4।

पूरे विदेह की रचना - 4 विदेह इसमें 32 क्षेत्र, 8 वन वेदी, 32 आर्यखण्ड, 160 म्लेच्छ खण्ड, ● 32 पृथ्वी गिरि, 32 विजयार्द्ध पर्वत, 16 वक्षार गिरि, ● 12 विभंग नदी, ● 16-16 गंगा सिन्धु नदी 16-16 रक्ता रक्तोदा नदी, 32-32 पहाड़ वाला प्रथमा देव के सीमंधरादि सीता सीतोदा नदी में, 48 अकृत्रिम चैत्यालय, ● 12 विभंग कुंड, 16-16 गंगा सिन्धु कुंड, 16-16 रक्ता रक्तोदा कुंड। **चक्रवर्ती** स्थानों में, 4-4 कूट एक पर सिद्धायतन बाकी पर व्यन्तर देव। विजयार्द्ध में 50 यो॰ लम्बी, 9 यो॰ ऊँची तथा 12 यो॰ विस्तार वाली दो दुग्ध धवल प्रासाद शोभित गुफा।
विजयार्द्ध - इसके वर्ण - 9-9 कूट एक पर सिद्धायतन बाकी पर व्यन्तर देव। विजयार्द्ध में 50 यो॰ लम्बी, 9 यो॰ ऊँची तथा 12 यो॰ विस्तार वाली दो दुग्ध धवल प्रासाद शोभित गुफा।
● **सुमेरु** 100000 यो॰ चाल ऊँचाई, उसके ऊपर 40 यो॰ की चूलिका। पर्वत पर चार वन (भद्रशाल, नंदन, सौमनस और पांडुक) सबमें चार-चार अकृत्रिम चैत्यालय। इस पर चार हिमगर्भ जिन पर **जिन बालक** का अभिषेक होता है। प्रत्येक अकृत्रिम चैत्यालय में 108, 108 जिन अकृत्रिम प्रतिमा हैं।
विद्यमान तीर्थंकर - अधिक से अधिक विद्यमान तीर्थंकर 160 हो सकते हैं। एक-एक महा विदेह में 4 विदेह अर्थात 5 महा विदेह हैं (जो जम्बू द्वीप में, 2 धातकी खंड में, 2 पुष्करार्द्ध द्वीप में) तो 20 विदेह हो गये। एक विदेह के 8 क्षेत्र में 8 आर्यखण्ड, उसी प्रत्येक में एक-एक तीर्थंकर। एक विदेह के 8 आर्यखण्ड के 20 विदेह के 160 आर्यखण्ड, सबमें अगर हों तो 160 तीर्थंकर विद्यमान रह सकते हैं। ऐसा वर्णन मिलता है कि अर्धेन चन्द्र जी तीर्थंकर के काल 5 भी चारों एवं 5 ऐरावत के आर्यखण्ड में तथा 160 विदेहों में कुल मिलाकर 170 तीर्थंकर एक साथ विद्यमान थे। ऐसा वर्णन मिलता है कि अर्धेन चन्द्र जी तीर्थंकर के काल 5 भी चारों एवं 5 ऐरावत के आर्यखण्ड में तथा 160 विदेहों में कुल मिलाकर 170 तीर्थंकर एक साथ विद्यमान थे।
कम से कम 20 तीर्थंकर विद्यमान रहते ही हैं 5 महा विदेहों में। अधोत एक-एक विदेह में एक-एक। एक क्षेत्र में समकाल 4 तीर्थंकर विद्यमान रहते ही हैं।

विदेह क्षेत्र (दर्शना पौषधव्रता दृः-दुग्ध सुखम, शाश्वत कर्मभूमि, निरंतर मोक्ष जाते हैं)। विद्यमान 20 तीर्थंकर में 4 जन्मभूति में हैं। जम्बूद्वीप के ठीक बीचों बीच नाभि पर मेरु तथा पर स्थित हुआ विदेह क्षेत्र है। इसका विस्तार विषय व नील पर्वत से दुगा है — 33684 4/19 यो॰। इसके बीचों बीच सुमेरु पर्वत है तथा 4 गजदन्त पर्वत है जिसमें **सौदि रि वन सौमनस** (पूर्व दक्षिण में) नाम का तथा दूसरा विद्युन्माली (पश्चिम दक्षिण) तपनीयवत रुका एक तरफ निषध को तथा दूसरी ओर सुमेरु को छूते है इनका क्रम से सात और नौ कूट है एक अकृत्रिम चैत्यालय है बाकि पर लघु पासादों देव हैं। सीमा गन्धमादन पश्चिमोत्तर में नीला रंग का 2 कूट तथा चौथा माल्यवान नील वर्ण का इसका भी कूट ये दोनों एक ओर सुमेरु दूसरी ओर नील पर्वत को छूते हैं। विदेह क्षेत्र सीता नदी जो केसरीकूट से निकली है पूर्व दिशा की ओर बहती हुई पूर्वी विदेह के दो भागों भागों में बाँटती है तथा सीतोदा नदी विंशिक कूट से निकल पश्चिमी विदेह को 2 भागम भाग में बाँटती हैं। इस प्रकार चार विदेह क्षेत्र हो जाते हैं एक

जम्बूद्वीप में - अकृत्रिम चैत्यालय 78 = 6 कुलाचल + 34 विजयार्द्ध + 16 वक्षारगिरि + 16 सुमेरु + 4 गजदन्त + 2 पृथ्वी जम्बू शाल्मली पर हैं।

भरत ऐरावत के आर्यखण्ड में ६ काल परिवर्तन
जम्बूद्वीप में - 2 उत्तम भोग भूमि (विदेह क्षेत्र के बीच में) देवकुरु, उत्तर कुरु, पहला काल सुषमा सुषमा काल 4 कोड़ा कोड़ी सागर आयु उत्कृष्ट - 3 पल्य, जघन्य - 2 पल्य, अवगाहना - उत्कृष्ट 6000 धनुष, जघन्य - 4000 धनुष, आहार प्रमाण - बेर प्रमाण
आहार अनादान - 3 दिन, विहार - अभाव, संस्थान - समचतुस्र, संहनन - वज्रवृषभ नाराच
हड्डियाँ - 256 (तारा पृष्ठभाग में), तारा का रंग - पूर्ण स्वर्णाभा, वास - 9000 हाथियों का। संख्य - अभाव। मरण समय पुरुष छींक, स्त्री जँभाई, अमनुष्य का अभाव। मृत्यु पश्चात - कपूरवत। उपपाद - समचतस्र सहित सौधर्म ऐशान में त्रिभाग सहित भवन जिस में

2रा काल -
मध्यम भोग भूमि - हरि और रम्यक क्षेत्र - सुषमा काल। काल प्रमाण - 3 कोड़ा कोड़ी सागर
अवगाहना-उत्कृष्ट - 4000 धनुष आयु - उत्कृष्ट 2 पल्य
जघन्य - 2000 धनुष जघन्य 1 पल्य
आहार - बेर प्रमाण रंग- संख्यता, पद्मराग
अनादान - 2 दिन
विहार - अभाव
संस्थान - समचतुस्र संस्थान
संहनन - वज्रवृषभ नाराच
हड्डियां - 128, रंग - संख्यता, पद्मराग
वास - 9000 हाथियों / संख्य - अभाव
मरण - पुरुष - छींक से, स्त्री - जँभाई से
अपमृत्यु - अभाव
मृत्यु पश्चात - कपूर वत शरीर उड़ जाता है।
उपपाद - उत्तम भूमि वत
जघन्य भोग भूमि - हैमवत व हैरण्यवत तथा अन्तर्द्वीप व मनुषोत्तर से स्वयंभू रमण पर्वत तक। सुषमा दुःखमा - काल

3रा काल, प्रमाण - 2 कोड़ा कोड़ी सागर,
आयु - उत्कृष्ट - 1 पल्य जघन्य - 1 पूर्व कोटी
अवगाहना ऊँ॰ - 2000 धनुष ज॰ = 500 धनुष
आहार प्रमाण - आँवला प्रमाण
अनादान - एकादिन। विहार, संस्थ, चार मरण समय अपमृत्यु, उपपाद, शुभ पश्चात शरीर, संहनन, संस्थान सब भोग भूमि के एक समान।

हड्डियाँ = 64, रंग - चौलकमल हरित प्रभान

चौथा काल — दुःखमा-सुषमा।
कर्मभूमि - सभी विदेहों में, भरत-ऐरावत के म्लेच्छ खंड, विजयार्द्ध पर्वत पर विद्याधर की श्रेणियों में तथा स्वयंभू रमण पर्वत से आगे

काल - 1 कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण में (42 हजार वर्ष कम)
आयु - ऊँ॰ - 1 पूर्व कोटी
ज॰ - 120 वर्ष
अवगाहना ऊँ॰ - 500 धनुष
ज॰ - 7 साढ़ हाथ

आहार - प्रतिदिन
हड्डियाँ - 48-24
रंग - चांदी
भरत और ऐरावत में - छहों काल परिवर्तन
चौथा काल - दुःखमा - 21000 वर्ष का
आयु - ऊँ॰ - 120 वर्ष
ज॰ - 20 वर्ष
अवगाहना - ऊँ॰ 7 हाथ
ज॰ 3-3½ हाथ

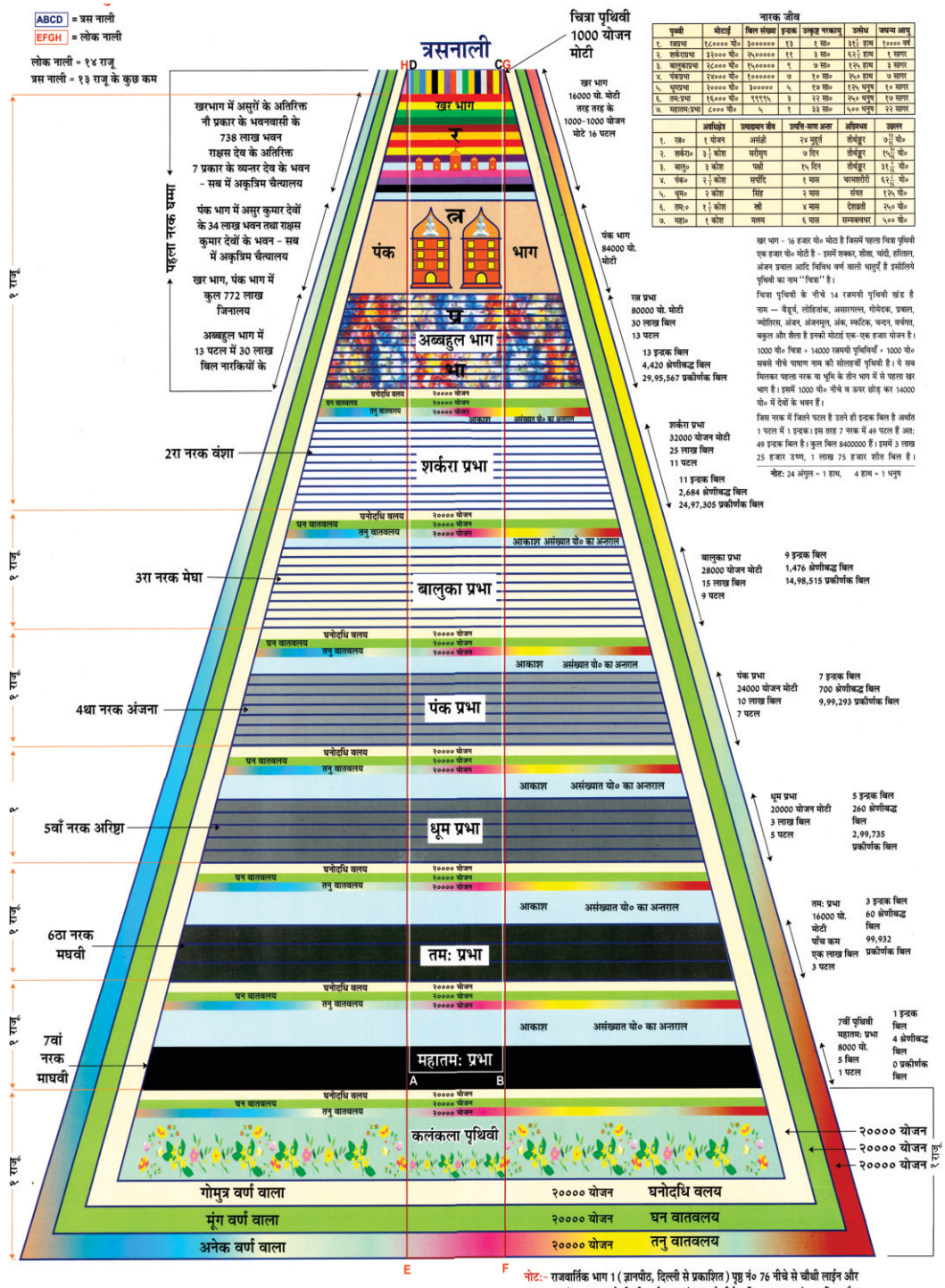
आहार - अनेक बार
हड्डियाँ - 24-12
वर्ण - काँचनीय पीत वर्ण
छठा काल - दुःखमा दुःखमा - 21000 वर्ष
आयु - 15-20 वर्ष,
अवगाहना - ऊँ॰ 3-3½ हाथ
ज॰ 1 हाथ
आहार - बारम्बार, वर्ण - धूमिं सदा रथान
सोलन - कुत्ते बीने आदि
हड्डियाँ - 12

विद्यमान तीर्थंकर - अधिक से अधिक विद्यमान तीर्थंकर 160 हो सकते हैं। एक-एक महा विदेह में 4 विदेह अर्थात 5 महा विदेह हैं (जो जम्बू द्वीप में, 2 धातकी खंड में, 2 पुष्करार्द्ध द्वीप में) तो 20 विदेह हो गये। एक विदेह के 8 क्षेत्र में 8 आर्यखण्ड, उसी प्रत्येक में एक-एक तीर्थंकर। एक विदेह के 8 आर्यखण्ड के 20 विदेह के 160 आर्यखण्ड, सबमें अगर हों तो 160 तीर्थंकर विद्यमान रह सकते हैं। ऐसा वर्णन मिलता है कि अर्धेन चन्द्र जी तीर्थंकर के काल 5 भी चारों एवं 5 ऐरावत के आर्यखण्ड में तथा 160 विदेहों में कुल मिलाकर 170 तीर्थंकर एक साथ विद्यमान थे।
कम से कम 20 तीर्थंकर विद्यमान रहते ही हैं 5 महा विदेहों में। अधोत एक-एक विदेह में एक-एक। एक क्षेत्र में समकाल 4 तीर्थंकर विद्यमान रहते ही हैं।

जम्बू द्वीप सम्बन्धित विदेह क्षेत्र के तीर्थंकर कहाँ?

प्रथम सिद्धस्था स्वामी का समवशरण - पूर्वी उत्तरी विदेह में सीता नदी के उत्तरी तट (सुमेरु से अर्ध क्षेत्र) जिसे पुष्कलावती क्षेत्र के पुण्डरीकिणी नगर में जिनता है।
दूसरे सुरप्रभा स्वामी का समवशरण - पूर्वी दक्षिणी विदेह में सीता नदी को दक्षिणी तट पर जिसे (जम्बूद्वीप की जगति से प्रथम क्षेत्र) वत्सा क्षेत्र की सुसीमा नगरी में जिनता है।
तीसरे वज्रधर स्वामी का समवशरण - दक्षिणी पश्चिमी विदेह में सीतोदा नदी के उत्तर तट जिस विदेह क्षेत्र को (सुमेरु से अर्ध क्षेत्र) वीतशोका नगरी में जिनता है।
चौथे सुबाहु स्वामी का समवशरण - उत्तरी पश्चिमी विदेह में सीतोदा नदी के उत्तर तट पर जिसे (जम्बूद्वीप जगति से प्रथम) क्षेत्र वत्सा के विजया नगरी में जिनधाम है।

अधो लोक



नारक जीव

पृथ्वी	मोटाई	बिल संख्या	इन्द्रक	उत्कृष्ट नरकायु	उत्सेध	जघन्य आयु
१. रत्नप्रभा	१८०००० यो०	३०००००	१३	१ सा०	३१/२ हाथ	१०००० वर्ष
२. शर्कराप्रभा	३२००० यो०	२५०००००	११	३ सा०	६२/३ हाथ	१ सागर
३. वालुकाप्रभा	२८००० यो०	१५०००००	९	७ सा०	१२५ हाथ	३ सागर
४. पंकप्रभा	२४००० यो०	१०००००	७	१० सा०	२५० हाथ	७ सागर
५. धूमप्रभा	२०००० यो०	३०००००	५	१७ सा०	१२५ धनुष	१० सागर
६. तम:प्रभा	१६००० यो०	९९९९५	३	२२ सा०	२५० धनुष	१७ सागर
७. महातम:प्रभा	८००० यो०	५	१	३३ सा०	५०० धनुष	२२ सागर

	अवधिक्षेत्र	उपपादभव जीव	उत्पत्ति-मरण अन्तर	अंगोत्पत्ति	उत्सेध
१. रत्न०	१ योजन	असंज्ञी	२४ मुहूर्त	तीर्थंकुर	७½ चाप
२. शर्करा०	३½ कोस	सरीसृप	७ दिन	तीर्थंकुर	१५½ चाप
३. वालु०	३ कोस	पक्षी	१५ दिन	तीर्थंकुर	३१½ चाप
४. पंक०	२½ कोस	सर्पादि	१ मास	चमगादड़ी	६२½ चाप
५. धूम०	२ कोस	सिंह	२ मास	संघात	१२५ चाप
६. तम:०	१½ कोस	स्त्री	४ मास	देवलवी	२५० चाप
७. महा०	१ कोस	मत्स्य	६ मास	सम्मवावधर	५०० चाप

खर भाग - 16 हजार यो० मोटा है जिसमें पहला चित्रा पृथिवी एक हजार यो० मोटी है - इसमें शक्कर, सीसा, चांदी, हरिताल, अंजन प्रवाल आदि विविध वर्ण वाली धातुएँ है इसीलिये पृथिवी का नाम "चित्रा" है।

चित्रा पृथिवी के नीचे 14 रत्नमयी पृथिवी खंड है नाम — वैडूर्य, लोहितांक, असारगल्ल, गोमेदक, प्रवाल, ज्योतिरस, अंजन, अंजनमूल, अंक, स्फटिक, चन्दन, वकुंपा, बकुल और शीला है इनकी मोटाई एक-एक हजार योजन है।

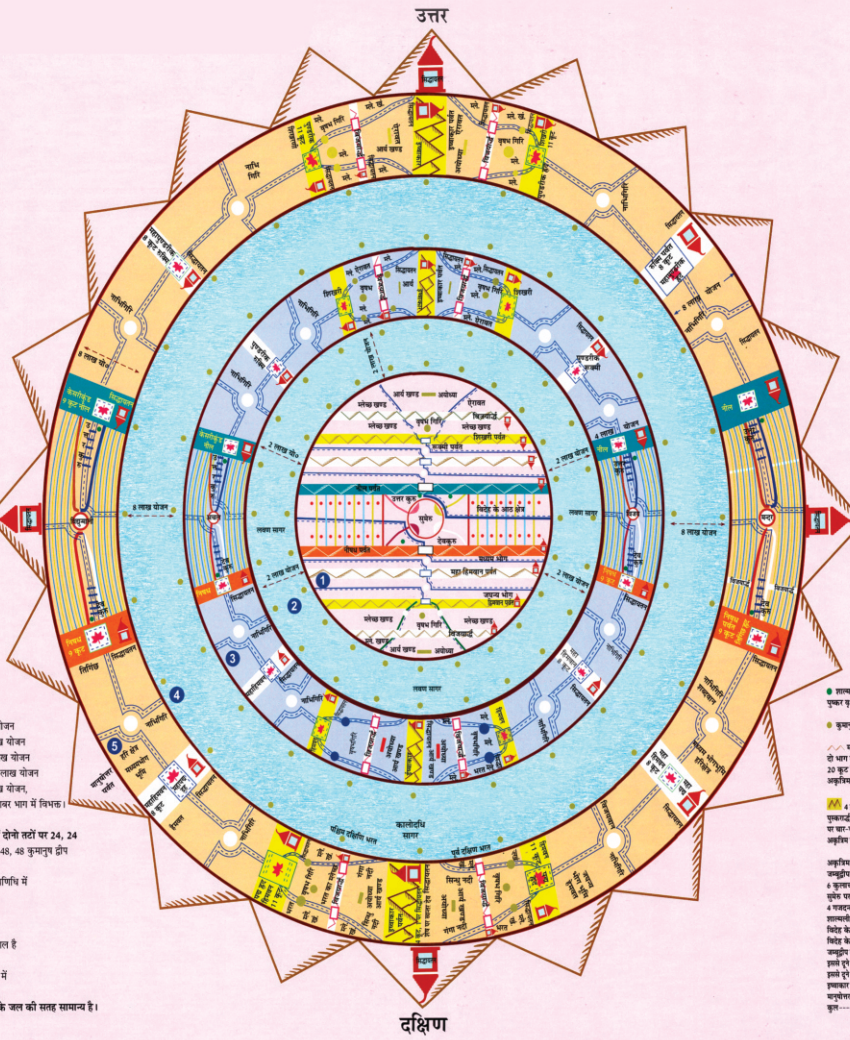
1000 यो० चित्रा + 14000 रत्नमयी पृथिवियाँ + 1000 यो० सबसे नीचे पाषाण नाम की सोलहवीं पृथिवी है। ये सब मिलकर पहला नरक या भूमि के तीन भाग में से पहला खर भाग है। इसमें 1000 यो० नीचे व ऊपर छोड़ कर 14000 यो० में देवों के भवन हैं।

जिस नरक में जितने पटल है उतने ही इन्द्रक बिल हैं अर्थात 1 पटल में 1 इन्द्रक। इस तरह 7 नरक में 49 पटल हैं अत: 49 इन्द्रक बिल है। कुल बिल 8400000 हैं। इसमें 3 लाख 25 हजार उष्ण, 1 लाख 75 हजार शीत बिल है।

नोट: 24 अंगुल = 1 हाथ, 4 हाथ = 1 धनुष

नोट:- राजवार्तिक भाग 1 (ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्रकाशित) पृष्ठ नं० 76 नीचे से चौथी लाईन और पृष्ठ नं० 205 उपर से तीसरी लाईन - 7वां नरक से नीचे भूमि का नाम कलंकला लिखा है।

अढ़ाई द्वीप



—— अढ़ाई द्वीप ——

जम्बू द्वीप, लवण समुद्र, धातकी खंड, कालोदधि समुद्र और पुष्कर द्वीप का आधा भाग मनुष्य क्षेत्र कहलाता है। मनुष्य उतने ही क्षेत्र में पाये जाते हैं। पुष्कर द्वीप के मध्य भाग में वलय के आकार का मानुषोत्तर पर्वत स्थित है। जो इस द्वीप को दो भागों में बाँटता है। मनुष्य इसको पार नहीं कर सकता। इसलिये अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र तक के क्षेत्र को मनुष्यलोक कहते हैं। इसका विस्तार 45 लाख योजन है।

मनुष्य लोक का 45 लाख योजन विस्तार कैसे —

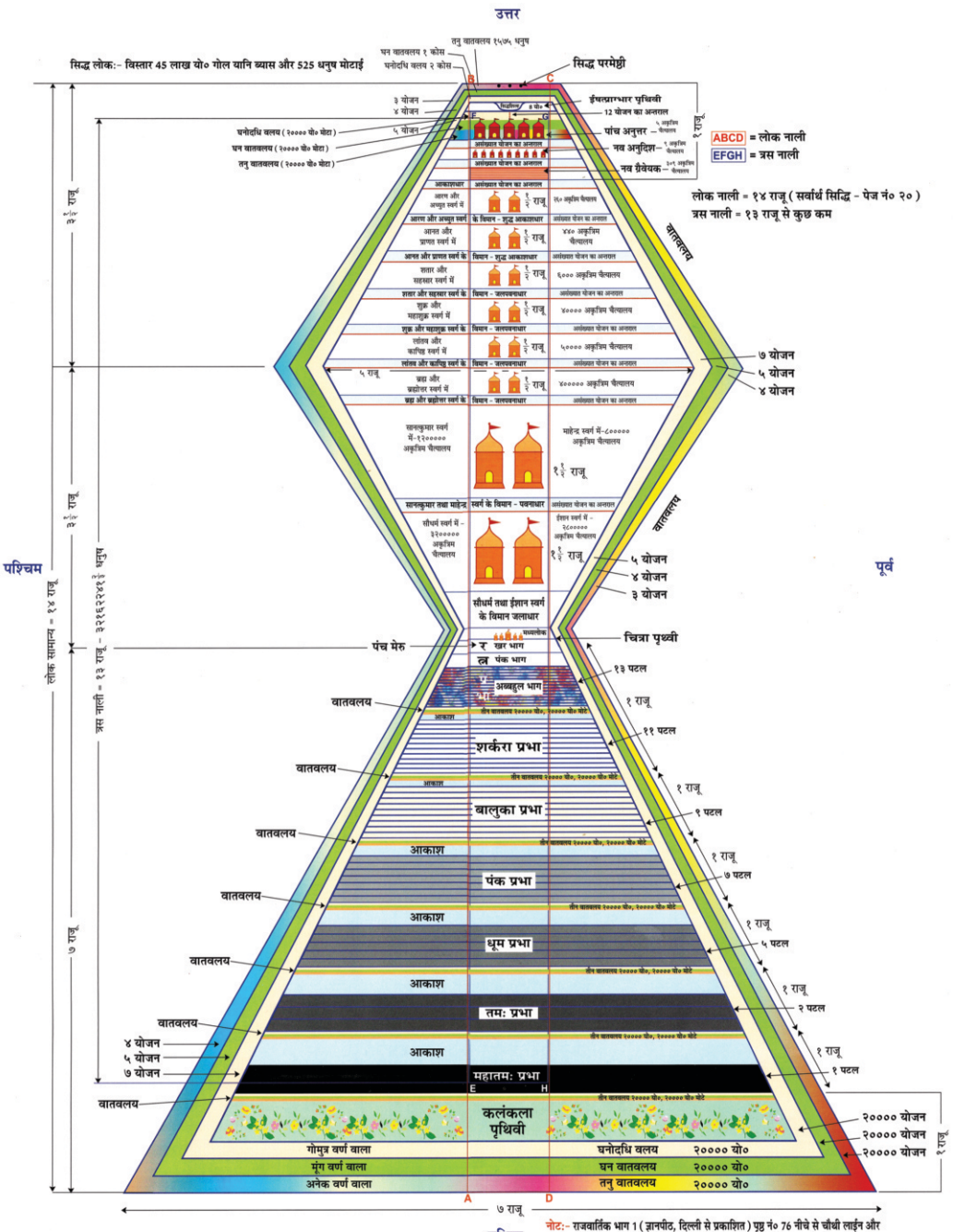
जम्बू द्वीप का 1 लाख यो०, 2 लाख यो० चारों ओर जम्बू द्वीप के (चूड़ी के आकारवत) अथवा पूर्व पश्चिम में चारों ओर लवण सागर यानि 4 लाख यो०, 4 लाख यो० चारों तरफ धातकी खंड यानि 8 लाख यो०, 8 लाख यो० चारों तरफ कालोदधि यानि 16 लाख यो०, 8 लाख यो० पुष्करार्द्ध द्वीप यानि 16 लाख यो० = 1+4+8+16+16+=45 लाख यो० अत: 45 लाख यो० की सिद्ध शिला हुई।

अढ़ाई द्वीप में क्या-क्या कितने-कितने —

(1) 5 मेरु -- सुदर्शन मेरु जम्बूद्वीप के मध्य में, उसी प्रकार धातकी खंड, और पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व पश्चिम भाग में बीचों-बीच एक-एक मेरु है। पूर्व धातकी खंड में विजय, पश्चिम धातकी में अचल। पूर्व पुष्करार्द्ध में मंदर तथा पश्चिम पुष्करार्द्ध में विद्युन्माली, (2) 4 इष्वाकार पर्वत उत्तर से दक्षिण फैले हैं 2 धातकी खंड को दो पुष्करार्द्ध को 2-2 भागों में बाँटता है सभी पर 4-4 कूट एक-एक पर सिद्धायतन बाकि पर व्यन्तर देव। (3) 5 महाविदेह - एक जम्बू द्वीप में, 2 धातकी खंड में, 2 पुष्करार्द्ध में (4) 5 भरत क्षेत्र - एक जम्बू द्वीप में, 2 धातकी खंड में, 2 पुष्करार्द्ध में (5) 5 ऐरावत क्षेत्र - एक जम्बू द्वीप में, 2 धातकी खंड में, 2 पुष्करार्द्ध में (6) 30 कुलाचल - 6 जम्बू द्वीप में, 12 धातकी खंड में, 12 पुष्करार्द्ध में (7) 20 गाभिगिरि - 4 जम्बू द्वीप में, 8 धातकी खंड में, 8 पुष्करार्द्ध में (मध्यम व जघन्य भूमियों में हैं) (8) 35 क्षेत्र - 7 जम्बू द्वीप में, 14 धातकी खंड में, 14 पुष्करार्द्ध में (9) 10 उत्तम भोग भूमि - 2 जम्बू द्वीप में, 4 धातकी खंड में, 4 पुष्करार्द्ध में (देवकुरु, उत्तरकुरु सभी विदेहों में) (10) 10 मध्यम भोग भूमि - 2 जम्बू द्वीप में, 4 धातकी खंड में, 4 पुष्करार्द्ध में (हरि एवम् रम्यक नाम से) (11) 10 जघन्य भोग भूमि - 2 जम्बू द्वीप में, 4 धातकी खंड में, 4 पुष्करार्द्ध में (हैमवत व हैरण्यवत) (12) 70 मुख्य नदियाँ - 14 जम्बू द्वीप में, 28 धातकी खंड में, 28 पुष्करार्द्ध में (13) 20 गजदन्त - 4 जम्बू द्वीप में, 8 धातकी खंड में, 8 पुष्करार्द्ध में (प्रत्येक महा विदेह के बीच में) (14) 170 विजयार्द्ध - 34 जम्बू द्वीप में, 68 धातकी खंड में, 68 पुष्करार्द्ध में (भरत, ऐरावत तथा विदेह के 32 क्षेत्र में एक-एक) (15) 170 आर्य खण्ड - 34 जम्बू द्वीप में, 68 धातकी खंड में, 68 पुष्करार्द्ध में (16) 10 अनादि निधन वृक्ष पृथिवी कायिक - 2 जम्बू द्वीप में, 4 धातकी खंड में, 4 पुष्करार्द्ध में (जम्बू, शाल्मली, धातकी पुष्कर नाम से) (17) 850 म्लेछ खंड - 170 जम्बू द्वीप में, 340 धातकी खंड में, 340 पुष्करार्द्ध में (18) 80 ह्रद (तालाब) - 16 जम्बू द्वीप में, 32 धातकी खंड में, 32 पुष्करार्द्ध में (19) 130 ह्रद (दूसरी मान्यता) - 26 जम्बू द्वीप में, 52 धातकी खंड में, 52 पुष्करार्द्ध में (20) 20 यमक गिरि - 4 जम्बू द्वीप में, 8 धातकी खंड में, 8 पुष्करार्द्ध में (21) 40 दिग्गजेन्द्र - 8 जम्बू द्वीप में 16 धातकी खंड में - 16 पुष्करार्द्ध में (विदेह के बीच में) (22) 1000 कांचनगिरि - 200 जम्बू द्वीप में, 400 धातकी खंड में, 400 पुष्करार्द्ध में (ह्रदों के दोनों वगल), (23) 170 वृषभगिरि - 34 जम्बू द्वीप में, 68 धातकी खंड में, 68 पुष्करार्द्ध में (प्रत्येक भरत व ऐरावत तथा प्रत्येक विदेह के ह्र क्षेत्र में एक एक) (24) 80 वक्षारगिरि - 16 जम्बू द्वीप में, 32 धातकी खंड में, 32 पुष्करार्द्ध में (विदेह को विभाजित करनेवाले) (25) 60 विभंगा नदी व कुंड - 12 जम्बू द्वीप में, 24 धातकी खंड में, 24 पुष्करार्द्ध में (विदेह को विभाजित करनेवाले) (26) 80 रुकोदा नदी एवम् कुंड - 16 जम्बू द्वीप में, 32 धातकी खंड में, 32 पुष्करार्द्ध में (विदेह के 8 क्षेत्रों को 6 भागों में बाँटती है), 28 गंगा नदी एवम् कुंड, 80 सिन्धु नदी एवम् कुंड (27) 170 तमिस्र गुफा - 34 जम्बू द्वीप में, 68 धातकी खंड में, 68 पुष्करार्द्ध में (विजयार्द्ध पर्वत में जिससे होकर सिन्धु व रुकोदा निकलती है), 170 खंड प्रपात गुफा - 34 जम्बू द्वीप में, 68 धातकी खंड में, 68 पुष्करार्द्ध में (विजयार्द्ध पर्वत में जिससे होकर गंगा व रक्ता निकलती है) (28) 18750 विद्याधर के नगर - 3750 जम्बू द्वीप में, 7500 धातकी खंड में, 7500 पुष्करार्द्ध में (भरत एवम् ऐरावत के प्रत्येक विजयार्द्ध पर 115 तथा विदेह के प्रत्येक विजयार्द्ध पर 110) (29) 2840 कूट सभी पर्वतों पर - 568 जम्बू द्वीप में, 1136 धातकी खंड में, 1136 पुष्करार्द्ध में (30) वन अनेक जैसे भद्रसाल, नन्दन, सौमनस, पाडुक, देवारण्य, भूतारण्य। सभी पर्वतों के शिखरों पर उनके मूल में नदियों के दोनों पार्श्वभाग में आदि (31) चैत्यालय अनेक-कूण्ड, वन समूह, नदियाँ, देव नगरियां, पर्वत, तोरण द्वार, ह्रद, वृक्ष 10 आर्य खण्ड के तथा विद्याधरों के नगर आदि सब पर चैत्यालय है (32) वेदियाँ अनेक जम्बूद्वीप आदि क्षेत्रों की सभी ह्रदों की कुण्डों की, सर्व पर्वतों की महानदी आदि की (33) कुण्ड जितनी मुख्य नदी परिवार नदी आदि जितनी भी है उतने ही (34) कमल - प्रत्येक ह्रद में 140116 हैं ह्रद 80 भी है दूसरी मान्यता से 130 भी है (35) 170 कर्मभूमि 34 जम्बूद्वीप में 68 धातकी खंड में 68 पुष्करार्द्ध द्वीप में (36) 96 कुभोगभूमि - 24-24 लवण सागर व कालोदधि सागर के दोनों तटों पर (कुमानुष द्वीप) (37) 1008 - पाताल - लवण सागर में (38) 170-170-170 मागध वरतनु प्रभास देव द्वीप (जम्बूद्वीप में 34-34 धातकी खंड में 68-68 पुष्करार्द्ध में भी 68-68) (39) मनुष्य लोक के अन्त में मानुषोत्तर पर्वत जिसमें 20 कूट तथा चारों दिशाओं में चार कूट पर सिद्धायतन बाकि में व्यंतर देवों का निवास (40) लवण सागर में 16 सूर्य द्वीप 32 चन्द्र द्वीप (इन्हें कोई आचार्य मानते हैं कोई नहीं) (41) 20 विभुवन चूड़ामणि वाले जिनभवन - (4 जम्बूद्वीप, 8 धातकी खंड, 8 पुष्करार्द्ध के विदेहों के बिच में)

चोट - पर्वत के नाम, अवस्थान, इनपर अवस्थित कूटों के प्रमाण एवम् नाम आदि में अन्तर।

तीन लोक



नोटः- राजवार्तिक भाग 1 (ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्रकाशित) पृष्ठ नं० 76 नीचे से चौथी लाईन और पृष्ठ नं० 205 उपर से तीसरी लाईन - 7वां नरक से नीचे भूमि का नाम कलंकला लिखा है।

1) सर्वार्थ सिद्धि के इन्द्रक विमान के ध्वज दंड से 425 धनुष कम 21 योजन जाकर लोक का अन्त है।

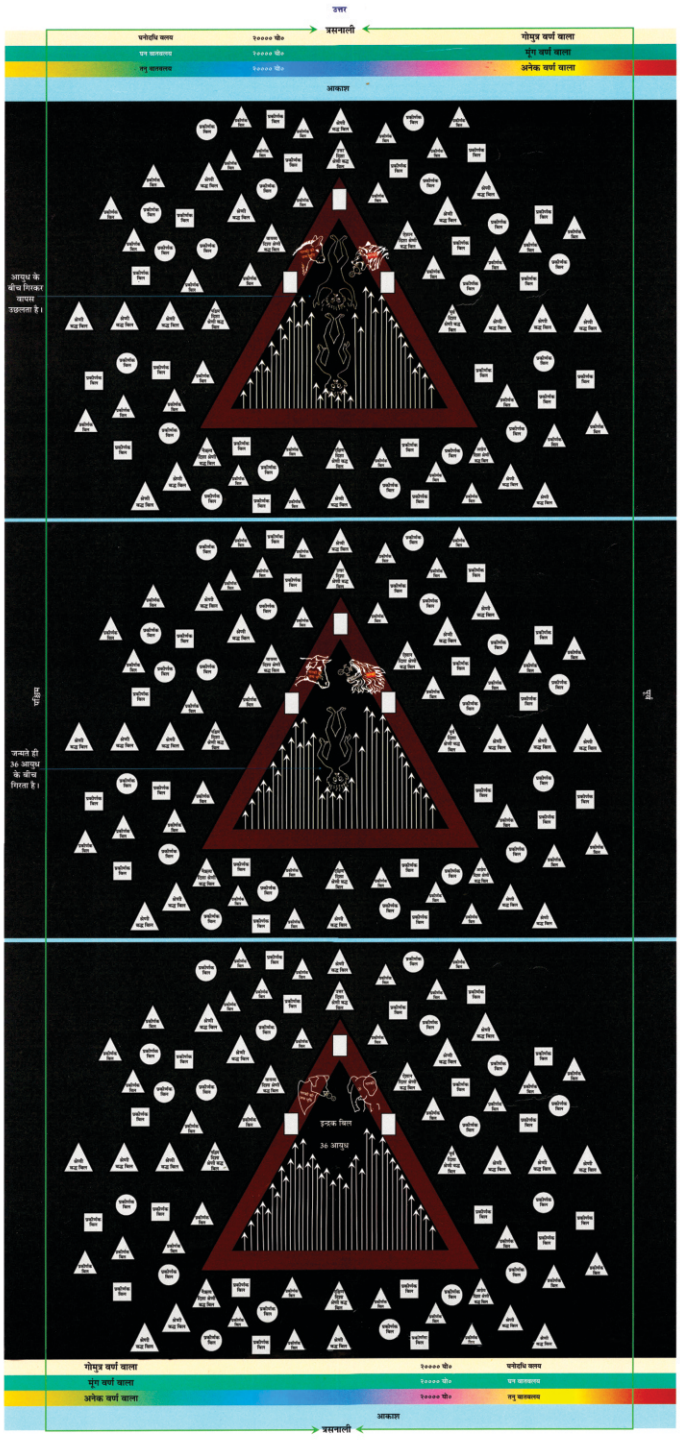
12 यो० का अन्तराल +8 यो० ईषत्प्राग्भार पृथिवी + 4000 धनुष यानि 2 कोश घनोदधिवलय +2000 धनुष (1 कोश) घनवातवलय +1575 धनुष (1 कोश से 425 धनुष कम) तनु वातवलय

2) आठवीं पृथिवी (इषत्प्राग्भार) से 7050 धनुष ऊपर जाकर सिद्धलोक है (4000 धनुष घनोदधिवलय +2000 धनुष घनवातवलय +1575 तनुवातवलय में से 525 धनुष सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना घटाएं)।

नोटः- ईषत्प्राग्भार पृथिवी के नीचे तीन वातवलय 20000 यो० बाहुल्य (तिलोयपण्णत्ति भाग 1 - विशुद्धमति माताजी की टीका - पेज नं० 113, चित्र पेज नं० 115, गाथा संख्या - 273)।

लोक के तल भाग एवं 1 राजू ऊँचाई तक तीनों वातवलय 20000 यो० बाहुल्य।

तमः प्रभा पृथ्वी-3 पटल



वर्णन — तमः प्रभा पृथिवी (मघवी नरक)

1) 6 ठ्ठी भूमि - तमः प्रभा

2) 6 ठ्ठा नरक - मघवी (गोत्र नाम)

3) मोटाई - 16000 योजन

4) पटल - 3

5) इन्द्रक बिल - 3 (प्रत्येक पटल में एक-एक बीच में)

6) श्रेणीबद्ध बिल - इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं व विदिशाओं में जो बिल पंक्ति रूप से स्थित हैं उन्हें श्रेणीबद्ध बिल कहते हैं।

7) श्रेणीबद्ध बिल की संख्या - 60 है। इनका विस्तार असंख्यात योजन है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य व ऐशान दिशा - विदिशा में

8) प्रकीर्णक बिल - 6 ठ्ठी पृथिवी में = 99,932 है। इन बिलों में कुछ संख्यात योजन, कुछ असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। श्रेणीबद्ध बिलों के बीच में बिखरे हुए पुष्पों के समान यत्र-तत्र स्थित हैं उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं।

9) कुल बिलों की संख्या = 99,995 है। इसमें = 3 इन्द्रक बिल 60 श्रेणीबद्ध बिल तथा 19,996 प्रकीर्णक बिलों का विस्तार - संख्यात योजन है। तथा 79,636 प्रकीर्णक बिलों का विस्तार असंख्यात योजन है।

10) इन्द्रक बिलों का नाम - हिम, वर्दल और लल्लक

11) तीनों इन्द्रक बिलों का विस्तार 3,75,000; 2,83,333 और 191,666 योजन है

12) आयु उत्कृष्ट - 22 सागर

13) आयु जघन्य - 17 सागर

14) वेदना - शीत

15) उछलन - 250 योजन

16) उत्पद्यमान जीव - स्त्री यहाँ तक जा सकती है।

17) उत्कृष्ट अग्रिम जीव - देशव्रती हो सकते हैं।

18) उपपाद अन्तर - 4 मास

19) लगातार उत्पत्ति - 3 बार

20) सहंनन - शुरू के दो

21) अवधिज्ञान - 1 कोश

22) गुणस्थान - सब नारकी जीवों के मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि ये चार गुणस्थान हो सकते हैं।

23) नरक से निकल कर जीव नारायण (प्रतिनारायण) बलभद्र और चक्रवर्ती कदापि नहीं होते। तीसरी पृथिवी पर्यन्त के नारकी वहाँ से निकलकर तीर्थंकर हो सकते हैं।

24) छट्ठी पृथिवी की जन्म भूमि का आकार श्रृगाल, अज, रीछ, केचुर, शृणक आदि के सदृश होता है।

25) नारकी जीव पाप से नरक बिल में उत्पन्न होकर और एक मुहूर्त मात्र काल में छह पर्याप्तियों को प्राप्त कर आकस्मिक भय से युक्त होता है। भय से काँपता हुआ बड़े कष्ट से चलने के लिए प्रस्तुत होकर छत्तीस आयुधों के मध्य में गिरकर वहाँ से उछलता है।

26) आहार - नरकों में बकरी, हाथी, भैंस, घोड़ा, गधा, ऊँट, बिल्ली और भेड़े आदि के सड़े हुए शरीरों की गंध वाला आहार होता है। छट्ठी पृथिवी या छट्ठी नरक की मिट्टी यहाँ आ जाय तो 31/2 कोस के जीव मर सकते हैं।

27) उत्सेध - हिम इन्द्रक में 166 धनुष 2 हाथ, 16 अंगुल है

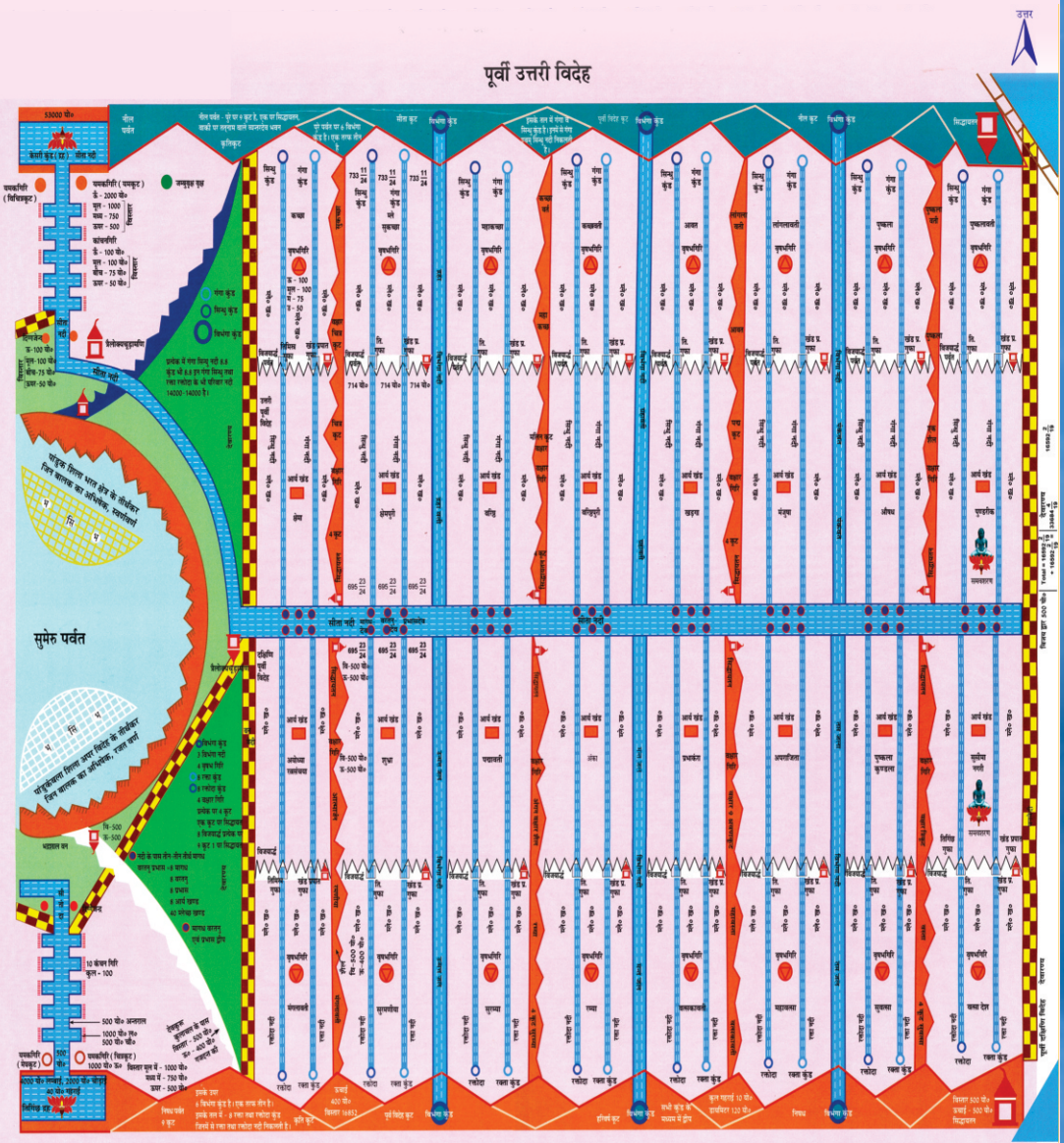
वर्दल इन्द्रक में 208 धनुष 32 अंगुल है

लल्लक इन्द्रक में 250 धनुष है

28) संख्यात यो० विस्तार वाले नरक बिल में नियम से संख्यात नारकी जीव तथा असंख्यात यो० विस्तार वाले बिल में असंख्यात ही नारकी जीव हैं।

नरकों के इन्द्रक बिल तिकोने तथा तीन द्वारों से युक्त होते हैं (तत्त्वार्थ मंजुषा 1/370)। नरकों के बिल वज्र के समान सघन हैं ऐसे गोल, तिकोन, चौकोर आदि अनेक प्रकार के आकार वाले होते हैं। दीवारें वज्र के समान कठोर एवं अशुभ है। (त्रिलोक सार पी-182)

पूर्वी दोनों विदेह



सीता नदी के द्वारा पूर्वी विदेह दो भाग में विभाजित

(1) एक पूर्वी उत्तरी विदेह;

(2) दूसरा पूर्वी दक्षिणी विदेह;

- प्रत्येक विदेह को वनवेदी - 2, वक्षारगिरि - 4 तथा विभंगा नदी - 3, ये सब के द्वारा 8 विदेह (क्षेत्र या जनपद) में विभाजित होते हैं;
- अब पुनः 8 जनपद या (विदेह) को विजयार्द्ध पर्वत बीचों-बीच से दो वगवर भागों में बाँटता है;
- पूर्वी दक्षिणी विदेह के प्रत्येक क्षेत्र में रक्ता रक्तोदा नदी जो निषध पर्वत के तल में स्थित रक्ता रक्तोदा कुंड से निकलकर विजयार्द्ध पर्वत की खण्ड प्रपात एवं तमिस्र गुफा से निकलकर सीता नदी में मिलती है। इस तरह एक क्षेत्र के छः भाग हो जाते हैं। जिसमें 5 म्लेच्छ खंड तथा सीता नदी के तट वाला आर्य खंड कहलाता है;
- ठीक इसी प्रकार पूर्वी उत्तरी विदेह में गंगा सिन्धु नदी प्रत्येक क्षेत्र को छः भागों में बाँटती है;
- दो विदेह जिस प्रकार पूर्व दिशा में हैं ठीक वैसे ही 2 विदेह सुमेरु पर्वत के पश्चिम में हैं। चारों विदेह - दक्षिण दिशा में निषध पर्वत और उत्तर में नील पर्वत से घिरा है;
- अब पुनः 8 जनपद (विदेह) को विजयार्द्ध पर्वत बीचों-बीच से दो वगवर भागों में बाँटता है;
- प्रत्येक विदेह से - (क) 3-3 विभंगा कुन्ड जो कुलाचल निषध व नील पर्वत के उपर स्थित हैं इनमें से प्रत्येक से एक-एक विभंगा नदी निकलती है; (ख) 3-3 विभंगा नदी; (ग) 2-2 वन वेदी; (घ) 4-4 वक्षार गिरि, जिनपर 4-4 कूट एक-एक पर सिद्धायतन शेष कूट पर तत् नाम सम्बन्धी व्यन्तर देव व देवियों का निवास है; (छ) 8-8 वृषभगिरि आर्य खण्ड के ठीक उपर वाले म्लेच्छ खंड के बीचों-बीच वृषभ गिरि जिसपर उस क्षेत्र के चक्रवर्ती छः खंड को जीतकर अपनी प्रशस्ति लिखते हैं; (च) 8-8 रक्ता रक्तोदा कुंड तथा 8-8 गंगा व सिन्धु कुंड, प्रत्येक कुंड में एक-एक द्वीप है, द्वीप में एक-एक शैल है। शैल पर जिन प्रतिमा है। जिसका अभिषेक करती हुई नदियाँ जाती हैं। (छ) 8-8 आर्य खंड तथा 40-40 म्लेच्छ खंड, यहाँ आर्य खंड में हमेशा चतुर्थ काल रहता है, शाश्वत कर्मभूमि है तथा सभी म्लेच्छ खंडो में हमेशा ही चतुर्थकाल रहता है। पर यहाँ के प्राणी यहाँ रहते हुए सम्यग्दर्शन नहीं पाते ना ही मोक्ष; (ज) 8-8 विजयार्द्ध, प्रत्येक पर नौ-नौ कूट, एक-एक पर सिद्धायतन बाकी पर व्यंतर देवों का निवास; (झ) 8-8 तमिस्र तथा खंड प्रपात गुफा विजयार्द्ध पर्वत में जिससे गंगा सिन्धु तथा रक्ता रक्तोदा निकल कर सीता नदी में मिलती है;

एक महा विदेह में —

(1) चार विदेह;

(2) एक मेरु;

(3) 4 गजदन्त पर्वत, जो एक तरफ सुमेरु पर्वत पर दूसरी ओर निषध व नील कुलाचल को छूते हैं, प्रत्येक पर दक्षिणा दिशा से 7,9, 7,9 कूट हैं। प्रत्येक के एक कूट पर सिद्धायतन बाकि पर व्यन्तर देव;

(4) 8 वन वेदी;

(5) 16 वक्षार गिरि;

(6) 12 विभंगा नदी, 12 विभंगा कुन्ड;

(7) 16-16 रक्ता रक्तोदा नदी एवं कुंड तथा 16-16 गंगा सिन्धु कुंड एवं नदी;

(8) 32 विजयार्द्ध;

(9) 32 आर्य खंड;

(10) 160 म्लेच्छ खंड;

(11) 32 वृषभ गिरि;

(12) 32 तिमिस्र तथा 32 खंड प्रपात गुफा;

(13) 32 वरतनु 32 मागध 32 प्रभास देवों के नाम वाले तीर्थस्थान है। सीता सीतोदा नदी के;

(14) 192 कुल क्षेत्र म्लेच्छ खंड और आर्य खंड मिलाकर;

(15) 2 उत्तम भोग भूमि, देव कुरू उत्तर कुरु;

(16) 2 अनादि निधन पृथिवी कायिकवृक्ष-शाल्मली एवम् जम्बू वृक्ष;

(17) सीता नदी केसरी द्रह के दक्षिण द्वार से निकलती है पूर्व पश्चिम की ओर 5 द्रहों के मध्य से निकलकर माल्यवान गजदन्त की गुफा से होकर सुमेरु पर्वत के दो कोस पहले पूर्व की ओर से अर्द्ध प्रक्रिमा करती हुई पूर्व विदेह के मध्य से बहती है। उसी प्रकार सीतोदा नदी—निषिध द्रह से निकल कर पश्चिम विदेह के मध्य बहती है;

(18) द्रह - 10, किसी मान्यता से 5-5 सीता सीतोदा नदी के तरफ दोनों तटों पर भी अर्थात - 20;

(19) कांचन गिरि - द्रह के दोनों किनारे पर 10-10 अर्थात - 200;

(20) यमक गिरि - 4 सीता सीतोदा के तट पर देव कुरू व उत्तर कुरू में 2-2;

(21) दिग्गजेन्द्र - 8, मेरु के भद्रशाल वन में सीता और सीतोदा नदियों के उभय तटों पर 2-2;

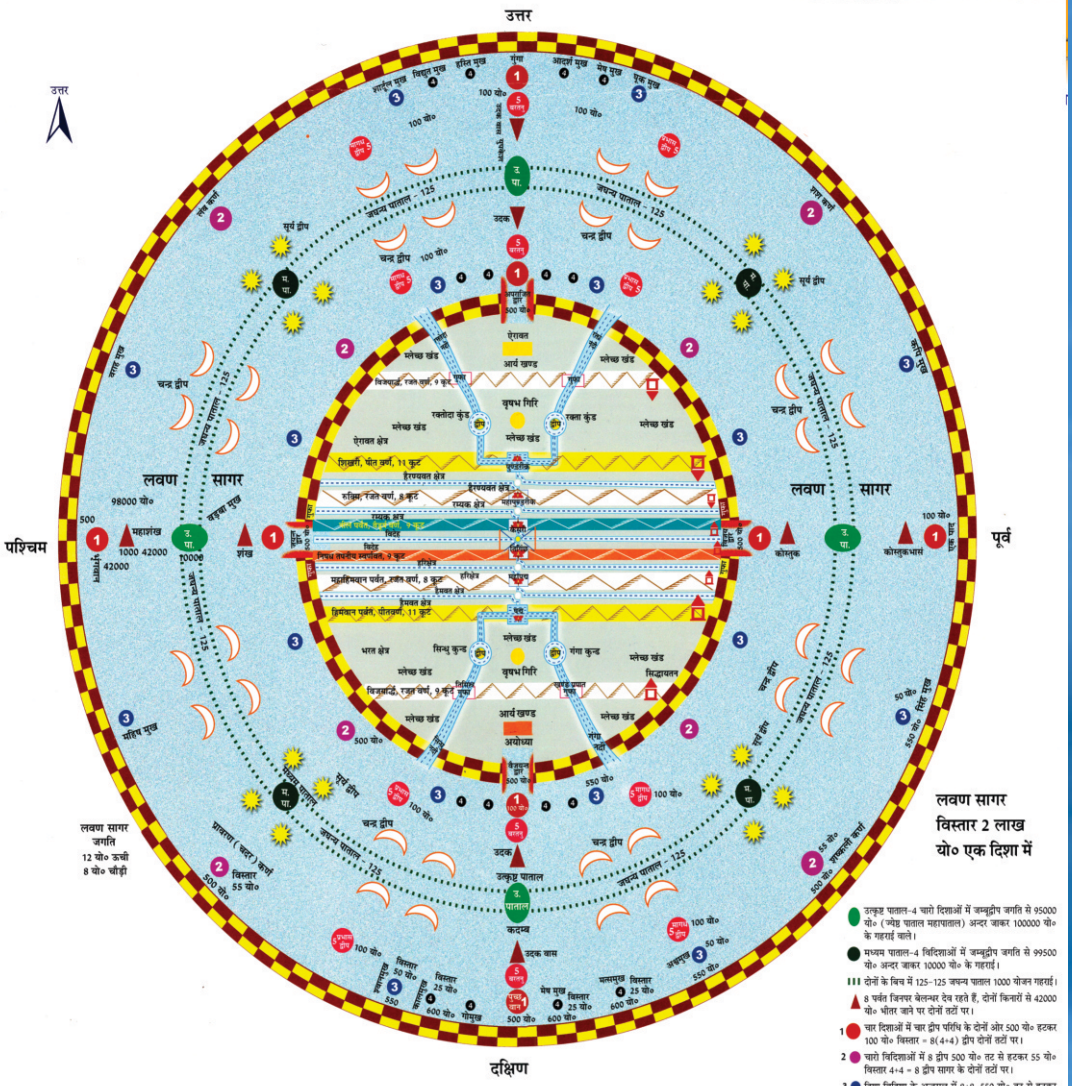
(22) 32 राजधानी - एक कर्मभूमि में एक;

(23) 3520 विद्याधरों की नगरियां - प्रत्येक विजयार्द्ध के उत्तर व दक्षिण दोनों श्रेणियों में 55-55 नगर हैं।

(24) 4 त्रैलोक्य चुड़ामणि चैत्यालय सीता सीतोदा के तटों पर।

(25) पुण्डरीक तथा सुसीमानगरी में सीमन्धर तथा युगमन्धर अर्हंत भगवान का समवशरण।

लवण सागर



- उत्कृष्ट पाताल-4 चारो दिशाओं में जम्बूद्वीप जगति से 95000 यो० (ज्येष्ठ पाताल महापाताल) अन्दर जाकर 100000 यो० के गहराई वाले।
- मध्यम पाताल-4 विदिशाओं में जम्बूद्वीप जगति से 99500 यो० अन्दर जाकर 10000 यो० के गहराई।
- दोनों के बिच में 125-125 जघन्य पाताल 1000 योजन गहराई।
- 8 पर्वत विनयर बेलन्धर देव रहते हैं, दोनों किनारों से 42000 यो० भीतर जाने पर दोनों तटों पर।
1. चार दिशाओं में चार द्वीप परिधि के दोनों ओर 500 यो० हटकर 100 यो० विस्तार = 8(4+4) द्वीप दोनों तटों पर।
2. चारो विदिशाओं में 8 द्वीप 500 यो० तट से हटकर 55 यो० विस्तार 4+4 = 8 द्वीप सागर के दोनों तटों पर।
3. दिशा विदिशा के अनगत में 8+8, 550 यो० तट से हटकर 50 यो० विस्तार वाले 16 द्वीप (सागर के दोनों तट पर)।
4. विजयार्द्ध हिमवान व शिखरी पर्वतों के प्रणिधि भाग में 8+4+4 = 16 द्वीप 600 यो० हटकर, विस्तार 25 यो० तथा सागर के दोनों तटों पर।
5. मागध प्रभास वरतनु द्वीप संख्या = 12 (100 यो० विस्तार वाले)। 32 चन्द्र द्वीप अन्तर दिशाओं में अर्थात दिशा के अगल बगल। 16 सूर्य द्वीप विदिशाओं में 42000 यो० भीतर जाने पर 42000 यो० विस्तार वाले ये चन्द्र व सूर्य द्वीप है।

पाताल विशेष	विस्तार योजन में			गहराई योजन में	दीवारों की मोटाई योजन में
	मूल में योजन में	मध्य में योजन में	ऊपर योजन में		
ज्येष्ठ	10,000	100,000	10,000	100,000	500
मध्यम	1000	10,000	1000	10,000	50
जघन्य	100	1000	100	1000	5

लवण सागर में कुमानुष द्वीप 48 = 8+8+16+16
कालोदधि में भी = 48 कुमानुष द्वीप

नोट

(1) जैसी-जैसी आकृतिवाले जीव द्वीपों में रहते हैं वो द्वीपों के पास में लिखा है।

(2) सूर्य द्वीप व चन्द्र द्वीप को कोई आचार्य मानते हैं कोई नहीं।

तीनों प्रकार के पातालों की ऊँचाई तीन बराबर भागों में विभक्त हैं। तहाँ निचले भाग में वायु, ऊपरी भाग में जल और मध्य भाग में यथायोग्य रूप से जल व वायु दोनों रहते हैं।

मध्य भाग में जल व वायु की हानि वृद्धि होती रहती है। पूर्णिमा के दिन पूरे भाग में केवल वायु ही तथा अमावस्या को केवल जल ही रहता है। पातालों में जल व वायु की इस वृद्धि का कारण नीचे रहने वाले भवनवासी देवों का उच्छवास व नि:श्वास है।

100,000 योजन गहरे महापाताल (ज्येष्ठ पाताल) पहले नरक के सीमन्तक नाम वाले इन्द्रक बिल के उपर संलग्न है।

96 कुभोग भूमि या कुमानुष द्वीप - इनमें जन्म लेने वाले मनुष्य कुत्सित रूप वाले होते हैं। ये मनुष्य युगल ही जन्म लेते हैं युगल ही मरते हैं। शरीर सम्बन्धी कोई कष्ट नहीं होता है। कोई वहाँ की मधुर मिट्टी का भक्षण करते हैं तथा अन्य मनुष्य वहाँ के वृक्षों के फल फूल आदि का भक्षण करते हैं। उनका कुरूप होना कुपात्र दान आदि का फल है। आयु एक पल्य, ऊँचाई 2 हजार धनुष होती है। सभी कुमानुष मनुष्य आयु का अनुभव करते हुए भी पशुओं की भाँति आचरण करते हैं। अपनी आयु पर्यन्त उत्रत भोगों को भोगकर वे भवनत्रिक देवों में उत्पन्न होते हैं। इनमें से सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेने वाले मनुष्य, तिर्यञ्च सौधर्म-ईशान में उत्पन्न होते हैं।

विशेष कथन— अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ कदाचित् सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु कर्मभूमि के म्लेच्छ खंडो में रहने वाले मनुष्य वहाँ नियमत: मिथ्या दृष्टि ही होते हैं।

भाग-2

चरणानुयोग

अध्याय-12

आचारांग और मुनि चारित्र

(अट्ठाईस मूलगुण व गुप्ति वर्णन)

प्र.1275 जिनागम में चरणानुयोग का लक्षण किस रूप है?

उत्तर जिनागम में गृहस्थों और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और उसकी रक्षामय आचारांग रूप चरणानुयोग कहा गया है।

प्र.1276 श्रुत स्कन्ध का आधारभूत आचारांग कितने पद प्रमाण है?

उत्तर श्रुत स्कन्ध का आधारभूत आचारांग अठारह हजार पद प्रमाण है।

प्र.1277 आचारांग कौन-से प्रमुख अधिकारों से निबद्ध और अर्थों से गम्भीर है?

उत्तर आचारांग; मूलगुण, प्रत्याख्यान, संस्तर, स्तवाराधना, समयाचार, पंचाचार, पिंडशुद्धि, षडावश्यक, द्वादशानुप्रेक्षा, अनगार-भावना, समयसार, शीलगुण-प्रस्तार और पर्याप्ति आदि अधिकार से निबद्ध होने से महान् अर्थों से गम्भीर है।

प्र.1278 आचारांग और किन विशेषों से सहित है?

उत्तर आचारांग लक्षण-व्याकरण, शास्त्र से सिद्ध; पद, वाक्य और वर्णों से सहित है। (आ.अनु. अध्याय-11 पृ.159)

प्र.1279 आचारांग किन महानात्मा द्वारा उपदिष्ट है?

उत्तर घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए केवलज्ञान के द्वारा जिन्होंने अशेष गुणों और पर्यायों से खचित छह द्रव्य और नव पदार्थों को जान लिया है ऐसे जिनेन्द्र देव तीर्थंकर के द्वारा उपदिष्ट है।

प्र.1280 आचारांग किन महान आत्मा द्वारा रचित है?

उत्तर आचारांग बारह प्रकार के तपों के अनुष्ठान से उत्पन्न हुई अनेक प्रकार की ऋद्धियों से समन्वित गणधर देव के द्वारा रचित है।

प्र.1281 आचारांग किस आचार्य परम्परा से चला आ रहा है?

उत्तर जो मूलगुणों और उत्तरगुणों के स्वरूप भेद, उपाय, साधन, सहाय और फल के निरूपण करने में कुशल हैं ऐसे महान आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा है ऐसा यह आचारांग नाम का पहला अंग है। (भेद उपाय आदि के लक्षण आगे वर्णित हैं।)

प्र.1282 मुनियों के मूलगुण किन्हें कहते हैं?

उत्तर तपादिक उत्तरगुणों के आधारभूत महाव्रतादिक रूप प्रधान अनुष्ठान को मुनियों के मूलगुण कहते हैं।

प्र.1283 मूलगुणों से विशुद्ध संयत कौन होते हैं?

उत्तर जो सं-सम्यक् प्रकार से यत-उपरत हो चुके हैं अर्थात् पाप-क्रियाओं से निवृत्त हो चुके हैं वे संयत कहलाते हैं। प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली और अयोगकेवली इस प्रकार छट्ठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक के सभी मुनि संयत कहलाते हैं जो कि आदि में 7 और अन्त में 8 तथा मध्य में छह बार 9 अंक संख्या रखने से तीन कम नौ करोड़ (8,99,99,997) होते हैं।

प्र.1284 मूलगुणों के आचरण से संयत जीव इहलोक और परलोक में कौन-से फल को प्राप्त करते हैं?

उत्तर मूलगुणों का आचरण करते हुए संयत जीव इस लोक में पूजा, सर्वजन से मान्यता, गुरुता (बड़प्पन) और सभी जीवों से मैत्री भाव आदि को प्राप्त करते हैं तथा इन्हीं मूलगुणों के धारण व पालन से संयत जीव परलोक में देवों के ऐश्वर्य, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि के पद और सभी जनों में मनोज्ञता-प्रियता आदि प्राप्त करते हैं तथा अंत में सिद्धत्व को भी अवश्य प्राप्त कर लेते हैं।

प्र.1285 साधक साधु के लिए साध्य क्या है?

उत्तर साधक-साधु के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय साध्य हैं या मूलगुणों द्वारा आत्मा का शुद्धस्वरूप साध्य है।

प्र.1286 साध्य की प्राप्ति के लिए उपाय या साधन क्या हैं?

उत्तर साध्य की प्राप्ति के लिए साधन यम और नियम रूप परिणाम हैं।

प्र.1287 यम और नियम किसे कहते हैं?

उत्तर शाश्वतिक यावज्जीवन के लिए होने वाला यम कहलाता है। और अल्पकालिक अवधि रूप होने वाला नियम कहलाता है।

प्र.1288 यम रूप परिणाम कौन-से कहलाते हैं?

उत्तर महाव्रत आदि आजीवन के लिए धारण करने योग्य होने से यम रूप कहलाते हैं।

प्र.1289 नियम रूप परिणाम कौन-से कहलाते हैं?

उत्तर सामायिक, प्रतिक्रमण आदि अल्पकालिक होने से या रसादिक का त्याग जो अल्पकालावधि के लिए होने से नियम कहलाते हैं।

प्र.1290 मुनियों के मूलगुण और उत्तरगुण कौन-से कितनी संख्या में होते हैं?

उत्तर मुनियों के महाव्रत और समिति आदि मूलगुण अट्ठाईस होते हैं तथा बारह तप और बाईस परीषह ये उत्तर गुण चौंतीस होते हैं। (मू.चा.टी.पृ.5)

प्र.1291 मुनि किन्हें कहते हैं?

उत्तर 'मौनं धारयतीति मुनिः' इस परिभाषा से जो मौन धारण करते हैं अर्थात् अपने वचनादिक से हिंसा,

झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पापों को नहीं करते और पाप वचनों से मौन धारण करते हैं वे मुनि कहलाते हैं।

प्र.1292 जिनवर किन्हें कहते हैं?

उत्तर कर्म शत्रु को जो जीतते हैं वे 'जिन कहलाते हैं'। उनमें वर अर्थात् श्रेष्ठ हैं जो; वे जिनवर हैं। 'कर्मारातीन् जयन्तीति जिनास्तेषांवरा श्रेष्ठाः जिनवराः' (मू.ला., पृ.6)

प्र.1293 जिनवर ने यतियों के अट्ठाईस मूलगुण किस तरह के बतलाये हैं?

उत्तर पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों का निरोध, छह आवश्यक, लोंच, अचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तधावन, स्थितिभोजन, और एक भक्त ये अट्ठाईस मूलगुण जिनेन्द्र देव या जिनवरों ने यतियों-मुनियों के लिए बतलाये हैं।

प्र.1294 महाव्रत इतने महान क्यों कहलाते हैं?

उत्तर ये महाव्रत प्राणियों की हिंसा की निवृत्ति में कारणभूत हैं और मोक्ष की प्राप्ति के लिए निमित्तभूत हैं तथा जिनका अनुष्ठान महान पुरुषों द्वारा किया जाता है अतः वे महान कहलाते हैं।

प्र.1295 समिति किसे कहते हैं?

उत्तर सम्यक् अयन अर्थात् प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। सम्यक् अर्थात् शास्त्र में निरूपित क्रम से गमन आदि क्रियाओं में प्रवृत्ति करना समितियाँ कही जाती हैं।

प्र.1296 पंच महाव्रत और समितियाँ किसके समान हैं?

उत्तर पंच महाव्रत मुख्य फसल के समान तथा पाँच समितियाँ व्रत की रक्षा हेतु बाड़ स्वरूप होती हैं।

प्र.1297 पांच इन्द्रिय निरोध किस तरह घटित होता है?

उत्तर पांच इन्द्रियों की विषय-प्रवृत्ति नहीं करना रोध कहलाता है। सम्यक् ध्यान के प्रवेश में प्रवृत्ति करना अर्थात् धर्म, शुक्ल ध्यान में इन्द्रियों को प्रविष्ट कराना यह इन्द्रिय निरोध कहलाता है।

प्र.1298 आवश्यक का लक्षण क्या है?

उत्तर अवश्य करने योग्य कार्य को आवश्यक कहते हैं। आवश्यक का दूसरा नाम निश्चय-क्रिया भी है। अर्थात् सर्वकर्म के निर्मूलन या क्षय करने में समर्थ नियम विशेष को आवश्यक कहते हैं।

प्र.1299 केशलोंच करने का अर्थ क्या है?

उत्तर हाथों से मस्तक, दाढ़ी और मूँछ के बालों का उखाड़ना लोंच कहलाता है।

प्र.1300 अचेलकत्व की परिभाषा क्या है?

उत्तर चेल-यह शब्द उपलक्षण मात्र है, इससे श्रमण अवस्था के अयोग्य सम्पूर्ण परिग्रह को चेल शब्द से कहा जाता है। नहीं है चेल जिनके, वे अचेलक हैं, अचेलक का भाव अचेलकत्व है अर्थात् सम्पूर्ण वस्त्र, आभरण आदि का परित्याग करना अचेलक्य मूलगुण कहलाता है।

प्र.1301 अस्नान गुण से क्या तात्पर्य है?

उत्तर जल का सिंचन, उबटन, तैलमर्दन, अभ्यंगस्नान का त्याग अस्नान मूलगुण कहलाता है।

प्र.1302 क्षिति (भूमि) शयन मूलगुण का पालन किस तरह किया जाता है?

उत्तर पृथ्वी पर पाषाण-शिला एवं तृण, फलक (पाटे) आदि पर शयन रूप क्षिति शयन मूलगुण का पालन किया जाता है।

प्र.1303 स्थाण्डिलशायी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर खुले आकाश (स्थान) पर सोने रूप स्थाण्डिलशायी गुण कहलाता है।

प्र.1304 अदन्तधावन गुण किसे कहते हैं?

उत्तर दन्त घर्षण नहीं करना अदन्त धावन है अर्थात् तांबूल, दन्तकाष्ठ (दातोन) आदि का त्याग करना अदन्तधावन मूलगुण है।

प्र.1305 स्थिति भोजन कैसे किया जाता है?

उत्तर पैरों में चार अंगुल अन्तराल से खड़े होकर भोजन करना स्थितिभोजन कहलाता है।

प्र.1306 स्थिति भोजन मूलगुण से जीवन के अंत में कौन-सा शुभ संकेत प्राप्त होता है?

उत्तर स्थिति भोजन से जब पैरों की शक्ति कमजोर होने लग जाती है तब सल्लेखना विधि प्रारम्भ करने की शिक्षा मिलती है क्योंकि मुनि का भोजन (आहार) कदापि बैठकर या लेटकर नहीं हुआ करता है।

प्र.1307 एकभक्त मूलगुण का अर्थ क्या है?

उत्तर सूर्य प्रकाश से आलोकित-दिन में एक ही बार आहार (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय) का ग्रहण करना एक भक्त मूलगुण कहलाता है।

प्र.1308 आचार ग्रन्थ रचना रूप प्रवृत्ति कितने प्रकार से की जाती है?

उत्तर आचार ग्रन्थ (जिसमें मूलगुणादिक का वर्णन हो ऐसा मूलाचार) की रचना रूप प्रवृत्ति तीन प्रकार से होती है- उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा।

1. नाम रूप से मूलगुणों का कथन करना उद्देश्य कहलाता है।
2. कथित पदार्थों के स्वरूप की व्यवस्था करने वाला धर्म लक्षण कहलाता है।
3. जिनका लक्षण किया गया है ऐसे पदार्थों का जैसा- का तैसा लक्षण है या नहीं, इस प्रकार से प्रमाणों के द्वारा अर्थ का निर्णय (निश्चय) करना परीक्षा कहलाता है।

प्र.1309 ग्रन्थ व्याख्या के तीन प्रकार कौन-से हैं?

उत्तर ग्रन्थ व्याख्या संग्रह, विभाग और विस्तार रूप से तीन प्रकार की मानी गई है। जिसे सूत्र, वृत्ति और वार्तिक स्वरूप से अथवा सूत्र, प्रतिसूत्र और विभाषा सूत्र के स्वरूप से भी व्याख्यायित किया जाता है। (विशेष देखें पृ. 34 प्र.1523)

प्र.1310 हिंसा का लक्षण क्या है?

उत्तर प्रमत्त-योग से प्राणों का व्यपरोपण-वियोग करना हिंसा है।

प्र.1311 प्रमत्त-योग किसे कहते हैं?

उत्तर कषाय सहित अवस्था को प्रमाद कहते हैं। (कषाय वह जो बुद्धिपूर्वक या अबुद्धि पूर्वक अथवा व्यक्ताव्यक्त रूप निद्रादिक के समय में भी होती हो उसे प्रमाद में ग्रहण किया जा सकता है।)

प्र.1312 अहिंसा महाव्रत का लक्षण क्या है?

उत्तर प्रमत्त योग से होने वाली हिंसा का त्रियोग से परिहार करना- सभी जीवों के ऊपर दया करना या दया का होना अहिंसा महाव्रत है।

प्र.1313 असत्य का लक्षण क्या है?

उत्तर जो सत् अर्थात् प्रशस्त रूप नहीं है वह अप्रशस्त कथन असत् या प्राणी पीड़ा जनक अनृत वचन असत्य कहलाता है।

प्र.1314 सत्य महाव्रत का लक्षण क्या है?

उत्तर सत् शब्द प्रशंसावाची है प्रशस्त शब्द सत् का पर्यायवाची है। ऋत सत्य को कहते हैं। जो ऋत नहीं वह अनृत है और जो पीड़ा जनक होने से अप्रशस्त हैं। वे चाहे विद्यमान अर्थ विषयक हों चाहे अविद्यमान अर्थ विषयक हों, अप्रशस्त ही कहे जाते हैं। ऐसे असत्य वचनों का त्रियोग से त्याग करना ही सत्य महाव्रत है।

प्र.1315 चौर्य या स्तेय का लक्षण क्या है?

उत्तर रखी हुई, गिरी हुई, भूली हुई और बिना पूछे ग्रहण की हुई पर वस्तु अदत्त शब्द से कही जाती है, ऐसी अदत्त वस्तु का आदान अदत्तादान अर्थात् चोरी कहलाता है।

प्र.1316 अचौर्य महाव्रत का लक्षण क्या है?

उत्तर सचित्ताचित्त सूक्ष्मादिक या उपकरणादिक अदत्त वस्तु के ग्रहण का त्रियोगपूर्वक त्याग अचौर्य महाव्रत कहलाता है।

प्र.1317 अब्रह्म या मैथुन का लक्षण क्या है?

उत्तर चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से राग परिणाम आविष्ट हुए स्त्री और पुरुष का परस्पर में स्पर्श के प्रति जो इच्छा है उसका नाम मिथुन और मिथुन की क्रिया को मैथुन अब्रह्म कहते हैं।

प्र.1318 ब्रह्मचर्य महाव्रत का लक्षण क्या है?

उत्तर ब्रह्म शब्द का अर्थ जीव होता है। उस आत्मवान्-जितेन्द्रिय जीव का चेतनाचेतन-सचित्ताचित्त स्त्री संभोग के त्रियोग से अभाव रूप वृत्ति का नाम चर्या है। इस प्रकार की चर्या; जो मैथुन का त्याग करना है वह ब्रह्मचर्य महाव्रत कहलाता है।

प्र.1319 परिग्रह का लक्षण क्या है?

उत्तर सर्व ओर से पर पदार्थ में आसक्ति का नाम परिग्रह है। वह मूलरूप से बाह्य और अभ्यन्तर उपधि के भेद से दो प्रकार का है। उनमें बाह्य परिग्रह के दस भेद एवं अभ्यन्तर परिग्रह के चौदह भेद होते हैं।

बाह्य परिग्रह- क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य(चाँदी), सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य (वस्त्र) और भाण्ड (बर्तन) हैं।

अभ्यन्तर परिग्रह- मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद हैं।

प्र.1320 अपरिग्रह महाव्रत का लक्षण क्या है?

उत्तर बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह की विमुक्ति-त्याग करना संग-विमुक्ति है। अर्थात् श्रमण के अयोग्य सर्ववस्तु का त्याग करना और त्रियोग से परिग्रह में आसक्ति का अभाव होना परिग्रह त्याग रूप अपरिग्रह महाव्रत कहलाता है। (समिति आदि वर्णन देखिये जैनागम संस्कार, अ.11)

प्र.1321 सदाचार-प्रवृत्ति वाले आचार्य के वचन स्खलन में दोष का अभाव मानने पर क्या असत्य कहलाता है?

उत्तर सदाचारी आचार्य के द्वारा अन्यथा अर्थ कर देने पर भी दोष नहीं है अर्थात् यदि आचार्य सदाचार प्रवृत्ति वाले पाप भीरु हैं और कदाचित् अर्थ का वर्णन करते समय कुछ अन्यथा बोल जाते हैं या उनके वचन स्खलित हो जाते हैं तो उसे दोष रूप नहीं समझना चाहिए। अथवा आचार्यादि के वचन स्खलन में दोष को छोड़ कर अर्थात् दोष को ग्रहण न करके जो वचन बोलना है वह सत्यव्रत है। (मूलाचार गा.6, टीका-पृष्ठ 13)

प्र.1322 जीव निबद्ध, जीव अप्रतिबद्ध और जीव सम्भव परिग्रह कौन-से कहलाते हैं?

उत्तर 1. मिथ्यात्व, वेद, राग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ आदि अथवा दासी, दास, गो, अश्व आदि ये जीव निबद्ध अर्थात् जीव आश्रित परिग्रह हैं।

2. जीव से पृथग्भूत क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य आदि जीव से अप्रतिबद्ध, जीव से अनाश्रित, परिग्रह हैं।

3. जीवों से उत्पत्ति है जिनकी ऐसे मोती, शंख, सीप, चर्म, दाँत, कम्बल आदि अथवा श्रमणपने के अयोग्य क्रोध आदि परिग्रह जीव सम्भव परिग्रह कहलाते हैं।

प्र.1323 ईर्या समिति के अन्तर्गत जो मुनियों के गमन हेतु दिवस में प्रासुक मार्ग से गमन करना कहा गया है वहाँ प्रासुक मार्ग का अर्थ क्या है?

उत्तर 'प्रगता असवो यस्मिन्'- निकल गये हैं प्राणी जिसमें से उसे प्रासुक कहते हैं। ऐसा प्रासुक-निरवद्यमार्ग है। उस प्रासुक मार्ग से अर्थात् हाथी, गधा, ऊँट, गाय, भैंस और मनुष्यों के समुदाय (या वाहनादि) के गमन से उपमर्दित हुआ जो मार्ग है वह प्रासुक मार्ग कहलाता है।

प्र.1324 मुनि रूप के चार चिह्न (लिंग) कौन-से माने गये हैं?

उत्तर मुनि रूप के अचेलक्य (निर्वस्त्रता), केशलोंच, पिच्छिका ग्रहण और शरीर संस्कार रहितपना ये चार चिह्न (लिंग) होते हैं।

प्र.1325 जैन साधु, साध्वी स्व हस्त से केशलोंच क्यों करते हैं?

उत्तर जैन साधु, साध्वी दीनवृत्ति को दूर करने एवं स्वाभिमान और स्वावलम्बन पूर्ण जीवन जीने हेतु स्वहस्त से केशलोंच करते हैं तथा ऐसा करना निर्ममता (वैराग्य) का प्रतीक है।

प्र.1326 स्थिति भोजन मूलगुण में साधु किस तरह खड़े होकर आहार ग्रहण करते हैं?

उत्तर दीवाल आदि का सहारा न लेकर जीव-जन्तु से रहित तीन स्थान की भूमि देखकर समान पैर रखकर खड़े होकर दोनों हाथ की अंजुली बनाकर भोजन (आहार) करना स्थिति भोजन कहलाता है।

प्र.1327 स्थिति भोजन में दीवाल आदि का सहारा न लेने से तात्पर्य क्या है?

उत्तर स्थिति भोजन में दीवाल का भाग या खंभे आदि का सहारा न लेकर, पैरों में चार अंगुल प्रमाण का अन्तर रखकर खड़े होकर आहार लेते हैं, साधु न बैठकर आहार ले सकते हैं न लेटकर और न तिरछे आदि स्थित होकर आहार ले सकते हैं।

प्र.1328 साधु तीन स्थान की भूमि देखकर आहार ग्रहण करते हैं, इसका अर्थ क्या है?

उत्तर साधु; आहार के समय अपने पैर रखने के स्थान को, उच्छिष्ट (जूठन) गिरने के स्थान को और परोसने वाले (आहार देने वाले दाता) के स्थान को जीवों के गमनागमन या वध आदि से रहित-विशुद्ध देखकर आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.1329 साधु खड़े होकर अंजुली में आहार लेते हैं, इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर साधु खड़े होकर अंजुली-पुट में अर्थात् पाणिपुट या पाणी-पात्री हो अथवा कर-पात्र में आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.1330 साधु किस उद्देश्य से स्थिति भोजन का अनुष्ठान करते हैं?

उत्तर साधु यह विचार करते हैं कि जब तक मेरे हाथ पैर चलते हैं तब तक ही आहार ग्रहण करना योग्य है अन्यथा नहीं; ऐसा सूचित होते ही कि मेरा शरीर अब स्थिति भोजन करने में अशक्त हो रहा है तब वे सल्लेखना की साधना का उपक्रम प्रारम्भ कर दिया करते हैं। तथाहि वे साधु बैठकर दोनों हाथों से या बर्तन में लेकर के या अन्य के हाथ से मैं भोजन नहीं करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा के निर्वहन के लिए खड़े होकर आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.1331 साधु के आहार हेतु पाणिपात्र ही क्यों योग्य है बर्तन योग्य क्यों नहीं?

उत्तर साधु विचार करते हैं कि बर्तन रखने और शुद्ध करने की अपेक्षा अपना हस्त रूपी पाणिपात्र ही शुद्ध रहता है तथा अंतराय हो जाने पर पूरी भोजन से भरी हुई थाली को छोड़ना नहीं पड़ता है अन्यथा थाली

में खाते समय अंतराय हो जाने पर पूरी भोजन से भरी हुई थाली को छोड़ना पड़ेगा, इसमें दोष लगेगा। तथा इन्द्रिय संयम और प्राणी संयम का परिपालन करने के लिए भी साधु स्थिति भोजन के साथ पाणी पात्री हुआ करते हैं।

प्र.1332 एक भक्त (एकाशन) मूलगुण का पालन साधु किस तरह किया करते हैं?

उत्तर सम्पूर्ण अहोरात्र में दिन की दो बेलाओं में से किसी एक बेला में सूर्य उदय और अस्त के काल में से तीन-तीन घड़ी से रहित मध्य काल में एक, दो अथवा तीन मुहूर्त्तकाल तक आहार ग्रहण करना साधु का एक भक्त मूलगुण कहलाता है।

प्र.1333 एक भक्त मूलगुण में सूर्योदय और सूर्यास्त के काल में तीन-तीन घड़ी से रहित मध्यकाल ऐसा क्यों कहा है?

उत्तर प्रातःकालीन तीन घड़ी (घटिकाएँ) काल छोड़कर आहार ग्रहण करने में कुछ आवश्यक अभिप्राय रूप बिन्दु विचारणीय जानना चाहिए-

(1) रात्रिकालीन जीवों की उत्पत्ति सूर्योदय के वातावरण में पूर्ण रूपेण रुक जाती है।

(2) मुनियों की आवश्यक क्रियायें सम्पूर्ण हो जाती है।

(3) मुनिगण निहार इत्यादिक क्रियाओं से निवृत्त हो जाते हैं।

(4) श्रावकगण जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति आदि क्रियाओं से निवृत्त हो जाते हैं।

(5) श्रावकों द्वारा की जाने वाली रसोई से संबन्धी क्रिया पूर्ण हो जाती है।

इसी तरह सायंकाल में रात्रि कालीन तीन घड़ी पूर्व चर्या पूर्ण करने का अभिप्राय यह होता है कि-

(1) तीन घड़ी प्रारम्भ से ही वातावरण में रात्रिकालीन जीवों की उत्पत्ति आरम्भ हो जाती है।

(2) मुनिवर चर्या-उपरान्त स्व-गन्तव्य स्थल तक पहुँच सकते हैं।

(3) मुनिवर प्रतिक्रमण आदिक आवश्यक क्रियायें समय-पूर्वक पूर्ण कर सकते हैं।

(4) श्रावकगण भी अपनी आवश्यक क्रियायें समय पूर्वक सम्पूर्ण कर सकते हैं ।इत्यादि।

प्र.1334 मुनिराज एक, दो अथवा तीन मुहूर्त्त तक आहार ग्रहण करते हैं इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर मुनिराज के लिए स्वशक्ति- बल, क्षुधा और स्वास्थ इत्यादि की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता को ध्यान में रखते हुये यह एक, दो अथवा तीन मुहूर्त्त तक का काल आहार ग्रहण के योग्य बतलाया गया है।

प्र.1335 यह आहार ग्रहण का काल आहारचर्या को निकलने से लेकर ग्रहण किया गया है अथवा आहार को प्रारंभ करने से लेकर ग्रहण किया गया है?

उत्तर यह काल का परिमाण सिद्धभक्ति करने के अनन्तर आहार ग्रहण करने का है, न कि आहार के लिये भ्रमण करते हुये विधि न मिलने के पहले का भी है। अर्थात् यदि साधु आहार हेतु भ्रमण कर रहे हैं, तो उस समय का काल इसमें शामिल नहीं है।

प्र.1336 साधु को जो श्रावक उच्चासन के रूप में काष्ठ का आसन प्रदान करता है और साधु उस आसन को इस प्रकार मानकर कि यह काष्ठ का आसन इतना ऊँचा है; जिस पर से कोई मूषक (चूहा) आदि जन्तु भी छलांग लगाकर लाँघ सकते हैं तथा इस आसन के ऊपर खड़े होकर मुझे आहार लेने से कोई चींटी आदि जीवों से कोई अधिक बाधा या उद जीवों के दब जाने से हिंसादि दोष की बाधा तथा शीतादिक की बाधा भी नहीं होगी ऐसा जानकर वे साधु उस आसन पर खड़े होकर आहार ग्रहण कर सकते हैं, तो क्या दोष है?

उत्तर ऐसा करने में कोई दोष नहीं है। अर्थात् काष्ठ के आसन पर खड़े होकर आहार ग्रहण कर सकते हैं। और जो वर्तमान में प्रचलन में भी है।

प्र.1337 नियुक्त तप और गुप्तियाँ मूलगुणों में किस तरह गर्भित हैं?

उत्तर मुनियों के द्वारा नित्य पालन किये जाने वाले षडावश्यकों में जो सामायिक तथा कायोत्सर्ग रूप कृति-कर्मों में समता पूर्वक कायक्लेश, व्युत्सर्ग आदि किये जाते हैं उनमें ध्यान रूप मन, वचन और काय की स्थिरतामय गुप्तियाँ भी देखी जाती हैं अतः मूलगुणों में इनका पालन होना संभव है।

प्र.1338 नैमित्तिक रूप से तप और गुप्तियाँ उत्तर गुणों में किस तरह गर्भित होते हैं?

उत्तर यदा-कदा नैमित्तिक रूप से होने वाले उपवास और योगधारणादिक उत्तर गुणों में तप और गुप्तियों का अनुपालन होना बन जाता है। अतः नैमित्तिक रूप से तप और गुप्तियाँ उत्तर गुणों में गर्भित होना संभव है।



गम्भीरता और सीमित प्रवृत्ति बड़प्पन की पहचान है।

Maintaining a sense of seriousness and limiting one's worldly activities are the true signs of a great soul.

•••

शील रूपी घृत की रक्षा हेतु परस्त्री / परपुरुष के संपर्क रूपी अग्नि से दूरी बनाकर रखें।

To protect the sacred nectar of your character, always keep a safe distance from the fire of contact with the opposite gender.

•••

दान पूजादि कार्यों में समुद्र के समान पुण्य मिलता है।

In performing holy activities like the worship of the Jina, one obtains a treasure of merit as vast as the ocean.

अध्याय-13

यतियों (मुनियों) के दीक्षादि छह काल आदि

(एवं भय, मद, संज्ञा, असादना, मरण, सल्लेखना, मन्त्रस्मरणादि।)

प्र.1339 यतियों के (मुनियों के) जीवन में होने वाले छः काल कौन से हैं?

उत्तर यतियों के जीवन के छः काल-1. दीक्षा काल 2. शिक्षा काल 3. गणपोषण काल 4. आत्मसंस्कार काल 5. सल्लेखना काल और 6. उत्तमार्थ ये छह काल होते हैं।

प्र.1340 यतियों का दीक्षा काल किस तरह का होता है?

उत्तर जब कोई आसन्न भव्य-जीव भेदाभेद रत्नत्रयात्मक निर्ग्रंथ आचार्य को प्राप्त करके आत्माराधना के अर्थ या प्रयोजन से बाह्याभ्यंतर परिग्रह का त्याग कर निर्ग्रंथ-दीक्षा ग्रहण करता है, वह मुनि का दीक्षा काल है।

प्र.1341 यतियों का शिक्षा-काल किस तरह का होता है?

उत्तर दीक्षा के अनन्तर निश्चय, व्यवहार रत्नत्रय तथा परमात्म-तत्त्व के परिज्ञान के लिये उसके प्रतिपादक अध्यात्म और आचार शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करना शिक्षा-काल है।

प्र.1342 यतियों का गणपोषण काल किस तरह का होता है?

उत्तर शिक्षा के पश्चात् निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग में स्थित होकर उसके जिज्ञासु भव्य प्राणी गणों को परमात्मोपदेश से पोषण करना गणपोषण काल है।

प्र.1343 यतियों का आत्मसंस्कार काल किस तरह का होता है?

उत्तर गणपोषण के अनंतर गण (स्वसंघ) को छोड़कर जब निज परमात्मा में शुद्ध संस्कार किया जाता है तब आत्मसंस्कार काल कहलाता है।

प्र.1344 यतियों का सल्लेखना काल किस तरह का होता है?

उत्तर तदनन्तर उसी आत्मसंस्कार के हेतु परमात्म पदार्थ में स्थित होकर रागादि विकल्पों के कृश करने रूप भाव-सल्लेखना तथा उसी के प्रयोजनार्थ कायक्लेश आदि के अनुष्ठान रूप द्रव्य-सल्लेखना है। और इन दोनों का आचरण करने का काल सल्लेखना काल कहलाता है।

प्र.1345 यतियों का उत्तमार्थ काल किस तरह का होता है?

उत्तर सल्लेखना धारण के पश्चात् बहिर् द्रव्यों में इच्छा का निरोध है लक्षण जिसका, ऐसे तपश्चरण रूप (ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप) निश्चय चतुर्विधाराधना; जो कि तद्भव मोक्षगामी ऐसे चरम देह अथवा उससे विपरीत जो भवान्तर से मोक्ष जाने के योग्य हैं इन दोनों के होती हैं, वह उत्तमार्थ काल कहलाता है।

प्र.1346 मुनियों के द्वारा त्याज्य सप्तभय कौन से हैं?

उत्तर मुनियों के द्वारा त्याज्य इह-लोक, पर-लोक, अत्राण, अगुप्ति, मरण, वेदना और आकस्मिक नामक सप्त भय हैं।

प्र.1347 इह-लोक भय किसे कहते हैं?

उत्तर इस लोक में शत्रु, विष, कण्टक आदि से भयभीत होना इहलोक भय है।

प्र.1348 पर-लोक भय किसे कहते हैं?

उत्तर अगले भव में कौन-सी गति मिलेगी? वहाँ क्या होगा ? इत्यादि सोचकर भयभीत होना, परलोक भय है।

प्र.1349 अत्राण भय किसे कहते हैं ?

उत्तर मेरा कोई रक्षक नहीं है, ऐसा डर पैदा होना अत्राण भय है।

प्र.1350 अगुप्ति भय किसे कहते हैं?

उत्तर इस क्षेत्र या ग्राम आदि में परकोटे आदि साधन नहीं हैं, अतः शत्रु आदि से कैसे मेरी रक्षा होगी ऐसा चिंतवन करना अगुप्ति भय है।

प्र.1351 मरण भय किसे कहते हैं?

उत्तर मृत्यु से भयभीत होना, मरण भय कहलाता है।

प्र.1352 वेदना भय किसे कहते हैं?

उत्तर रोग आदिक से उत्पन्न होने वाली पीड़ा से डरना, वेदना भय है।

प्र.1353 आकस्मिक भय किसे कहते हैं?

उत्तर अकस्मात मेघ गर्जना, विद्युतपात आदि से डरना, आकस्मिक भय है।

प्र.1354 मुनियों के द्वारा त्याज्य अष्ट मद कौन-से हैं?

उत्तर विज्ञान मद, ऐश्वर्य मद, आज्ञा मद, कुल मद, बल मद, जाति मद, तपो मद और रूप मद इस तरह मुनियों के द्वारा त्याज्य अष्ट मद (गर्व) हैं।

प्र.1355 विज्ञान मद किसे कहते हैं?

उत्तर अक्षर ज्ञान और संगीत आदि के ज्ञान से गर्वित होना, विज्ञान मद है।

प्र.1356 ऐश्वर्य मद किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्यादि सम्पत्ति के वैभव से गर्वित होना, ऐश्वर्य मद है।

प्र.1357 आज्ञा मद किसे कहते हैं?

उत्तर अपने द्वारा दिए गये आदेश का उलंघन न होने रूप गर्व का होना आज्ञा मद है।

प्र.1358 कुल मद किसे कहते हैं?

उत्तर पिता के वंश परंपरा की शुद्धि का अथवा इक्ष्वाकु वंश, हरिवंश आदि में जन्म लेने रूप गर्व का होना,

कुल मद कहलाता है।

प्र.1359 बल मद किसे कहते हैं ?

उत्तर शरीर, आहार आदि से उत्पन्न हुई शक्ति से गर्वित होना बल मद है।

प्र.1360 जाति मद किसे कहते हैं?

उत्तर माता के वंश परंपरा की शुद्धि से गर्वित होना जाति मद कहलाता है।

प्र.1361 तपो मद किसे कहते हैं?

उत्तर शरीर के संतापित करने (तप में तपाने) रूप से गर्वित-चित्त होना तपो मद है।

प्र.1362 रूप मद किसे कहते हैं?

उत्तर समचतुरस्र संस्थान, गौर आदि वर्ण, सुन्दर कांति और यौवन से उत्पन्न हुई रमणीयता से गर्वित होना रूप मद है।

प्र.1363 यतियों के द्वारा त्याज्य चार संज्ञायें कौन-सी हैं?

उत्तर यतियों के द्वारा त्याज्य (वैराग्य द्वारा विजय पाने योग्य) आहार, भय, मैथुन और परिग्रह रूप चार संज्ञायें होती हैं।

प्र.1364 आहार संज्ञा किस तरह होती है?

उत्तर आहार को देखने से अथवा उसकी तरफ उपयोग लगाने से उदर के खाली रहने से तथा असातावेदनीय की उदय और उदीरणा के होने पर जीव के नियम से आहार संज्ञा होती है।

प्र.1365 भय संज्ञा किस तरह होती है?

उत्तर अत्यन्त भयंकर पदार्थ के देखने से, पहले देखे हुए भयंकर पर्याय (पदार्थ) के स्मरण से, अधिक निर्बल होने से और अन्तरंग में भयकर्म की उदय-उदीरणा होने रूप चार कारणों से भय संज्ञा होती है।

प्र.1366 मैथुन संज्ञा किस तरह होती है?

उत्तर स्वादिष्ट और गरिष्ठ रस युक्त भोजन करने से, काम विषय की ओर उपयोग लगाने से तथा कुशील आदि रूप क्रीड़ा करने से और वेदकर्म की उदय उदीरणा होने रूप चार कारणों से मैथुन संज्ञा उत्पन्न होती है।

प्र.1367 परिग्रह संज्ञा किस तरह होती है?

उत्तर इत्र, भोजन, उत्तम स्त्री आदि भोगोपभोग के साधनभूत पदार्थ के देखने से, पहले भुक्त पदार्थों का स्मरण करने से और ममत्व परिणामों के होने से तथा लोभकर्म की उदय-उदीरणा होने रूप चार कारणों से परिग्रह संज्ञा होती है।

प्र.1368 यतियों के द्वारा त्याज्य तीन गारव (गौरव) कौन-से हैं?

उत्तर यतियों के द्वारा त्याज्य ऋद्धि गारव, रस गारव, सात गारव ये तीन गारव हैं।

प्र.1369 ऋद्धि गारव किसे कहते हैं?

उत्तर मेरे शिष्य आदि बहुत हैं, दूसरे यतियों के पास इस तरह नहीं हैं, ऐसा अभिमान होना ऋद्धि (वैभव) गारव कहलाता है।

प्र.1370 रस गारव किसे कहते हैं?

उत्तर मुझे आहार में रसयुक्त पदार्थ सहज ही उपलब्ध होते रहते हैं, ऐसा अभिमान होना रस गारव कहलाता है।

प्र.1371 सात गारव किसे कहते हैं?

उत्तर मैं यति होकर भी इन्द्रत्वसुख, चक्रवर्तीसुख अथवा तीर्थंकर जैसे सुख का उपभोग ले रहा हूँ, ये दीन यति सुखों से रहित हैं, इत्यादि रूप से अभिमान करना सात या साता गारव कहलाता है।

प्र.1372 असादना किसे कहते हैं? और यतियों द्वारा त्याज्य असादनाएँ कौन-सी हैं?

उत्तर अस्तिकाय पाँच ही हैं, जीव निकाय छह हैं, महाव्रत पाँच हैं, प्रवचन मातृकाएँ आठ हैं और पदार्थ नव हैं- ये तेतीस ही यहाँ तेतीस असादना नाम से कहे गए हैं। अर्थात् इनकी विराधना या अनादर ही असादना कहलाती है।

प्र.1373 अस्तिकाय की असादना किस रूप होती है?

उत्तर अस्ति-विद्यमान है काय निचय अर्थात् प्रदेशों का समूह जिसमें वह अस्तिकाय है। वे पाँच हैं- जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। (काल में प्रदेशों का प्रचय न होने से वह अस्ति मात्र है, अस्तिकाय नहीं है।) इनका अनादर या विराधना करना अस्तिकाय की असादना है।

प्र.1374 षट्काय जीवों की असादना किस रूप होती है?

उत्तर पृथ्वीकायिक आदि छह जीव निकाय की विराधना या अनादर करना षट्काय जीवों की असादना है।

प्र.1375 महाव्रत की असादना किस रूप होती है?

उत्तर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप जो महाव्रत हैं, उनकी विराधना या अनादर करना (अर्थात् उत्साह पूर्वक महाव्रतों का पालन नहीं करना) महाव्रत की असादना है।

प्र.1376 प्रवचन-मातृका की असादना किस रूप होती है?

उत्तर पाँच समितियों और तीन गुप्तियों रूप इन आठ प्रवचन मातृका का अनादर या विराधना करना प्रवचन मातृका की असादना है।

प्र.1377 नव-पदार्थ की असादना किस रूप होती है?

उत्तर जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इनका अनादर या विराधना करना(अर्थात् नव पदार्थों पर श्रद्धा का अभाव होना) नव-पदार्थ की असादना है।

प्र.1378 कोई भव्य साधु आत्मसंस्कार काल से लेकर सन्यास (सल्लेखना) काल तक की आलोचना गुरु के पास किस भाव से प्रकट करता है?

उत्तर जो अपने में स्वयं के प्रकट करने योग्य दोष हैं उनकी मैं स्वयं निन्दा करता हूँ, जो पर के समक्ष कहने

योग्य दोष है उनको मैं आचार्य आदि के सामने प्रकट करते हुये अपनी गर्हा करता हूँ और मैं चारित्राचार की आलोचनापूर्वक सम्पूर्ण बाह्य अभ्यन्तर उपधि (विषय-कषाय) की आलोचना करता हूँ अर्थात् सम्पूर्ण उपधि को अपने से दूर करता हूँ। तात्पर्य यह हुआ कि जो उपधि अथवा परिग्रह निन्दा करने योग्य है उनकी मैं निन्दा करता हूँ, जो गर्हा करने योग्य हैं उनकी गर्हा करता हूँ और समस्त बाह्य अभ्यन्तर रूप उपधि की आलोचना करके अपने से दूर करता हूँ। इस प्रकार वे भव्य-साधु आत्मसंस्कार काल से लेकर सन्यास काल तक की आलोचना गुरु के पास प्रकट करते हैं।

प्र.1379 यतिलोग जिन निर्यापक के पास आलोचना प्रकट करते हैं वे कैसे आचार्यों के गुणों से समन्वित होते हैं?

उत्तर जो ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र इन चारों में अविचल हैं, धीर हैं, आगम में निपुण हैं और रहस्य अर्थात् गुप्त दोषों को प्रकट (प्रचारित) नहीं करते हैं ऐसे गुणों से समन्वित आचार्य आलोचना सुनने के योग्य होते हैं।

प्र.1380 आलोचना के अनन्तर यति सल्लेखना के पूर्व किस तरह की क्षमा याचना प्रकट करते हैं?

उत्तर राग से अर्थात् माया, लोभ या स्नेह से; द्वेष से अर्थात् क्रोध से, मान से या अप्रीति से मैंने आपके प्रति जो अयोग्य कार्य किया है अथवा जो मैंने प्रमाद से जिसके प्रति कुछ भी वचन कहे हैं। उन सभी साधुजनों से मैं क्षमा माँगता हूँ अर्थात् उनको संतुष्ट करता हूँ। तात्पर्य, यह हुआ कि मैंने राग या द्वेषवश जो किंचित् भी अयोग्य अनुष्ठान किया है, उसके लिए और जिस किसी साधु को भी अयोग्य कहा है उन सभी से मैं क्षमा चाहता हूँ। इस तरह क्षमा-याचना प्रकट करते हैं।

प्र.1381 शिष्य द्वारा प्रायश्चित्त ग्रहण की इच्छा से गुरु के समक्ष एकान्त में निवेदित किये गये गुप्त दोषों को अन्य किसी के समक्ष प्रकट नहीं करना गुरु का कौन-सा गुण कहलाता है?

उत्तर एकान्त में निवेदित गुप्त दोषों को रहस्य में रखना गुरु का अपरिश्रावी गुण कहलाता है।

प्र. 1382 मूलाचार ग्रन्थ में मरण के तीन प्रकार कौन-से हैं?

उत्तर मूलाचार ग्रन्थ में मरण के बालमरण, बालपण्डित-मरण और पण्डित-मरण इस तरह तीन प्रकार बतलाये गये हैं।

प्र. 1383 उपर्युक्त तीन मरणों के स्वामी कौन-से जीव होते हैं?

उत्तर असंयत जीव बाल कहलाते हैं अतः उनका मरण बालमरण कहलाता है। संयातासंयत -देशव्रती बाल पण्डित कहलाते हैं क्योंकि एकेन्द्रिय जीवों के वध से विरत न होने के कारण ये बाल और द्वीन्द्रिय आदि जीवों के वध से विरत होने के कारण पण्डित (विवेकी) हैं अतः इनका मरण भी बाल-पण्डित मरण कहलाता है। त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा के त्यागी ऐसे संयत ज्ञानी मुनीश्वरों को पण्डित कहते हैं। जिसमें छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक वाले संयत मुनीश्वर विवक्षित हैं। ऐसे पण्डितों का मरण अर्थात् देह का परित्याग अथवा शरीर का अन्यथा रूप होना पण्डित मरण है

जिसके द्वारा केवल शुद्ध ज्ञान के धारी केवली भगवान् तथा निर्ग्रन्थ साधु मरण करते हैं।

प्र. 1384 अन्यत्र ग्रन्थों में मिथ्यादृष्टि के मरण को बाल-बाल मरण कहा गया है जिसका वर्णन यहाँ क्यों नहीं किया है?

उत्तर जो अकुटिल-सरल परिणामी हैं, सम्यग्ज्ञान और दर्शन से युक्त हैं वे इन उपर्युक्त तीन मरणों वाले कहलाते हैं। अतः मूलाचार ग्रन्थ में सल्लेखना के प्रसंग पर मिथ्यादृष्टि के बाल-बालमरण को ग्रहण नहीं किया है।

प्र. 1385 केवली भगवान के मरण को यहाँ पण्डित-पण्डित मरण क्यों नहीं कहा?

उत्तर पण्डित-पण्डित मरण को यहाँ पर पण्डित मरण में ही अन्तर्भाव कर लिया गया है क्योंकि संयम के स्वामी में सामान्यतः भेद नहीं है। (मू.चा. भा.1, गा-59, पृ.64)

प्र. 1386 बालमरण आदि तीन सम्यक्मरणों के अतिरिक्त बाल-बाल मरण रूप कुमरण किन कारणों से प्राप्त होते हैं?

उत्तर जो मिथ्या रूप नष्ट बुद्धि वाले हैं, जिनकी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञायें उत्कृष्ट रूप से प्रकट हैं तथा जो मायाचार रूप कुटिल परिणामों व अशुभ ध्यानों में लीन हैं वे असमाधि से दुर्गति को प्राप्त होते हैं। अर्थात् वे कर्मक्षय करने वाले आराधक नहीं हो सकते हैं। (मू.चा.भा.1, गा.60)

प्र. 1387 यदि मरणकाल में परिणाम बिगड़ जाते हैं तो क्या होगा?

उत्तर मरण की विराधना हो जाने पर देवदुर्गति होती है तथा निश्चित रूप से बोधि की प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है, और फिर आगामी काल में उस जीव का संसार अनन्त हो जाता है।

प्र. 1388 मरण की विराधना से क्या तात्पर्य है?

उत्तर मरण की विराधना का अर्थ सम्यक्त्व की विराधना ऐसा अर्थ लेना चाहिए।

प्र. 1389 देव दुर्गति का अर्थ क्या है?

उत्तर भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क आदि देवों में उत्पत्ति होना देवदुर्गति कहलाती है। या कान्दर्प, आभियोग्य, किल्विषक, सम्मोह और आसुरी ये देव दुर्गतियाँ कहलाती हैं।

प्र. 1390 देव-दुर्गति हो जाने के उपरान्त इस जीव का और क्या होता है?

उत्तर ऐसे जीव को सम्यक्त्व या रत्नत्रय रूप बोधि की प्राप्ति होना अतीव दुर्लभ है। वह आगामी काल में इस चतुर्गति रूप संसार में अनन्त काल तक भटकता रहता है।

प्र. 1391 एक बार सम्यक्त्व होने पर संसार अनन्त कैसे रहेगा? क्योंकि वह अर्द्धपुद्गल प्रमाण ही तो है अतः अर्द्धपुद्गल को अनन्त संज्ञा कैसे दी?

उत्तर यह अर्द्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल भी अनन्त नाम से कहा जाता है क्योंकि यह केवलज्ञान का ही विषय है। (मू.चा.भाग1, गा.61)

प्र. 1392 असमाधि रूप कुमरण करने वाले जीव भवनत्रिक के अलावा वैमानिक देवों में भी कौन-से

देवों में उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर ऐसे जीव भवनत्रिक के अलावा वैमानिक देवों में भी आभियोग्य और किल्विषक जाति के देवों में जन्म ले लेते हैं। क्योंकि वहाँ पर भी अनेक जाति के देवों में या वाहन जाति के तथा किल्विषक जाति के देवों में सम्यग्दृष्टि का जन्म नहीं होता है।

प्र. 1393 कान्दर्प भावना (कर्म) क्या है और उसका फल क्या है?

उत्तर कन्दर्प का भाव कान्दर्प है अर्थात् उप्लव स्वभाव वाला दुर्गुण (शील और गुणों का नाश करने वाला भाव) तथा जो राग के उद्रेक से सहित होता हुआ स्वयं असत्य बोलता है और बहुजनों में उसी का प्रतिपादन करता है वह ऐसे कंदर्प कर्म या भावों से कान्दर्प जाति के देवों में उत्पन्न होता है।

प्र. 1394 आभियोग्य कर्म क्या है और उससे कहाँ उत्पत्ति होती है?

उत्तर जो साधु इन्द्रिय सुख के निमित्त तन्त्र-मन्त्र (ग्रहादि प्रपंच)आदि नाना प्रकार के प्रयोग करता है और हँसी, काय की कुचेष्टा सहित हँसी-कौत्कुच्य, भू-कर्म (वास्तु आदि)और लोक में आश्चर्य उत्पन्न करना (जादू-टोना)आदि रूप बहुत से बाग्जाल को करता है वह इन आभियोग्य क्रियाओं से युक्त होता हुआ हाथी, घोड़े, मेष, महिष आदि रूपवाहन जाति के देवों में उत्पन्न होता है।

प्र. 1395 किल्विष भावना का स्वरूप क्या है और उससे होने वाली उत्पत्ति किस तरह की होती है?

उत्तर जो तीर्थंकर, संघ, चैत्य और सूत्र के प्रतिकूल हैं अर्थात् उनके प्रति विनय नहीं करते हैं और दूसरों को ठगने (धन एंठने) में कुशल हैं, वे इस किल्विष कार्यों के द्वारा पटह आदि वाद्य बजाने वाले किल्विषक जाति के देवों में उत्पन्न होते हैं।

प्र. 1396 तीर्थंकर कौन एवं उन से प्रतिकूल होने का तात्पर्य क्या है?

उत्तर संसार समुद्र से पार होने के उपाय रूप तीर्थ को करने वाले तीर्थंकर हैं, उन्हें अर्हन्त भट्टारक कहते हैं। जो साधु भी सम्यक्त्व से च्युत होकर तीर्थंकर की आज्ञा पालन नहीं करते वे तीर्थंकर के प्रतिकूल हैं।

प्र. 1397 संघ किसे कहते हैं?

उत्तर ऋषि, यति, मुनि और अनगार को संघ कहते हैं। ये सभी नग्न दिगम्बर मुनि होते हैं। अथवा मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका इनको भी चतुर्विध संघ कहते हैं। अथवा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप को संघ कहते हैं। (मू.चा.भा.1,पृ. 70)

प्र. 1398 चैत्य किसे कहते हैं?

उत्तर सर्वज्ञ (वीतरागी, केवलज्ञानी) देव की प्रतिमा को चैत्य कहते हैं।

प्र. 1399 सूत्र किसे कहते हैं?

उत्तर बारह अंग, (ग्यारह अंग-चौदह पूर्व) रूप श्रुत-आगम को सूत्र कहते हैं।

प्र. 1400 सम्मोह भावना का स्वरूप और उससे होने वाली देव-दुर्गति क्या है?

उत्तर जो उन्मार्ग अर्थात् मिथ्यात्व आदि का उपदेशक है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप

मोक्षमार्ग की विराधना करने वाला है, तथा इसी सन्मार्ग के विपरीत है अर्थात् स्वतीर्थ का प्रवर्तक है। वह साधु मिथ्यात्व अथवा माया के प्रपंच से अन्य लोगों को विपरीत बुद्धि वाला करता हुआ संमोह कर्म के द्वारा स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाले सम्मोह जाति के देवों में उत्पन्न होता है।

प्र. 1401 आसुरी भावना किस तरह की होती है एवं उससे होने वाली हानि कौन-सी होती है?

उत्तर जो क्षुद्र अर्थात् चुगलखोर है अथवा हीन परिणाम वाला, क्रोध स्वभाव वाला, मान कषायी है, मायाचार-प्रवृत्ति रखता है; तथा तपश्चरण करते हुए और चारित्र को पालते हुए भी जिसके परिणामों में संक्लेश भाव बना रहता है अर्थात् परिणामों में निर्मलता नहीं रहती; जो अनन्तानुबन्धी रूप बैर को बाँधने में रुचि रखता है अर्थात् किसी के साथ कलह हो जाने पर उसके साथ अंतरंग में ग्रन्थि के समान बैर-भाव बाँध कर रखता है ऐसा जीव इन असुर भावनाओं के द्वारा असुर जाति में, अन्तर्भेद रूप एक अंबावरीष जाति है उसमें जन्मता है। ये अंबावरीष जाति के देव ही नरकों में जाकर नारकियों को परस्पर में पूर्वभव के बैर का स्मरण दिला-दिलाकर लड़ाया करते हैं और उन्हें लड़ते-भिड़ते, दुःखी होते देखकर प्रसन्न होते हैं। (मू.चा.भाग1, पृ.71)

प्र. 1402 बोधि की दुर्लभता को आगम में किस तरह से बतलाया गया है?

उत्तर जो अतत्त्व के श्रद्धान सहित हैं, भविष्य में संसार-सुख की आकांक्षा रूप निदान से सहित हैं और अनन्तानुबन्धी कषाय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति रूप कृष्ण लेश्या से संयुक्त रौद्र परिणामी हैं ऐसे जीव यदि यहाँ मरण करते हैं तो पुनः सम्यक्त्व सहित शुभ परिणाम रूप बोधि उनके लिए बहुत ही दुर्लभ है। तात्पर्य यह है कि यदि एक बार सम्यक्त्व होकर छूट जाय तो पुनः अधिक से अधिक यह जीव किंचित् (कुछ) कम अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र काल तक संसार में भटक सकता है। अतः यहाँ ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि का अर्ध पुद्गल परिवर्तन मात्र काल ही शेष रहता है और बोधि सम्यक्त्व के बिना नहीं हो सकती है अतः बोधि का सम्यक्त्व के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है अतः बोधि की दुर्लभता और सुलभता को बतलाते हुए सम्यक्त्व के माहात्म्य को बतलाकर आचार्यदेव ने प्रकारान्तर से बोधि का लक्षण ही बतलाया है ऐसा समझना।

प्र. 1403 बोधि की सुलभता को आगम ग्रन्थों में किस तरह बतलाया है?

उत्तर जो तत्त्वों में रुचि रूप सम्यग्दर्शन से युक्त हैं, इह लोक और परलोक में इन्द्रिय विषयों की आकांक्षा से रहित हैं, शुक्ल लेश्यामय निर्मल परिणाम वाले हैं ऐसे जीव संन्यास विधि से मरण को प्राप्त होते हैं अतः उन्हें बोधि की प्राप्ति सुलभ ही है।

प्र.1404 अनन्त संसार का कारण क्या है?

उत्तर जो पुनः गुरु के प्रतिकूल हैं, मोह की बहुलता से सहित अर्थात् राग-द्वेष-परिणामी हैं, अतिचार सहित चारित्र पालते हैं, कुत्सित (अशोभनीय) आचरण वाले हैं वे असमाधि से मरण करते हैं और अनन्त संसारी हो जाते हैं।

प्र. 1405 परीत संसारी कैसे होते हैं?

उत्तर जो अर्हन्त देव के प्रवचन रूप आगम के अच्छी तरह भक्त हैं, मन्त्र-तन्त्र की या ग्रन्थों की आकांक्षा से रहित होकर भक्ति पूर्वक गुरुओं के आदेश का पालन करते हैं, मिथ्यात्व भाव रहित हैं और शुद्ध परिणामी हैं वे चतुर्गति में गमन रूप संसार को परिमित करने वाले अथवा संसार को समाप्त करने वाले हो जाते हैं।

प्र. 1406 दुर्गतियों में भटकाने वाले महा अज्ञान रूप बालबाल मरण किस तरह के होते हैं?

उत्तर शस्त्रों के घात से मरना, विष भक्षण कर मरना, अग्नि में जल जाना, जल में प्रवेश कर मरना और पापक्रियामय द्रव्य का सेवन करके मरना ये सभी मरण; जन्म-मृत्यु की परम्परा को बढ़ाने वाले महाअज्ञानी जीवों के मरण हैं।

प्र. 1407 सल्लेखना का इच्छुक भव्यात्म क्षपक बालबाल मरण के अतिरिक्त कौन से मरणों से एवं दु:खों से भयभीत होकर पण्डित मरण की इच्छा करता है?

उत्तर सल्लेखना का इच्छुक भव्यात्म क्षपक उद्वेग मरण और जातिमरण तथा नरकों के दु:खों से भयभीत होकर मैं सल्लेखना पूर्वक मरण कर पण्डित मरण की इच्छा करता हूँ ऐसा विचार करता है।

प्र. 1408 उद्वेग मरण किसे कहते हें?

उत्तर इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग के दु:ख से जो मरण होता है अथवा अन्य किसी त्रास से जो मरण होता है उसको उद्वेग मरण कहते हैं।

प्र. 1409 जाति मरण किसे कहते हैं?

उत्तर जन्म लेते ही मर जाना या गर्भ में मर जाना जातिमरण कहलाता है।

प्र. 1410 संसार के मरणों से संवेगी और निर्विण्य स्वभावी; मरण के विषय में किस तरह का चिंतवन करता है?

उत्तर मैंने तीनों लोकों में अनन्त बार बालबाल-मरण किये हैं उनमें जन्म की परम्परा बढ़ती रही, अत: अब मैं कुमरण से होने वाली हानि को जानकर धर्म में प्रीति तथा शरीरादि से विरक्ति धारण करता हुआ दर्शन और ज्ञान के साथ एकता धारण करता हुआ अर्थात् रत्नत्रय को प्राप्त होता हुआ पण्डित मरण अर्थात् मुनि अवस्था के साथ होने वाले मरण को प्राप्त करूँगा।

प्र. 1411 सब तरह के मरणों में पण्डित मरण ही किसलिए शुभ है?

उत्तर एक बार प्राप्त किया पण्डित मरण सौ-सौ जन्मों का नाश कर देता है अत: ऐसे ही मरण से मरण करना चाहिए कि जिससे मरण सुमरण होकर आत्मा को मोक्षपद की प्राप्ति हो जावे। शरीर और इन्द्रियों का वियोग हो जाना जीव का मरण है इसलिए ऐसे ही मरण से देह छोड़ना चाहिए कि जिससे पुन: जन्म ही न लेना पड़े। अत: मैं अब मुनिपद धारण कर योग्य समयानुसार आहार जल का भी त्याग कर पंच नमस्कार मंत्र पूर्वक पण्डित मरण नामक सल्लेखना विधि से मरण करूँगा, क्षपक ऐसा दृढ़ निश्चय

करता है।

प्र. 1412 सल्लेखना रूप संन्यास के समय भूख प्यासादिक की बाधायें होने पर क्षपक किस तरह के चिन्तवन को मन में धारण करे?

उत्तर ऐसे समय में नरक की वेदनाओं को देखना चाहिए एवं संसार में मैंने कौन-से दुःखों को कई बार प्राप्त नहीं किया है? ऐसा चिंतवन कर धैर्य धारण करना चाहिए।

प्र. 1413 संन्यास के समय विषय अतृप्ति के सम्बन्ध में क्या विचार करना चाहिए?

उत्तर चतुर्गति के जन्म-मरण रूप आवर्त अर्थात् भँवर में मैंने अन्न व रसादि पदार्थों या पुद्गल वर्गणाओं को अनन्त बार ग्रहण किया है, उनका आहार रूप से भक्षण भी किया है और खलभाग, रसभाग रूप से परिणमाया भी है अर्थात् उन्हें जीर्ण भी किया है, किन्तु आज तक उनसे मुझे तृप्ति नहीं हुई प्रत्युत आकांक्षाएँ बढ़ती ही गयी हैं, ऐसा विचार करना चाहिए।

प्र. 1414 काम और भोगों की वस्तुओं के सेवन तथा भोग करने पर तृप्ति क्यों नहीं मिलती? इसके लिए कोई उदाहरण दीजिए।

उत्तर जैसे अग्नि; तृण और काष्ठ के समूह से तृप्त नहीं होती है अर्थात् बुझ नहीं सकती है प्रत्युत बढ़ती ही जाती है। जैस हजारों नदियों से लवण समुद्र तृप्त नहीं होता है, ठीक उसी तरह इच्छित सुख के साधन भूत आहार, स्त्री, वस्त्र आदि काम-भोगों से इस जीव को तृप्त व संतुष्ट करना शक्य नहीं है।

प्र. 1415 काम भोगों की इच्छा मात्र से पाप होता है? इसका उदाहरण बतलाइये।

उत्तर स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य के कर्ण में तन्दुल मत्स्य होते हैं जो कि तन्दुल (चावल) के समान ही लघु शरीर वाले हैं किन्तु उनमें भी वज्रवृषभनाराच संहनन होता है। वे मत्स्य आदि जन्तु महामत्स्य के मुख में प्रवेश करते हुए और निकलते हुए तमाम जीवों को देखते हैं तो सोचते रहते हैं कि यदि मेरा बड़ा शरीर होता तो मैं इन सबका भक्षण कर लेता, एक को भी नहीं छोड़ता किन्तु वे भक्षण नहीं कर पाते हैं। तथापि इस भावना मात्र से पाप बन्ध करते हुए वे जीव भी सातवीं पृथ्वी सम्बन्धी नरक में चले जाते हैं। अतः साधुओं व सज्जनों को मन में भी काम भोगों एवं सदोष आहार आदि का चिंतवन भी करना युक्त नहीं है।

प्र. 1416 आचार्य परमेष्ठी; क्षपक के लिए सदोष आहार आदिक से बचा कर शुद्ध परिणामों को धारण करने हेतु किस प्रकार का उपदेश देते हैं?

उत्तर मति और बुद्धि अथवा प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण के ज्ञान से सम्पन्न हुआ साधु उद्योग-पुरुषार्थ करके सबसे पहले परिकर्म-तप का अनुष्ठान कर लेता है, वह इहलोक और परलोक के सुखों की अभिलाषा रूप निदान को नहीं करता है। पश्चात् वही साधु कषायों का मंथन करके क्षमा-गुण से सम्पन्न हो जाता है। ऐसे साधु को आचार्य कहते हैं कि हे क्षपक! अब तुम समाधिमरण-सह स्वाध्याय मरण का अनुष्ठान करो। वह क्षपक सद्यः समाधि में तत्पर हो कृतकृत्य हो जाता है।

प्र. 1417 आचार्य देव; समाधि-सल्लेखना के अंतकाल में क्षपक को सावधानी वर्तने हेतु एक उदाहरण देकर किस तरह सतर्कता का उपदेश-संदेश देते हैं?

उत्तर जैसे उत्तम-बहुमूल्य रत्नों से भरे हुए जहाज आदि पत्तन अर्थात् समुद्र तट तक पहुँच जाने पर भी खेवटिया-कर्णधार से रहित होने पर प्रमाद-असावधानी के कारण निश्चित ही वे समुद्र में डूब जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। वैसे ही क्षपक रूपी नौकाएँ भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूपी रत्नों से परिपूर्ण हों और उनके पास सिद्धि के समीप में ही रहने वाला संन्यास रूपी पत्तन हो, फिर भी निर्यापकाचार्य के बिना प्रमाद के कारण वे क्षपक रूपी नौकाएँ संसार समुद्र में डूब जाती हैं अतः परिणामों की विशुद्धि में सावधानी व सतर्कता आवश्यक है।

प्र. 1418 आचार्य भगवन् संन्यास काल में क्षपक के प्रयत्न एवं निर्यापकाचार्य की सावधानी के सम्बन्ध में क्या उपदेश देते हैं?

उत्तर संन्यास-समाधि के इच्छुक साधु को प्रयत्न पूर्वक पूर्व संघ से निर्मोही बन निर्यापकाचार्य की खोज करना चाहिए तथा उनका आश्रय लेकर अन्तिम समय तक पूर्ण सावधानी रखना चाहिए। निर्यापकाचार्य के बिना क्षपक को मरण काल में वेदनादि के निमित्त से यदि किञ्चत् भी प्रमाद आ गया तो क्षपक रत्नत्रय से च्युत होकर संसार में डूब जायेगा किन्तु यदि निर्यापकाचार्य कुशल अप्रमादी होंगे तो वे सावधान करते रहेंगे अतः एक साधु की सल्लेखना हेतु अड़तालीस मुनियों की आवश्यकता मानी गई है। (★ सल्लेखना का काल एवं विधि इत्यादिक का वर्णन देखें जैनागम संस्कार-अध्याय 15, पृष्ठ 141)

प्र. 1419 वृद्धावस्था में बारह वर्ष की सल्लेखना धारण करने से पूर्व अगर आकस्मिक व्याधि, अग्नि, शत्रु, सिंह या व्याघ्रादि की बाधा उपस्थित हो जाने पर साधु किस तरह संक्षेप-प्रत्याख्यान रूप सल्लेखना ग्रहण करता है?

उत्तर सर्वप्रथम जिस साधु ने सम्पूर्ण प्राणी हिंसा को, असत्य वचन को, सम्पूर्ण अदत्त ग्रहण और मैथुन (अब्रह्म) तथा परिग्रह को छोड़ दिया है, वह साधु सभी प्राणियों में मेरा साम्यभाव है, किसी के साथ भी मेरा बैर नहीं है, मैं सम्पूर्ण आकांक्षाओं को छोड़कर शुभ परिणाम रूप समाधि को प्राप्त करता हूँ ऐसा कृत संकल्पित होता है।

प्र. 1420 सल्लेखना के काल में साधु किन-किन भावों को छोड़ता हुआ क्या करता है ?

उत्तर सर्व आहार त्याग विधि को अंगीकार करता हुआ आहार आदि संज्ञाओं को, आकांक्षाओं और कषायों को तथा सम्पूर्ण ममत्व को भी मैं छोड़ता हूँ तथा सभी से क्षमाभाव धारण करता हूँ इस तरह संकल्पित होता है।

प्र. 1421 संक्षेप प्रत्याख्यान रूप सल्लेखना में साधु का प्रत्याख्यान किस तरह का होता है?

उत्तर इस देशकाल में उपसर्ग आदि के प्रसंग में यदि मेरा जीवन नहीं रहेगा तो मेरे द्वारा चतुर्विध आहार का

त्याग है और यदि उस देश काल में उपसर्ग आदि का निवारण हो जाने पर जीवन का अस्तित्व रहता है तो मैं आहार ग्रहण करूँगा। इस तरह जीवन पर संदेह होने पर संक्षेप प्रत्याख्यान किया जाता है।

प्र. 1422 जब अपने मरण का निश्चय हो जाता है तब साधु किस तरह कृत संकल्पित होता है?

उत्तर ऐसे अन्तिम काल में साधु; पेय पदार्थ को भी छोड़कर सम्पूर्ण आहार विधि का मैं त्याग करता हूँ और मन-वचन-काय पूर्वक दोनों प्रकार की (बाह्याभ्यन्तर) उपधि (परिग्रह) का भी त्याग करता हूँ, इस तरह कृत संकल्पित होता है।

प्र. 1423 उत्तमार्थ विधि किसे कहते हैं?

उत्तर सल्लेखना के अन्तिम काल में साधु के द्वारा जो कुछ भी मेरा अभ्यन्तर और बाह्य परिग्रह है उसको तथा आहार और शरीर को मैं जीवन भर के लिए छोड़ता हूँ ऐसा कृत संकल्पित होना उत्तमार्थ विधि कहलाती है।

प्र. 1424 सल्लेखना के समय क्षपक द्वारा किये जाने वाले तीन तरह के प्रतिक्रमण कौन-से हैं?

उत्तर सल्लेखना के काल का प्रथम सर्वातिचार प्रतिक्रमण है। दूसरा त्रिविध आहार त्याग प्रतिक्रमण है। तथा तीसरा उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है।

प्र. 1425 सर्वातिचार प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर दीक्षाकाल का आश्रय लेकर आज तक जो भी दोष हुए हैं उन्हें सर्वातिचार कहते हैं। सल्लेखना को ग्रहण कर क्षपक निर्यापकाचार्य के मूल में जीवन के सम्पूर्ण दोषों की आलोचना कर सर्वातिचार प्रतिक्रमण करता है।

प्र. 1426 त्रिविध आहार त्याग प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर खाद्य-अन्नाहार, स्वाद्य-लड्डू आदि पकवान या इलायची आदि और लेह्य-रबड़ी, खीर इत्यादि का सम्पूर्ण रूप से यावज्जीवन त्याग करना त्रिविधाहार त्याग प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्र. 1427 उत्तमार्थ प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर अन्त में यावज्जीवन, मोक्ष के लिए पानक वस्तु (दूध, रस, तक्र-छाछ व जलादि) का त्याग कर देना सो उत्तमार्थ प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्र. 1428 जीवन में या सल्लेखना में और कौन-कौन से प्रतिक्रमण किये जाते हैं?

उत्तर दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिकादि तथा सर्वातिचार आदि प्रतिक्रमणों के अतिरिक्त योग, इन्द्रिय, शरीर और कषाय भावों के भी प्रतिक्रमण आगम में वर्णित किये गये हैं। जो निज दोषों की निंदा, गर्हा और आलोचना तथा त्याग पूर्वक यथावसर किये जाते हैं।

प्र. 1429 योग प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर साधु द्वारा मन, वचन और काय का निग्रह किया जाना योग प्रतिक्रमण कहलाता है। अर्थात् जिसमें मन, वचन और काय को शुभ ध्यान हेतु परिवर्तित कर दिया जाता है।

प्र. 1430 इन्द्रिय प्रतिक्रमण किसे कहा जाता है?

उत्तर पाँचों इन्द्रियों का निग्रह करना अर्थात् उनके विषयों को चिंतवन में नहीं लाना इन्द्रिय प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्र. 1431 शरीर प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर पाँच प्रकार के शरीरों का त्याग कर देना अर्थात् उनसे पूर्ण रूपेण निस्पृह हो जाना शरीर प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्र. 1432 कषाय प्रतिक्रमण किस तरह से किया जाता है?

उत्तर क्रोधादि सोलह कषायों का एवं हास्यादि नव नोकषाओं का निग्रह करना अर्थात् उनका कृश करना कषाय प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्र. 1433 सल्लेखना में स्वाध्याय मरण का अर्थ क्या है?

उत्तर सल्लेखना में स्वाध्याय मरण से अपने जीवन में जो आत्मा के सम्बन्ध में किये गये ग्रंथों के अध्ययन, चिन्तवन का स्मरण करते हुए मरण करना ऐसा अर्थ है। (मू.चा.भा.1, पृ.81)

प्र. 1434 सल्लेखना के समय क्षपक का अभ्यन्तर योग क्या कहलाता है?

उत्तर सल्लेखना के समय क्षपक द्वारा जो आत्मा के स्वरूप का चिन्तवन करते हुए सम्यक् ध्यान होता है वह अभ्यन्तर योग कहलाता है। इस योग का आश्रय लेकर क्षपक आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञाओं में मूर्छित न होता हुआ शरीर छोड़े ऐसा आचार्य भगवन् का उपदेश है। (मू.चा., भाग 1, पृ.75)

प्र. 1435 सल्लेखना के समय पंच नमस्कार मंत्र सह शरीर छोड़ने से क्या तात्पर्य है?

उत्तर रत्नकरण्डक में आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं और णमो लोए सव्व साहूणं रूप पंच पदों-सह, पूर्ण सावधानी पूर्वक, शरीर छोड़ने का उपदेश दिया है ऐसा जानना चाहिए।

प्र. 1436 सल्लेखना के काल में एक पद में या द्वितीय पद में निरन्तर संवेग को प्राप्त करता है इसका तात्पर्य क्या है?

उत्तर जो सर्व संग का त्यागी मुनि वीतराग मार्ग-सर्वज्ञदेव के प्रवचन के किसी एक पद में या 'अर्हद्भ्यो नमः' इस प्रथम पद में या द्वितीय पद अर्थात् 'सिद्धेभ्यो नमः' इस पद में निरन्तर संवेग को प्राप्त होता है या धर्म में हर्ष भाव को प्राप्त होता है, ऐसा अर्थ लेना चाहिए।

प्र. 1437 सल्लेखना के काल में एक बीज पद का आश्रय लेता है इसका क्या अर्थ है?

उत्तर किसी एक बीज पद में अर्थात् 'ॐ ह्रीं नमः' या 'अ-सि-आ-उ-सा नमः' आदि बीजाक्षर पदों का आश्रय लेता है ऐसा अर्थ होता है इसलिए मरण के अन्त में अर्थात् कण्ठगत प्राण के होने पर या अन्तिम समय में इन पदों का अवलम्बन नहीं छोड़ना चाहिए। अथवा जो भी कोई साधु जैसे भी बने

वैसे (वीतरागरूप) जिस पद में प्रीति को प्राप्त कर सकते हैं, उस पद को उन्हें नहीं छोड़ना चाहिए अर्थात् उन्हें उसी पद का आश्रय लेना चाहिए। (मू.चा,भा.1, पृ.88)

प्र. 1438 संन्यास काल में किसकी आराधना से कौन आराधक हो जाता है?

उत्त्र आराधना से उपयुक्त अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चारों आराधनाओं के अनुष्ठान में तत्पर हुआ साधु द्वादशांग रूप श्रुत स्कन्ध से या पंच नमस्कार पद से एक भी तथ्य-सत्यभूत श्लोक को ग्रहण कर यदि संन्यास (समाधि-सल्लेखना) काल में उसका चिंतवन करता है तो वह आराधक-(रत्नत्रय का स्वामी-अधिकारी) हो जाता है। अतः तुम्हें भी किसी एक पद का अवलम्बन लेकर उसे नहीं छोड़ना चाहिए ऐसा आचार्य उपदेश देते हैं।

प्र. 1439 यदि सल्लेखना में क्षपक को पीड़ा उत्पन्न हो जावे तो क्या औषधि है?

उत्तर जिनेन्द्रदेव की वाणी महान् औषधि है यह विषय-सुख का विरेचन करा देती है। वृद्धावस्था और मरण रूप जो महा व्याधियाँ हैं उनको तथा सम्पूर्ण वेदना रूप दुःखों को दूर करा देती है। इसीलिए यह जिनवाणी अमृतमय है। ऐसी जिनेन्द्रवाणी रूप धर्मामृत का निरन्तर अपनी कर्णाञ्जलि से पान करते रहना चाहिए।

प्र. 1440 समाधि मरण के समय कौन-सी शरण का विचार करना चाहिए?

उत्तर समाधि मरण के समय क्षपक-साधु के लिए ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, संयम और तीर्थंकर (महावीर) आदि वीतराग शरण का विचार करना चाहिए। (मू.चा.,भाग1, पृ.89)

प्र. 1441 ज्ञान रूप शरण का विचार किस तरह करना चाहिए?

उत्तर जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में जानना सो ज्ञान है वह ज्ञान ही मेरा शरण अर्थात् आश्रय है। ऐसा विचार करना चाहिए।

प्र. 1442 दर्शन रूप शरण का विचार किस तरह करना चाहिए?

उत्तर प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य इनकी अभिव्यक्ति लक्षण रूप जो परिणाम है वह दर्शन है, और वही मेरा शरण है अर्थात् संसार में मेरी रक्षा करने वाला है। ऐसा विचार करना चाहिए।

प्र. 1443 चारित्र रूप शरण का चिन्तवन किस तरह करना चाहिए?

उत्तर संसार के कारणों का अभाव करने के लिए उद्यत हुए ज्ञानवान पुरुष का जो अनुष्ठान है वह चारित्र है, वही मेरा सहाय है ऐसा चिन्तवन करना चाहिए।

प्र. 1444 तप रूप शरण की विचारणा किस तरह करना चहिए?

उत्तर जो शरीर और इन्द्रियों को तपाता है और दुष्टाष्ट कर्मों को जलाता है वह तप है। वह बारह भेद वाला है ऐसी विचारणा करना चाहिए।

प्र. 1445 संयम रूप शरण का विचार किस तरह करना चाहिए?

उत्तर प्राणियों की रक्षा तथा इन्द्रियों का संयम-दमन करना संयम है। जिसकी परिरक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है।

ऐसा विचार करना चाहिए।

प्र. 1446 तीर्थंकर (भ.महावीर) की शरण का चिन्तवन किस तरह करना चाहिए?

उत्तर तीर्थंकरों से ही हमें संसार समुद्र से तारने वाला तीर्थ प्राप्त हुआ है, अतः वे तीर्थंकर (भ.महावीर) आदि मेरी शरण हैं, रक्षक हैं ऐसा चिन्तवन सदा ही करते रहना चाहिए।

प्र. 1447 तीर्थंकर महावीर जिनेन्द्र किससे सम्पन्न थे?

उत्तर तीर्थंकर महावीर जिनेन्द्र विज्ञान और ज्ञान से सम्पन्न थे।

प्र. 1448 विज्ञान किसको कहते हैं?

उत्तर विशेष ज्ञान या भेद-विज्ञान को विज्ञान कहते हैं।

प्र. 1449 विज्ञान को चारित्र क्यों कहा जाता है?

उत्तर क्योंकि वह भेद-विज्ञान (देह और आत्मा की भिन्नता रूप अनुभव) सराग और वीतराग चारित्र पूर्वक संभव है जो यथाख्यात चारित्र से परिपूर्ण है।

प्र. 1450 वीर प्रभु का ज्ञान कैसा माना जाता है?

उत्तर वीर प्रभु का ज्ञान बोधमयी अथवा केवलज्ञान से परिपूर्ण माना जाता है।

प्र. 1451 वीर प्रभु किसे उद्योत करने वाले माने जाते हैं?

उत्तर वीर प्रभु सम्पूर्ण विश्व या लोक सम्बन्धी भव्य जीवों के लिए उद्योत प्रकाश करने वाले अथवा पदार्थों के प्रकाशक माने जाते हैं।

प्र. 1452 वीर प्रभु किसे जीतने वाले कहलाते हैं?

उत्तर वीर प्रभु पण्डित-पण्डित मरण से सम्पन्न होकर जन्म, जरा और अनादि मरण को जीतने वाले कहलाते हैं।

प्र. 1453 क्षपक की सल्लेखना में महापुण्य से बड़भागी अड़तालीस मुनिगण क्या कार्य कर वैयावृत्त का सौभाग्य प्राप्त करते होंगे?

उत्तर क्षपक मुनिवर की सेवा में एक-एक वैयावृत्त के कार्य के लिए दो-चार, दो-चार मुनिगण नियुक्त होकर निर्यापकाचार्य की आज्ञा पालन करते हैं जैसे- 1. कोई मुनि के पैर दबाते हैं, 2. तो कोई हस्त दबाते हैं 3.कोई सिर दबाते हैं, 4. तो कोई पीठ दबाते हैं, 5. कोई करवट दिलाते हैं, 6. तो कोई धर्म ध्यानों की महिमा गाते हैं, 7. कोई शुचिता करवाते हैं, 8. तो कोई आहार को ले जाते हैं, 9. कोई आहार में खड़ा करते हैं, 10. तो कोई आहार शोधन क्रिया करते हैं, 11. कोई भीड़ में रक्षा करते हैं, 12. तो कोई पहरा देकर भी खड़े रहते हैं। 13. क्षपक मुनि के पूर्व परिजनों-मोहियों को कोई मुनि समझाते हैं, 14. तो कोई त्याग रूप सम्बोधन करते हैं, 15. कोई प्रतिक्रमण सुनाते हैं, 16. कोई स्तुति पाठ सुनाते है, 17. कोई प्रभु वंदना सुनाते हैं, 18. तो कोई णमोकार मंत्र गाते हैं, 19. कोई तैल लगाते हैं, 20. तो कोई औषध लेप करते हैं, 21. कोई गुरु भक्ति सुनाते हैं, 22. तो कोई समवसरण का वर्णन

करते हैं, 23. कोई समाधिमरण पाठ सुनाते हैं, 24 तो कोई विदेह क्षेत्र की महिमा गाते हैं, 25. कोई सम्यक्त्व की महिमा गाते हैं, 26. तो कोई वैराग्यप्रद कथायें सुनाते हैं, 27. कोई तीर्थंकरों के गुण गाते हैं, 28 कोई सल्लेखना या पण्डित मरण के गुण गाते हैं, 29 तो कोई धन्य-धन्य के शब्द ही गाते हैं। 30. कोई मुनि द्वादशांग की महिमा गाते हैं, 31. कोई अतिशय क्षेत्र का अतिशय गाते हैं, 32. तो कोई सिद्ध क्षेत्र का प्रभाव बताते हैं, 33. और कोई अकृत्रिम जिनालयों की महिमा भी गाते हैं। 34. कोई मुनि नरकों के दुःख दिखाते हैं (भाव सहित चित्रण कराते हैं), 35. कोई तिर्यञ्चों के दुःख याद दिलाते हैं, 36. तो कोई मनुष्यों के दुःखों को गाते हैं और 37. कोई देवों के दुःख बताते हैं।

38. कोई मुनि मिथ्यात्व का अपाय बताते हैं, 39. कोई पंच पापों का अपाय बताते हैं, 40. कोई निर्माल्य सेवन के दुःख बताते हैं, 41. कोई कषायों के दुःख समझाते हैं, 42. कोई पात्रदान का फल दिखाते हैं, और 43. कोई चार दान की कथाएँ सुनाते हैं।

44. कोई मुनि पंच परमेष्ठी का स्वरूप गाते हैं, 45. कोई जिनायतन सेवा का फल बताते हैं, 46. कोई मूर्ति निर्माण की महिमा गाते हैं 47. कोई चार दान की महिमा (चित्रण) सुनाते हैं और 48. कोई महाव्रतों की महिमा गाते हैं।

प्र.1454 सल्लेखना लेने वाले कोई क्षपक अगर सिद्धांतवेत्ता, स्वाध्याय-शील रहे हों तो उन्हें मुनिगण किस तरह के तत्त्व चिंतवन में आनंदित कराते हैं?

उत्तर सिद्धांतवेत्ता क्षपक के लिए कोई मुनि उन्हें 1. लोक रचना को याद दिलाते हैं, 2. कोई सप्त तत्त्वों का वर्णन सुनाते हैं, 3. कोई षड्द्रव्यों का स्वरूप सुनाते हैं, 4. कोई गुणस्थानों का स्वरूप सुनाते हैं, 5. तो कोई मार्गणा की चर्चा सुनाते हैं, 6. कोई नयों का स्वरूप कहते हैं, 7. तो कोई प्रमाण की महिमा गाते हैं, 8. कोई दस धर्मों का स्वरूप समझाते हैं, 9. कोई उपसर्ग निवारण की कथा सुनाते हैं, 10. और कोई पञ्चकल्याणक की महिमा गाते हैं। 11. कोई मुनि वचन गुप्ति आदि पच्चीस भावनाएँ सुनाते हैं, 12. कोई मुनि; षोडसकारण भावनाएँ सुनाते हैं, 13 तो कोई अनित्याशरण आदि बारह भावनाएँ सुनाते हैं, 14. कोई शास्त्राभ्यास, जिन पद नुति आदि सात भावनाओं के गुण गाते हैं, 15. कोई मैत्री, प्रमोद आदि चार भावनाएँ याद दिलाते हैं, 16. तो कोई रत्नत्रय रूप चेतन रत्नों की महिमा गाते हैं, 17. कोई संवेग, वैराग्य रूप दो भावना समझाते हैं और 18. कोई एक स्वात्मतत्त्व की भावना जगाते हैं। 19. कोई मुनि पंच परावर्तन बतलाते हैं, 20. तो कोई षट्काल परिवर्तन दिखलाते हैं, 21. कोई स्तोत्रों का अतिशय गाते हैं, 22.कोई विभिन्न पूजा, विधान का फल दर्शाते हैं और 23.कोई निरतिचार व्रतों का फल बतलाते हैं। 24. कोई मुनि उपवासों की महिमा गाते हैं, 25. तो कोई मुनि कायक्लेश में समता-सह धीरज दिलवाते हैं, 26. कोई नवधा भक्ति का फल दर्शाते हैं, 27. कोई सिद्धालय का चिंतवन करवाते हैं, 28. तो कोई सम्मेद शिखर की महिमा गाते हैं और 29. कोई मुनि पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और तत्त्व रूप पंच धारणाओं के फल से मुक्ति फल दर्शाते हैं।

प्र. 1455 निर्यापकाचार्य की अनुशास्ति अर्थात् वाणी रूप मार्गदर्शन को सुनकर और शास्त्र को समझकर क्षपक कारण पूर्वक परिणाम को करने की इच्छा रखता हुआ क्या कहता है?

उत्तर निर्यापकाचार्य और समस्त मुनि समूह के मध्य क्षपक अन्तिम मंगल-भाव प्रकट करता है कि- श्रमण-समरसीभाव युक्त होना' यह मेरी प्रथमस्थिति है। 'सर्वत्र संयत होना' ये मेरी दूसरी अवस्था है। अथवा श्रमण-समता भाव में मेरा मैत्री भाव है यह प्रथम है और सभी संयतों-मुनियों में मेरा मैत्रीभाव है यह दूसरी अवस्था है। अभिप्राय यह है कि प्रथम तो मै सुख-दुःख आदि में समान भाव को धारण करने वाला हूँ और दूसरी बात यह है कि मैं सभी जगह संयत-संयमपूर्ण प्रवृत्ति करने वाला हूँ इसलिए सभी अयोग्य कार्य या वस्तु का मैं त्याग करता हूँ यह मेरा संक्षिप्त कथन है। इस प्रकार से वचनों द्वारा क्षपक संक्षेप से आलोचना करता है। (मू.चा., भा.1, पृ.91)

प्र. 1456 निर्ग्रन्थों के ऐसे कौन-से अलब्धपूर्व वचनों को सुनकर क्षपक किस तरह की विशुद्धि को प्राप्त होता है?

उत्तर सल्लेखना के काल में निर्ग्रन्थ-मुनियों से अलब्धपूर्व, अमृतमय, जिन-वचन सुनकर क्षपक परम विशुद्धि को प्राप्त करता हुआ चिंतवन करता है कि- जिनेन्द्र देव के वचन प्रमाण और नयों से अविरुद्ध होने से सुभाषित हैं और सुख के हेतु होने से अमृतभूत हैं। ऐसे इन वचनों को मैंने पहले कभी नहीं प्राप्त किया था। अब इनको प्राप्त करके मैंने सुगति के मार्ग को ग्रहण कर लिया है। अर्थात् जिनदेव की आज्ञानुसार मैंने संयम को धारण कर लिया है। अर्थात् जिनदेव की आज्ञानुसार मैंने संयम को धारण करके मोक्ष के मार्ग में चलना शुरु कर दिया है। अब मैं मरण से नहीं डरूँगा। (मू.चा.,भा.1, पृ.91)

प्र. 1457 क्षपक; और किस तरह का विचार करता हुआ मरण से नहीं डरता है?

उत्तर क्षपक विचार करता है कि-धीर को मरना पड़ता है और निश्चित रूप से धैर्य रहित जीव को भी मरना पड़ता है। यदि दोनों को मरना ही पड़ता है तब तो धीरता सहित होकर ही मरना अच्छा है। अर्थात् सत्त्व (शक्ति) अधिक जिसमें है ऐसे धीर-वीर को भी प्राण त्याग करना पड़ता है और जो धैर्य से रहित कायर हैं-डरपोक हैं, निश्चित रूप से उन्हें भी मरना पड़ता है। यदि दोनों को मरना ही पड़ता है, उसमें कोई अन्तर नहीं है तब तो धीरतापूर्वक-संक्लेश रहित होकर ही प्राण त्याग करना श्रेष्ठ है।

प्र. 1458 कौन-सी आराधनाओं में तत्पर हुआ साधु (क्षपक) कौन-से फल को पा लेता है?

उत्तर सल्लेखना रूप शुभ अनुष्ठान से सहित साधु (क्षपक) सम्यक् प्रकार से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार आराधनाओं में तत्परता से प्रवृत्त होता हुआ पण्डित मरण करके उत्कृष्ट से तीन भवों को प्राप्त करके पश्चात् निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है।

प्र. 1459 वर्तमान (पंचम-दुषमा) काल में धारण की गई सल्लेखना से इस ही वर्तमान भव से निर्वाण की प्राप्ति क्यों नहीं होती है?

उत्तर क्योंकि वर्तमान काल में उत्कृष्ट संहनन (शक्ति) एवं शुक्लध्यान का अभाव है।

प्र. 1460 पुनः कब, किसे, किस संहनन और ध्यान से साक्षात् निर्वाण की प्राप्ति होती है?

उत्तर मोक्ष के योग्यकाल अर्थात् अवसर्पिणी सम्बन्धी सुषमादुषमा काल के अन्त में, दुषमासुषमा काल में तथा दुषमा काल के प्रारम्भ में वज्रवृषभनाराच संहनन रहते हुए निर्दोषी महाव्रती भव्यात्मा को शुक्लध्यान के माध्यम से साक्षात् निर्वाण (मोक्ष सुख) की प्राप्ति होती है।

प्र. 1461 सच्चे सल्लेखना धारक और आराधक कौन माने गये हैं?

उत्तर जो ममत्व रहित, अहंकार रहित, कषाय रहित, जितेन्द्रिय, धीर, निदान रहित और सम्यग्दर्शन से सम्पन्न है वह मरण करता हुआ आराधक होता है अर्थात् जो निर्मोह हैं गर्व रहित, क्रोधादि कषायों से रहित हैं, पंच इन्द्रिय को नियन्त्रित कर चुके हैं, सत्व और वीर्य (शक्ति) से सम्पन्न होने से धीर हैं, सांसारिक सुखों की आकांक्षा से रहित हैं और सम्यग्दर्शन से सहित हैं। वे मरण करते हुए आराधक माने गये हैं।

प्र. 1462 सल्लेखना-मरण करते हुए क्षपक के सुख पूर्वक प्रत्याख्यान कैसे होता है?

उत्तर जो कषाय रहित हैं अर्थात् जिनकी संज्वलन कषायें भी मन्द हैं, जो इन्द्रियों के निग्रह में कुशल हैं, शूर हैं अर्थात् कायर नहीं हैं, पुरुषार्थ जिनके है वे पुरुषार्थी हैं अर्थात् चारित्र के अनुष्ठान में तत्पर हैं, चतुर्गति रूप संसार के दुःखों का स्वरूप जानकर जो उससे त्रस्त हो चुके हैं ऐसे साधु के प्रत्याख्यान अर्थात् मरण के समय शरीर-आहार आदि का त्याग सुख पूर्वक अथवा सुख निमित्तक होता है। इसी हेतु से वे साधु सल्लेखना-मरण करते हुए आराधक हो जाते हैं।

प्र. 1463 संन्यास व समाधि के काल में सकल साधु संघ एवं क्षपक साधु की रक्षा तथा कर्म निर्जरा और पुण्य वृद्धि हेतु संघस्थ साधुओं को कौन-कौन से वीतराग मंत्रों का ध्यान अथवा जाप करना चाहिए?

उत्तर ऐसे पावन प्रसंग पर महामंत्र णमोकार के अतिरिक्त सम्यग्दर्शन रक्षामंत्र, अनंत चतुष्टय लक्ष्मी प्राप्ति मंत्र, परम शांति मंत्र, बृहद्शांति व परमेष्ठी पद प्राप्ति मंत्र, जीव रक्षक-वर्द्धमान मंत्र, सर्वऋद्धिसिद्धि मंत्र, निर्ग्रन्थ पद रक्षक मंत्र, सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पद प्राप्ति मंत्र, सर्व विघ्न नाशक मंत्र, उपद्रव-नाशक मंत्र, ज्ञानवृद्धि मंत्र, द्वयलोक सुख प्राप्ति मंत्र, शुक्लध्यान प्राप्ति-भावना मंत्र और परमलक्ष्य (मोक्ष) प्राप्ति मंत्र का ध्यान तथा जाप करना चाहिए।

प्र. 1464 सम्यग्दर्शन रक्षा मंत्र किसे कहते हैं।

उत्तर 'ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव-शास्त्र-गुरुभ्यो नमः' इसे सम्यग्दर्शन रक्षा मंत्र कहते हैं।

प्र. 1465 अनंत चतुष्टय-लक्ष्मी प्राप्ति मंत्र कौन-सा है?

उत्तर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्री कल्पद्रुम जिनेन्द्राय नमः' यह अनंत चतुष्टय लक्ष्मी प्राप्ति मंत्र माना जाता है।

प्र. 1466 परम शांति मंत्र कौन-सा कहलाता है?

उत्तर 'ॐ ह्रीं जगच्छांतिकराय श्री शांतिनाथाय नमः सर्वोपद्रव शांतिं कुरु-कुरु स्वाहा' यह परम शांतिदायक मंत्र कहलाता है।

प्र. 1467 बृहत् शांति एवं परमेष्ठी-पद प्राप्ति मंत्र कौन-सा है?

उत्तर 'ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेष-दोष-कल्मषाय दिव्य तेजो मूर्तये श्री शांतिनाथाय शांतिकराय सर्व विघ्नप्रणाशनाय सर्व रोगापमृत्यु विनाशनाय सर्व परकृत क्षुद्रोपद्रव विनाशनाय सर्व क्षामडामर विनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा (अमुकस्य.....) सर्व शांतिं कुरुकुरु स्वाहा'' यह मंत्र बृहत् शांति एवं परमेष्ठी पद प्रदायक मंत्र है इसमें अमुकस्य के स्थान पर जिसके उद्देश्य से यह मंत्र जपा जाय उसका नामोच्चारण किया जाता है।

प्र. 1468 जीव रक्षा कारक वर्द्धमान मंत्र कौन-सा कहलाता है?

उत्तर ॐ नमो भयवदो वड्ढमाणस्स रिसहस्स चक्कं जलंतं गच्छई आयासं लोयाणं जये वा, विवादे वा, थंभणे वा, रणंगणे वा, मोहेण वा, सव्वजीव सत्ताणं अपराजिदो भवदु रक्ख रक्ख स्वाहा।

प्र. 1469 सर्वऋद्धि-सिद्धि मंत्र कौन-सा है?

उत्तर 'ॐ ह्रीं चतुःषष्टि ऋद्धि सम्पन्न जिनेन्द्राय नमः' यह सर्व ऋद्धि-सिद्धि दायक मंत्र कहलाता है।

प्र. 1470 निर्ग्रन्थ पद रक्षक मंत्र कौन-सा कहलाता है?

उत्तर 'ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि दश धर्माङ्गाय नमः' यह मंत्र निर्ग्रन्थ (मुनि) पद् रक्षक मंत्र कहलाता है।

प्र. 1471 सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पद प्राप्ति मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर 'ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादि षोडशकारणेभ्यो नमः' यह मंत्र सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पद प्राप्ति मंत्र कहलाता है। इस मंत्र के अनुरूप आचरण आवश्यक हैं। (इसके लिए 'तीर्थोदय-काव्य (सप्तशती) आदि षोडशभावनाओं के वर्णन करने वाले ग्रन्थ अवश्य पढ़ें।)

प्र. 1472 सर्व विघ्न नाशक मंत्र कौन-सा है?

उत्तर 'ॐ ह्रीं अर्हं असिआउसा नमः सर्व विघ्न शांतिं कुरु कुरु स्वाहा' यह सर्व विघ्नशांति या सर्वविघ्न नाशक मंत्र कहलाता है।

प्र. 1473 उपद्रवनिवारक मंत्र कौन-सा है?

उत्तर 'ॐ ह्रीं अर्हं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमो नमः' यह उपद्रवनिवारक गुरु मंत्र है।

प्र. 1474 ज्ञान-वृद्धि मंत्र किसे कहा जाता है?

उत्तर 'ॐ ह्रीं द्वादशाङ्ग सरस्वती देव्यैः नमः' यह ज्ञान-वृद्धि मंत्र कहा जाता है।

प्र. 1475 द्वय लोक सुख-प्राप्ति मंत्र किसे माना गया है?

उत्तर 'ओंकाराय नमो नमः' इस मंत्र को द्वय लोक सुख-प्राप्ति मंत्र माना गया है।

प्र. 1476 शुक्ल ध्यान प्राप्ति भावना मंत्र कौन-सा कहलाता है?

उत्तर 'शुद्धोहं बुद्धोहं निरञ्जनोहं' यह मंत्र शुक्ल ध्यान प्राप्ति भावना रूप कहा जाता है।

प्र. 1477 परम लक्ष्य (मोक्ष) प्राप्ति मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' इसे परम लक्ष्य रूप मोक्ष प्राप्ति भावना मंत्र कहा जाता है।

प्र. 1478 निर्भार स्वरूप प्रदायक मंत्र किसे जानना चाहिए?

उत्तर 'निःसंगोहम्' इस मंत्र को निर्भार व निश्चिन्त स्वरूप प्रदायक गुरु मंत्र जानना चाहिए।

प्र. 1479 मनस् पवित्रीकरण गुरु-मंत्र किसे मानना चाहिए?

उत्तर 'पूयात् पवित्रो भगवान मनो मे' इस मंत्र को मनस् पवित्रीकरण गुरु मंत्र मानना चाहिए। इसे जपने से अपना मन पवित्रता को प्राप्त होता है।

प्र.1480 लोक कल्याण कारक मंत्र कौन-सा माना गया है?

उत्तर 'क्षेमं सर्वप्रजानां' इस वाक्य रूप मंत्र को लोक (प्रजा) कल्याण कारक माना गया है।

प्र.1481 सर्वलोक सौख्यकारक मंत्र किसे जानना चाहिए?

उत्तर 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' इस वाक्य रूप मंत्र को सर्वलोक सौख्य कारक जानना चाहिए।

प्र.1482 भेद विज्ञान, शुद्धोपयोग और शुक्लध्यान को प्राप्त कराते हुए केवलज्ञान को प्रकट कराने वाला गुरु मंत्र कौन-सा है?

उत्तर 'तुषमाषभिन्नं' यह मंत्र शिवभूति मुनिराज को अपने गुरु द्वारा प्राप्त हुआ था; जिसके बल से उन्होंने भेदविज्ञान को करते हुये कैवल्य की प्राप्ति की थी।

प्र.1483 बीजाक्षर मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर जैसे एक बीज में वृक्ष रूप बनने की शक्तियाँ निहित होती हैं वैसे ही बीजाक्षरों में गंभीर, विशाल व अनंत अर्थ रहता है।

प्र.1484 बीजाक्षर, वाक्य, सूत्र आदि रूप मंत्रों में अनंत अर्थ कैसे निहित रहता है? एक उदाहरण देकर समझाइए।

उत्तर जैसे रंग के एक कण में बहुत सारे जल को रंगीन बनाने की शक्ति होती है। एक अगरबत्ती में बड़े निवास स्थान को सुगंधित बनाने की शक्ति रहती है तथा एक कलीष (कंडा) में इतनी शक्तियाँ छुपी रहती हैं कि पूरे ग्राम में धुंध फैला देता है वैसे ही एक मंत्र में अनंत अर्थ रूप शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं।

प्र.1485 बीजाक्षर मंत्र कौन से हैं?

उत्तर ॐ, श्रीं, क्लीं, अर्हं, ह्रँ, ह्राँ, ह्रीं, ह्रूँ, ह्रौं और ह्रः आदि बीजाक्षर मंत्र कहलाते हैं।

प्र.1486 अनेक मंत्रों को तो जान लिया, आखिर मंत्र शब्द का अर्थ-प्रयोजन क्या होता है इसे नहीं जान पाये अतः मंत्र शब्द का अर्थ बतलाइये?

उत्तर मंत्र शब्द का अर्थ रहस्य, गुप्तवार्ता, देवता-आह्वान, मोहक, सिद्धि-प्रदायक, संकल्प, परामर्श, विचार, सूक्ति और बीज- पद आदि होता है।

प्र.1487 क्या; मंत्र का अर्थ मालूम होने पर ही मंत्र जाप देना चाहिए या जिस तरह का गुरु ने मंत्र बतला दिया उसे जपना प्रारंभ कर देना चाहिए?

उत्तर मंत्र का अर्थ ज्ञान होना उतना आवश्यक नहीं है, मंत्र के अर्थ को जाने बिना ही गुरु पर श्रद्धा धारण करते हुये कि-गुरु; वीतरागी, सम्यग्दृष्टि, दयालु, पापभीरू और चारित्रवान हैं, इनका दिया हुआ मंत्र स्वपर का हित ही करेगा। जब नाग-नागिन या जटायु पक्षी पञ्चनमस्कार मंत्र मात्र को सुनने से सुगति को प्राप्त हो गये, तो फिर हम तो गुरु के भक्त या शिष्य हैं, अतः यह मंत्र हमारा उद्धार अवश्य करेगा। यह मंत्र कर्म-निर्जरा आदि का कारण बनेगा, अतः अवश्य जपना चाहिए।

प्र. 1488 क्या; श्रद्धा मात्र होते हुये अपूर्ण मंत्र भी प्रभावकारी हो सकता है?

उत्तर हाँ! अंजन चोर ने 'आणम् ताणम्' मात्र को जपते हुये श्रद्धा मात्र से आकाशगामिनी विद्या हासिल कर ली थी।

प्र.1489 श्रद्धा मात्र से क्या गुरु वचन भी मंत्र बन जाते हैं?

उत्तर हाँ! गुरु जो संक्षिप्त सूक्ति रूप वचन कह देते हैं वे वचन बड़े अर्थ को देने वाले रहस्यात्मक वचन मंत्र बन जाते हैं। जैसे- 'देखभाल कर चलना' अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप प्रवृत्ति बनाना।

प्र. 1490 भवि का भव-भोगाकांक्षा रूपनिदान मिथ्यात्व कहलाता है; लेकिन धर्म या उत्तम गति की किञ्चित कांक्षा भी नहीं करना चाहिए क्या?

उत्तर उत्तम-मोक्ष गति या रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग रूप धर्म की कांक्षा प्रशस्त निदान कहलाने से बाधक नहीं है। अपितु पुण्यवर्धक व मोक्ष पुरुषार्थ में साधक ही है।

प्र. 1491 सल्लेखना-धारक-क्षपक अंतिम इच्छा रूप किञ्चित प्रशस्त निदान किस तरह से करता है, अथवा क्षपक सल्लेखना का फल क्या चाहता है?

उत्तर क्षपक सल्लेखना के फल के रूप में चाहता है कि-अर्हन्तदेव की जो गति हुई है वही गति मेरी हो और कृतकृत्य सिद्धों की और मोह रहित जीवों की जो गति हुई है वही गति सदा के लिए मेरी होवे।

प्र. 1492 सल्लेखना में की गई आराधना का फल क्या है?

उत्तर शुभ अनुष्ठान से सहित साधु सम्यक् प्रकार से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार आराधनाओं में तत्परता से प्रवृत्त हुआ अन्त में मरण करके उत्कृष्ट रूप से तीन भवों को प्राप्त करके पश्चात् निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

प्र. 1493 उत्कृष्ट रूप से तीन भव में मोक्ष का अर्थ क्या है?

उत्तर वर्तमान का पहला भव, स्वर्ग का दूसरा भव और चतुर्थ कालीन या मोक्ष के योग्य कर्म भूमि का प्राप्त होना तीसरा भव कहलाता है। इन तीन भवों से अधिक भव रूप संसार में न रहता हुआ मुक्त हो जाता है।

अध्याय-14

निर्यापक-लक्षण एवं मुनियों के सामाचार आदि

(आगन्तुक सामाचार, शिष्य और आर्यिका के गुरु आदि।)

प्र.1494 आचार्य कुन्दकुन्द रचित प्रवचनसार ग्रन्थ से दीक्षा गुरु एवं निर्यापक गुरु के सम्बन्ध में किस तरह का वर्णन किया गया है?

उत्तर आचार्य कुन्दकुन्द देव ने अपने प्रवचनसार ग्रन्थ में वर्णन करते हुए कहा है कि- निर्ग्रन्थ दीक्षा दायक आचार्य दीक्षा गुरु कहलाते हैं और संयम भंग होने पर पुनः व्रतों में स्थापित करने वाले श्रमण निर्यापक गुरु कहलाते हैं। (प्र.सा./च.अ./गा.10)

प्र.1495 सामाचार शब्द के निरुक्ति अर्थ कौन-से हैं?

उत्तर समता-समाचार, सम्यक्-आचार, सम-आचार और समान-आचार इस तरह समाचार के चार निरुक्ति अर्थ होते हैं।

प्र.1496 समता समाचार रूप समाचार किसे कहते हैं?

उत्तर सम का भाव समता है- रागद्वेष का अभाव होना समता समाचार है। अथवा त्रिकाल देव वंदना करना या पंच नमस्कार रूप परिणाम होना समता है अथवा सामायिक व्रत को समता कहते हैं। ये समता समाचार हैं।

प्र.1497 सम्यक् आचार रूप समाचार किस तरह से होता है?

उत्तर शोभन आचार अर्थात् निरतिचार रूप मूलगुणों का पालन करना सम्यक् आचार कहलाता है। अथवा सम्यक् आचरण अर्थात् ज्ञान या निर्दोष भिक्षा ग्रहण करना सम्यक् आचार है।

प्र.1498 आचरण या आचार से ज्ञान और भिक्षा यह अर्थ कैसे निकलता है?

उत्तर जिस चर् धातु से आचरण व आचार शब्द बनता है वह चर् धातु भक्षण करने और गमन करने रूप दो अर्थों में मानी गई है, और गमन अर्थ वाली सभी धातुएँ ज्ञान अर्थवाली भी होती हैं इस नियम से चर् धातु का एक बार ज्ञान अर्थ करना तब समीचीन जानना ऐसा अर्थ विवक्षित (मुख्य) हुआ और, एक बार भक्षण अर्थ करने पर निर्दोष आहार लेना ऐसा अर्थ हुआ। अतः समीचीन ज्ञान और निर्दोष आहार ग्रहण को भी सम्यक् आचार रूप समाचार कहा है।

प्र.1499 सम आचार रूप सामाचार क्या कहलाता है?

उत्तर प्राणिबध आदि के त्याग करने रूप मुनियों के पञ्च महाव्रतों को सम आचार कहते हैं। अथवा सम-उपशम अर्थात् क्रोधादि कषायों के अभाव रूप परिणाम से सहित जो आचरण है वह सम आचार है। अथवा सम् शब्द से दसलक्षण धर्म को भी ग्रहण किया जाता है अतः इन क्षमादि धर्मों सहित जो

आचार है वह समाचार है। अथवा आहार ग्रहण और देववन्दना आदि क्रियाओं में सभी साधुओं को सह अर्थात् साथ ही मिलकर करना समाचार कहलाता है।

प्र.1500 समान आचार रूप सामाचार से क्या तात्पर्य है?

उत्तर 'मान' अर्थात् परिणाम 'स' अर्थात् सह या साथ जो रहता है वह समान है। अथवा मान का अर्थ प्रमाण रूप ज्ञान होता है वह परिणाम, या ज्ञान सहित जो आचार है वह समान आचार कहलाता है। अथवा सभी समीचीन साधुओं का समान रूप से पूज्य या इष्ट जो आचार (वंदनादि रूप सम्मान) देते हैं, वह समान आचार रूप सामाचार है।

प्र.1501 संक्षेप रूप तथा अन्य तरह से सामाचार का अर्थ कैसा है?

उत्तर समता-आचार-समरसी भाव का होना, सम्यक्-आचार-समीचीन आचार का होना, सम-आचार सभी साधुओं का हानि-वृद्धि रहित (निर्दोष) समान आचरण होना और समान-आचार- कायोत्सर्ग आदि से समान प्रमाण रूप है आचार जिसका, इस तरह सामाचार चार तरह का संक्षेप रूप से भी कहा गया है। (मू.चा., भाग.1, पृ.109)

प्र.1502 सामाचार लक्षण भेद रूप से कितने प्रकार है?

उत्तर सामाचार लक्षण भेद रूप से औघिक और पद विभागी इस तरह दो प्रकार का है।

प्र.1503 समाचार और सामाचार में क्या विशेषता है?

उत्तर समाचार को ही प्राकृत भाषा में सामाचार कहा जाता है। समाचार का 'स' प्राकृत व्याकरण के निमित्त से दीर्घ अर्थात् 'सा' हो जाता है। दोनों का अर्थ सम्यक् (समीचीन) आचार है।

प्र. 1504 औघिक समाचार किसे कहते हैं?

उत्तर सामान्य या संक्षेप रूप समाचार को औघिक समाचार कहते हैं।

प्र.1505 पदविभागी समाचार किस प्रकार का होता है?

उत्तर अर्थ प्रतिपादक पदों का विभाग-भेद जिसमें पाया जाता है या विस्तार रूप जो समाचार होता है वह पदविभागी समाचार है। इस तरह समाचार दो ही हैं।

प्र.1506 औघिक समाचार के कितने भेद हैं और कौन से हैं?

उत्तर औघिक समाचार दशभेद वाला है- इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार, आसिका, निषेधिका, आपृच्छा, प्रतिपृच्छा, छन्दन, सनिमन्त्रणा और उपसंपत्।

प्र. 1507 इच्छाकार किसे कहते हैं? और वह किस तरह किया जाता है?

उत्तर इच्छा-इष्ट या स्वीकृत को करना-आदर देना इच्छाकार है। जैसे- इष्ट रूप सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय में अथवा शुभ परिणाम में इच्छाकार होता है। अर्थात् इनको स्वीकार करना, इनमें हर्ष-भाव होना और इनमें स्वेच्छा से प्रवृत्ति करना ही इच्छाकार कहलाता है।

प्र.1508 मिथ्याकार क्या है? और उसमें क्या करने योग्य है?

उत्तर मिथ्या-असत्य करना मिथ्याकार है अर्थात् अशुभ परिणाम का त्याग करना। जैसे-अपराध अर्थात् अशुभ परिणाम अथवा व्रतादि में अतिचार होने पर ''तस्स मिच्छामि दुक्कडं'' कहकर मिथ्याकार होता है। अर्थात् मन-वचन-काय से कृत अपराधों से दूर होना मिथ्याकार कहलाता है।

प्र. 1509 तथाकार क्या है? और वह किस तरह किया जाता है?

उत्तर सत् अर्थात् प्रशस्त अर्थ के प्रतिपादित किये जाने पर ऐसा ही है इस प्रकार बोलना तथाकार है। जैसे-प्रति श्रवण अर्थात् गुरु के द्वारा सूत्र और अर्थ प्रतिपादित होने पर उसे सुनकर 'आपने जैसा प्रतिपादित किया है वैसा ही है, अन्यथा नहीं' ऐसा अनुराग व्यक्त करना तथाकार कहलाता है।

प्र. 1510 आसिका क्या है? और वह कहाँ पर कैसे की जाती है?

उत्तर पूछकर गमन करना आसिका है। जैसे- वसतिका (निवासस्थान) आदि से निकलते समय देवता या गृहस्थ आदि से पूछकर निकलना अर्थात् अस्सहि-अस्सहि-अस्सहि बोलना अथवा पाप क्रियाओं से मन को हटाना आसिका कहलाती है।

प्र. 1511 निषेधिका क्या है और वह कहाँ पर और कैसे की जाती है?

उत्तर पूछकर प्रवेश करना निषेधिका है। जैसे- वसतिका आदि में प्रवेश करते समय वहाँ पर स्थित देव या गृहस्थ आदि की स्वीकृति लेकर अर्थात् निस्सही-निस्सही-निस्सही शब्द का उच्चारण करके पूछकर वहाँ प्रवेश करना और ठहरना अथवा सम्यग्दर्शनादि में स्थिर भाव रखना निषेधिका कहलाती है।

प्र. 1512 आपृच्छा क्या है और वह किस तरह से की जाती है?

उत्तर अपने कार्य के प्रति गुरु आदि का अभिप्राय लेना या पूछना आपृच्छा है। जैसे- अपने कार्य-प्रयोजन के आरम्भ में अर्थात् पठन, गमन, या योगग्रहण आदि कार्यों के प्रारम्भ में गुरु आदि की वन्दना करके उनसे पूछना आपृच्छा कहलाती है।

प्र. 1513 प्रतिपृच्छा किसे कहते हैं और वह कहाँ किस तरह से की जाती है?

उत्तर निषिद्ध अथवा अनिषिद्ध जो वस्तुएँ हैं उनको ग्रहण करने के लिए पुनः पूछना प्रतिपृच्छा है अर्थात् जैसे- समान है अनुष्ठान जिनका वे सधर्मा हैं तथा गुरु शब्द से दीक्षा गुरु, शिक्षा गुरु, उपदेश-दाता गुरु अथवा तपश्चरण में या ज्ञान में अधिक जो गुरु हैं- इन सधर्मा या गुरुओं से कोई उपकरण शिष्य आदि पहले लिये थे पुनः उन्हें वापस दे दिये, यदि पुनरपि उनको ग्रहण का अभिप्राय हो तो पुनः पूछकर लेना प्रतिपृच्छा है।

प्र. 1514 छन्दन क्या है? और कैसे किया जाता है?

उत्तर अनुकूल प्रवृत्ति करना छन्दन है। अर्थात् जैसे- जिन गुरु या साधर्मी से जो कुछ भी पुस्तक आदि उपकरण (या शिष्यादि) लिये हों उसमें उनके अभिप्राय के अनुकूल प्रवर्तन-उपयोग करना छन्दन कहलाता है।

प्र. 1515 सनिमन्त्रणा क्या है? और उसे कैसे करना चाहिए?

उत्तर सत्कार करके याचना करना अर्थात् गुरु को आदर पूर्वक नमस्कार आदि करके उनसे किसी वस्तु या आज्ञा को माँगना सनिमन्त्रणा है। जैसे-अगृहीत-अन्य किसी की पुस्तक आदि वस्तुओं के विषय में आवश्यकता होने पर गुरुओं से सत्कार पूर्वक याचना करना या ग्रहण कर लेने पर विनय-पूर्वक उनसे निवेदन करना निमन्त्रणा या सनिमन्त्रणा कहलाती है।

प्र. 1516 उपसंपत् क्या है? और वह कैसे करना चाहिए?

उत्तर 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा गुरुओं से अपना निवेदन करना उपसंपत् है। जैसे- गुरुकुल अर्थात् गुरुओं के आम्नाय-संघ में, गुरुओं के विशाल पादमूल में 'मैं आपका हूँ', इस प्रकार से आत्म का त्याग करना-आत्म समर्पण कर देना, उनके अनुकूल ही सारी प्रवृत्ति करना यह उपसंपत् है। अर्थात् अतिशय रूप से गुरु को अपना जीवन समर्पित कर देना उपसंपत् कहलाता है।

प्र. 1517 आगम में उद्देश्य और निर्देश का लक्षण क्या है?

उत्तर नाम कथन को उद्देश्य कहते हैं और उसके लक्षण आदि रूप से वर्णन करने को निर्देश कहते हैं। जैसा उद्देश्य होता है वैसा ही निर्देश होता है ऐसा न्याय है।

प्र. 1518 पद विभागी समाचार का विशेष लक्षण क्या है?

उत्तर एक प्रातःकाल से लेकर दूसरे प्रातःकाल तक अर्थात् अहोरात्र पर्यन्त श्रमणगण निरन्तर जिन नियम आदि का पालन करते हैं वह सब पदविभागी समाचार कहलाता है।

प्र. 1519 औघिक समाचार संबंधी तथाकार के विषय में कही जाने वाली वाचना किसे कहते हैं?

उत्तर जीवादि पदार्थों का व्याख्यान करना वाचना है अथवा गुरु के मुख से सिद्धांत ग्रन्थों का सुनना वाचना है।

प्र. 1520 उपदेश क्या कहलाता है?

उत्तर आचार्य परंपरागत अविसंवाद रूप जिसका गुरु वर्णन करते हैं ऐसा धर्म उपदेश कहलाता है।

प्र. 1521 सूत्र किसके कारणभूत हैं?

उत्तर सूक्ष्म अर्थ को सूचित करने वाले और वृत्ति, वार्तिक तथा भाष्य के कारण भूत सूत्र कहलाते हैं।

प्र. 1522 टीका किसे कहते हैं?

उत्तर सूत्र का विशद अर्थ करने के लिये जो वृत्ति, वार्तिक और भाष्य रूप अर्थात् विशेष विश्लेषण रूप रचनायें की जाती हैं उन्हें टीका कहते हैं।

प्र. 1523 सूत्रार्थ कथन क्या है?

उत्तर सूत्र के अर्थ का कथन करना या सूत्र और अर्थ दोनों का कथन करना सूत्रार्थ कथन है।

प्र. 1524 निषेधिका, आसिका के निमित्त या जहाँ निषेधिका आसिका की जाती है ऐसे स्थान कौन से हैं?

उत्तर कन्दरा, पुलिन, गुफा आदि स्थानों में निषेधिका, आसिका करना चाहिए। आदि शब्द से नदी, ग्राम, गृह भी ग्रहण किये जा सकते हैं।

प्र. 1525 कन्दरा, पुलिन, गुफा किसे कहते हैं?

उत्तर जल प्रवाह से विदीर्ण हुआ- विभक्त प्रदेश कन्दरा कहलाता है। नदी अथवा सरोवर के जल से रहित प्रदेश को पुलिन अथवा सैकत कहते हैं। (सैकत अर्थात् बालु का ढेर)। पर्वत के पार्श्व भाग में जो बिल अर्थात् बड़े-बड़े छिद्र होते हैं उन्हें गुफा कहते हैं।

प्र. 1526 उपसंपत् का विशेष अर्थ और उसके प्रकार कौन से हैं?

उत्तर उपसंपत् का अर्थ उपसेवा अर्थात् अपना निवेदन करना अथवा विनय पूर्वक आत्म समर्पण करना उपसंपत् कहलाता है। इसके पाँच भेद हैं- विनयोपसंपत्, क्षेत्रोपसंपत्, मार्गोपसंपत्, सुख-दुखोपसंपत् और सूत्रोपसंपत्।

प्र. 1527 विनयोपसंपत् किसे कहते हैं?

उत्तर प्राघूर्णिक या पादोष्ण का विनय और उपचार करना, उनके निवास स्थान और मार्ग के विषय में प्रश्न करना, उन्हें उचित वस्तु प्रदान करना और उनके अनुकूल प्रवृत्ति करना आदि विनयोपसंपत् कहलाता है।

प्र. 1528 प्राघूर्णिक या पादोष्ण किन्हें कहते हैं?

उत्तर आगंतुक (अन्य संघ या स्थान से आने वाले) साधु को प्राघूर्णिक या पादोष्ण कहते हैं।

प्र. 1529 विनयोपसंपत् को विशेष रूप से किस तरह समझना चाहिए?

उत्तर आगन्तुक साधु का अंगमर्दन करना, प्रिय वचन बोलना आदि विनय है। उन्हें आसन आदि देना उपचार है। आप किस गुरुगृह (संघ) के हैं? किस मार्ग से आये हैं? और आपके दीक्षा गुरु का नाम क्या है? ऐसे प्रश्न करना, तथा उन्हें संस्तर-घास, पाटा, चटाई आदि देना, पुस्तक शास्त्र आदि देना, उनकी अनुकूलताओं पर ध्यान देना आदि आत्मसमर्पण रूप व्यवहार या निज समान बनाने रूप व्यवहार विनयोपसंपत् कहलाता है।

प्र. 1530 क्षेत्रोपसंपत् किसे कहते हैं?

उत्तर जिस क्षेत्र में संयम, तप, गुण, शील तथा यम और नियम वृद्धि को प्राप्त होते हैं उस क्षेत्र में निवास करना, यह क्षेत्रोपसंपत् जानना चाहिए।

प्र. 1531 मार्गोपसंपत् का लक्षण क्या है?

उत्तर संयम, तप, ज्ञान और ध्यान से युक्त आगन्तुक और स्थानीय अर्थात् संघस्थ साधुओं के बीच जो परस्पर में मार्ग से गमनागमन के विषय में सुख समाचार पूछना मार्गोपसंपत् कहलाता है।

प्र. 1532 साधु तो आरम्भ परिग्रह से विरहित होते हैं वे अन्य साधु के लिए वसति, आहार, औषधादि कैसे देंगे?

उत्तर किसी वसतिका में ठहरे आचार्य उस वसतिका में ही उचित स्थान देंगे या अन्य वसतिकाओं में उनकी व्यवस्था करा देंगे अथवा श्रावकों द्वारा वसतिका की व्यवस्था करायेंगे, ऐसे ही श्रावकों के द्वारा उनके

स्वास्थ्य आदि के अनुकूल आहार या रोग आदि के निमित्त औषधि आदि की व्यवस्था करायेंगे। यही व्यवस्था सर्वत्र विधेय है।

प्र. 1533 सूत्रोपसंपत् किसे कहते हैं?

उत्तर सूत्र के विषय में उपसंपत् के तीन प्रकार है- सूत्रोपसंपत्, अर्थोपसंपत् और तदुभयोपसंपत्। पुनः लौकिक वेद और समय की अपेक्षा से वह एक-एक भी तीन प्रकार से समझना चाहिए।

प्र. 1534 सूत्रोपसंपत्, अर्थोपसंपत्, तदुभयोपसंपत् (सूत्रार्थोपसंपत्) का लक्षण क्या है?

उत्तर 1. सूत्र के लिये प्रयत्न करना सूत्रोपसंपत् है। 2.अर्थ को समझने के लिये प्रयत्न करना अर्थोपसंपत् है। 3. सूत्र व अर्थ दोनों के लिये प्रयत्न करना सूत्रार्थोपसंपत् है।

प्र. 1535 लौकिक, वैदिक और सामायिक शास्त्रों का लक्षण क्या है?

उत्तर व्याकरण, गणित आदि शास्त्रों को लौकिक शास्त्र कहते हैं। प्रथमानुयोग आदि चारों अनुयोगों को वेद कहा गया है, इनसे संबंधित शास्त्र अथवा स्वमत-परमत (स्वसमय-परसमय) के विषय में परमत का खण्डन करके स्वमत का वर्णन करना भी वैदिक शास्त्र में आता है। सिद्धांत ग्रन्थ जैसे- षट्खण्डागम आदि और अध्यात्म शास्त्र समयसार आदि सामायिक शास्त्र कहलाते हैं।

प्र. 1536 निर्ग्रंथ मुनि या आचार्य परमेष्ठी को आयतन किस अपेक्षा से कहा जाता है?

उत्तर जो तेरह प्रकार के चारित्र और तेरह प्रकार की क्रियाओं में उद्यत तथा सर्व शास्त्रों में पारंगत होते हैं; ऐसे आचार्य आदि आयतन शब्द से कहे जाते हैं।

प्र.1537 छह आयतन कौन से होते हैं?

उत्तर सर्वज्ञ देव, सर्वज्ञ का मंदिर, ज्ञान, ज्ञान से संयुक्त ज्ञानी, चारित्र और चारित्र से युक्त साधु ये छह आयतन हैं।

प्र. 1538 कोई मुनि अपने गुरु- आचार्य (दीक्षा-शिक्षा गुरु) से विशेष अध्ययन हेतु जब यह पूँछता है कि- आपके चरणों की कृपा से अब मैं अन्य आयतन को प्राप्त करना चाहता हूँ आप मुझे यथायोग्य आज्ञा प्रदान करें और वह मुनि इस विषय में पाँच-छह बार प्रश्न करता है इस प्रसंग में पुनः - पुनः प्रश्न करने में क्या हेतु है?

उत्तर इसका उत्तर देते हुये आचार्य कहते हैं कि शिष्य द्वारा पुनः - पुनः आज्ञा हेतु पूँछा जाना यह शिष्य का उत्साह प्रकट करता है अथवा ऐसा करने से विशेष विनय भी प्रकट होती है। अर्थात् पुनः -पुनः आज्ञा लेने से आचार्य के प्रति विशेष विनय और अपना अधिक ज्ञान प्राप्त करने में उत्साह मालूम होता है।

प्र. 1539 अन्य आयतन की ओर विहार करता हुआ मुनि किसके साथ विहार करता है?

उत्तर अपने पूज्य गुरु से आज्ञा प्राप्त कर वह मुनि अपने सहित चार, तीन या दो मुनि होकर विहार करता है। सारांश रूप से उत्कृष्ट तो यह है कि वह मुनि अपने साथ तीन मुनियों को लेकर जाये। मध्यम मार्ग यह है कि दो मुनियों को साथ ले जावे और जघन्य मार्ग यह है कि एक मुनि को अपने साथ लेकर जावे।

अकेले जाना उचित नहीं है।

प्र. 1540 एकल विहारी साधु कैसे होते हैं?

उत्तर जो तप, सूत्र, सत्त्व, एकत्व, भाव, संहनन और धैर्य इन सबसे परिपूर्ण दीक्षा और आगम में बली मुनि एकल विहारी स्वीकार किये गये हैं।

प्र. 1541 एकल विहारी महामुनि के जीवन में होने वाले तप, सूत्र, सत्त्व, एकत्व, भाव, संहनन और धैर्य तथा दीक्षा और आगम में बली रूप गुणों का अर्थ क्या है?

उत्तर **तप**- अनशनादि बारह प्रकार का तप है।

सूत्र- बारह अंग और चौदह पूर्व को सूत्र कहते हैं। अथवा उस काल, क्षेत्र के अनुरूप जो आगम है वह भी सूत्र है तथा प्रायश्चित्त ग्रन्थ आदि भी सूत्र नाम से कहे जाते हैं।

सत्त्व- शरीरगत बल को, अस्थि की शक्ति को अथवा भावों के बल को सत्त्व कहते हैं।

एकत्व- शरीर आदि से भिन्न अपनी आत्मा में रति करना एकत्व है।

भाव- शुभ परिणाम को भाव कहते हैं।

संहनन- अस्थियों और त्वचा की दृढ़ता को संहनन कहते हैं। जो वज्रवृषभ आदि तीन संहननों में विशेष रहती है।

धैर्य- मन के बल को धैर्य कहते हैं या क्षुधादि से व्याकुल नहीं होना धैर्य कहलाता है।

दीक्षा- जो चिर-प्रवर्जित अर्थात् बहुत काल से दीक्षित व तपस्वी है।

आगम में बली- आचार संबंधी सिद्धांत में भी अक्षुण्य है अर्थात् निष्णात है।

इस तरह आचार ग्रन्थों के अनुकूल जो चर्या में निपुण हैं ऐसे गुण विशिष्ट मुनि को ही जिनेन्द्र देव ने एकलविहारी होने की अनुमति दी है।

प्र. 1542 मुनि को कहाँ-कहाँ स्वच्छन्द प्रवृत्ति को छोड़कर गुरु संघ में रहकर एक साथ प्रवृत्ति करना चाहिए?

उत्तर मुनि को गमन, आगमन, सोने, बैठने, किसी वस्तु का ग्रहण, आहारचर्या, उत्सर्ग समिति (लघु व दीर्घ शंकादि) और वार्ता बोल-चाल आदि में स्वच्छन्दता न करते हुए गुरु संघ सह ही प्रवृत्ति करना चाहिए।

प्र. 1543 यदि मुनि अकेला विहार करता तो कौन-कौन से दोष आते हैं?

उत्तर एकल विहार के दोष-

1. गुरु की निन्दा- शील शून्य मुनि को किसने दीक्षित किया है, ऐसा लोग कहने लगते हैं।

2. श्रुत का विनाश- एकाकी साधु को देखकर अन्य मुनि भी ऐसे हो जाते हैं, पुनः कुछ अन्य भी मुनि देखादेखी कर अपने गुरु- संघ में नहीं रहते हैं तब श्रुत-शास्त्रों के अर्थ को ग्रहण न करने से श्रुत का नाश हो जाता है।

3. तीर्थ की मलिनता- तीर्थ का अर्थ जिन या जैन शासन है। ऐसे जैन शासन में सभी मुनि ऐसे ही (स्वच्छन्द) होते होंगे ऐसा मिथ्यादृष्टि लोग कहने लगते हैं। जिस कारण जैन शासन मलिन प्रतीत होता है।

4. मूढ़ता- निरर्गलता एवं लोक निंदा से बुद्धि भी विकृत हो जाती है।

5. आकुलता- भय या अपमानादि से निराकुलता नहीं रह पाती है।

6. कुशीलता- निरंकुशता के अभाव से व्रतों में विकृति आ जाती है।

7. पार्श्वस्थता- सहधर्मी के अभाव में दुर्गुण प्रवेश कर जाते हैं।

प्र. 1544 मुनि के अकेलेपन में और कौन-कौन-सी विपत्तियाँ आ जाती हैं?

उत्तर एकाकी विहार से मुनि को कंटक-कांटे, ठूँठ, विरोधी-क्रोधी जन, कुत्ता, गौ आदि पशु, सर्प आदि हिंसक प्राणी, म्लेच्छादि नीच जन, विषैला आहार और हैजा व अर्जीण आदि रोगों से आत्म-विपत्तियाँ आ जाती हैं। अतएव मुनि को अकेले विहार नहीं करना चाहिए।

प्र. 1545 यदि ऐसा है तो मुनि को कैसे रहना चाहिए?

उत्तर यदि विशाल संघ न हो तो मुनि को गण या गच्छ के साथ ही रहना चाहिए।

प्र. 1546 गण और गच्छ किसे कहते हैं?

उत्तर तीन मुनियों के समूह को गण और सात मुनियों के समूह को गच्छ कहते हैं।

प्र. 1547 एकाकी विहार करने वाले मुनि के और कौन-कौन-से पापस्थान आगम में वर्णित किये गये हैं?

उत्तर एकाकी रहने वाले मुनि के पापस्थान मूलाचार ग्रन्थ में इस तरह बतलाये हैं-

1. आज्ञा-उलंघन- जिनेन्द्र देव के उपदेश का उलंघन होता है।

2. अनवस्था- एकाकी विचरण की परम्परा चल पड़ती है।

3. मिथ्यात्व सेवन- मिथ्यादृष्टियों से मिथ्यात्व का संस्कार पड़ जाता है।

4. आत्मनाश- मुनि के निजी गुण सम्यग्दर्शनादि का नाश हो जाता है।

5. संयम की विराधना- निरर्गल जीवन होने से संयम (व्रतशीलादि) की भी विराधना हो जाती है। अत: जिन कल्पी-उत्तम संहनन आदि गुणों से युक्त मुनि के सिवाय सामान्य-अल्पशक्ति वाले मुनियों को एकल विहारी होने के लिए जिनेन्द्र देव की आज्ञा नहीं है।

प्र. 1548 गुरुकुल में होने वाले मुनियों के पाँच आधार कौन-से हैं?

उत्तर गुरुकुल में होने वाले मुनियों के पाँच आधार आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और गणधर होते हैं।

प्र. 1549 गुरुकुल के पाँच आधारों के लक्षण क्या हैं?

उत्तर **आचार्य**- जिनके पास मुनि-शिष्यगण आचरण ग्रहण करते हैं।

उपाध्याय- जिनके पास मुनि-शिष्यगण अध्ययन करते हैं।

प्रवर्तक- जो संघ का प्रवर्तन (व्यवस्थापन) करते हैं।

स्थविर- जो शिष्यों को आचरण में स्थिर दृढ़ बनाते हैं।

गणधर- जो सम्पूर्ण संघ के रक्षक होते हैं।

अर्थात्- 1. जो शिष्यों के अनुग्रह रूप ग्रहण करने में कुशल होते हैं, दीक्षा आदि के द्वारा शिष्यों पर और स्वयं पर अनुग्रह (उपकार) करने वाले हैं, वे आचार्य कहलाते हैं।

2. जो दश प्रकार के धर्म के उपदेश व आचरण से पूर्ण हैं, वे उपाध्याय कहलाते हैं।

3. जो चर्या आदि से संघ का प्रवर्तन (योग्य व्यवस्था बनवाने) रूप कार्य करते हैं वे प्रवर्तक कहलाते हैं।

4. जो मर्यादा का उपदेश देने वाले, संयम में दृढ़ करने वाले होते हैं वे स्थविर कहलाते हैं। और अंत में जो सबकी रक्षा करते हुए-

5. मुनिगण का पालन करने वाले होते हैं वे गणधर कहलाते हैं। जिस संघ में ये पाँच आधार रहते हैं उसी संघ में निवास करना चाहिए। (यह व्यवस्था या परम्परा शताधिक या सहस्राधिक शिष्यों के समुदाय की अपेक्षा प्रतीत होती है।)

प्र. 1550 विहार करते हुए मार्ग के मध्य जो उपकरण या शिष्य आदि का लाभ होता है उनको ग्रहण करने के लिए कौन योग्य है?

उत्तर मुनियों के विहार मार्ग के ग्राम व नगरों में जो कुछ भी सचित्त-छात्र आदि, अचित्त-पुस्तक आदि और मिश्र-पुस्तक आदि से सहित शिष्य आदि मिलते हैं उन सब द्रव्यों के स्वामी वे संघ नायक आचार्य होते हैं।

प्र. 1551 वे संघ के नायक आचार्य किन गुणों से युक्त होना चाहिए?

उत्तर वे आचार्य शिष्यों के संग्रह और अनुग्रह में कुशल, सूत्र के अर्थ में विशारद, कीर्ति से प्रसिद्धि को प्राप्त, क्रिया और चारित्र में तत्पर और ग्रहण करने योग्य तथा उपादेय वचन बोलने वाले होते हैं।

प्र. 1552 संग्रह, अनुग्रह आदि का विशेष अर्थ क्या है?

उत्तर **संग्रह**- दीक्षा आदि देकर शिष्यों को अपना बनाना संग्रह कहलाता है।

अनुग्रह- जिन्हें दीक्षा आदि दे चुके हैं ऐसे शिष्यों का शास्त्र आदि के द्वारा संस्कार करते हुए दृढ़ता से अभ्यास कराना तथा उन्हें किसी पद में आगे बढ़ाना अनुग्रह है।

सूत्र व अर्थ में विशारद- जो सूत्र और अर्थ का विस्तार से प्रतिपादन करने वाले हैं।

कीर्ति से प्रसिद्धि को प्राप्त- जिनकी कीर्ति सर्वत्र फैल रही है।

क्रिया-पालक- जो पञ्च नमस्कार मंत्र, छह आवश्यक, आसिका और निषेधिका इन तेरह प्रकार की क्रियाओं के पालक हैं।

चारित्र-पालक- जो पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति और त्रिगुप्ति रूप तेरह प्रकार के चारित्र के पालन में

लवलीन हैं।

ग्राह्य व आदेय वचन- जिनके वचन ग्राह्य और आदेय हैं, अर्थात् जैसे- गुरु के कुछ भी कहे जाने पर 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार के भाव से उन वचनों को ग्रहण करना ग्राह्य है और प्रमाणीभूतवचनों को आदेय कहते हैं। जिनके वचन ग्राह्य और आदेय हैं ऐसे उपर्युक्त सभी गुणों से समन्वित ही आचार्य होते हैं।

प्र. 1553 आचार्य और कौन-कौन गुणों से समन्वित होते हैं?

उत्तर जो गंभीर, दुर्धर्ष, शूर और धर्म प्रभावक होते हैं तथा भूमि, चन्द्र और समुद्र के गुणों के सदृश होते हैं अर्थात्

गंभीर- जो क्षोभित नहीं होने से अक्षोभ्य हैं और गुणों में अगाध (असीम गहरे) हैं, वे गंभीर कहलाते हैं।

दुर्धर्ष- जिनका प्रवादियों के द्वारा परिभव अर्थात् तिरस्कार नहीं किया जा सकता है, वे दुर्धर्ष कहलाते हैं।

शूर- जो शौर्य अर्थात् निर्भीक गुण से सहित या समर्थ रहते हैं उन्हें शूर कहते हैं।

धर्म-प्रभावक- रत्नत्रय और दशधर्मों की प्रभावना या अरिहंत भगवान के प्रवचनों की प्रभावना करना जिनका स्वभाव है, वे धर्म-प्रभावक कहलाते हैं।

भूमि- जो क्षमा गुण में भूमि के सदृश होते हैं।

चन्द्र- जो सौम्य गुण से चन्द्रमा के सदृश होते हैं।

समुद्र- जो निर्मलता गुण से समुद्र के समान होते हैं।

ऐसे इन विशिष्ट गुणों से ही समन्वित आचार्य होते हैं।

प्र. 1554 किसी समीचीन परम्परा (आर्ष-परम्परा) के आयासपूर्वक निर्ग्रन्थ दिगम्बर आगन्तुक मुनि को देखकर संघस्थ मुनियों में सामाचार की क्या प्रतिक्रिया होती है?

उत्तर आयास-पूर्वक अर्थात् पर संघ से प्रयास कर आते हुए आगन्तुक मुनि को देखकर संघ के सभी मुनि उठकर खड़े हो जाते हैं। किसलिए? मुनि के प्रति वात्सल्य के लिए, सर्वज्ञदेव की आज्ञा पालन करने के लिए, आगन्तुक साधु को अपनाने के लिए और उनको (जिन-मुद्रा को) प्रणाम करने के लिए वे संयत तत्क्षण खड़े हो जाते हैं। इसी तरह वंदना-प्रतिवंदना कर रत्नत्रय की क्षेमकुशलता को भी पूछते हैं।

प्र. 1555 आगन्तुक मुनि के लिए वास्तव्य आचार्य संघ में स्थान पाने हेतु तथा वास्तव्य आचार्य संघस्थ मुनियों द्वारा आगन्तुक मुनि को अपनाने हेतु तीन रात्रि पर्यंत कौन-कौन-सी जगह कौन-कौन-सी क्रियाओं पर परीक्षणार्थ आपस में नजर रखी जाती है?

उत्तर छह आवश्यक क्रिया आदि के कायोत्सर्ग आदि प्रसंगों में, किसी वस्तु को चक्षु इन्द्रिय से देखकर पुनः पिच्छिका से परिमार्जन कर ग्रहण करते हैं या नहीं ऐसी प्रतिलेखन क्रिया में, वचन बोलने में और

किसी वस्तु के प्रतिलेखन पूर्वक धरने या उठाने में, स्वाध्याय क्रिया में, एकाकी गमन-आगमन करने में और चर्या के मार्ग में, ये साधु आपस में एक-दूसरे की परीक्षा करते हैं। अर्थात् इनकी क्रियाएँ आगमोक्त हैं या नहीं ऐसा देखते हैं।

प्र. 1556 आगन्तुक साधु व वास्तव्य साधुओं की आपस में परीक्षा करने के उपरान्त संघस्थ प्रक्रिया किस तरह घटित होती है?

उत्तर आगन्तुक मुनि जिस दिन आये हैं उस दिन मार्ग के श्रम को दूर करके विश्रान्ति में बिताकर पुनः आपस में परीक्षा करके वास्तव्य संघस्थ के आचरण को शुद्ध जानकर दूसरे दिन या तीसरे दिन आचार्य के निकट आकर विनयपूर्वक अपने विद्या-अध्ययन हेतु आगमन के कार्य को आचार्य-देव के पास निवेदन करते हैं। अथवा संघस्थ आचार्य के शिष्य मुनिवर्ग उस आगन्तुक मुनि की परीक्षा करके 'यह ग्रहण करने योग्य है' ऐसा आचार्य-परमेष्ठी के समीप निवेदन करते हैं।

प्र. 1557 आगन्तुक मुनि की विनय और चर्या देखकर संघस्थ आचार्य-भगवन् आगन्तुक से कौन-कौन-से प्रश्न पूछते हैं?

उत्तर आचार्य गुरुदेव; आगन्तुक मुनि का नाम, कुल, गुरु, दीक्षा के दिन, वर्षावास, आने की दिशा, शिक्षा, प्रतिक्रमण आदि के सम्बन्ध में पूछते हुए प्रश्न करते हैं जैसे कि- तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हारा कुल या गुरु परम्परा क्या है? तुम्हारे गुरु कौन हैं? तुम्हें दीक्षा लिये कितने दिन हुए हैं? तुमने वर्षायोग कितने और कहाँ-कहाँ किये हैं? तुम किस दिशा से आये हो? तुमने क्या-क्या सुना है? तुम्हारे कितने प्रतिक्रमण हुए हैं और कितने नहीं हुए? और तुम्हें अभी क्या सुनना है? तुम किस मार्ग से आये हो? इत्यादि प्रश्न करते हैं। तब शिष्य उन आचार्य भगवन् को समुचित उत्तर देता है।

प्र. 1558 प्रश्नों के उत्तर सुनकर और उसके स्वरूप को जानकर आचार्य देव क्या कहते हैं या क्या करते हैं?

उत्तर यदि आगन्तुक मुनि चारित्र और क्रियाओं में शुद्ध है, नित्य ही उद्यमशील है अर्थात् अतिचार रहित आचरण वाला है, विनयी और बुद्धिमान है तो वह जो पढ़ना चाहता है उसे अपने ज्ञान की सामर्थ्य के अनुसार ग्रन्थ पढ़ाते हैं। अथवा उसे संघ में स्वीकार करके उसे उसकी बुद्धि के अनुरूप चर्या करवाते हैं।

प्र. 1559 यदि आगन्तुक मुनि उपर्युक्त गुण विशिष्ट नहीं है तो क्या करने योग्य है?

उत्तर यदि आगन्तुक मुनि अन्य रूप है अयोग्य है तो प्रायश्चित्त को अधिकारी छेदोपस्थापना के योग्य होता है। यदि छेदोपस्थापना अस्वीकार होने पर भी आचार्य उसे संघ में रख लेते हैं तो वे आचार्य भी प्रायश्चित्त के योग्य हो जाते हैं। (मू.चा./भा.1, गा.167)

प्र. 1560 यदि आगन्तुक प्रायश्चित्त से अपनी शुद्धि कर लेता है, और आचार्य भी उसे अपना लेते हैं तब वह शिष्य क्या कार्य करे?

उत्तर आचार्य के द्वारा अपना लिये जाने पर शिष्य आदर पूर्वक गुरु से सूत्र के अर्थ को विधि पूर्वक अध्ययन करे और निदोष सद्गुरु के अनुकूल चर्या के चर्या का अनुपालन करें।

प्र. 1561 गुरु की सन्निधि में सूत्र अध्ययन करने हेतु शिष्य के लिए कौन-सी विधि आवश्यक है?

उत्तर प्रयत्न पूर्वक द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को सम्यक् प्रकार से शोधन करके विनय पूर्वक औपचारिक क्रियाओं से युक्त होकर उस मुनि को गुरु के मुख से सूत्रों का अध्ययन करना चाहिए।

प्र. 1562 सूत्र अध्ययन हेतु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की सम्यक् प्रकार शुद्धि किस तरह से होना चाहिए?

उत्तर **1. द्रव्य शुद्धि**- शरीर गत शुद्धि द्रव्य शुद्धि है। जैसे शरीर में घाव, पीड़ा, कष्ट आदि का नहीं होना। शरीर आदि का शोधन करना अर्थात् शरीर में ज्वर आदि या शरीर से पीव, खून आदि के बहते समय के अतिरिक्त स्वस्थ शरीर का होना द्रव्य शुद्धि है।

2. क्षेत्र शुद्धि- भूमिगत शुद्धि क्षेत्र शुद्धि है। जैसे चर्म, हड्डी, मूत्र, मल आदि का सौ हाथ प्रमाण भूमिभाग में नहीं होना। अर्थात् इस प्रकार से क्षेत्र में होने वाली अशुद्धि को दूर करना या उस क्षेत्र से अतिरिक्त क्षेत्र का होना क्षेत्रशुद्धि है।

3. कालशुद्धि- सन्ध्याकाल, मेघगर्जन काल दुर्दिन (दिन में अंधकार,) विद्युत्पात और उत्पात आदि काल से रहित समय का होना कालशुद्धि है। अर्थात् संधिकाल आदि के अतिरिक्त काल का होना कालशुद्धि है।

4. भाव शुद्धि- क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भावों का यतिवरों के जीवन में जो त्याग किया जाता है वह भाव शुद्धि है। अर्थात् कषायादि रहित परिणाम होना ही भाव शुद्धि कहलाती है।

प्र. 1563 यदि कोई सूत्र के अर्थ की शिक्षा के लोभ से द्रव्य, क्षेत्र आदि का उल्लंघन करता है तो क्या अनिष्ट घटित होता है?

उत्तर सूत्रार्थ के लोभ में मुनि द्वारा द्रव्यादि शुद्धि की अवहेलना करने पर असमाधि, अस्वाध्याय, कलह, रोग और वियोगरूप अनिष्ट की प्राप्ति होती है।

असमाधि- मन में असमाधानी रूप असमाधि को अथवा सम्यक्त्व आदि की विराधना रूप असमाधि को प्राप्त हो जाता है।

अस्वाध्याय- शास्त्रादि का अलाभ अथवा शरीर आदि के विघात रूप बाधाओं को प्राप्त होता है।

कलह- मोक्ष-मार्गियों के बीच तव-ममादि रूप कलह उत्पन्न हो जाता है और रोग-ज्वर, श्वास, खाँसी, भगंदर आदि रोगों का आक्रमण हो जाता है।

वियोग- आचार्य और शिष्य के एक जगह नहीं रह सकने रूप वियोग हो जाता है।

प्र. 1564 स्व-पर गुरुकुल में मुनिगणों को जीवदया के निमित्त और कौन-सी शुद्धियों का अनुपालन सतत करते रहना चाहिए?

उत्तर स्व-पर गुरुकुल में मुनिगणों को जीवदया हेतु संस्तर, आवास और उपकरणों का नित्य प्रति शोधन करना चाहिए।

प्र. 1565 मुनियों के संस्तर कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर मुनियों के संस्तर भूमि, शिला, फलक और तृण रूप चार तरह के होते हैं।

- शुद्ध, निर्जन्तुक भूमि पर सोना भूमि संस्तर है।
- सोने योग्य पाषाण-की शिला को शिला संस्तर कहते हैं।
- काष्ठ के पाटे को फलक संस्तर कहते हैं। तथा
- तृणों के समूह को तृणसंस्तर कहते हैं।

प्र. 1566 मुनियों का आवास कैसा होता है?

उ. संस्तर के स्थान को आवास कहते हैं अर्थात् जो आकाश प्रदेशों का समूह है वही आवास है।

प्र. 1567 मुनियों के उपकरण कौन-से होते हैं?

उत्तर शास्त्र (पुस्तक), मयूर पिच्छिका, कमण्डलु आदि जो कर्मों के संवर और निर्जरा के साधन हैं वे उपकरण कहलाते हैं।

प्र. 1568 मुनिगण कब-किस-किस काल में संस्तर, आवास और उपकरणों के शोधन का विशेष ध्यान रखते हैं?

उत्तर मुनिगण उपकरणों के साथ होने वाली प्रवृत्ति में प्रत्येक समय उपकरणों का देख-शोध कर प्रयोग किया करते हैं। और सायंकाल में हाथ की रेखा दिखने योग्य प्रकाश रहने पर संस्तर आदि स्थान पिच्छिका से परिमार्जित करके पाटे आदि बिछा लिया करते हैं और प्रातः काल भी इतना प्रकाश हो जाने पर संस्तर और स्थान आदि को देख-शोधकर उसे हटा दिया करते हैं।

प्र. 1569 आगन्तुक मुनियों को पर-संघ में चर्या-गमन और तपादि क्रियायें क्या स्वेच्छा से ही करना चाहिए या और कुछ करना चाहिए?

उत्तर आगन्तुक मुनि पहले जैसे अपने संघ में चर्या आदि कार्यों में विनयपूर्वक अपने आचार्य से पूछकर, प्रणाम आदि करके करते थे, उसी प्रकार से उन्हें पर-संघ में यहाँ पर स्थित आचार्य-देव के अभिप्रायानुसार उनसे आज्ञा लेकर ही इन सब क्रियाओं को करना चाहिए।

प्र. 1570 आगन्तुक मुनि स्वसंघ के सदृश पर-संघ में भी मुनियों की सेवा-वैयावृत्त आदि तप करते हैं या नहीं?

उत्तर आगन्तुक मुनि पर-संघ में क्षीण-शक्तिक, गुरु, बाल, वृद्ध और शैक्ष आदि सभी प्रकार के मुनियों की स्व-शक्ति अनुसार प्रयत्नपूर्वक यथायोग्य वैयावृत्त अवश्य करते हैं।

प्र. 1571 स्व-संघ सदृश पर-संघ में भी मुनिगण कौन-कौन-सी क्रियाओं को एक ही साथ मिलकर किया करते हैं?

उत्तर प्रतिक्रमण क्रियाओं में, आचार्य-उपाध्याय और मुनियों की वंदना रूप क्रियाओं में, देव वन्दना की क्रियाओं में तथा सामूहिक स्वाध्याय आदि की क्रियाओं में मुनिगण स्व-पर संघ में युगपत्-एक साथ रहते हैं अर्थात् सभी क्रियायें मिलकर किया करते हैं।

प्र. 1572 मुनियों की एक साथ की जाने वाली प्रतिक्रमण रूप क्रियायें कितने प्रकार की हैं?

उत्तर दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिक रूप से सामूहिक की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रियायें पांच तरह की वर्णित की गयीं हैं। (मू.चा.भा.1, गा.175)

प्र. 1573 प्रतिक्रमण; दैवसिक, रात्रिक आदि क्रिया रूप क्यों हैं?

उत्तर क्योंकि दिवस के अन्त में अपराह्न (सायंकाल) काल में की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रिया दैवसिक प्रतिक्रमण क्रिया है। पिछली रात्रि में की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रिया रात्रि प्रतिक्रमण क्रिया है। पक्ष के अन्त में चतुर्दशी को की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रिया पाक्षिक प्रतिक्रमण क्रिया है। आष्टाह्निक पर्व के अन्त में चतुर्दशी को की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रिया चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किया है तथा वर्ष के अन्त में वीर-भगवान के निर्वाण के पूर्व चतुर्दशी को की जाने वाली प्रतिक्रमण क्रिया होने से उसे वार्षिक प्रतिक्रमण क्रिया कहते हैं।

प्र. 1574 यदि शिष्य से कोई अपराध इस संघ में हो जाता है तो वहीं पर उसका शोधन करना चाहिए अथवा अन्यत्र संघ में?

उत्तर जिस गच्छ-गण या चतुर्विध संघ में व्रतादिकों में अतिचार रूप अपराध हुआ है उसी संघ में उस मुनि (शिष्य) को मिथ्याकार-पश्चात्ताप और गुरु से प्रायश्चित्त निवेदन कर अपने अन्तरंग से वह दोष निकाल देना चाहिए। अथवा जिस किसी के साथ अपराध हो गया हो उन्हीं से क्षमा याचना व क्षमा कराके उस अपराध से मुक्त होना चाहिए।

प्र. 1575 स्व-पर संघ के मुनि को सभी के साथ बोलना या बैठना करना होता है या नहीं?

उत्तर आर्यिकाओं और स्त्रियों के आने के काल में मुनि को एकान्त में अकेले नहीं बैठना चाहिए और उसी प्रकार से उन आर्यिकाओं और स्त्रियों के साथ अकारण बहुलता से वचनालाप भी नहीं करना चाहिए अर्थात् धर्मकार्य के बिना उनके साथ वार्तालाभ भी न करे।

प्र. 1576 यदि ऐसा है तो गुरु समक्ष आर्यिकाएँ प्रायश्चित्त ग्रहण और जिज्ञासा आदि का समाधान कैसे करेंगी?

उत्तर यदि आर्यिका अपने संघ की प्रधान आर्यिका-गणनी को आगे करके कुछ पूछे तो इस विधान से उन्हें मार्ग प्रभावना की इच्छा रखते हुए प्रतिपादन करना चाहिए; अन्यथा नहीं।

प्र. 1577 आर्यिकाओं की वसतिका में मुनियों को कुछ क्रिया आदि करना युक्त है या नहीं?

उत्तर आर्यिकाओं की वसतिका में मुनियों का रहना और वहाँ पर बैठना, लेटना, स्वाध्याय, आहार-भिक्षा व

कायोत्सर्ग करना युक्त नहीं है।

प्र. 1578 मुनियों की तरह आर्यिकाओं की भी प्रतिक्रमण और प्रायश्चित्त आदि क्रियाओं को कराने में कुशल आचार्य कौन-से गुणों से विशिष्ट होते हैं?

उत्तर जो धर्म के प्रेमी हैं, धर्म में दृढ़ हैं, संवेग भाव सहित हैं, पाप भीरू हैं, शुद्ध आचरण वाले हैं, शिष्यों के संग्रह और अनुग्रह में कुशल हैं और हमेशा ही पाप क्रिया की निवृत्ति से युक्त हैं। जो गम्भीर हैं, स्थिर चित्त हैं, मित बोलने वाले हैं, किञ्चित कुतूहल करते हैं, चिर दीक्षित हैं, तत्त्वों के ज्ञाता हैं- ऐसे मुनिवर आर्यिकाओं के आचार्य होते हैं अथवा उनको मर्यादा का उपदेश देने वाले उनके गणधर होते हैं।

प्र. 1579 प्रियधर्मी किन्हें कहते हैं?

उत्तर प्रिय-इष्ट है उत्तम क्षमादि धर्म अथवा चारित्र जिनको वे प्रियधर्मी हैं अर्थात् उपशम आदि गुणों से समन्वित हैं।

प्र. 1580 दृढ़ धर्मी कौन कहलाते हैं?

उत्तर दृढ़ है धर्म का अभिप्राय जिनका वे दृढ़धर्मी कहलाते हैं।

प्र. 1581 संवेगी या संविग्न किन्हें कहते हैं?

उत्तर जो धर्म और धर्म के फल (संवर-निर्जरा) में हर्ष से सहित हैं उन्हें संवेगी या संविग्न कहते हैं।

प्र. 1582 पाप भीरू और आचरण शुद्ध कौन कहे जाते हैं?

उत्तर जो पाप से डरने वाले हैं वे पाप भीरू हैं और जो सब तरफ से शुद्ध आचरण वाले-अखण्डित आचरण वाले हैं वे आचरण परिशुद्ध कहे जाते हैं।

प्र. 1583 शिष्यों के संग्रह में कुशल से क्या तात्पर्य है?

उत्तर मोक्षमार्ग के पात्र या योग्य भव्य को ग्रहण करते हैं अर्थात् संघ में स्थान देते हैं और ग्रहण किये गये शिष्यों को शास्त्रज्ञान आदि से संयुक्त-सम्पन्न करते हैं अर्थात् दीक्षा, शिक्षा, व्याख्यान आदि के द्वारा शिष्यों का उपकार करना संग्रह कहलाता है।

प्र. 1584 आचार्य भगवन् शिष्यों पर अनुग्रह किस तरह से करते हैं?

उत्तर शिष्यों का प्रतिपालन करते हैं अर्थात् पञ्चाचारों का पालन करवाते हैं और निर्यापक व आचार्यपद आदि प्रदान करते हुए उनकी योग्यतानुसार उन पर अनुग्रह करते हैं। यही आचार्य भगवन् का शिष्यों पर अनुग्रह करना कहलाता है।

प्र. 1585 पाप क्रिया से निवृत्ति का अर्थ क्या है?

उत्तर जो हमेशा सारक्षण क्रिया रूप पाप क्रिया-निवृत्ति से युक्त रहते हैं। अर्थात् जो संघ के मुनियों की रक्षा में युक्त होते हुए उन्हें आत्म-हित का उपदेश देते हैं यही उनकी पापक्रिया निवृत्ति कहलाती है।

प्र. 1586 आचार्य देव के गम्भीर गुण का अर्थ क्या है?

उत्तर जो गुणों में अगाध हैं अर्थात् जिनके गुणों का कोई माप नहीं है तथा जो किसी से कर्मठता रूप उद्यम में कम नहीं पड़ते हैं।

प्र. 1587 आचार्य परमेष्ठी स्थिर चित्त और मित भाषी होते हैं, इसका अर्थ क्या है?

उत्तर जो किसी के द्वारा कदर्थित-तिरस्कृत नहीं होते हैं अर्थात् स्थिर-चित्त होते हैं और जो थोड़े बोलने वाले होते हैं।

प्र. 1588 आचार्य महाराज किंचित् कुतूहल कर्त्ता हैं, ऐसा क्यों कहा?

उत्तर जो अल्प कौतुक करने वाले हैं अर्थात् विस्मयकारी नहीं है अथवा अल्प गुह्य विषय को छिपाने वाले (ढकने वाले) हैं अर्थात् शिष्यों के दोषों को सुनकर उनको अन्य किसी से न बताने वाले होते हैं। (अपनी किञ्चित् प्रसन्नता से शिष्यों का उत्साह बढ़ाते रहते हैं एतदर्थ भी आचार्य महाराज को किञ्चित् कुतूहली कहा गया है।)

प्र. 1589 आचार्य भगवन् को चिर दीक्षित कहने क्या तात्पर्य होता है?

उत्तर चिर-दीक्षित का अर्थ बहुत काल (कम-से-कम बारह वर्ष रूप एक तप-काल) से दीक्षा प्राप्त हैं, अर्थात् व्रतों के भार को धारण करने वाले हैं और गुणों में ज्येष्ठ हैं ऐसे आचार्य भगवन्; ऐसा तात्पर्य है।

प्र. 1590 आचार्य परमेष्ठी तत्त्वों के ज्ञाता हैं इसका विशेष अर्थ क्या है?

उत्तर जो गृहीतार्थ-पदार्थों के स्वरूप को जानने वाले हैं अर्थात् आचार शास्त्र और प्रायश्चित्त आदि शास्त्रों में कुशल हैं ऐसे आचार्य परमेष्ठी तत्त्वज्ञ कहे जाते हैं।

प्र. 1591 क्या परगण (पर संघ) में स्थित वह आगन्तुक मुनि ही आचार्य-देव की सभी आज्ञा पाले? अथवा अन्य मुनि भी पालें?

उत्तर नहीं, ऐसी बात नहीं है, किन्तु अपने संघ में एक मुनि (आगन्तुक एकादि मुनि) अथवा समूह रूप सभी मुनियों के लिए भी यही विधि है अर्थात् संघस्थ सभी मुनि आचार्य की सम्पूर्ण आज्ञा पालना तथा अनुकूलता रखें ऐसा आदेश या शास्त्र की आज्ञा है।

प्र. 1592 यदि मुनियों के लिए ऐसा न्याय है तो आर्यिकाओं के लिए क्या आदेश है?

उत्तर पूर्व में जैसा कहा गया है वैसा ही यह समाचार (नित्य कर्त्तव्य) आर्यिकाओं को भी सम्पूर्ण अहोरात्र में यथायोग्य-अपने अनुरूप अर्थात् वृक्षमूल, आतापन आदि योगों से रहित (छोड़कर) वही सम्पूर्ण समाचार विधि आचरित करनी चाहिए।

प्र. 1593 वे आर्यिकाएँ वसतिका में अपना काल किस प्रकार से व्यतीत करती हैं?

उत्तर वे आर्यिकाएँ परस्पर में मात्सर्य भाव को छोड़कर एक दूसरे के अनुकूल रहती हैं, परस्पर की रक्षा करने में पूर्ण तत्पर रहती हैं, क्रोध, बैरभाव और कौटिल्य भावों से रहित होती हैं। लज्जा, मर्यादा और

क्रियाओं से सहित रहती हैं।

प्र. 1594 लज्जा, मर्यादा और क्रिया का अर्थ क्या है?

उत्तर ❖ लोकापवाद से डरते रहना लज्जा गुण है।

❖ राग-द्वेष परिणाम से न्याय का उलंघन न करके प्रवृत्ति करना मर्यादा है अर्थात् अनुशासन बद्धता का अनुसरण मर्यादा कहलाती है।

❖ अपने पितृकुल और पतिकुल अथवा गुरुकुल के धर्म संस्कार के अनुरूप आचरण में तत्पर रहना क्रिया कहलाती है।(पूर्वावस्था के सुसंस्कार रूप गुणों, मर्यादाओं को न भूलें।)

प्र. 1595 पुनरपि वे आर्यिकाएँ किन गुणों से विशिष्ट रहती हैं? या किस तरह के उपयोग और योग में सतत युक्त रहती हैं?

उत्तर अध्ययन, परिवर्तन, श्रवण, कथन, अनुप्रेक्षा, तप, विनय और संयम रूप उपयोग तथा योग में वे आर्यिका प्रयत्न शील रहती हैं।

* **अध्ययन**- बिना पढ़े हुए शास्त्रों का पढ़ना अध्ययन है।
* **परिवर्तन**- पढ़े हुए शास्त्रों का पुनः पुनः पढ़ना परिवर्तन है।
* **श्रवण**- सुने या न सुने हुए शास्त्रों का अवधारण करना श्रवण है।
* **कथन**- अपने जाने हुए शास्त्रों का अन्य को सुनाना कथन है।
* **अनुप्रेक्षा**- सुने हुए धार्मिक विषयों का चिंतवन करना अनुप्रेक्षा है।
* **तप**- अनशन आदि और प्रायश्चित्त आदि बाह्याभ्यन्तर तप हैं।
* **विनय**- मन-वचन-काय की स्तब्धता का न होना अर्थात् नम्रता का होना विनय है।
* **संयम**- इन्द्रिय निरोध तथा जीव-वध का परित्याग करना संयम है।
* **उपयोग**- अध्ययन और ज्ञानाभ्यास आदि कार्यों में लीन रहना उपयोग है।
* **योग**- मन-वचन-काय का शुभ अनुष्ठान योग कहलाता है।

प्र. 1596 किन विशेषताओं से युक्त और कैसी चर्या वाली वे आर्यिकाएँ हुआ करती हैं?

उत्तर विकार रहित वस्त्र (धवल व सादे वस्त्र), विलास युक्त गमन और भ्रूविकार कटाक्ष आदि रहित वेष, पसीना युक्त मैल और धूलि से लिप्त देह सहित होती हुई शरीर संस्कार (सजावट) से रहित होती हैं तथा वे आर्यिकाएँ क्षमादि धर्म, माता-पिता या गुरुकुल के अनुरूप अपना यश और अपने व्रतों के अनुरूप निर्दोष चर्या करती हैं।

प्र. 1597 आर्यिकाएँ किस तरह की योग्य वसतिका में किस तरह से रहती हैं?

उत्तर जो गृहस्थों से मिश्रित न हो, असंयतों के, चोरों के, तिर्यञ्चों के, असज्जनों के सम्पर्क से रहित हो,

संयतों के सन्निकट न हो, जो संक्लेश से रहित और प्रतिष्ठापन समिति के लिए गूढ़ (गुप्त) स्थान से सहित हो, स्वाध्याय, ध्यान और रुग्नावस्था में भी अनुकूलता युक्त हो ऐसे विशुद्ध संचरण योग्य वसतिका में आर्यिकाएँ दो तीन या तीस चालीस पर्यन्त भी एक साथ मिलकर रहती हैं।

प्र. 1598 क्या आर्यिकाओं को परगृह में कदाचित् भी नहीं जाना चाहिए?

उत्तर आर्यिकाओं के लिए गृहस्थ के घर और यतियों की वसतिकाएँ परगृह हैं। बिना प्रयोजन के आर्यिकाएँ परगृह न जाएँ। यदि गृहस्थ के यहाँ भिक्षा आदि लेना और आचार्य संघ में प्रतिक्रमण, वन्दना आदि प्रयोजन से जाना है तो आर्यिका-प्रमुख गणिनी से पूछकर पुनः कुछ आर्यिकाओं को साथ लेकर ही जाना चाहिए, अकेली नहीं जाना चाहिए।

प्र. 1599 अपने निवास स्थान में अथवा पर-गृह में आर्यिकाओं को कौन-सी क्रियायें नहीं करना चाहिए?

उत्तर रोना, नहलाना, खिलाना, भोजन पकाना, सूत कातना, आरम्भ करना, यति पदादि मालिश व प्रक्षालन करना, धोना और गीत गाना इन अपवाद जनक क्रियाओं को स्व-परस्थान में आर्यिका नहीं करें।(मू.चा.भा.1, गा.193)

प्र. 1600 देव वंदना, गुरुवंदना आदि के निमित्त आर्यिकाएँ किस तरह जावें?

उत्तर देव-वंदना, गुरुवंदना, आहार, विहार, नीहार आदि किसी भी प्रयोजन के लिए बाहर जावें तो दो-चार आदि मिलकर साथ-साथ तथा वृद्धा आर्यिकाओं के साथ ही जावें।

प्र. 1601 क्या जैसे मुनि अपने आचार्य आदि की वंदना करते हैं, वैसे ही आर्यिकाएँ भी करती हैं?

उत्तर नहीं, आर्यिकाएँ तो आचार्य को पाँच हाथ से, उपाध्याय को छह हाथ से और साधु को सात हाथ दूर से रहकर गवासन से बैठकर ही वंदना करती हैं। अन्य प्रकार से नहीं।

प्र. 1602 यदि इस विधि से विपरीत कार्य हो तो क्या समस्या संभव है?

उत्तर क्योंकि मूलाचारादि ग्रन्थानुसार काम से मलिन चित्त, स्थविर, चिरदीक्षित, बहुश्रुत, तपस्वी तथा गुरु व आचार्य को भी नहीं गिनता है, कुल का भी विनाश कर देता है। एतदर्थ आगम में तो शीलवान पुरुष रूपीघृत को स्त्री रूपी अनल से दूरी रूप परहेज रखना बतलाया गया है।

प्र. 1603 सम्यक् आचरण विधान रूप चर्या साधु और आर्यिकाओं के लिए कौन-से महान फल को प्रदान करती है?

उत्तर सम्यक् आचरण-विधान रूप चर्या साधुओं को साक्षात् और आर्यिकाओं के लिए परम्परा से इस जगत् में निर्ग्रन्थ मय महान मोक्षमार्ग से पूज्यता को, यश को और सुख को प्राप्त कराते हुए अंत में सिद्ध पद प्राप्त करा देती है।

अध्याय-15

स्वाध्याय से लाभ, सत्य के भेद, एषणा समिति आदि

(छियालीस दोष और बत्तीस अन्तरायादि का वर्णन)

प्र.1604 किस तरह का ज्ञान विस्मृत हो जाने पर भी परभव में उपलब्ध होकर केवलज्ञान का कारण हो जाता है?

उत्तर विनय से जो शास्त्र पढ़ा गया है, प्रमाद से यदि उसका विस्मरण भी हो जावे तो अन्य जन्म में वह सूत्र-ग्रन्थ उपस्थित हो जाता है, स्मरण में आ जाता है और वह पढ़ा हुआ शास्त्र केवलज्ञान को भी प्राप्त करा देता है। अतः विनय व कालादि की शुद्धि का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। (मू.चा. भाग 1, गा.286, पृ.242)

प्र.1605 स्वाध्याय से साधुओं को होने वाले तात्कालिक लाभ को आचार्यों ने किस तरह दर्शाया है?

उत्तर विनय से सहित मुनि स्वाध्याय करते हुए पंचेन्द्रियों को संकुचित (वश) कर तीन गुप्तियों से युक्त हो एकाग्रमना हो जाते हैं। (मू.चा.भा.2, गा.971, पृ.147)

प्र.1606 जिनागम में दस प्रकार के सत्य कौन-से बतलाये गये हैं?

उत्तर जिनागम में जनपद सत्य, सम्मत सत्य, स्थापना सत्य, नाम सत्य, रूप सत्य, प्रतीत्य सत्य, संभावना सत्य, व्यवहार सत्य, भावसत्य और उपमा सत्य ऐसे दस प्रकार के सत्य बतलाये गये हैं।

प्र.1607 जनपद सत्य (देश सत्य) किसे कहते हैं?

उत्तर जनपद सत्य या देश सत्य उसे कहते जो किसी वस्तु का नाम विभिन्न देशों में अपने-अपने व्यवहार चलाने हेतु सर्वमान्य होता है। जैसे- जनपद (देश या प्रदेश) की सभी भाषाओं में ओदन (भात) आदि अन्य-अन्य शब्दों के द्वारा पुकारा जाता है। द्रविड़ भाषा में ओदन को 'चौर' कहते हैं, कन्नड़ भाषा में 'कूल' कहते हैं, गौड़ भाषा में 'भक्त' और तमिल भाषा में 'सादं' कहते हैं। ऐसे ही विभिन्न देशों में उन-उन भाषाओं के द्वारा कहा गया ओदन जनपद सत्य है ऐसा तुम जानो।

प्र.1608 बहुजन (लोक) सम्मत सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर जो बहुत जनों को सम्मत है वह भी सत्य है जैसे किसी मनुष्य-स्त्री (मानुषी) को लोक में महादेवी कहते हैं और जैसे 'देव बरसता है' इत्यादि वचन लोक सम्मत सत्य है। अर्थात् मेघ बरसता है किन्तु व्यवहार में लोग कहते हैं देव बरसता है यह बहुजन सम्मत सत्य कहलाता है।

प्र.1609 जनपद सत्य या सम्मत सत्य में कहे गये शब्दों को यह ऐसा नहीं है ऐसा कहने पर क्या विसंगति उत्पन्न होती है?

उत्तर जनपद सत्य या सम्मत सत्य में कहे गये शब्दों को प्रतिबन्ध लगाते हुए 'यह ऐसा नहीं है' ऐसा कहने पर आपके सत्य वचन भी असत्य कहे जायेंगे और लोक में विरोधात्मक स्थिति पैदा होगी।

प्र.1610 स्थापना सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर किसी वस्तु में यह वही है ऐसी व्यवहार नय से गुणारोपण रूप स्थापना करना स्थापना सत्य है। जैसे पाषाण की प्रतिमा में यह महावीर भगवान हैं या यह अरिहन्त प्रतिमा, सिद्ध प्रतिमा अथवा इन्द्र प्रतिमा है इत्यादि।

प्र.1611 नाम सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर किसी में जाति आदि गुण की अपेक्षा न करके नाम मात्र रख देना यह नाम सत्य या अपेक्ष्य सत्य कहलाता है। जैसे- यह देवदत्त है या यह आदीश कुमार है। यद्यपि वह देवों द्वारा नहीं दिया गया है ना ही युग के आदि में हुआ न कोई ईश है फिर नाम सत्य कहलाता है।

प्र.1612 रूप सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर रूप में वर्ण की उत्कृष्टता से कहना रूप सत्य कहलाता है। अर्थात् किसी वस्तु में अनेक वर्ण होने पर भी उसमें जो प्रधान हैं, अधिक है उसी की अपेक्षा रखना यह रूप सत्य है। जैसे बगुला सफेद होता है। यह व्यक्ति गौर वर्ण वाला है। यद्यपि नख, चोंच आँखें भिन्न वर्ण वाली लाल, काली इत्यादिक रूप होने पर भी सफेद, गौर आदि प्रमुख या उत्कृष्ट वर्ण होने पर उसे उस वर्ण का कहना यह रूप सत्य कहलाता है।

प्र.1613 प्रतीत्य सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर अन्य वस्तु की अपेक्षा करके जो कुछ कहा जाता है वह प्रतीत्य या प्रतीति सत्य है; जैसे- किसी ह्रस्व की अपेक्षा करके कहना कि यह दीर्घ है। एक वितस्ति के प्रमाण से एक हाथ प्रमाण दीर्घ है। दो हाथ प्रमाण से पाँच हाथ प्रमाण बड़ा है, इस तरह से मेरु पर्यन्त तक या तीन लोक पर्यन्त व्यवस्था समझना चाहिए। उसी प्रकार से त्रिकोन, चौकोन और गोल आदि भी एक दूसरे की अपेक्षा से ही हैं। तथा कुरूप-सुरूप, पण्डित-मूर्ख, पूर्व-पश्चिम ये सब एक दूसरे को अपेक्षित करके होते हैं अतः इनका कथन अपेक्ष्य सत्य या प्रतीत्य सत्य कहलाता है। इसमें किसी को विवाद करना उचित नहीं है। अन्यथा असत्य की कोटि में आ जावेगा।

प्र.1614 व्यवहार सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर व्यवहार से कथन करना व्यवहार सत्य है। जैसे-भात पकाया जाता है, रोटी या पुआ पकाये जाते हैं। इत्यादि प्रकार के वचन लोक में देखे जाते हैं यह सब व्यवहार सत्य है। जो निर्विवाद भी है। वास्तव में यदि भात पकाया जावे तो वह भस्म हो जाए और यदि रोटी पकायी जावे तो वह जल जाये, किन्तु फिर भी व्यवहार में वैसा कथन होता है। अतः वह व्यवहार सत्य है।

प्र.1615 सम्भावना सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर जो सम्भावित किया जाता है उसे सम्भावना सत्य कहते हैं। जैसे- 'यदि चाहे तो ऐसा कर डाले',

'इन्द्र चाहे तो जम्बूद्वीप को पलट दे' ऐसे इस वचन में इन्द्र की सामर्थ्य सम्भावित की जा रही है कि यह चाहे तो जम्बूद्वीप को अन्य रूप कर सकता है किन्तु वह ऐसा कभी करता नहीं है।

प्र.1616 सम्भावना सत्य के कितने कौन-से भेद हैं?

उत्तर सम्भावना सत्य के अभिनीत और अनभिनीत के भेद से दो भेद हैं। जो शक्यानुष्ठान रूप वचन हैं अर्थात् जिनका करना शक्य है वे वचन अभिनीत सम्भावना सत्य हैं जैसे,-'यदि यह चाहे तो प्रस्थ(सेर भर) खा जावे', 'यह अपनी भुजाओं से गंगा को पार कर (तिर) सकता है।' अतः इसे सम्पाद्य वचन भी कहते हैं।

जो कार्य सामर्थ्य होते हुए भी नहीं किया जाता है वह अशक्यानुष्ठान रूप वचन अनभिनीत सम्भावना सत्य कहलाता है जैसे- 'यह महाबलशाली शिर से पर्वत फोड़ सकता है।' इस तरह के वचनों को असम्पाद्य वचन भी कहते हैं।

प्र.1617 भाव सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर हिंसा आदि दोष रहित भाव से अकल्पित भी वचन भाव सत्य है। अर्थात् हिंसा, चौर्य, अब्रह्म, परिग्रह आदि को ग्रहण करने वाले वचनों से रहित वचन हिंसादि दोष रहित हैं, अकल्पित (अयोग्य) भी हैं, तो भी परमार्थ से सत्य होने से भाव सत्य हैं। जैसे- किसी ने पूछा, 'तुमने चोर देखा है तो कहना कि मैंने नहीं देखा है' यद्यपि ये वचन असत्य ही हैं फिर भी परमार्थ से सत्य हैं क्योंकि हिंसादि दोषों से रहित हैं।

जिन वचनों से इहलोक, परलोक बिगड़ता है और पर को कष्ट होता है वे सभी वचन सत्य होकर भी त्याग करने योग्य हैं, क्योंकि राग-द्वेष से सहित हैं। तात्पर्य यह है कि हिंसादि दोषों से सहित वचन सत्य भी हों तो नहीं बोलना चाहिए। इसी का नाम भाव सत्य है।

प्र.1618 उपमा सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर उपमान (समानता या तुलनात्मक) रूप वचन उपमा सत्य हैं। जैसे- पल्योपम आदि वचन; ये वचन उपमा मात्र ही हैं। क्योंकि किसी के द्वारा योजन प्रमाण का गड्ढा रोमों के अतीव सूक्ष्म-सूक्ष्म टुकड़ों से भरा नहीं जा सकता। इसी प्रकार से सागर, राजू, प्रतरांगुल, सूच्यंगुल, घनांगुल, श्रेणी, लोक प्रतर और लोक ये सभी उपमावचन हैं तथा चन्द्रमुखी कन्या इत्यादि वचन भी उपमान वचन होने से उपमा सत्य वचन हैं। जो निर्विवाद हैं। (मू.चा., भा.1,गा.313)

प्र.1619 सत्य से व्यतिरिक्त वचन कौन-से हैं? सटीक उत्तर दीजिए?

उत्तर उपर्युक्त जनपद आदि दस प्रकार के सत्य वचनों से जो विपरीत है वह असत्य है। जिसमें सत्य और असत्य दोनों हैं वह सत्यमृषा है। सत्य-असत्य इन उभय से विपरीत अनुभय वचन असत्यमृषा है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

प्र.1620 सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप चार तरह के वचनों में से साधुजनों को कौन-से वचन बोलना चाहिए?

उत्तर उपर्युक्त चार तरह के वचनों में से असत्य और उभयवचन को छोड़ देना चाहिए और सत्य तथा अनुभय वचन साधु जनों को बोलना चाहिए।

प्र.1621 अनुभय वचन रूप असत्यमृषा भाषा कितने प्रकार की है?

उत्तर आमन्त्रणी, आज्ञापनी, याचनी, पृच्छना, प्रज्ञापनी, प्रत्याख्यानी, इच्छानुलोमा, संशयवचनी और अनक्षरी इस तरह अनुभय वचन रूप असत्यमृषा भाषा नव प्रकार की कही गई है।

प्र.1622 आमन्त्रणी भाषा किसे कहते हैं? उसे उदाहरणादि से स्पष्ट कीजिए। तथा यह भी बतलाइये कि वह असत्यमृषा रूप अनुभयवचन रूप कैसे है?

उत्तर जिसके द्वारा आमन्त्रण किया जाता है वह आमन्त्रणी भाषा है। जिसने वाच्य-वाचक (कहने योग्य-कहे जाने वाले) सम्बन्ध को जान लिया है उस व्यक्ति को अन्य कार्य से हटाकर अपनी तरफ उद्यत करना आमन्त्रणी भाषा है। जैसे, 'हे देवदत्त!' इत्यादि सम्बन्ध वचन बोलना। इस शब्द से वह देवदत्त अन्य कार्य को छोड़कर बुलाने वाले की तरफ उद्यत होता है।

आमन्त्रणी भाषा में आमन्त्रण-सम्बोधन रूप से अपनी तरफ अभिमुख करने से यह असत्य नहीं है, पश्चात् किस लिए सम्बोधन किया ऐसा कोई अन्य अर्थ ज्ञात न होने से यह सत्य नहीं है। अतः असत्यमृषा भाषा अनुभय वचन रूप है।

प्र.1623 आज्ञापनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा आज्ञा दी जाती है वह आज्ञापनी भाषा है। जैसे, 'मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ।' इत्यादि वचन बोलना। इसमें सम्बोधन रूप से अपनी तरफ अभिमुख करने से यह असत्य नहीं है, पश्चात् किसलिए सम्बोधन किया ऐसा कोई अन्य अर्थ ज्ञात न होने से यह सत्य नहीं है। अतः असत्यमृषा रूप अनुभय वचन है।

प्र.1624 याचनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा याचना की जाती है वह याचनी भाषा है। जैसे, 'मैं तुमसे कुछ मांगता हूँ।' यहाँ याचना मात्र से असत्य नहीं है, उत्तरकाल में क्या माँगेगा यह नहीं जाना गया है अतः सत्य भी नहीं है। अतः असत्यमृषा रूप अनुभय वचन है।

प्र.1625 पृच्छना भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा प्रश्न किया जाता है वह पृच्छना भाषा है। जैसे, 'मैं आपसे पूछता हूँ' इत्यादि। इस भाषा में प्रश्न मात्र से वह झूठ भी नहीं है, पुनः यह नहीं जाना जाता है कि यह क्या पूछेगा। अतः सत्य भी नहीं है। इस कारण यह भाषा असत्यमृषा रूप अनुभय वचन है।

प्र.1626 प्रज्ञापनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा प्रज्ञापना की जाये अर्थात् बतलाने वाला भाव किया जाये वह प्रज्ञापनी भाषा है। जैसे- 'मैं आपसे कुछ निवेदन करता हूँ' इत्यादि। इस भाषा में निवेदन करने मात्र से वह झूठ नहीं है, पुनः क्या निवेदन करेगा यह नहीं जाना गया अतः सत्य भी नहीं है। अतः यह असत्यमृषा रूप अनुभय वचन है।

प्र.1627 प्रत्याख्यानी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा कुछ त्याग किया जाता है वह प्रत्याख्यानी भाषा है। जैसे, 'मुझे प्रत्याख्यान दीजिये' इत्यादि। इस भाषा में प्रत्याख्यान सामान्य के त्यागने की प्रतीति होने से असत्य भी नहीं है, पश्चात् किस वस्तु का त्याग देंगे यह नहीं जाना जाता है अतः सत्य भी नहीं है। अतः यह असत्यमृषा रूप अनुभयवचन है।

प्र.1628 इच्छानुलोमा भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जो इच्छा के अनुकूल है वह इच्छानुलोमा भाषा है जो सर्वत्र अनुकूल रहती है। जैसे, 'मैं इच्छा करता हूँ।' इत्यादि। इस भाषा में इच्छा करता हूँ यह कहना असत्य नहीं, पुनः क्या इच्छा करता हूँ यह नहीं जाना गया अतः सत्य भी नहीं है। इस कारण यह भाषा असत्यमृषा या अनुभय वचन रूप है।

प्र.1629 उपर्युक्त सात भाषाएँ क्या समिति के अन्तर्गत आती हैं?

उत्तर हाँ! उपर्युक्त सात भाषाओं के साथ समिति का सम्बन्ध लगा लेना चाहिए, अर्थात् ये सातों भेद भाषा समिति के अन्तर्गत आते हैं।

प्र.1630 संशय-वचनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जो संशय अर्थात् अव्यक्त अर्थ को कहती है वह संशय-वचनी भाषा है। अर्थात् जिन सन्देह रूप वचनों से अर्थ की प्रतीति नहीं हो पाती है वे वचन संशय-वचनी है। जैसे, दाँत रहित अतिबाल और अतिवृद्ध के (कुछ) वचन तथा भैंस आदि पशुओं के शब्द। यह भाषा भी असत्य व सत्य से परे होने के कारण असत्यमृषा रूप अनुभय वचन है।

प्र.1631 अनक्षरी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें ककार, चकार, मकार आदि अक्षर अभिव्यक्त नहीं हैं, स्पष्ट नहीं हैं वह अनक्षरी भाषा है। यह द्वीन्द्रिय आदि जीवों में तो होती ही है। इस भाषा में अक्षर संदिग्ध प्रतीति में आ रहे हैं इसलिए असत्य भी नहीं है और अर्थ संदिग्ध होने से स्पष्ट प्रतीति में नहीं आता है इसलिए सत्य भी नहीं है। अर्थात् शब्द मात्र तो प्रतीति में आ रहे हैं इसलिए असत्य भी नहीं है और अक्षरों का अर्थ प्रतीति में नहीं आ रहे हैं इसलिए सत्य भी नहीं है। इस न्याय से नव प्रकार की असत्यमृषा भाषा जो अनुभयरूप है उसका व्याख्यान पूर्ण हुआ।

प्र.1632 मुनियों के लिए किस तरह के वचन बोलना चाहिए?

उत्त्र अलीक-झूठ वचन आदिक दोषों से रहित अर्थात् पर को ठगने आदि के वचनों से रहित और हिंसा आदि पाप का आगमन कराने वाले वचनों से रहित ऐसे निर्दोष वचन बोलना चाहिए।

सूत्र के अनुसार अर्थात् आगम के अनुकूल वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा आदि के द्वारा या अन्य भी समीचीन धर्म कार्य के निमित्त बोलना या अनुभय वचन बोलना अथवा सम्यक् शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने रूप, अनेक विषयों में प्रश्न रूप या अनुप्रेक्षा आदि रूप वचन बोलना चाहिए।

प्र.1633 पापभीरू और गुणाकांक्षी साधु बोलते समय कौन-सी सावधानी वर्तता है?

उत्तर पापभीरू और गुणाकांक्षी साधु सावद्य (पाप) और अयोग्य वचन को छोड़ता हुआ तथा नित्य ही पाप योग से वर्जित वचन बोलता हुआ वर्तता है।

यदि मुनि-साधु मौन नहीं कर सकता है तो इस प्रकार से बोले कि उसके मुख से पाप सहित वचन और यकार-मकार आदि रूप 'रे', 'तू' आदि शब्द अथवा गाली गलौज आदि अभद्र वचन न निकल सकें।

प्र.1634 मुनि के शुद्ध एषणा समिति कैसे होती है?

उत्तर उद्गम, उत्पादन और एषणा दोषों के द्वारा आहार, उपकरण और वसति आदि का शोधन करते हुए मुनि के शुद्ध एषणा समिति होती है। (मू.चा., भा.1,गा.318)

प्र.1635 निर्दोष समिति पालक मुनि के शोधन करने योग्य पिण्ड, उपधि शय्या किसे कहते हैं?

उत्तर पिण्ड आहार को कहते हैं। उपधि से पुस्तक, पिच्छिका आदि उपकरण लिये जाते हैं और शय्या शब्द से वसति आदि ग्राह्य हैं। उद्गमादि दोष पुस्तक, पिच्छिका और वसतिका आदि में भी निषिद्ध किये गये हैं। जिनके शोधन से मुनि के निर्दोष अशन (एषणा) आदि समिति का पालन होता है।

प्र.1636 साधु आहार हेतु कहाँ, कैसी चर्या करे और किस तरह की सावधानी का प्रवर्तन करे?

उत्तर *आहार की बेला में चर्या को गमन करते हुए साधु न ही अधिक जल्दी-जल्दी और न अधिक धीरे-धीरे तथा न ही विलम्ब करते हुए चले।

* धन से सम्पन्न और असम्पन्न आदि गृहों का विचार-भेद-भाव न करे।

* मार्ग में किसी से बात न करे और न ठहरे अर्थात् आहार के लिए निकलने से लेकर आहार-ग्रहण करने तक मौन रहे।

* मार्ग में हास्य आदि भी न करे, हँसते हुए या अन्य कोई चेष्टा करते हुए न चले।

* नीच कुलों के घरों में प्रवेश न करे और सूतक, पातक आदि दोषों से दूषित कुलों के गृहों में भी न जावे।

* द्वारपाल आदि के द्वारा रोके जाने पर वहाँ प्रवेश न करे।

* जिन स्थानों पर आहारार्थ जाने का विरोध है उन स्थानों को छोड़ देवे।

* दुष्ट जन, गधे, ऊँट, भैंस, गाय, सर्प आदि जीवों से दूर से बचकर निकले।

* मत्त अर्थात् पागल या उन्मत्त अर्थात् मदिरा आदि से नशातुर, गर्विष्ठ जनों को बिल्कुल दूर से ही छोड़ देवे।

* स्नान, विलेपन, मण्डन अर्थात् शृंगार या रति क्रीड़ा में आसक्त हुई महिलाओं का अवलोकन न करे।

* श्रावक द्वारा विनय पूर्वक ठहराये-पड़िगाहे जाने पर ही ठहरे अन्यथा नहीं ठहरे।

* श्रावक द्वारा सम्यग्विधि-नवधा-भक्ति से दिये गये प्रासुक आहार को सिद्धभक्ति करके (सिद्धभक्तिपूर्वक पूर्व दिन गृहीत प्रत्याख्यान का निष्ठापन करके) ग्रहण करे।

* नीचे भोज्य वस्तु आदि न गिराते हुए या पेय वस्तु न झराते (गिराते) हुए छिद्र रहित अपने पाणिपात्र (अंजली) को नाभि प्रदेश के पास करके शुर-शुर शब्द आदि को न करते हुए आहार करे।

* स्त्रियों के अंगोपांग आदि अवयवों का या उनके लीलापूर्वक गमन, विलास, गीत, नृत्य, हास्य, स्नेह दृष्टि, कटाक्षपूर्वक देखना आदि चेष्टाओं का अवलोकन न करे।

* उपर्युक्त बातों को अमल में लाते हुए पूर्ण उदर आहार करके अथवा अन्तराय आ जाने पर अपूर्ण उदर आहार करके, मुख-हाथ-पैरों का प्रक्षालन करके, शुद्ध प्रासुक जल से भरे हुए कमण्डलु को लेकर आहार-गृह (चौके) से निकले।

* धर्म-कार्य के बिना अन्य किसी के गृह में प्रवेश न करे।

* आहार-चर्या के उपरान्त जिनालय या गुरुपाद मूल आदि स्थान में आकर प्रत्याख्यान ग्रहण करके गोचर (ईर्यापथ) प्रतिक्रमण करे। (मू.चा., भाग 1, गा. 318 टीका)

प्र.1637 पिण्ड (आहार) शुद्धि कितने प्रकार की होती है?

उत्तर उद्गम, उत्पादन, एषणा, संयोजना, प्रमाण, अंगार, धूम और कारण इन दोषों से रहित पिंडशुद्धि आठ प्रकार की है।

प्र.1638 उद्गम आदि आठ दोषों का लक्षण क्या है?

उत्तर **उद्गम दोष**-दाता में होने वाले जिन अभिप्रायों से आहार आदि उत्पन्न होता है वह उद्गम दोष है।

उत्पादन दोष- पात्र में होने वाले जिन अभिप्रायों से आहार आदि उत्पन्न है या कराया जाता है वह उत्पादन दोष है।

एषणा-(अशन) दोष- जिन पारिवेशक-परोसने वालों से भोजन किया जाता है उनकी अशुद्धियाँ एषणा या अशन दोष है।

संयोजना-दोष- जो मिलाया जाता है अथवा किसी वस्तु का मिलाना मात्र ही संयोजना दोष है। या

ठण्डा, गर्म, प्रासुक, अप्रासुक व विरुद्धादि आहार पान परस्पर मिला देना संयोजना दोष है।

प्रमाण दोष- अतिमात्रा में या प्रमाण से अधिक आहार लेना प्रमाण दोष है।

अंगार दोष- जो आहार में गृद्धता (लम्पटता) रखता हुआ आहार लेता है उसके अंगार दोष होता है।

धूम दोष- जो निन्दा करते हुए अर्थात् यह आहार विरूपक है, मेरे लिए अनिष्ट है, ऐसा करके (मुखम्लान करते हुए) आहार लेता है उसके धूम नामक दोष होता है। क्योंकि अंतरंग में संक्लेश देखा जाता है।

कारण दोष- निष्कारण (बिना प्रयोजन) आहार ग्रहण करना कारण दोष है।

प्र.1639 प्रमाण दोष से बचने हेतु आहार में प्रमाण कैसा होना चाहिए?

उत्तर शुद्धाहार से उदर के दो भाग पूर्ण करना और जल से उदर का तीसरा भाग पूर्ण करना तथा उदर का चतुर्थ भाग खाली रखना सो प्रमाणभूत निर्दोष आहार कहलाता है।

प्र.1640 अधिक आहार ग्रहण करने में क्या दोष है?

उत्तर जो प्रमाण से अधिक आहार ग्रहण करते हैं उनके प्रमाण या अतिमात्र नाम का आहार-दोष होता है। प्रमाण से अधिक आहार ग्रहण करने पर स्वाध्याय नहीं होता है, षट् आवश्यक क्रियाएँ करना भी शक्य नहीं रहता है। ज्वर आदि रोग भी उत्पन्न होकर संतापित करते हैं तथा निद्रा और आलस्य आदि दोष भी होते हैं। अतः प्रमाणभूत आहार ही लेना चाहिए। (मू.चा.गा476 टी.)

प्र.1641 मुनि किन कारणों से आहार ग्रहण करते हैं?

उत्तर मुनि वेदना-शमन, वैयावृत्ति, क्रिया-पालन, चारित्र-पालन, प्राण-रक्षा और धर्म-रक्षा इन छह कारणों से आहार ग्रहण करते हैं। अर्थात्-

*'मैं क्षुधा-वेदना का उपशम करूँ' इसलिए मुनि आहार ग्रहण करते हैं।

*'मैं अपनी और अन्य साधुओं की वैयावृत्ति करूँ' अतः आहार करते हैं।

*'मेरी छह आवश्यक क्रियाएँ भोजन के बिना नहीं हो सकती हैं, मैं उन क्रियाओं को विधिवत् कर सकूँ,' इसलिए आहार ग्रहण करते हैं।

* मैं तेरह प्रकार का चारित्र (शक्तिसह) पालन कर सकूँ' अतः आहार करते हैं।

* 'मेरे ये दश प्राण (विशेष कर आयु प्राण) आहार के बिना नहीं रह सकते हैं', अतः प्राणों के रक्षणार्थ आहार ग्रहण करते हैं। तथा

* आहार के बिना उत्तम क्षमा आदि रूप दस प्रकार का धर्म मेरे वश में नहीं रह सकेगा। अशन के बिना यह जीव क्षमा, मार्दव आदि धर्म करने में समर्थ नहीं हो सकता है, इसलिए वे आहार करते हैं। (मू.चा., भा.1, गा.481 टी.)

प्र.1642 जिन कारणों से मुनि आहार छोड़ते हैं वे कारण कौन-से हैं?

उत्तर आतंक होने पर, उपसर्ग के आने पर, ब्रह्मचर्य की रक्षा हेतु, प्राणि दया के लिए, तप के लिए और सन्यास के लिए इन छह कारणों से मुनि आहार त्याग कर देते हैं। अर्थात्

* आतंक-डरावने कार्य या हिंसात्मक गतिविधि होने पर आहार का त्याग करते हैं।

* उपसर्ग-देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और अचेतन कृत उपसर्ग के उपस्थित होने पर भोजन का त्याग होता है। (जब तक उपसर्ग दूर न हो तब तक मैं चतुर्विधाहार का त्याग करता हूँ।)

* ब्रह्मचर्य, गुप्ति की रक्षा के लिए अर्थात् अच्छी तरह ब्रह्मचर्य को निर्मल करने हेतु, सप्तम धातु अर्थात् वीर्य का क्षय करने के लिए आहार का त्याग होता है।

* 'यदि मैं आहार ग्रहण करता हूँ तो बहुत प्राणियों का घात होता है इसलिए आहार ग्रहण नहीं करूँगा', इस तरह जीव दया के निमित्त आहार का त्याग करते हैं।

* बारह प्रकार के तपों में अनशन (उपवास) एक तप है उसे मैं करूँगा, ऐसे तप के लिए भी आहार छोड़ देते हैं। तथा

* 'सन्यास काल में अर्थात् वृद्धावस्था में मेरी मुनिचर्या शिथिल हो जावेगी, या 'मैं दुस्साध्य रोग से युक्त हूँ, मेरी इन्द्रियाँ विकल हो गयी हैं, अथवा मेरे स्वाध्याय की हानि हो रही है, मेरे जीने के लिए अब कोई उपाय नहीं है,' इस प्रकार के प्रसंगों में शरीर का परित्याग करना होता है। इसी का नाम संन्यासमरण है। उस संन्यास मरण के निमित्त आहार का त्याग करते हैं। अर्थात् इन छह कारणों से आहार का त्याग करना चाहिए।

प्र.1643 फिर मुनि किन कारणों से आहार ग्रहण नहीं करते हैं?

उत्तर पुनः वे मुनिराज कभी भी बल, आयु, स्वाद, शरीर की पुष्टि, और तेज-वृद्धि के लिए आहार ग्रहण नहीं करते हैं।

प्र.1644 पुनः वे मुनिराज किस लिए आहार ग्रहण करते हैं।

उत्तर पुनः वे मुनिराज ज्ञान, संयम और ध्यान की सिद्धि के लिए आहार करते हैं। अर्थात् 'मेरा स्वाध्याय चलता रहे' इस तरह ज्ञान के लिए आहार करते हैं। 'मेरा संयम पलता रहे' इस तरह संयम के लिए आहार करते हैं और आहार के बिना ध्यान नहीं हो सकेगा इसलिए ध्यान के हेतु यति आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.1645 मुनि किस तरह का आहार ग्रहण करते हैं?

उत्तर मुनिराज, नवकोटि के शुद्ध और 16 उद्गम, 16 उत्पादन, 10 अशन, संयोजन, प्रमाण, अंगार तथा धूम ऐसे 46 दोषों से रहित एवं चौदह मल दोषों से भी रहित और विधि पूर्वक दिया गया आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.1646 नवकोटि से शुद्ध आहार से क्या तात्पर्य है?

उत्तर मन से कृत, कारित अनुमोदना का होना ; वचन से कृत, कारित, अनुमोदना; तथा काय से कृत, कारित अनुमोदना ऐसे ये नव कोटि हुईं। इन नव कोटियों से शुद्ध आहार मुनि ग्रहण करते हैं। अर्थात् मुनि मन, वचन, काय से आहार न बनाते हैं, न बनवाते हैं और न अनुमोदना करते हैं। नव कोटि से शुद्ध-आहार का यही तात्पर्य है।

प्र.1647 छ्यालीस दोषों से भिन्न, निकृष्ट व्यापार रूप वह महादोष कौन-सा है?

उत्तर छ्यालीस दोषों से भिन्न महा दोष रूप अध:कर्म दोष कहा गया है, जो कि पाँच सूना (चूल्हा, चक्की, बुहारी, ऊखली और घट) से सहित है और गृहस्थ के आश्रित है अर्थात् गृहस्थों के द्वारा ही करने योग्य है। यह अध:कर्म छह जीव निकायों का बध करने वाला होने से निकृष्ट व्यापार रूप है।

प्र.1648 भोजन बनाने व बनवाने रूप या पंचसूना रूप अध:कर्म दोष करने से मुनि गृहस्थ हो जावेंगे अत: उनके यह दोष कैसे घटित होता है?

उत्तर अन्य पाखण्डी साधु नाना तरह के आरम्भ करते हैं। उनकी देखा देखी में अगर कोई दिगम्बर मुनि भी ऐसा करने लग जावें तो वे इस दोष के भागी हो जावेंगे। अत: वे इस दोष से दूर रहते हैं।

प्र.1649 सोलह प्रकार के उद्गम दोष कौन-से हैं?

उत्तर औद्देशिक, अध्यधि, पूति, मिश्र, स्थापित, बलि, प्रावर्तित, प्रादुष्कार, क्रीत, प्रामृष्य, पारिवर्तक, अभिघट, उद्भिन्न, मालारोहण, अच्छेद्य और अनिसृष्ट ये उद्गम दोष के सोलह प्रकार हैं।

1. जो उद्देश्य-निमित्त करके किया जाता है अथवा जो उद्देश्य से हुआ है वह औद्देशिक दोष हैं।

2. संयत को आते देखकर भोजन पकाना प्रारम्भ करना अर्थात् संयत को देखकर पकते हुए चावल आदि में और अधिक मिला देना अध्यधि दोष है।

3. अप्रासुक और प्रासुक वास्तु का सहेतुक (कारणवश) मिश्रण करना यह पूतिदोष है।

4. असंयतों से मिश्रण करके-साथ में भोजन करना मिश्र दोष है।

5. भोजन पकाने वाले पात्र से निकालकर अपने गृह में अथवा अन्य गृह में रख देना स्थापित दोष है। (इसमें पराया-पन या भिन्न-पना-सा प्रकट होता है।)

6. नैवेद्य या देवार्चना द्रव्य (पूजा-द्रव्य) रूप वस्तु को आहार में देना बलिदोष है।

7. काल की हानि या वृद्धि करके आहार देना प्रावर्तित दोष है। (प्रात: मध्याह्न आदि)

8. मंडप आदि का प्रकाशन करना प्रादुष्करण दोष है। (आहार के स्थान को चर्या के समय खोलना, साफ करना एवं वहाँ प्रकाशन करना इसका अर्थ है।)

9.खरीदकर लाकर देना क्रीत दोष है। (तैयार किये भोजन को या आहार चर्या के समय आहार-वस्तु किसी द्रव्य का मंत्रादिक से खरीद कर देना इसका अर्थ समझना चाहिए।)

10. सूक्ष्म ऋण-कर्जा अथवा उधार (से) लाकर आहार देना प्रामृष्य दोष है।

11. कोई वस्तु; वस्तु के बदले में लाकर आहार देना पारिवर्तक दोष है।

12. अन्य देश से लाया हुआ भोजन (तैयार आहार) देना अभिघट दोष है। (सरल पंक्ति से तीन या सात घर से अतिरिक्त घरों या स्थानों से लाये हुए आहार में अभिघट दोष जानना चाहिए।)

13. ढके हुए या मुद्रा (सील) से बन्द हुए जो औषधि, घी, शक्कर आदि हैं उन्हें खोलकर देना सो उद्भिन्न दोष होता है

14. सीढ़ी से- नसैनी से गृह के ऊपर भाग में चढ़कर लाकर कुछ देना माला-रोहण दोष है। (सकरी निसैनी में असावधानी संभव है।)

15. त्रास हेतु-डर से आहार देना अच्छेद्य दोष है। (इसमें राजादिक का भय देखा जाता है)

16. अप्रधान दाता के द्वारा दिये हुए भोजन को लेना अनीशार्थ दोष है। (अप्रधान का अर्थ- वेतन लेकर साधु सेवा करने वाले या स्वार्थी और तुच्छ व्यक्ति लेना चाहिए। किसी के द्वारा विरोध किये जाने पर भी आहार ग्रहण करना भी अनीशार्थ दोष है।)

प्र.1650 कोई नई वस्तु जैसे-चूल्हा, ओखली, कलछी, बर्तन और सुगन्धित पदार्थ से निर्मित आहार को सर्वप्रथम साधु को देने से कौन-सा दोष होता है और क्यों है?

उत्तर ऐसा आहार देने में पूति दोष होता है। क्योंकि जैसे कोई कहे कि मैं इस नये चूल्हे या सिगड़ी आदि में भात आदि पकाकर (बनाकर) पहले मुनियों को दूँगा पश्चात् अन्य किसी को दूँगा इस प्रकार प्रासुक भी भात आदि द्रव्य जिसके तैयार करने में प्रथम आरम्भ दोष किया जाता है अतः पूति कर्म-अप्रासुक रूप भाव से बनाया हुआ होने से पूति दोष कहलाता है। (इसी तरह नये वस्त्र या वास्तु(मकान) आदि के सम्बन्ध में समझना चाहिए।)

प्र.1651 असंयतों के साथ भोजन में मिश्र दोष कैसे होता है?

उत्तर पाखण्डियों और गृहस्थों के साथ मुनियों को आहार देने से प्रासुक-अप्रासुक द्रव्यों के मिश्रण, सचित्त एवं अशुद्ध वस्त्रादि का स्पर्श आदि हो जाने से आहार अशुद्ध हो जावेगा तथा युगपत् आहार देने से मुनियों का अनादर भी होगा इत्यादि दोष से मिश्र दोष माना गया है। (मू.चा.गा.429, टी.पृ.337)

प्र.1652 मुनियों को पड़िगाहन करने के उपरान्त पूजन-सामग्री के तैयार करने रूप आरम्भ करना या मुनियों के आहार का अवसर मिल गया तो देवादिक को ऐसी वस्तु जरूर समर्पित करूँगा ऐसा विचार करना कौन-सा दोष है?

उत्तर ऐसा कार्य करना बलि नाम का दोष है। क्योंकि इसमें सावद्य दोष देखा जाता है।

प्र.1653 सोलह प्रकार के उत्पादन दोष कौन-से हैं?

उत्तर धात्री, दूत, निमित्त, आजीवन, वनीपक, चिकित्सा, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, पूर्व स्तुति, पश्चात्

स्तुति, विद्या, मंत्र, चूर्णयोग और मूलकर्म इस तरह उत्पादन दोष के सोलह प्रकार हैं।

1. माता के समान बालक (बालिका) का स्नान, सजावट, क्रीड़ा, खिलाना-पिलाना और सुलाना आदि रूप लालन-पालन आदि करके या करवाकर जो साधु आहार आदि उत्पन्न कराते हैं उनको धात्री नाम का उत्पादन दोष होता है।

प्र.1654 यह माता सदृश कार्य मुनि को दोष युक्त क्यों हैं?

उत्तर 1. इस अम्बधात्री कार्य को मोक्षमार्गी साधु के द्वारा किये जाने से स्वाध्याय का विनाश होता है और मोक्षमार्ग (साधुमार्ग) में दोष (अपवाद) आदि लगते हैं। अतः इसे दोष माना है। (मू.चा.भा.1, गा.447 टी.)

2. स्व-देश से पर देश या ग्राम आदि में वचन (समाचार) ले जाना जिस कारण साधु के वचन को सुनकर उन पर सन्तुष्ट होकर जो उन्हें दान दिया जाता है और यदि मुनि ऐसा आहार ले लेते हैं तो उनके दूतकर्म नामक उत्पादन दोष होता है। यह कार्य जिनशासन में दोष का कारण है।

3. निमित्त अर्थात् ज्योतिष ज्ञान के द्वारा श्रावकों को शुभ-अशुभ बतलाकर पुनः बदले में उनसे दिया हुआ आहार जो साधु (मुनि) ग्रहण करते हैं उनके यह निमित्त नाम का उत्पादन दोष होता है। इसमें रसों का आस्वादन अर्थात् गृद्धता और दीनता आदि दोष आते हैं।

4. कोई साधु जाति, कुल, शिल्प, तप और ईश्वरता बतलाकर यदि आजीविका करता है अर्थात् जाति आदि के कथन द्वारा अपनी विशेषता बतलाकर पुनः उस दाता के द्वारा दिये गये आहार को ग्रहण करता है उसके यह आजीवन नाम का दोष होता है; क्योंकि उसमें अपनी शक्ति का छिपाना, दीनता आदि दोष आते हैं।

5. कुत्ता, कृपण(दीन), अतिथि, ब्राह्मण, पाखण्डी, आजीवक, छात्र और कौवा आदि इनको दान आदि करने से पुण्य है या नहीं। ऐसा पूछने पर पुण्य है ऐसा मुनि दाता के अनुकूल वचन बोल देते हैं, पुनः दाता अपनी बातें मनवा कर प्रसन्न होकर उन्हें आहार देता है और वे ग्रहण कर लेते हैं तो उनके बनीपक नाम का उत्पादन दोष होता है। इसमें भी दीनता आदि दोष दिखाई देते है।

6. चिकित्सा-वैद्यशास्त्र, औषध, रसायन के ज्ञान तथा विष और भूत निवारण के शास्त्रों द्वारा जो मुनि गृहस्थ का उपकार करके उनसे यदि आहार आदि लेते हैं तो उनके यह चिकित्सा नाम का उत्पादन दोष होता है; क्योंकि इसमें सावद्य आदि दोष देखे जाते हैं।

7. क्रोध को करके अपने लिए यदि भिक्षा उत्पन्न कराते हैं तो क्रोध नाम उत्पादन दोष होता है।

8. गर्व को करके अपने लिए आहार उत्पन्न कराते हैं तो मान दोष होता है।

9. कुटिल भाव करके यदि अपने लिए आहार उत्पन्न कराते हैं तो माया नामक दोष होता है। और

10. यदि लोभ-कांक्षा को दिखाकर भिक्षा उत्पन्न कराते हैं तो लोभ नाम का उत्पादन दोष होता है।

क्योंकि कषायों में परिणाम दूषित होते हैं।

11. तुम दानपति हो या यशस्वी हो, इस तरह दान देने के पूर्व दाता के सामने उसकी प्रशंसा करना और उसके द्वारा दान देना भूल जाने पर उसे याद दिलाना पूर्व-संस्तुति नाम का दोष है। इस तरह स्तुति प्रशंसा मुनियों को दोष का कारण है।

12. आहार आदि दान ग्रहण करने के पश्चात् जो साधु इस तरह कीर्ति को कहते हैं कि 'तुम दानपति हो, तुम विख्यात हो, तुम्हारा यश प्रसिद्ध हो रहा है' यह पश्चात् संस्तुति दोष है, चूकि इसमें कृपणता आदि दोष देखे जाते हैं।

13. जो साधित सिद्ध है वह विद्या है। उसकी आशा देना अर्थात् 'मैं तुम्हें इस विद्या को दूँगा,' अथवा उस विद्या के माध्यम से जो अपना जीवन चलाते हैं उनके विद्या नामक उत्पादन दोष होता है। इसमें आहार आदि की आकांक्षा देखी जाती है।

14. जो पढ़ते ही सिद्ध हो वह मन्त्र है। उस मन्त्र की आशा देने से और उसके माहात्म्य से आहार उत्पन्न कराना सो मंत्र दोष है। क्योंकि इसमें लोक प्रतारणा, जिह्वा की गृद्धता आदि दोष देखे जाते हैं।

15. नेत्रों के लिए अंजन चूर्ण और शारीरिक शोभा हेतु भूषण चूर्ण है। इन चूर्णों का लोभ देकर आहार उत्पन्न कराना सो यह चूर्ण दोष हैं। इससे जीविका आदि करने से मुनि पद में मलिनता रूप दोष का कारण है।

16. वशीकरण, मेलकरण (वियोगियों का संयोग) कर आहार उत्पन्न कराना और उसे ग्रहण करना मूलकर्म नाम का दोष है। यह स्पष्टतया लज्जा आदि दोषों का कारण है।

प्र.1655 उद्गम और उत्पादन दोष त्यागने योग्य क्यों है?

उत्तर क्योंकि इन उद्गम और उत्पादन दोषों में अधःकर्म का सद्भाव देखा जाता है। तथा ये दोष उन सभी सम्यग्दर्शनादि में दूषण उत्पन्न करने वाले हैं एवं अन्य जुगुप्सा (ग्लानि) आदि दोष इन्हीं के निमित्त से संभव हैं, अतः त्यागने योग्य हैं।

प्र. 1656 दस प्रकार के अशन दोष कौन-से हैं?

उत्तर शंकित, म्रक्षित, निक्षिप्त, पिहित, संव्यवहरण, दायक, उन्मिश्र, अपरिणत, लिप्त और छोटित ये दश अशन दोष हैं।

1. शंका से उत्पन्न हुआ आहार शंकित है। 'क्या यह आहार अधःकर्म से बना हुआ है?' ऐसी शंका करके जो आहार ग्रहण करते हैं उनके शंकित नाम का अशन दोष होता है।

2. तेल आदि से चिकने ऐसे बर्तन हाथ आदि के द्वारा दिया गया आहार यदि ग्रहण करते हैं तो उनके म्रक्षित दोष होता है। क्योंकि इसमें सम्मूर्च्छन आदि सूक्ष्म जीव-जन्तुओं की विराधना का दोष देखा जाता है।

3. सचित्त पृथ्वी, सचित्त जल, सचित्त अग्नि, हरित काय वनस्पति, बीज काय और त्रसजीव इन पर रखा हुआ जो आहार आदि है वह सचित्त हो जाता है ऐसे आहार को लेना निक्षिप्त दोष है। अहिंसा की दृष्टि से वर्जनीय है।

4. अप्रासुक या प्रासुक ऐसे किसी बड़े वजनदार ढक्कन आदि से ढके हुए आहार आदि को, उसपर का आवरण खोलकर दिया जाये और जिसे साधु ग्रहण कर लेते हैं तो उनके पिहित नाम का अशन दोष होता है।

5. दान के निमित्त वस्त्र या बर्तन आदि को जल्दी से खींचकर बिना देखे जो भोजन आदि साधु को दिया जाता है और यदि वे उस भोजन-पान आदि को ग्रहण कर लेते हैं तो उनके संव्यवहरण नाम का अशन दोष होता है।

6. धाय (बालक को सजाने वाली सूसित), मद्यपायी, रोगी (व्याधि ग्रस्त), सूतक-पातक से युक्त, नपुंसक, पिशाचग्रस्त, नग्न, मलमूत्र करके आये हुए, मूर्छित, वमन करके आये हुए, रुधिर सहित, वेश्या, आर्यिका (साध्वी), तैल मालिश करने वाली, अतिबाला, अतिवृद्धा, खाती हुई, गर्भिणी (पाँच माह के ऊपर), अंधी, किसी दीवाल आदि आड़ में खड़ी, बैठी हुई, ऊँचे स्थान पर खड़ी हुई, नीचे स्थान पर स्थित, (ऐसे ही पुरुष भी) आहार देते हैं तो दायक दोष है।

फूँकना, जलाना, बुझाना इत्यादि अग्नि का कार्य करके या लीपना, धोना करके तथा दूध पीते हुए बालक को छोड़कर इत्यादि कार्य करके आकर यदि दान देते हैं तो दायक दोष होता है।

7. पृथ्वी, जल, हरितकाय, बीज और सजीव त्रस, इन पाँच से मिश्रित हुआ आहार उन्मिश्र है। उसे जो साधु ग्रहण करते हैं उन्हें उन्मिश्र दोष लगता है। इसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। चूंकि यह महादोष है, इस दोष में सजीव त्रसों को लिया गया है। निर्जीव अर्थात् मरे हुए त्रसों के आ जाने का हेतुभूत कारण आहार मल दोष के अंतर्गत आ जावेगा, जो अंतराय रूप है और त्याज्य है।

8. जिसका वर्ण, गंध, रस नहीं बदला है ऐसे आहार या पान (पेय) आदि जो कि अग्नि, हरड़चूर्ण आदि के द्वारा अपक्व हैं या अप्रासुक हैं उनको जो साधु ग्रहण करते हैं उनके अपरिणत नाम का दोष होता है।

9. गेरु आदि और गीला आटा, कौंपल-अपक्व शाक, अथवा अप्रासुक जल से लिप्त हुए हाथ से या बर्तन से दिया गया आहार यदि साधु लेते हैं तो उनके लिप्त नाम का अशन दोष होता है।

10. आहार करते हुए साधु के यदि अस्थिर-छिद्र सहित पाणिपात्र (अंजलीपुट) से आहार लेते हैं या पीने की चीजें गिरती रहती हैं अथवा वे साधु बहुत-सा आहार गिराते हुए आहार लेते हैं तो उन साधु के छोटित या परित्यजन दोष होता है। इसी का नाम परिसातन या त्यक्त भी है ये दस अशन दोष सावद्य युक्त, जीव दया रहित और निंदनीय होने से त्याज्य हैं।

प्र.1657 आठ प्रकार की पिण्ड शुद्धि से पृथक् भूत चौदह मल दोष कौन-से हैं?

उत्तर नख, रोम, जंतु, हड्डी, कण, कुण्ड, पीव, चर्म, रुधिर, मांस, बीज, फल, कंद और मूल ये आठ प्रकार की पिण्ड शुद्धि से पृथक् भूत चौदह मल दोष हैं।

नख- मनुष्य या तिर्यञ्चों के हाथ या पैर की उंगुलियों का अग्र भाग।

रोम- मनुष्य और तिर्यञ्चों के बाल या पंखों के बाल।

जन्तु- प्राणियों के निर्जीव शरीर।

अस्थि- कंकाल अर्थात् हड्डी।

कण- जौ-गेहूँ आदि के बाहर का अवयव, छिलका।

कुण्ड- शालि (चावल) आदि अभ्यन्तर भाग का सूक्ष्म अवयव।

पूय- पका हुआ रुधिर अर्थात् घाव का पीव।

चर्म-शरीर की त्वचा (प्रथम धातु)।

रुधिर- खून-रक्त (द्वितीय धातु)।

मांस- रुधिर के लिए आधारभूत (तृतीय धातु)।

बीज- उगने योग्य अवयव अर्थात् गेहूँ, चने आदि।

फल- विकसित हुए आम, अमरूद आदि फल।

कंद- नीचे से उगने वाला, अर्थात् जमीन में उत्पन्न होने वाले अंकुर की उत्पत्ति के कारण भूत सूरण आदि जमीकंद।

मूल- पिप्पली आदि जड़।

प्र.1658 चौदह मल दोषों में महामल दोष कौन-से हैं?

उत्तर रुधिर, मांस, हड्डी, चर्म और पीव ये महामल दोष हैं।

आहार में इनके आ जाने पर सर्वाहार का परित्याग कर भी प्रायश्चित्त ग्रहण करना होता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के शरीर अर्थात् मृत लट, चिंवटी, मक्खी आदि तथा बाल यदि आहार में आ जावें तो आहार छोड़ देना होता है। क्योंकि बाल चमड़ी से उत्पन्न एक भाग रूप मल होता है। आहार में नख आ जाने पर आहार छोड़ देना होता है और किंचित् प्रायश्चित्त भी ग्रहण करना होता है। क्योंकि नख भी एक हड्डी जैसा अवयव है।

प्र.1659 कण, कुंड आदिक आहार में आ जाने पर क्या किया जाता है?

उत्तर कण, कुण्ड, बीज, कंद, फल और मूल इनके आ जाने पर यदि इन्हें न निकाल सकें तो आहार छोड़ देना चाहिए। अर्थात् सचित्त फल एवं योनिभूत सचित्तकण आदि अंजली में आने पर इन्हें निकाला जा सकता है, लेकिन अंजली पूर्ण खाली न होने पाये, अन्यथा आगम में पिण्ड पतन नामक अन्तराय

माना गया है।

प्र.1660 साधु की अंजुली में कंदमूल आ जाना कैसे संभव है?

उत्तर साधु की अंजुली में कंदमूल का आ जाना असंभव है, क्योंकि पांच तरह के अभक्ष पदार्थों में बहुघात के अन्तर्गत कंदमूल वर्णित किये गये हैं अतः दाता द्वारा इन्हें साधु को दिया जाना शक्य नहीं है, परन्तु कदाचित् कहीं से अंजुली में पड़ जाना सम्भव हो सकता है।

प्र.1661 सिद्ध भक्ति कर लेने के बाद आहार के समय यदि साधु को स्व, पर शरीर से निकलते हुए रुधिर, पीव दिख जाये तो क्या करना चाहिए?

उत्तर ऐसे काल में उस दिन आहार छोड़ देना चाहिए। यदि माँस व मुर्दा भी दिख जाये तो उस दिन आहार त्याग कर देना चाहिए। (मू.चा.भा.1, गा.484 टी.)

प्र.1662 यति-मुनि (दिगम्बर जैन साधु) दोष रहित आहार करते हैं तो वे कैसा आहार करते हैं? या प्रासुक और द्रव्य तथा भाव शुद्ध का अर्थ क्या है?

उत्तर साधु द्रव्य और भाव से जो प्रासुक वस्तु आहार में लेते हैं वह प्रासुक अर्थात् निकल गये हैं असु अर्थात् प्राणी जिसमें से ऐसे द्रव्य से शुद्ध है अर्थात् जिसमें एकेन्द्रिय जीव नहीं है वह द्रव्य से शुद्ध है। पुनः जिसमें द्विन्द्रिय आदि जीव जीते हुए या निर्जीव हुए भी हैं वह आहार मुनि (व्रती) को दूर से ही छोड़ देना चाहिए, क्योंकि वह द्रव्य से अशुद्ध है। इसी प्रकार से प्रासुक शुद्ध हुआ भी द्रव्य यदि मुनि के लिए तैयार किया गया है तो वह द्रव्य से शुद्ध होते हुए भी अशुद्ध ही है। अर्थात् वह आहार भाव से अशुद्ध है।

प्र.1663 पुनः मुनि के योग्य निर्दोष आहार कैसा होता है?

उत्तर श्रावक अतिथि संविभाग व्रत का पालन करते हुए सामान्यतया शुद्ध भोजन बनाता है और मुनियों को पड़िगाहन करके आहार देता है। तथा साधु भी अपने आहार हेतु मन-वचन-काय, कृत- कारित अनुमोदना रूप नव भेदों को न करते हुए आहार लेते हैं वही निर्दोष आहार है।

प्र.1664 श्रावकों द्वारा आरम्भ करके बनाये गये आहार को करते हुए भी साधु किस तरह निर्दोष कहलाते हैं?

उत्तर जैसे मत्स्यों के लिए जल में मादक वस्तु डालने पर उस जल से मत्स्य ही मद को प्राप्त होते हैं, मेंढक नहीं होते। इसी तरह पर के लिए या श्रावकों के निमित्त बनाये गये भोजनादि में उसे ग्रहण करते हुये भी मुनि विशुद्ध हैं उसके दोष से लिप्त नहीं होते हैं। अर्थात् दाता या उसके कुटुम्बीजन ही अधःकर्म आदि दोष से दूषित हैं, साधु नहीं।

प्र.1665 अतिथि संविभाग हेतु पंचसूना से अधःकर्म कर आहार तैयार कर श्रावक केवल सदोषता को ही प्राप्त करते हैं या उन्हें अन्य कोई फल भी प्राप्त होता है।

उत्तर अतिथि संविभाग करने हेतु आहार बनाने वाले वे गृहस्थ जन यदि सम्यग्दृष्टि हैं तो साधु को दिये गये

आहारादि दान के फल से उस अधःकर्म-आरम्भ जन्य दोष को दूर करके, स्वर्गगामी और मोक्षगामी हो जाते हैं। और यदि मिथ्यादृष्टि हैं तो फिर भोगभूमि को प्राप्त कर लेते हैं इसलिए उन्हें दोष नहीं होता है।

प्र.1666 आहार के लिए निकले हुए साधु क्या करते हुए भ्रमण करते हैं?

उत्तर भिक्षा चर्या में प्रविष्ट हुए मुनि मन-वचन-काय रूप गुप्ति की रक्षा करते हुए चलते हैं। मूलगुणों और उत्तरगुणों की रक्षा करते हुए तथा शील, संयम आदि की रक्षा करते हुए विचरण करते हैं। ऐसे मुनि शरीर से वैराग्य, संग (परिग्रह) से वैराग्य और संसार (परिजनों) से वैराग्य का विचार करते हुए भ्रमण करते हैं।

प्र.1667 मुनिराज आहार के काल में कौन-से अन्तरायों का परिहार या पालन करते हैं?

उत्तर मुनिराज के आहार के काल में होने वाले बत्तीस अन्तराय-काक, अमेध्य, वमन, रोधन, रुधिर, अश्रुपात, जान्वधःपरामर्श, जानू-परिव्यतिक्रम, नाभ्यधोनिर्गमन, प्रत्याख्यान-सेवन, जन्तुबध, काकादि-पिंडहरण, पिंडपतन, पाणौ जन्तु बध, मांसादि दर्शन, उपसर्ग, पदांतरे जीव, भाजन संपात, उच्चार, प्रस्रवण, अभोज्य गृहप्रवेश, पतन, उपवेशन, सदंश, भूमिस्पर्श, निष्ठीवन, उदरकृमि निर्गमन, अदत्तग्रहण, प्रहार, ग्रामदाह, पादेन किंचित् ग्रहण और करेण किंचिद् ग्रहण, इस तरह वर्णित किये गये हैं।

1. काक- आहार काल में गमन करते हुए या स्थित हुए मुनि के ऊपर यदि काक, वक आदि पक्षी वीट कर देवे तो वह काक नाम का अन्तराय है। (यहाँ काक शब्द उपलक्षण मात्र है अतः काक, वक, बाज आदि का ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि साहचर्य की अपेक्षा यह कथन किया गया है।)

2. अमेध्य-अशुचि पदार्थ विष्ठा आदि से यदि पैर लिप्त हो जाय तो अन्तराय होता है।

3. वमन- यदि स्वयं को वमन हो जाय तो वमन नाम का अन्तराय है।

4. रोधन- यदि कोई आहार को निकले मुनि को रोक दे या पकड़ ले तो रोधन नामक अन्तराय है।

5. रुधिर- यदि आहार को जाते या करते समय अपने या अन्य के शरीर से रुधिर, पीव निकलते (बहते हुए) दिख जावे तो अन्तराय है।

6. अश्रुपात-दुःख से यदि अपने अथवा पास में स्थित किसी अन्य के भी अश्रु आ जावें तो अन्तराय है।

7. जान्वधः परामर्श- घुटनों से नीचे-भाग का यदि हाथ से स्पर्श हो जावे तो अन्तराय है।

8. जानूपरिव्यतिक्रम- घुटनों से ऊपर के अवयवों का यदि हाथ से स्पर्श हो जावे तो अन्तराय है।

9. नाभ्यधोनिर्गमन- नाभि से नीचे मस्तक करके यदि निकलना पड़ जावे तो अन्तराय है।

10. प्रत्याख्यान सेवन- जिस वस्तु का त्याग है यदि उसका भक्षण हो जावे तो अन्तराय है।

11. जन्तु वध- यदि अपने से या अन्य के द्वारा सामने किसी जन्तु का वध हो जावे तो अन्तराय है।

12. काकादि पिण्डहरण- यदि कौवे आदि हाथ से ग्रास हरण कर लेवें तो अन्तराय है।

13. पिंड पतन- यदि आहार करते हुए अपने पाणि-पात्र से पिंड-ग्रास मात्र का पतन हो जावे तो अन्तराय है।

14. पाणौ जन्तु वध- यदि आहार करते हुए साधु के पाणिपुट (अंजुली) में कोई जन्तु स्वयं आकर मर जावे तो अन्तराय है।

15. मांसादि दर्शन- यदि मरे हुए पंचेन्द्रिय जीव के शरीर का माँस आदि दिख जावे तो अन्तराय है।

16. उपसर्ग- यदि देवकृत आदि उपसर्ग हो जाये तो अंतराय है।

17. पदान्तरे जीव- यदि पंचेन्द्रिय जीव पैरों के अंतराल से निकल जावे तो अन्तराय है।

18. भाजन संपात- यदि आहार देने वाले के हाथ से बर्तन गिर जावे तो अन्तराय है।

19. उच्चार- यदि अपने उदर से मल च्युत हो जावे तो अन्तराय है।

20. प्रस्रवण- यदि अपने शरीर से मूत्रादि हो जाये तो अंतराय है।

21. अभोज्य गृह प्रवेश- यदि आहार हेतु पर्यटन करते हुए मुनि का चांडाल आदि अभोज्य के गृह में प्रवेश हो जावे तो अन्तराय है।

22. पतन- यदि मूर्च्छा आदि से स्वयं गिर पड़े तो अन्तराय है।

23. उपवेशन- आहार करते समय यदि बैठना पड़ जावे तो अन्तराय है।

24. सदंश- आहार के समय यदि कुत्ता आदि काट दे तो अन्तराय है।

25. भूमि स्पर्श- आहार के प्रारम्भ की सिद्ध-भक्ति कर लेने के उपरान्त यदि हाथ से भूमि का स्पर्श हो जावे तो अन्तराय है।

26. निष्ठीवन- आहार के समय यदि अपने मुख से थूक, कफ आदि निकल जावे तो अंतराय है।

27. उदरकृमि निर्गमन- आहार के वक्त यदि उदर से कृमि निकल पड़े तो अंतराय है।

28. अदत्त ग्रहण- यदि बिना दी हुई कुछ वस्तु ग्रहण कर लेवे तो अंतराय है।

29. प्रहार- यदि अपने ऊपर या अन्य किसी पर तलवार आदि से प्रहार हो जावे तो अन्तराय है।

30. ग्राम दाह- यदि ग्राम में अग्नि लग जावे तो अन्तराय है।

31. पादेन किंचित् ग्रहण- यदि पैर से कुछ ग्रहण कर लिया जावे तो अंतराय है। और

32. करेण किंचिद्ग्रहण- यदि हाथ से कुछ वस्तु भूमि पर से ग्रहण कर ली जावे तो अंतराय है।

प्र.1668 मुनियों के पूर्वोक्त काक आदि अन्तरायों से अतिरिक्त भी क्या भोजन त्याग के हेतु रूप अन्तराय होते हैं?

उत्तर हाँ! जैसे- चांडाल आदि का स्पर्श, कलह, इष्टमरण, साधर्मिक सन्यास पतन, प्रधान का मरण आदि

ये भी भोजन त्याग के हेतु हैं। यदि राजा का भय या अन्य किंचित् (कोई) भय हो जावे, यदि लोक निन्दा हो जावे तो भी आहार त्याग कर देना चाहिए।

प्र.1669 क्या अशुभ कार्यों में ही मुनि को आहार त्याग करना चाहिए या शुभ अनुष्ठान-हेतु भी आहार त्याग करना चाहिए?

उत्तर साधु को संयम (रक्षण व वृद्धि) हेतु तथा व्रत अनुष्ठान, संवर, निर्जरा और निर्वेद (वैराग्य) भाव के लिए भी आहार का त्याग करना होता है।

प्र.1670 सर्वैषण, विद्वैषण और शुद्धाशन आहार किसे कहते हैं?

उत्तर * एषणा समिति से शुद्ध आहार सर्वैषण कहलाता है।

* विकृति अर्थात् पांच प्रकार के रस, उन से रहित आहार निर्विवृति रूप है। अर्थात् जो गुड़, तेल, घी, दही और दूध तथा शाक आदि से रहित है। अर्थात् मांड (भात का जल) या कांजी, शुष्क तक्र-मक्खन निकाला हुआ छाछ इनसे सहित आहार विद्वैषण है।

* कांजी व छाछ आदि से भी रहित आहार अव्यंजन है। जो पाक से अवतीर्ण (बनकर आया हुआ) मात्र है अर्थात् मसाले आदि से संस्कार कर किंञ्चित भी अन्य नहीं किया गया है व वह शुद्धासन है।

प्र.1671 सर्वाशन और असर्वाशन किसे कहते हैं?

उत्तर सर्वैषण, विद्वैषण और शुद्धाशन रूप यह तीन प्रकार का द्रव्य अर्थात् भोजन जो सर्वाशन है वह आहार में ग्रहण करने योग्य है। तथा सर्व रसों से समन्वित और सर्व व्यंजनों से सहित ऐसा आहार असर्वाशन है वह कदाचित ग्रहण करने योग्य है और कदाचित् अयोग्य है। जिस हेतु (शरीर की प्रकृति के अनुरूप पथ्यापथ्यादि अनिष्ट आदि का) विचार करने योग्य है।

प्र.1672 मुनि के लिए देने योग्य आहार में श्रावकों द्वारा की जाने वाली विधि क्या है?

उत्तर मुनि के लिए देने योग्य आहार में श्रावकों द्वारा की जाने वाली विधि नवधा भक्ति एवं सप्त गुण रूप हैं। जिसका वर्णन देखिये (जैनागम संस्कार अ.14, पृ. 136-37)



जो सद्गुरु के सन्मार्ग पर चलता है तो उसकी सर्व सिद्धियाँ द्वार खोले प्रतीक्षा करती हैं।

For the person who walks faithfully on the path shown by the True Guru, all spiritual attainments wait with open doors.

•••

गुरु से हठ करना मतलब विनय तप को नष्ट करना है।

To engage in arguments with the Guru means to destroy the great spiritual penance of practicing humility.

अध्याय-16

आगम में सत्रह प्रकार के निषीधिका स्थानादि

(बारह प्रकार के भिक्षुक प्रतिमाएँ, सत्रह प्रकार के असंयम, बीस प्रकार के असंयम स्थान, उन्नीस प्रकार के पाप सूत्र, तैतीस प्रकार की आसादनाएँ)

प्र.1673 आगम में सत्रह प्रकार के निषीधिका-स्थान कौन-से हैं?

उत्तर आगम में सत्रह प्रकार के निषीधिका स्थान इस तरह से हैं-

1. कृत्रिम-अकृत्रिम अरहंत सिद्ध प्रतिबिम्ब (जिनबिम्ब) 2. कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालय 3. बुद्धि आदि ऋद्धि सम्पन्न मुनि। 4. ऋद्धि सम्पन्न मुनियों के आश्रित क्षेत्र 5. अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानी योगी मुनीश्वर 6.ज्ञानोत्पत्ति के प्रदेश 7. प्रत्यक्ष ज्ञानियों के आश्रित क्षेत्र 8. सिद्ध जीव 9. निर्वाण क्षेत्र 10. सिद्धों से आश्रित क्षेत्र 11.सम्यक्त्व गुण युक्त तपस्वी 12. सम्यक्त्वी तपस्वी युक्त क्षेत्र 13. सम्यक्त्वी तपस्वी द्वारा छोड़ा हुआ आश्रित क्षेत्र 14. योग स्थित तपस्वी 15. तदाश्रित क्षेत्र 16. तदाश्रित छोड़े हुए क्षेत्र 17. तीन प्रकार के पण्डित मरण में स्थित मुनिगण (प्रायोपगमन-सन्यास, इंगिनी-मरण और भक्तप्रत्याख्यान।)

प्र.1674 बारह प्रकार की भिक्षुक प्रतिमायें कौन-सी हैं?

उत्तर किसी देश में उत्कृष्ट-दुर्लभ आहार ग्रहण करने रूप मुनिवर की बारह प्रकार प्रतिमाएँ इस तरह कही गईं हैं-

*एक माह के भीतर-भीतर मुझे ऐसा आहार मिलेगा तो ग्रहण करूँगा अन्यथा नहीं ऐसी प्रतिज्ञा करना प्रथम प्रतिमा है। माह के अंतिम दिन प्रतिमा योग धारण करता है।

* प्रथम आहार से सौ गुना दुर्लभ आहार दो माह के भीतर मिलेगा तो ग्रहण करूँगा नहीं तो नहीं- ऐसी प्रतिज्ञा करना दूसरी प्रतिमा है।

* इसी तरह उत्तरोत्तर उत्कृष्ट आहार तीन माह, चार माह, पाँच माह, छह व सात माह के भीतर मिलेगा तो करूँगा अन्यथा नहीं क्रमशः ऐसी प्रतिज्ञा करना तीसरी, चौथी पाँचवी, छठी और सातवी प्रतिमा है।

* इसके बाद तीन दिन का अवग्रह करना, फिर सात दिन का अवग्रह करना आठवी प्रतिमा है।

* तदुपरान्त किसी भी प्रकार का आहार प्राप्त होने पर क्रम-क्रम से तीन ग्रास लेने का दो ग्रास व एक ग्रास लेने का अवग्रह करना नौवीं, दसवीं और ग्यारहवी प्रतिमा है। उसके बाद भी वह योगी अहोरात्र प्रतिमायोग धारण करता है।

* तत्पश्चात् रात्रि में प्रतिमायोग से स्थित होकर प्रातःकाल केवलज्ञान को प्राप्त कर लेना यह बारहवीं

प्रतिमा कहलाती है।

प्र.1675 प्रतिमायोग किसे कहते हैं?

उत्तर एक ही आसन में स्थित होकर नाशाग्र दृष्टि-सह अविचल रहकर आत्मध्यान या तत्त्व चिन्तवन में लवलीन होना ही प्रतिमायोग कहलाता है।

प्र.1676 अवग्रह क्या कहलाता है?

उत्तर एक नियतकाल पर्यन्त कोई नियम व वृत्तिपरिसंख्यान या आंकड़ी धारण करना अवग्रह कहलाता है।

प्र.1677 जिनागम में सत्रह प्रकार के असंयम भाव कौन-से हैं?

उत्तर सत्रह प्रकार के असंयम भाव- 1.पृथ्वीकाय 2. जलकाय 3.वायुकाय 4. अग्निकाय 5.वनस्पतिकाय 6.दो इन्द्रिय 7.तीन इन्द्रिय 8.चार इन्द्रिय 9.पञ्चेन्द्रिय-इन 9 प्रकार के जीवों की विराधना करना 10. पीछे अर्थात् कार्य आरम्भ के उपरान्त प्रतिलेखन करना 11. दुष्परिणामों से प्रतिलेखन करना 12.जीवों को उठाकर दूसरी जगह रखना 13. जिन जीवों को उठाकर अन्यत्र रखा हो उनका पुनः अवलोकन न करना 14.मन का निरोध नहीं करना 15. वचन का निरोध नहीं करना 16. काय का निरोध नहीं करना 17. अजीव तृण कष्ठादि को नख आदि से छेदना इस तरह इन 17 प्रकार के कार्यों में 17 प्रकार के असंयम भाव होते हैं जो योगी द्वारा त्याज्य है।

प्र.1678 आगम में 17 तरह के संयम किस तरह बतलाये गये हैं?

उत्तर पञ्च पाप त्याग, पञ्चेन्द्रिय निग्रह, चार कषाय विजय और मन-वचन-काय वश रूप त्रिगुप्तियाँ इस प्रकार से सत्रह तरह के संयम होते हैं।

प्र.1679 शास्त्रों में बीस प्रकार के असमाधि स्थान कौन-से बतलाये हैं?

उत्तर असमाधि के बीस स्थान-

1. डवडवचर- ईर्या समिति से रहित होकर गमन करना।

2.अप्पमज्जियं- बिना देखे-शोधे शौचादि के उपकरणों का रखना या उठाना।

3. रादीणीयपडिहासी- अपने से एक रात्रि भी दीक्षा में बड़ा है, उसके बीच में बोलना या उसका तिरस्कार करना।

4. अधिसेज्जाणं- अपने से दीक्षा में बड़े हैं उनके अथवा गुरु के मस्तक पर सोना।

5. कोही- गुरु के वचनों पर क्रोध करना।

6. थेरविवादंताराए- जहाँ अपने से बड़े गुरु आदि बोल रहे हों वहाँ बीच में बोलना।

7. उवघादं- दूसरों का तिरस्कार करके बोलना।

8. अणणुवीचि- वीतराग प्रणीत शास्त्र के विरुद्ध बोलना।

9. अधिकरणी- स्वबुद्धि से आगम विरुद्ध तत्त्व का कथन करना।

10. **पिट्ठिमास-पडिणीओ**- पीठ का मांस खाना अर्थात् पीठ पीछे किसी की चुगली करना।

11. **असमाहि कलहं**- एक दूसरे की बात एक दूसरे को कहकर झगड़ा पैदा करना।

12. **झंझा**-थोड़ी- थोड़ी बातों में कलह करके रोष करना।

13. **सद्दकरेपढिदा**- सबकी ध्वनि का तिरस्कार करके स्वयं बड़े जोर-जोर से पढ़ना जिससे दूसरे अपना पाठ भूल जायें।

14. **एषणा समिदि विरहिया**- एषणा समिति रहित आहार करना।

15. **सूरधमाण भोजी**- जिस भोजन से प्रमाद आवे ऐसे गरिष्ठ भोजन का सेवन करना।

16. **गणांगणिगो**- बहुत अपराध करने वाला अर्थात् एक गण से दूसरे गण में निकाल देने वाला अपराध करना।

17. **सरक्खरावदे**- धूलि से भरे हुए पैरों से जल में प्रवेश करना और गीले पैरों से धूलि में प्रवेश करना।

18. **अप्माण भोजी**- अप्रमाण भोजन करना अर्थात् भूख से ज्यादा खाना।

19. **अकाल सज्झााओ**- अकाल में स्वाध्याय करना।

20. **अदिट्ठ**- बिना देखे या इधर-उधर देखकर गमन करना।

प्र.1680 प्राचीन ग्रन्थों में उन्तीस तरह के पाप सूत्र कौन- से बतलाये गये हैं?

उत्तर **उन्तीस पाप सूत्र**- 1. **चित्रकर्मादि सूत्र**- चित्रकारितादि के शास्त्र।

2.**गणित सूत्र**- गुणा-भागादि बतलाने वाले शास्त्र।

3. **चाटुकार सूत्र**- खुसामद या स्वार्थमयी प्रशंसाकारक शास्त्र।

4. **वैद्यक सूत्र**- शारीरिक चिकित्सा वाले शास्त्र।

5. **नृत्यसूत्र**- नाच क्रिया सिखलाने वाले शास्त्र।

6. **गान्धर्व सूत्र**- वाद्य यन्त्र बजाने की शिक्षा देने वाले शास्त्र।

7. **पटह सूत्र**- ढोल आदि बजाने की शिक्षा देने वाले शास्त्र।

8. **अगद सूत्र**- विष विद्या के प्रयोग से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र।

9. **मद्य सूत्र**- मद्य (शराब) से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र।

10. **द्यूत सूत्र**- जुवा अर्थात् धन, पैसे के दाव व शर्तादि से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्र।

11. **राजनैतिक सूत्र**- राज-शासन व पदाधिकार की हार जीत आदि से सम्बन्धित शाास्त्र।

12. **चतुरंग सूत्र**- राज्यकीय सेनाओं से सम्बन्धित शास्त्र।

13. **हस्ति सूत्र**- हाथी के लक्षण, वशीकरण आदि से सम्बन्धित शास्त्र।

14. **अश्व सूत्र**- घोड़े की पहचान, सम्हाल व सवारी से सम्बन्धित शास्त्र।

15. पुरुष सूत्र- श्रेष्ठ पुरुष के लक्षण, उसके बल-वीर्य और पराक्रम से सम्बन्धित शास्त्र।

16. स्त्री सूत्र- स्त्री की कला-कुशलता एवं माया बाहुल्य सम्बन्धित शास्त्र।

17. गोसूत्र- गाय उत्पत्ति उनके प्रकार एवं गायों से प्राप्त पदार्थों के प्रयोग सम्बन्धित शास्त्र।

18. छत्र सूत्र- छत्र के लक्षण व निर्माण एवं उपयोगादि सम्बन्धित शास्त्र।

19. असि सूत्र- तलवार के लक्षण व प्रयोग तथा रक्षादि सम्बन्धित शास्त्र।

20. दण्ड सूत्र- दण्ड (डण्डा) लक्षण व चलाने आदि की विद्या वाले शास्त्र।

21. अंजन सूत्र- अञ्जन (काजल) का लक्षण, निर्माण व आँजने के प्रयोग और लाभ से सम्बन्धित शास्त्र।

22. व्यञ्जन सूत्र- किसी के शरीर पर तिल, मसा, लशन आदि देखकर शुभाशुभ कहने वाले शास्त्र।

23. स्वर सूत्र- किसी पशु-पक्षी की आवाज सुनकर शुभाशुभ कहने वाले शास्त्र।

24. अंगसूत्र- किसी स्त्री अथवा पुरुष के नाक, कान, आँख और अँगुली आदि को देखकर शुभाशुभ बतलाने वाले शास्त्र।

25. लक्षण सूत्र- शरीर में होने वाले ध्वजा आदि को देखकर शुभाशुभ बतलाने वाले शास्त्र।

26. छिन्न सूत्र- वस्त्र को कटा हुआ, चूहे आदि द्वारा खाया हुआ, जला हुआ, स्याही आदि से भरा (रंगा) हुआ देखकर शुभाशुभ कहने वाले शास्त्र।

27. भौम सूत्र- पृथ्वी को देखकर- ''यहाँ धन है, यहाँ खारा पानी है, यहाँ मीठा पानी है'' आदि बतलाने वाले शास्त्र।

28. स्वप्न सूत्र- स्वप्नों के शुभाशुभ कहने वाले शास्त्र।

29. अन्तरिक्ष सूत्र- सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र आदि के उदय, अस्त या आकृति आदि को देखकर शुभाशुभ बतलाने वाले शास्त्र। ये उन्तीस पाप सूत्र है।- (मुनि पाक्षिक प्रतिक्रमण)

प्र.1681 चित्र कर्मादि सूत्र रूप शास्त्रों को पाप सूत्र रूप क्यों कहा गया है?

उत्तर क्योंकि इनमें सांसारिक प्रयोजन, हिंसादि आरम्भ एवं लौकिक प्रयोजन की मुख्यता देखी जाती है।

प्र.1682 जैनागम में तैतीस तरह की असादनाएँ कौन-सी बतलाई गयी हैं?

उत्तर पंच प्रकार के अस्तिकाय, छह प्रकार के जीव निकाय, पंच महाव्रत, अष्ट प्रवचन मातृका और जीवादि नौ पदार्थ सम्बन्धी अनादर की भावना तैतीस असादना कहलाती है।

प्र.1683 भव्यजनों के लिए प्रतिपल भाने योग्य सप्त भावनाएँ कौन-सी हैं?

उत्तर सप्त भावनाएँ- कि मैं 1. जिनागम (समीचीन शास्त्र) का अभ्यास करूँ 2. जिनेन्द्र प्रभु या पंच परमेष्ठी के चरणों में वंदन-पूजन करूँ 3. हमेशा आर्य-सज्जन पुरुषों की संगति करूँ 4. सच्चारित्र परायण पुरुषों या भव्यों के गुणों की कथा करूँ 5. दूसरों के दोष-कथन व विवाद में मौन रहूँ 6.सर्व

जीवों के साथ प्रिय व हितकर वचन बोलूँ और 7. जब तक मोक्ष न मिले तब तक आत्मतत्त्व की लीनता रूप या उपलब्धि की भावना भी बनी रहे।

प्र.1684 भक्ति आदि के अंत में पढ़ी जाने वाली चूलिका का अर्थ क्या होता है?

उत्तर उक्त (कहा हुआ) अनुक्त (नहीं कहा हुआ) दुरुक्त (कठिन विषय) का कथन करने वाली चूलिका कहलाती है।

प्र.1685 भव्यों द्वारा प्रणम्य श्रुतज्ञान कितने पद प्रमाण है?

उत्तर श्रुतज्ञान 112 करोड़ 83 लाख 58 हजार और 5 पद प्रमाण है, जो भव्यगणों द्वारा वंदनीय है।



गुरु को खुश करना मतलब सुख शांति रूप उत्तम सुख को प्राप्त करना है।

To keep the Guru pleased through your right conduct means to attain the supreme happiness of inner peace.

•••

गुरुवर का आशीष ही सफलता की सही सौगात है।

Receiving the divine blessing of the Guru is the most authentic and true gift of success in one's life.

•••

गुरु की निःस्वार्थ सेवा ही पुण्य का खजाना भर तीर्थंकर पद को दिलाने वाली होती है।

Performing selfless service to the Guru fills the treasury of merit and can even lead a soul to the status of a Tirthankara.

•••

विषय भोगों के साथ आध्यात्मिक योग का स्वाद दुर्लभ है।

The true taste of spiritual union and meditation is very rare for those who are still immersed in sensual pleasures.

•••

बाहरी ध्यान से चित्त का हटना ही आत्मिक ध्यान से जुड़ना है।

The act of withdrawing the mind from external objects is, in itself, the true connection to spiritual meditation.

द्रव्यानुयोग

अध्याय-17

बन्ध त्रिभङ्गी, बन्ध उदय सत्व

(नव-पदार्थ, पुद्गल के भेद और कर्म के भेदादि, गुणस्थानों में बन्धादि, आबाधाकालादि)

प्र.1686 द्रव्यानुयोग किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें जीव-अजीव, पुण्य-पाप और बन्ध-मोक्ष का वर्णन अथवा सप्त तत्त्व या नव पदार्थों का वर्णन होता है उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं।

प्र.1687 क्या जीव, अजीव आदि को जानना भी सम्यक्त्व है?

उत्तर हाँ! सत्यार्थ रूप से जाने गये जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये ही सम्यक्त्व हैं। अर्थात् जो पदार्थ जिस रूप से व्यवस्थित हैं उन्हें उसी स्वरूप से जानना सम्यक्त्व है। (मू.चा., भाग 1, गा.203)

प्र.1688 इन जीवादि पदार्थों को सम्यक्त्व कैसे कहा है?

उत्तर परमार्थ रूप में जाने गये ये पदार्थ ही श्रद्धा के विषय हैं अतः ये श्रद्धान में कारण हैं और श्रद्धान होना यह कार्य है जो कि सम्यक्त्व है किन्तु कारण भूत पदार्थों में कार्यभूत श्रद्धान का अध्यारोप करके उन पदार्थों को ही सम्यक्त्व कह दिया है।

प्र.1689 भूतार्थ ज्ञान से जाने हुए नव पदार्थ सम्यक्त्व होते हैं ऐसा जो कहा जाता है उसमें उस भूतार्थ ज्ञान का क्या स्वरूप है?

उत्तर यद्यपि ये नव पदार्थ तीर्थ की प्रवृत्ति निमित्तक होने से प्राथमिक या अल्पज्ञ-नवीन शिष्य की अपेक्षा से भूतार्थ (सत्यार्थ) कहे जाते हैं। फिर भी अभेद रत्नत्रयलक्षण निर्विकल्प समाधि के काल में वे अभूतार्थ-असत्यार्थ ठहरते हैं अर्थात् वे शुद्धात्मा के स्वरूप नहीं होते हैं। किन्तु इस परम समाधि के काल में तो उन नव पदार्थों में शुद्ध निश्चय नय से एक शुद्धात्मा ही झलकता है, प्रकाशित होता है, प्रतीति में आता है, अनुभव किया जाता है। और जो वहाँ पर यह अनुभूति, प्रतीति अथवा शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है वही निश्चय सम्यक्त्व है। वह अनुभूति ही गुण और गुणी में निश्चय नय से अभेद विवक्षा करने पर शुद्धात्मा का स्वरूप है ऐसा तात्पर्य है। और जो प्रमाण, नय, निक्षेप हैं वे प्रारम्भ अवस्था में तत्त्वों के विचार के समय सम्यक्त्व के लिए सहकारी कारणभूत होते हैं और वे भी सविकल्प अवस्था में ही भूतार्थ हैं, किन्तु परमसमाधि काल में तो वे भी अभूतार्थ हो जाते हैं। उन सबमें भूतार्थ रूप से एक शुद्ध जीव ही प्रतीति में आता है।

अभिप्राय यह है कि आचार्य देव ने यहाँ पर समीचीनतया जाने गये नव पदार्थों को

ही सम्यक्त्व कह दिया है सो अभेदोपचार करके कहा है। वास्तव में ये सम्यक्त्व के विषय हैं अथवा सम्यक्त्व के लिए कारण भी हैं। (मू.चा., भा.1, पृ.169)

प्र.1690 जीव का लक्षण क्या है?

उत्तर जीव का लक्षण चेतना है। वह चेतना ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख के अनुभव स्वभाव वाली है।

प्र.1691 अजीव का लक्षण क्या है?

उत्तर अजीव का लक्षण चेतना से व्यतिरिक्त (रहित) है। पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल ये अजीव द्रव्य हैं।

प्र.1692 पुद्गल का लक्षण क्या है?

उत्तर रूप, रस, गन्ध और स्पर्श गुणवाला पुद्गल है।

प्र.1693 धर्म-द्रव्य कौन-से लक्षण वाला है?

उत्तर धर्म-द्रव्य जीव-पुद्गलों की गति में सहायक होने से गति लक्षण वाला है।

प्र.1694 अधर्म द्रव्य कौन-से लक्षण वाला है?

उत्तर अधर्म द्रव्य जीव-पुद्गलों की स्थिति में सहायक होने से स्थिति लक्षण वाला है।

प्र.1695 आकाश द्रव्य कौन-से लक्षण वाला है?

उत्तर आकाश द्रव्य सभी द्रव्यों को अवकाश (जगह) देने वाला होने से अवकाश लक्षण वाला है।

प्र.1696 काल द्रव्य का लक्षण क्या है?

उत्तर काल द्रव्य वर्तना लक्षण वाला है।

प्र.1697 पुण्य क्या कहलाता है और वह किसका निमित्त है?

उत्तर शुभ प्रकृति स्वरूप परिणत हुआ पुद्गल पिण्ड पुण्य कहलाता है जो कि जीवों में आह्लाद रूप सुख का निमित्त है।

प्र.1698 पाप क्या कहलाता है और वह किसका निमित्त है?

उत्तर अशुभ कर्म स्वरूप परिणत हुआ पुद्गल पिण्ड पाप रूप है जो कि जीव के दुःख का हेतु है।

प्र.1699 आस्रव क्या कहलाता है?

उत्तर जिससे कर्म आ अर्थात् सब तरफ से, स्रवति अर्थात् आते हैं वह आस्रव कहलाता है। जिसका तात्पर्य है कि कर्मों का आना आस्रव कहलाता है।

प्र.1700 संवर किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म के आगमन-द्वार को जो रोकता है उसे संवर कहते हैं अथवा कर्मों का रुकना मात्र ही संवर है अर्थात् आने वाले कर्मों का आना रुक जाना संवर है।

प्र.1701 निर्जरा का लक्षण क्या है?

उत्तर कर्मों का निर्जीर्ण होना अथवा जिसके द्वारा कर्म निर्जीर्ण होते हैं, झड़ते हैं, वह निर्जरा है। अर्थात् जीव

में लगे हुए कर्म प्रदेशों की हानि होना निर्जरा है।

प्र.1702 बंध का लक्षण क्या है?

उत्तर जिसके द्वारा कर्म बंधते हैं अथवा बँधना मात्र ही बंध का लक्षण है। अर्थात् जीव के प्रदेश और कर्म प्रदेश-परमाणुओं का परस्पर में संश्लेष हो जाना-एकमेक हो जाना बंध है, जो जीव और पुद्गल वर्गणाओं की स्वतन्त्रता को समाप्त कर उन्हें परतन्त्र कर देता है।

प्र.1703 मोक्ष क्या है?

उत्तर जिसके द्वारा जीव मुक्त होवे, छूट जावे अथवा छूटना मात्र ही मोक्ष है। अर्थात् जिन परिणामों से आत्मा कर्म से छूटता है वह भाव मोक्ष है और कर्मों से छूटना ही द्रव्य मोक्ष है सो ही कहते हैं कि जीव के प्रदेशों का कर्म से रहित हो जाना, जीव की परतन्त्र अवस्था समाप्त होकर उसका पूर्ण स्वतन्त्र रूप प्रकट हो जाना ही मोक्ष है।

प्र.1704 जीव कितने प्रकार के हैं?

उत्तर जीव दो प्रकार के होते हैं- संसार में स्थित अर्थात् संसारी जीव और मुक्त जीव। संसारी जीव छह प्रकार के हैं और मुक्त जीव सिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं।

प्र.1705 संसारी जीव के छह प्रकार कौन-से हैं?

उत्तर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस ये संसारी जीव के छह भेद हैं।

प्र.1706 पृथ्वी आदि पञ्चस्थावरों में चार-चार भेद कौन-से हैं, उनके लक्षण क्या हैं तथा कौन-से भेद छोड़ने योग्य हैं?

उत्तर पृथ्वी, पृथ्वी काय (शरीर), पृथ्वी कायिक और पृथ्वी जीव इसी तरह चारों में समझना। पृथ्वी आदि के दो-दो भेद छोड़ने योग्य हैं अर्थात् वे निर्जीव हैं और शेष दो-दो भेदों को सभी में ग्रहण करना है क्योंकि वे ही जीव हैं। अर्थात् प्रथम भेद सामान्य पृथ्वी रूप हैं जिसके अन्दर अभी जीव नहीं हैं लेकिन आ सकता है। पृथ्वीकाय से जीव निकल चुका है पुनः उसमें जीव नहीं आवेगा। जो पृथ्वीकायिक नामकर्म के उदय से पृथ्वी पर्याय में पृथ्वी शरीर को धारण किये हुए हैं वे पृथ्वीकायिक हैं तथा जिस जीव ने विग्रह गति में पृथ्वी शरीर को अभी ग्रहण नहीं किया है वह पृथ्वी जीव है।

प्र.1707 इन पृथ्वी आदिक पंच स्थावरों के चार भेदों में किसकी रक्षा करना अनिवार्य है और किसकी हिंसा असंभव है?

उत्तर इन पृथ्वी आदिक में जिसके साथ 'कायिक' यह सम्बन्ध जुड़ा हुआ है अर्थात् जो जीव से सहित है उसकी रक्षा करना अनिवार्य है। तथा जो जीव स्थावरों में जन्म या भवधारण हेतु विग्रह गति से गमन कर रहा है उसकी हिंसा असंभव है।

प्र.1708 पृथ्वी आदिक पाँच स्थावरों के चार-चार भेदों के उदाहरण कौन-से हैं?

उत्तर **पृथ्वी**-1. मार्ग में पड़ी हुई धूलि आदि पृथ्वी हैं।

2. पृथ्वीकायिक जीव के द्वारा परित्यक्त ईंट आदि पृथ्वी काय हैं।

3. पृथ्वी शरीर को धारण करने वाले खान में स्थित पत्थर आदि जीव पृथ्वीकायिक हैं और

4. पृथ्वी में उत्पन्न होने के पूर्व विग्रह गति में रहते हुए एक, दो या तीन समय तक जीव पृथ्वी-जीव हैं।

जल-1. विलोड़ा गया, घर्षित हुआ पानी सामान्य जल है।

2. गरम किया गया पानी जलकाय है।

3. जिसमें जल-जीव है वह जलकायिक है और

4. वायु में उत्पत्ति हेतु विग्रह गति से आ रहा जीव जल-जीव है।

अग्नि- 1. जिस पर जल सींच दिया गया है या किंचित गर्म अग्नि सामान्य अग्नि है।

2. कोयला राख और भस्म आदि अग्निकाय हैं।

3. जिसमें अग्नि-जीव मौजूद है ऐसी जलती हुई अग्नि अग्निकायिक है। और

4. अग्नि में उत्पन्न होने हेतु विग्रहगति से आने वाला जीव अग्नि-जीव है।

वायु- 1.वायुकायिक जीवों के जीवन धारण करने योग्य वायु सामान्य वायु है।

2. पंखा आदिक से बिलोडित की गई वायु; वायुकाय है।

3. वायुकायिक जीवों से सहित वायु वायुकायिक हैं। और

4. वायु कायिक की पर्याय धारण हेतु विग्रहगति से आने वाला जीव वायु-जीव है।

वनस्पति- 1. मर्दित की गयी लता आदि यह सामान्य वनस्पति है।

2. सूखी आदि वनस्पति जो जीव रहित है वह वनस्पति काय है।

3. वनस्पतिकाय-सहित वनस्पति; वनस्पति कायिक है।

4. वनस्पति में उत्पत्ति हेतु विग्रह गति से आने वाला जीव वनस्पति-जीव है।

प्र.1709 जीव रक्षा हेतु या हिंसा परिहार हेतु योग्य पृथ्वीकायिक के छत्तीस भेद कौन-से हैं?

उत्तर पृथ्वीकायिक के छत्तीस भेद-1.मिट्टी-काली, पीली आदि रूप चिकने गुण वाली, 2. बालुका-नदी आदि से मिलने वाली रूखी और महीन, 3. शर्करा-कंकरीली रेत कठोर और चौकोन आदि आकार वाली, 4. उपल-गोल-गोल पत्थर के टकड़े, 5.शिला-पत्थर की चट्टानें, 6. लवण-पहाड़ या समुद्र आदि के जल में जमकर होने वाला नमक, 6. अय-लोहा, 8. तंव-तांबा, 9. तउय (त्रपुषं) रांगा, 10.सीसम-सीसा, 11.रूप्य-चांदी, 12.सुवर्ण-सोना, 13.वज्र-हीरा, 14.हरिताल-हरापीला वर्ण का हरताल, 15. हिंगूल-लाल वर्ण का हिंगुल, 16. मेनसिल-मनःशिला यह पत्थर खाँसी के रोग में औषधि के काम आता है, 17. सस्यक-तूतिया यह हरे वर्ण का होता है, 18.अंजन-यह नेत्रों का उपकार करने वाला द्रव्य है, 19.प्रवाल-इसे मूंगा भी कहते हैं, 20.अभ्रपटल-अभ्रक, इसे भोड भी

कहते हैं, 21.अभ्रबालुका- चमकने वाली कोई रेत, 22.गोमेद-कर्केतनमणि, 23.रुचक-राजावर्तमणि जो अलसी के फूल के समान वर्ण वाली होती है, 24.अंक-पुलकमणि जो प्रवालवर्ण की होती है, 25.स्फटिक-यह स्फटिक मणि स्वच्छ विशेष होती है, 26.लोहितांक-पद्मरागमणि, यह लाल होती है, 27.चन्दप्रभ- यह चन्द्रकान्त मणि है, इसमें चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से अमृत झरता है, 28.वैडूर्य- यह नील वर्ण की होती है, 29.जलकान्त- यह मणि जल के समान वर्ण वाली होती है, 30.सूर्यकान्त- इस मणि पर सूर्य की किरणों के पड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है। 31.गैरिक- यह मणि लाल वर्ण की होती है, 32.चन्दन-यह मणि श्रीखण्ड और चन्दन के समान गन्धवाली होती है, 33.वप्पक-यह मरकतमणि है, इसके अनेक भेद हैं, 34.वक- यह मणि बगुले के समान वर्ण वाली है, इसे ही पुष्परागमणि कहते हैं, 35.मोच- यह मणि कदलीपत्र के समान वर्णवाली है, इसे नीलमणि भी कहते हैं, 36.मसारगल्ल- यह चिकने-चिकने पाषाण रूप मणि है और मूंगे के वर्णवाली है। इन सबको पृथ्वी कायिक जीव जानो और इनकी हिंसा का परिहार करो। (मू.चा.भाग गा.206 से 208)

प्र.1710 वे जलकायिक जीव कौन-से हैं जिनकी हिंसा का हमें परिहार करना चाहिए?

उत्तर जलकायिक जीवों के प्रकार आगे कहे जाते हैं जिनकी हिंसा का परिहार करना चाहिए।

ओस-रात्रि के पश्चिम (अंतिम) प्रहर में मेघ रहित आकाश से जो सूक्ष्म जलकण गिरते हैं उसे ओस कहते हैं।

हिम-जो पानी घन होकर नीचे ओले के रूप में हो जाता है उसे हिम कहते हैं इसे ही बर्फ कहा जाता है।

कुहरा-धूमाकार जल जो कि कुहरा कहलाता है, इसे ही महिका कहते हैं

हरत्-स्थूल-बिन्दु रूप जल हरत् कहलाता है।

अणु-सूक्ष्म बिन्दु रूप जल अणुसंज्ञक है।

शुद्ध-चन्द्रकान्त (मणि) से प्राप्त हुआ जल शुद्ध जल है।

उदक- झरना आदि से उत्पन्न हुआ जल उदक कहलाता है।

घनोदक- समुद्र, सरोवर, घनवात आदि से उत्पन्न हुआ जल जो कि घनाकार है, घनोदक कहलाता है। अथवा

हरदणु- महासरोवर, समुद्र आदि से उत्पन्न हुआ जल हरदणु है, और

घनोदक-मेघ आदि से उत्पन्न हुआ घनाकार जल घनोदक है।

प्र.1711 वे अग्निकायिक जीव कौन-से हैं जिनकी हिंसा परिहार योग्य है?

उत्तर अग्निकायिक जीवों के प्रकार जानें और उनकी हिंसा का परिहार करें-

अँगारे- जलते हुए धुएँ रहित काठ आदि अर्थात् धधकते कोयले अँगारे कहलाते हैं।

ज्वाला- अग्नि की लपटें ज्वाला कहलाती हैं।

अर्चि-दीपक और ज्वाला की अग्रभाग रूपी लौ को अर्चि कहते हैं।

मुर्मुर-कण्डे की अग्नि का नाम मुर्मुर है।

शुद्धअग्नि- वज्र से उत्पन्न, बिजली से उत्पन्न व सूर्यकान्त मणि से उत्पन्न अग्नि ये शुद्ध अग्नि है।

अग्नि-धुएँ आदि सहित सामान्य अग्नि को अग्नि कहा गया है।

प्र.1712 जिनकी हिंसा परिहार योग्य है ऐसे वायुकायिक जीव कौन-से हैं?

उत्तर हिंसा परिहार योग्य वायुकायिक जीव-

उद्भ्रम- जो वायु घूमती हुई ऊपर की ओर उठती है वह उद्भ्रम वायु है।

उत्कलि- जो लहरों के समान होती है वह उत्कलि रूप वायु है।

मंडलि- पृथ्वी में लगकर घूमती हुई वायु मण्डलि वायु है।

गुंजा- गूँजती हुई वायु गुंजवायु है।

महावायु- वृक्षादि को गिरा देने वाली वायु महावायु है।

घनतनूय- घनोदधिवातवलय, तनुवातवलय की वायु धनतनूय वायु है। पंखे और शरीरादि से सम्बन्ध रखने वाली एवं अन्य वायु इन्हीं वायुओं पर आधारित हैं।

प्र.1713 वे वनस्पतिकायिक वनस्पतियाँ कौन-सी हैं जिनकी हिंसा परिहार्य है?

उत्तर हिंसा परिहार्य वनस्पतियों के प्रकार-

मूल- मूल (जड़) से उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ मूलबीज हैं जैसे हल्दी आदि।

अग्र- अग्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ अग्र बीज हैं जैसे कोरंटक, मल्लिका, कुब्जक-एक प्रकार का वृक्ष आदि। इनका अग्रभाग उग जाता है।

पर्वबीज- जिनकी पर्व-पोरभाग से उत्पत्ति होती है वे पर्वबीज है; कदली, पिंडालु आदि।

स्कन्धबीज- स्कन्ध से उत्पन्न होने वाली स्कन्ध बीज वनस्पति है जैसे- सल्लकी, पालिभद्र (मूँगे, देवदारु, सरल और नीम के वृक्ष) आदि।

बीजबीज- कोई वनस्पतियाँ बीज से उत्पन्न होती हैं वे बीज-बीज कहलाती हैं; जैसे जौ, गेहूँ आदि इनकी खेत में मिट्टी, जल आदि सामग्री से उत्पत्ति होती है।

संमूर्च्छिम- मूल, अग्र-बीज आदि के अभाव में भी जिनकी उत्पत्ति या जन्म होता है वे संमूर्च्छिम वनस्पतियाँ हैं। इन्हीं वनस्पतियों के उपभेद अनेक हैं जैसे-

कंद- जमीन के अन्दर उत्पन्न होने वाली वनस्पति जैसे, सूरण, पद्मकंद (शकरकन्द) आदि।

मूल-मूल अर्थात् पिण्ड के नीचे भाग से जो उत्पन्न होती हैं वे मूल काय हैं जैसे- हल्दी, अदरक आदि।

छाल- वृक्ष के बाहर का बलकल छाल कहलाता है।

स्कन्ध- पिण्ड और शाखा का मध्य भाग स्कन्ध है।

पत्र- अंकुर के अनन्तर की अवस्था पत्र (पत्ता) है।

प्रवाल- पत्तों की पूर्व अवस्था प्रवाल है जिसे कोंपल कहते हैं।

फूल- जो फल में कारण है वह पुष्प है।

फल- पुष्पों के कार्य को फल कहते हैं; जैसे सुपारी आदि फल।

गुच्छा- अनेक के समूह का नाम गुच्छा है; जैसे- जाति पुष्पों के गुच्छे, मालती पुष्पों के गुच्छे।

गुल्म- करंज और कंपारिका आदि गुल्म कहलाते हैं।

बल्ली- लता, बेल आदि बल्ली संज्ञक हैं।

तृण- हरित घास आदि तृण नाम वाले हैं।

पर्व- दो गाँठों के मध्य को, जिससे वेत्रादि, इक्षु आदि उत्पन्न होते हैं उसे पर्व कहते हैं।

शैवाल- जल में होने वाली हरी-हरी काई शैवाल है।

पणक- जमीन पर तथा ईंट आदि पर लग जाने वाली काई पणक है।

किण्व- वर्षाकाल में कूड़े-कचरे पर जो छत्राकार वनस्पति हो जाती है, वह किण्व कहलाती है।

कवक- सींग में उत्पन्न होने वाली जटाकार वनस्पति कवक है।

कुहन- भोजन और कांजी आदि पर लग जाने वाली फूली (फफूँदी) कुहन है।

प्र.1714 उपर्युक्त पृथ्वी कायिक से लेकर वनस्पति कायिक पर्यन्त जितने भी प्रकार बतलाए गये हैं वे सभी कौन-से काय हैं?

उत्तर उपर्युक्त सर्व पंच-कायिक बादर स्थावर कायिक हैं।

प्र.1715 बादर और सूक्ष्म कायिक जीव किसके आधार से रहते हैं?

उत्तर जो आठ प्रकार की पृथ्वी और विमान आदि का आश्रय लेकर होते हैं वे बादर काय जीव हैं। और सर्वत्र जल, स्थल, आकाश में बिना आधार से रहने वाले जीव सूक्ष्मकाय कहलाते हैं।

प्र.1716 सर्वत्र लोकाकाश में भरे हुए सूक्ष्मकाय पंचस्थावरों की अवगाहना कितनी है?

उत्तर सर्वत्र लोकाकाश में भरे हुए सूक्ष्मकाय रूप पंचस्थावरों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। (बादर वनस्पति एवं विभिन्न स्थावरों व त्रसों का वर्णन आगम-अनुयोग के प्रथम भाग में किया जा चुका है।)

प्र.1717 पौद्गलिक वर्गणाओं का स्वरूप क्या है और वे कितने प्रकार की हैं?

उत्तर पौद्गलिक परमाणुओं का पिण्ड; वर्गणा रूप होता है उनमें जो ग्राह्य वर्गणायें हैं वे कर्म या औदारिक आदि पंच शरीर, भाषा और मनरूप होने की शक्ति रखती हैं। सर्व वर्गणाओं की संख्या तेईस है।

प्र.1718 पुद्गल वर्गणाओं के तेईस भेद कौन-से हैं?

उत्तर तेईस वर्गणाएँ- अणुवर्गणा, संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा, अनन्ताणुवर्गणा, आहार वर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, तैजसवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, भाषावर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा, ध्रुववर्गणा, सांतरवर्गणा, शून्यवर्गणा, प्रत्येकवर्गणा, ध्रुववर्गणा, बादरनिगोद वर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नभोवर्गणा और महास्कन्धवर्गणा।

प्र.1719 अजीव रूप पुद्गल द्रव्य तो रूप, रस, गंध और स्पर्शगुण वाला है लेकिन मात्र 'रूपिणः पुद्गलाः' ऐसा क्यों कहा जाता है?

उत्तर पुद्गल; रूप गुण वाला है यह सामान्य कथन है। रूपी शब्द से रूप, रस, गंध और स्पर्श ये रूप के साथ अविनाभाव(पारस्परिक) सम्बन्ध रखने वाले होते हैं।

प्र.1720 रूपी पुद्गल के चार भेद कौन-से हैं?

उत्तर स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश और परमाणु इस तरह पुद्गल के चार भेद हैं। (मू.चा.भाग 1, गा.230)

प्र.1721 स्कन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर परमाणु से लेकर महास्कन्ध (त्रिलोक) पर्यंत सकल पुद्गलों और सामान्य, विशेष धर्म सहित समस्त या सर्व पुद्गल द्रव्य को महास्कन्ध कहते हैं।

प्र.1722 स्कन्ध देश किसे कहते हैं?

उत्तर स्कन्ध के आधे को स्कन्ध देश कहते हैं।

प्र.1723 स्कन्ध प्रदेश किसे कहते हैं?

उत्तर उस आधे के आधे को अर्थात् समस्त पुद्गल द्रव्य के आधे को आधा करना, पुनः उस आधे को आधा करना, इस प्रकार जब तक द्व्यणुक स्कन्ध न हो जावे तब तक आधा-आधा करते जाना, ये सभी भेद स्कन्ध प्रदेश शब्द से कहे जाते हैं।

प्र.1724 परमाणु किसे कहते हैं?

उत्तर निरंश भाग अर्थात् जिसका दूसरा विभाग अब नहीं हो सकता है उस अविभागी पुद्गल को परमाणु कहते हैं।

प्र.1725 पुद्गल द्रव्य के भेदों को जिनेन्द्र देव ने दूसरी तरह से किस प्रकार बतलाया है?

उत्तर जिनेन्द्र देव ने पुद्गल द्रव्य के दूसरी तरह के भेदों को पृथ्वी, जल, छाया, नेत्रेन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों का विषय, कर्म और परमाणु रूप बतलाया है।

प्र.1726 उपर्युक्त पृथ्वी आदिक की दूसरी संज्ञा (नाम) क्या है?

उत्तर बादर-बादर, बादर, बादर-सूक्ष्म, सूक्ष्म-बादर, सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म ये पृथ्वी, जल और छाया

आदि छहों के दूसरे नाम हैं। (गो.सा., जी.का.गा.43)

प्र.1727 बादर-बादर आदिक छहों के लक्षण क्या हैं?

उत्तर 1. जिसका छेदन-भेदन और अन्यत्र प्रापण हो सके उस स्कन्ध को बादर-बादर कहते हैं। जैसे-पृथ्वी, काष्ठ, पाषाणादि।

2. जिसका छेदन-भेदन न हो सके किन्तु अन्यत्र ले जाया जा सके वह स्कन्ध; बादर है जैसे- जल, तेल आदि।

3.जिसका छेदन-भेदन और अन्यत्र प्रापण भी न हो सके ऐसे नेत्र से देखने योग्य स्कन्ध को बादर-सूक्ष्म कहते हैं। जैसे- छाया, आतप, चाँदनी, (अंधकार) आदि।

4. नेत्र को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों के विषयभूत पुद्गल स्कन्ध को सूक्ष्म बादर कहते हैं। जैसे- शब्द, रस, गंध, वायु आदि।

5. जिसका किसी इन्द्रिय से ग्रहण न हो सके उस पुद्गल स्कन्ध को सूक्ष्म कहते हैं। जैसे- कर्मवर्गणाएँ।

6. जो स्कन्ध रूप नहीं हैं ऐसे अविभागी परमाणु को सूक्ष्म-सूक्ष्म कहते हैं।

विशेष- नियमसार ग्रन्थ में स्कन्ध के छह भेद किये हैं और परमाणु के भेद अलग किये हैं। उसमें सूक्ष्म-सूक्ष्म भेद के उदाहरण में कर्म के अयोग्य पुद्गल वर्गणाएँ ली गई हैं।

प्र.1728 ये रूप, रस, गंध और स्पर्श आदि रूप पुद्गल किसके कारण हैं?

उत्तर ये रूप, रस, गंध और स्पर्श आदि रूप पुद्गल कर्म-बन्ध में कारण हैं। क्योंकि जीव के स्वरूप से अन्यथाभूत जो रागादि परिणाम हैं उनके निमित्त से जो कर्म-बन्ध होता है, उस कर्म-बन्ध के लिए उपादानकारण रूपादिमान पुद्गल द्रव्य वर्गणाएँ हैं। (मू.चा.,भाग.1, गा.233 टी.)

प्र.1729 अमूर्तिक जीव प्रदेशों का मूर्तिक कर्म पुद्गलों के साथ संबन्ध कैसे होता है?

उत्तर जैसे तेल को मर्दन करने से मर्दित शरीर में धूलि चिपक जाती है उसी प्रकार ये रागद्वेष और मोह या रति-अरति से लिप्त हुए जीव के कर्म पुद्गल चिपक जाते हैं अर्थात् जीव के तैजस और कार्मण वर्गणाएँ सम्बन्धित हो जाती हैं।

प्र.1730 पुण्यास्रव और पापास्रव के कारण क्या हैं?

उत्तर अनुकम्पा अर्थात् दया और शुद्ध उपयोग अर्थात् शुद्ध ज्ञानोपयोग तथा शुद्ध दर्शनोपयोग अर्थात् मन-वचन-काय की सम्यक्-निर्मल प्रवृत्ति इनके द्वारा पुण्य का आस्रव होता है। इनसे विपरीत जीव दया न करना, तथा मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञानोपयोग अर्थात् अशुद्ध मन-वचन-काय की क्रिया पापास्रव के लिए कारण है। (मू.चा.,भा.1, गाथा 235 टी.)

प्र.1731 पुण्यबन्ध और पापबन्ध का कारण तथा पुण्य और पाप से सम्बन्धित जीव का स्वरूप क्या है?

उत्तर सम्यक्त्व से, श्रुतज्ञान से, विरति रूप परिणाम अर्थात् पाँच महाव्रतों के परिणति रूप चारित्र से तथा

क्रोध, मान, माया और लोभ इन कषायों को निग्रह करने वाले उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव तथा संतोष रूप गुणों से, एवं इन्द्रियों के निरोध से जो जीव परिणत हो रहा है उसके जो कर्मों का संश्लेष होता है वह पुण्य कहलाता है। अथवा सम्यक्त्व आदि गुणों में अभेद पाया जाता है। और उससे विपरीत अर्थात् मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम तथा कषाय रूप गुणों से जो परिणत हुआ पौद्गलिक कार्मण वर्गणाओं का समूह अथवा तद्वान जीव पाप कहलाता है। (मू.चा., भाग.1)

प्र.1732 कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जीव के रागादिक परिणामों का निमित्त पाकर कर्म रूप से बंधने की योग्यता रखने वाले कार्मणवर्गणा के परमाणुओं को कर्म कहते हैं।

प्र.1733 कर्म बंध क्या है?

उत्तर जब जीव में राग-द्वेषादिक विकारी भाव उत्पन्न होते हैं तब कार्मण वर्गणा के परमाणु कर्म रूप हो जाते हैं और उनमें स्थिति (काल मर्यादा) तथा अनुभाग (फल देने की शक्ति विशेष) उत्पन्न हो जाती है वह कर्म बंध है।

प्र.1734 एक समय में कितने कर्म पुद्गलों का बंध होता है?

उत्तर एक समय में अभव्यों के अनन्त गुणें और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण कर्म-पुद्गलों का बंध होता है।

प्र.1735 आत्मा के साथ कर्म बन्ध कब से है?

उत्तर जैसे खदान में स्थित स्वर्णकणों के साथ किट्ट-कालिमा का सम्बन्ध अनादिकाल से है वैसे ही आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध अनादि काल से है।

प्र.1736 जो चर्म-चक्षुओं से या यंत्रादिक से दिखाई नहीं पड़ते ऐसे कर्मों पर विश्वास कैसे किया जावे?

उत्तर वैसे तो कर्म; पुद्गल द्रव्य रूप होने से रूप, रस, गन्ध और स्पर्श सहित हैं, परन्तु उनका सूक्ष्म परिणमन होने से वे दिखाई नहीं देते। फिर भी जीवों की दरिद्रता-धनीपना, अज्ञानी-ज्ञानीपना, निर्बल-सबलपना और कुरूप-सुरूपता आदि विषम दशाओं को देखकर कर्मों का अनुमान कर विश्वास किया जाता है।

प्र.1737 कर्म बंध के पाँच हेतु कौन-से हैं?

उत्तर मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के पाँच हेतु हैं।

प्र.1738 मिथ्यादर्शन के कितने भेद हैं?

उत्तर मिथ्यादर्शन के दो भेद हैं नैसर्गिक और परोपदेशकः-

1. जो परोपदेश के बिना मिथ्यादर्शन कर्म के उदय से जीवादि (या देव गुरु शास्त्र) रूप पदार्थों का अश्रद्धान रूप भाव होता है वह नैसर्गिक मिथ्यादर्शन है।
2. तथा परोपदेश के निमित्त से होने वाला मिथ्यादर्शन 4 व 5 प्रकार हैं।

प्र.1739 मिथ्यादर्शन के चार प्रकार किसके हैं?

उत्तर मिथ्यादर्शन के चार प्रकार 363 मिथ्यामत वालों के हैं। जिनमें 1.क्रिया वादियों के एक सौ अस्सी, 2.अक्रियावादियों के चौरासी, 3.अज्ञानियों के सड़सठ और 4.वैनयिकों बत्तीस भेद हैं। इस तरह सम्पूर्ण भेद तीन सौ त्रेसठ हैं। (मिथ्यादर्शन के पाँच भेदः- एकान्त, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान देखें- जैनागम संस्कार पृष्ठ 71)

पंचेन्द्रिय के विषयों से एवं षड्-जीव निकायों की हिंसा से विरति न होना अविरति है। प्रमाद, कषाय और योग का वर्णन प्रथम भाग में कर दिया गया है।

प्र.1740 वे अष्ट शुद्धियाँ कौन-सी हैं जहाँ प्रमाद नहीं करना चाहिए?

उत्तर भावशुद्धि, कायशुद्धि, विनयशुद्धि, ईर्यापथ-शुद्धि, भिक्षा (आहार)-शुद्धि, प्रतिष्ठापनशुद्धि, शयनासन-शुद्धि और वाक्यशुद्धि इस तरह आठ शुद्धियाँ हैं जहाँ तथा उत्तम क्षमादि के विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

प्र.1741 समय प्रबद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर प्रत्येक समय में जो कर्म- नोकर्मरूप पुद्गल स्कन्धों या वर्गणाओं का आत्मा के साथ बंध-सम्बंध होता है वह समय प्रबद्ध कहा जाता है।

प्र.1742 अनेक पुद्गल परमाणुओं से निर्मित कार्मण-वर्गणा की विशेषता क्या है?

उत्तर कार्मण-वर्गणा जो पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गंध तथा स्पर्श के आठ भेदों से चार (स्निग्ध-रूक्ष, शीत-उष्ण, कर्कश-मृदु, गुरु-लघु इन चार युगलों में एक-एक इस प्रकार चार) इन गुणों से परिणत होती है।

प्र.1743 कर्म-बंध होने में मुख्य-निमित्त कौन-से हैं?

उत्तर कर्म-बंध के मूल भेद-प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप चार भेद हैं जो योग और कषाय रूप निमित्त से हुआ करते हैं। (निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा कथन है)इन्हीं प्रकृति आदि के बंध हेतु योग और कषाय में मिथ्यात्व आदि प्रत्ययों का समावेश हो जाता है।

प्र.1744 प्रकृति बंध किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म-परमाणु-प्रदेशों में ज्ञान, दर्शन आदि आवृत (ढकने) आदि का स्वभाव पड़ना प्रकृति बन्ध कहलाता है।

प्र.1745 स्थिति बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म-प्रदेशों में स्थिति (काल) रूप से फल देने की शक्ति का जो हीनाधिक काल है उसे स्थिति बन्ध कहते हैं।

प्र.1746 अनुभाग बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म-प्रदेशों में अनुभाग का अनुभव रूप फल देने की शक्ति की जो हीनाधिकता है उसे अनुभाग बन्ध कहते हैं।

प्र.1747 प्रदेश बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर ज्ञानावरणादिक कर्मों के प्रदेशों की संख्या में जो हीनाधिकता रूप परिणमन है उसे या कर्म रूप हुई पौद्गलिक कार्मण वर्गणाओं के प्रमाण को प्रदेश बन्ध कहते हैं।(क.का.गा.89, टी.)

प्र.1748 योग और कषाय के निमित्त से कौन-कौन से बन्ध होते हैं?

उत्तर योग के निमित्त से प्रकृति और प्रदेश बन्ध तथा कषाय के निमित्त से स्थिति और अनुभाग बन्ध होते हैं।

प्र.1749 कर्म के मूल में कितने भेद हैं?

उत्तर कर्म के मूल में द्रव्य-कर्म और भाव-कर्म रूप से दो भेद हैं।

प्र.1750 द्रव्य-कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म रूप से परिणत पुद्गल वर्गणाओं को द्रव्य-कर्म कहते हैं।

प्र.1751 भाव-कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य-कर्म के आस्रव व बन्ध में निमित्त आत्मा की शक्ति विशेष को भाव-कर्म कहते हैं, अथवा द्रव्य-कर्म की उदयावस्था का निमित्त पाकर जीव में होने वाली जो राग-द्वेष रूप परिणति होती है उसे भाव-कर्म कहते हैं।

प्र.1752 द्रव्य-कर्म के मूल प्रकृति रूप भेद कौन-कौन से हैं?

उत्तर द्रव्य-कर्म के मूल प्रकृति रूप भेद इस प्रकार हैं-

1. ज्ञानावरण, 2.दर्शनावरण, 3.वेदनीय, 4.मोहनीय, 5.आयु, 6.नाम, 7.गोत्र और 8.अन्तराय। (उत्तर प्रकृति भेद देखें जैनागम संस्कार पृ.161)

प्र.1753 द्रव्य-कर्मों में घातिया कर्म किन्हें कहते हैं, और वे कौन-कौन से हैं?

उत्तर जो जीव के ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन अनुजीवी गुणों का घात करते हैं उन्हें घातिया कर्म कहते हैं। जिनके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इस तरह मूल में चार भेद हैं। ये कर्म क्रमशः जीव के ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन गुणों का घात करते हैं।

प्र.1754 अनुजीवी गुणों का लक्षण क्या है एवं वे कौन-कौन से हैं?

उत्तर जिनके रहते हुए जीव का जीवत्व सुरक्षित रहे उन्हें अनुजीवी गुण कहते हैं। जैसे-ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य।

प्र.1755 अघातिया कर्म किन्हें कहते हैं, और वे कौन-कौन से हैं?

उत्तर जो जीव के प्रतिजीवी गुणों के घात में निमित्त हों वे अघातिया कर्म हैं। जिनके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ऐसे मूल रूप चार भेद हैं। ये कर्म क्रमशः जीव के अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघुत्व इन गुणों का घात करते हैं। ये अव्याबाधत्व आदि चार प्रतिजीवी गुण कहलाते हैं।

प्र.1756 प्रकृति बन्ध आदि में उत्कृष्ट आदि चार भेद कौन-से हैं?

उत्तर प्रकृति बन्ध आदि में उत्कृष्टादि चार भेद हैं-

1. उत्कृष्ट- सबसे अधिक बन्ध उत्कृष्ट बन्ध है।
2. अनुत्कृष्ट- उत्कृष्ट से अल्प अनुत्कृष्ट बन्ध है।
3. अजघन्य- जघन्य से कुछ अधिक अजघन्य बन्ध है।
4. जघन्य- सबसे अल्प जघन्य बन्ध है।

प्र.1757 उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट आदि बन्धों में अवान्तर भेद कौन-से हैं?

उत्तर उत्कृष्ट आदि बन्धों के अवान्तर भेद-सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव हैं।

1. जो बन्ध रुककर पुनः प्रारम्भ होता है वह सादि बन्ध है।
2. जो बन्ध व्युच्छित्ति तक अनादि से चला आता है वह अनादिबन्ध है।
3. जो बन्ध निरन्तर होता है उसे ध्रुव बन्ध कहते हैं।
4. जो बन्ध अन्तर सहित होता है उसे अध्रुव बन्ध कहते हैं।

विशेष- अभव्य जीव का ध्रुव बन्ध और भव्य जीव का अध्रुवबन्ध होता है।

प्र.1758 ज्ञानावरणादि मूल कर्म-प्रकृतियों में सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव भेद किस प्रकार घटित होते हैं?

उत्तर वेदनीय और आयुकर्म को छोड़कर शेष छह कर्मों का सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव रूप चारों प्रकार का बन्ध होता है। वेदनीय कर्म का सादि को छोड़कर शेष तीन प्रकार का बन्ध होता है, तथा आयुकर्म का सादि और अध्रुव ही बन्ध होता है।

प्र.1759 वेदनीय कर्म का सादि बन्ध क्यों नहीं होता है?

उत्तर क्योंकि उपशम श्रेणी चढ़ने पर भी वेदनीय सामान्य के बन्ध का अभाव नहीं होता है। (अर्थात् साता वेदनीय का बन्ध जारी रहता है।)

प्र.1760 नवक बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर तत्कालीन हुए नवीन बन्ध को नवक बन्ध कहते हैं।

प्र.1761 भुजकार बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर पहले अल्प प्रकृतियों का बन्ध होकर पश्चात् अधिक प्रकृतियों का बन्ध होना भुजकार बन्ध है।

प्र.1762 अल्पतर बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर पहले अधिक प्रकृतियों का बन्ध हो और पश्चात् अल्प प्रकृतियों का बन्ध होने लगे तो वह अल्पतर बन्ध कहा जाता है।

प्र.1763 अवस्थित बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर भुजकार एवं अल्पतर बन्ध में पहले जितनी प्रकृतियों का बन्ध होता था बाद में भी उतनी ही कर्म-प्रकृतियों का बन्ध होवे तो वह अवस्थित बन्ध कहा जाता है।

प्र.1764 अवक्तव्य बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर पूर्व में जिस कर्म का बंध नहीं था, किन्तु अगले समय में उसका बन्ध हुआ, इसी का नाम अवक्तव्य बन्ध कहा जाता है। (गो.क.,गा.469) जैसे- उपशान्त मोह गुणस्थान में मोहनीयकर्म का बन्ध नहीं था वहीं से गिरने पर मोहनीय कर्म का बन्ध होने लगा वह अवक्तव्य बन्ध है।

प्र.1765 घातिया और अघातिया कर्मों के प्रभेद कितने हैं?

उत्तर ज्ञानावरण कर्म के पाँच, दर्शनावरण कर्म के नौ, मोहनीय कर्म के अट्ठाईस और अन्तरायकर्म के पाँच इस तरह घातिया कर्मों की कुल संख्या सैंतालीस है। तथा वेदनीय कर्म के दो, आयु कर्म के चार, नामकर्म के तेरानवे और गोत्रकर्म के दो, इस तरह अघातियाकर्मों की कुल संख्या एक सौ एक है। (47+101=148)

प्र.1766 देशघाति कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जो कर्म जीव के अनुजीवी गुणों का एक देशघात करें अर्थात् जिनका उदय रहते हुए भी जीव के गुण कुछ अंशों में प्रकट रहें उन्हें देश घाति कर्म कहते हैं।

प्र.1767 सर्वघाति कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर जो कर्म आत्मा के अनुजीवी गुणों को बिल्कुल ही प्रकट न होने दें उन्हें सर्वघातिकर्म कहते हैं।

प्र.1768 देशघाति कर्म-प्रकृतियाँ कितनी हैं और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर देशघाति कर्म प्रकृतियाँ छब्बीस हैं- 1. मतिज्ञानावरण, 2.श्रुतज्ञानावरण, 3.अवधिज्ञानावरण, 4.मनःपर्ययज्ञानावरण, 5.चक्षुदर्शनावरण, 6.अचक्षुदर्शनावरण, 7.अवधिदर्शनावरण, 8.सम्यक्त्वप्रकृति, 9.संज्वलन क्रोध, 10. संज्वलन मान, 11.संज्वलन माया, 12.संज्वलन लोभ, 13.हास्य, 14.रति, 15.अरति, 16.शोक, 17 भय, 18.जुगुप्सा, 19.स्त्रीवेद, 20.पुरुषवेद, 21.नपुंसकवेद, 22.दानान्तराय, 23.लाभान्तराय, 24.भोगान्तराय, 25.उपभोगान्तराय और 26.वीर्यान्तराय।

प्र.1769 सर्वघातिकर्म-प्रकृतियाँ कितनी हैं, और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर सर्वघाति कर्म प्रकृतियाँ इक्कीस हैं- 1.केवलज्ञानावरण, 2.केवलदर्शनावरण, 3.निद्रा, 4.निद्रा-निद्रा, 5.प्रचला, 6.प्रचलाप्रचला, 7.स्त्यानगृद्धि, 8.मिथ्यात्व, 9.सम्यक्-मिथ्यात्व, 10.अनन्तानुबन्धी क्रोध, 11.अनन्तानुबन्धी मान, 12.अनन्तानुबन्धी माया, 13.अनन्तानुबन्धी लोभ, 14.अप्रत्याख्यान क्रोध, 15.अप्रत्याख्यान मान, 16.अप्रत्याख्यान माया, 17. अप्रत्याख्यान लोभ, 18.प्रत्याख्यान क्रोध, 19.प्रत्याख्यान मान, 20.प्रत्याख्यान माया और 21.प्रत्याख्यान लोभ।

प्र.1770 कर्म-विपाक (फल) की अपेक्षा कर्म-प्रकृतियों के कितने प्रकार हैं?

उत्तर 1.जीव विपाकी, 2.पुद्गल विपाकी, 3.क्षेत्र विपाकी और 4.भव विपाकी ऐसे चार प्रकार हैं।

प्र.1771 जीव विपाकी कर्म किन्हें कहते हैं?

उत्तर मुख्यत: जिन कर्मों का फल जीव पर होता है उन्हें जीव विपाकी कर्म कहते हैं।

प्र.1772 पुद्गल विपाकी कर्म किन्हें कहते हैं?

उत्तर विशेषकर जिन कर्मों का फल पुद्गल पर होता है उन्हें पुद्गल विपाकी कर्म कहते हैं।

प्र.1773 क्षेत्र विपाकी कर्म किन्हें कहते हैं?

उत्तर जिन कर्मों का फल विग्रहगति रूप क्षेत्र में मिले अर्थात् जिन कर्मों के निमित्त से जीव के प्रदेशों का आकार विग्रह गति में पूर्व शरीर के आकार रूप बना रहे उन्हें क्षेत्र विपाकी कर्म कहते हैं।

प्र.1774 भव विपाकी कर्म किन्हें कहते हैं?

उत्तर जिन कर्मों का उदय नरक आदि भवों (गतियों) में होता है उन्हें भव विपाकी कर्म कहते हैं।

प्र.1775 जीव विपाकी कर्म-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जीव विपाकी प्रकृतियाँ अठहत्तर हैं- घातिया-कर्म की 47, गोत्र कर्म 2, वेदनीय 2, और नामकर्म कर्म की 27(तीर्थंकर प्रकृति, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, सुस्वर, दु:स्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयश-कीर्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, सुभग, दुर्भग, नरकादि चार गतियाँ और एकेन्द्रिय आदि पाँच जातियाँ) कुल 78 हैं।

प्र.1776 पुद्गल विपाकी कर्म-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर पुद्गल विपाकी प्रकृतियाँ बासठ हैं- औदारिकादि 5 शरीर, 5 बन्धन, 5 संघात, 3 अङ्गोपाङ्ग, 6 संस्थान, 6 संहनन, 8 स्पर्श, 5 रस, 2 गंध, 5 वर्ण, इस तरह पचास तथा निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, अगुरुलघु, उपघात और परघात ऐसी बारह। कुल मिलाकर 62 हैं।

प्र.1777 क्षेत्र विपाकी कर्म-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर क्षेत्र विपाकी प्रकृतियाँ चार हैं- नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यग् गत्यानुपूर्वी, मनुष्य गत्यानुपूर्वी और देव गत्यानुपूर्वी।

प्र.1778 भव विपाकी कर्म-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर भव विपाकी प्रकृतियाँ चार हैं- नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु।

प्र.1779 पाप कर्म-प्रकृतियाँ कितनी हैं और वे कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर पाप कर्म प्रकृतियाँ सौ हैं- घातियाँ कर्म की 47 प्रकृतियाँ, असातावेदनीय, नीच गोत्र, नरकायु और नामकर्म की 50 प्रकृतियाँ (नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, आदि की 4 जातियाँ, अन्त के 5 संस्थान, अन्त के 5 संहनन, 20 स्पर्शादि, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, अनादेय, अयशस्कीर्ति, अशुभ, दुर्भग, दु:स्वर और साधारण शरीर कुल सौ प्रकृतियाँ हैं। (स्पर्श, रस, गंध वर्ण इनकी अभेद विवक्षा में 84 प्रकृतियाँ हैं)

प्र.1780 पुण्य कर्म-प्रकृतियाँ कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर पुण्य कर्म प्रकृतियाँ अड़सठ हैं- कर्मों की 148 प्रकृतियों में से 100 घटाने पर 48 शेष रहती हैं, पुनः 48 में स्पर्शादिक 20 प्रकृतियाँ मिलाने पर 68 प्रकृतियाँ हो जाती हैं। स्पर्शादिक 20 प्रकृतियाँ किसी को सुखद और किसी को दुःखद रूप होने से पुण्य और पाप दोनों रूप मानी गयी है। (अभेद विवक्षा से पुण्य प्रकृतियाँ 42 हैं)

प्र.1781 पुण्य और पाप प्रकृतियों में भेद-अभेद विवक्षा से तथा बंध और उदय की विवक्षा (कथन शैली) से संख्या में क्या विशेषता है?

उत्तर जो पुण्य प्रकृतियाँ भेद विवक्षा से 68 और अभेद विवक्षा से 42 कही हैं, पाप प्रकृतियाँ भेद विवक्षा से बन्ध रूप 98 और उदय रूप 100 हैं तथा अभेद विवक्षा में बन्ध रूप 82 और उदय रूप 84 कही हैं, उसका कारण है कि दर्शनमोहनीय की सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति का बन्ध नहीं है, मात्र मिथ्यात्व प्रकृति का बन्ध होता है। सम्यक्त्व की प्राप्ति से मिथ्यात्व के तीन खण्ड हो जाने पर इनकी सत्ता होती है तथा यथा समय में उदय भी होता है, अतः बन्ध की अपेक्षा 98 और सत्त्व तथा उदय की अपेक्षा 100 प्रकृतियाँ हैं। वर्णादिक की बीस प्रकृतियाँ पुण्य और पाप दोनों रूप होती हैं, अतः उन वर्णादिक को पुण्य और पाप दोनों में ग्रहण किया जाता है।

प्र.1782 ध्रुवबन्धी प्रकृतियों का लक्षण क्या है वे कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जो बंध व्युच्छित्ति पर्यंत निरन्तर बंधती रहती है वे ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं। वे सैंतालीस हैं- ज्ञानावरण की 5, दर्शनावरण की 9, और अंतराय कर्म की 5 इस तरह 19, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी 4, अप्रत्याख्यान 4, प्रत्याख्यान 4, और संज्वलन 4 इस तरह 16 कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और वर्णादि 4 इस तरह कुल प्रकृतियाँ 47 हैं।

प्र.1783 अध्रुवबन्धी प्रकृतियों का लक्षण क्या है? वे कितनी हैं और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जो निरन्तर नहीं बँधती जिनके बंधने में अन्तर पड़ता है वे अध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं। वे ध्रुवबन्धी को छोड़कर शेष बची 73 प्रकृतियाँ हैं।

प्र.1784 अध्रुवबन्धी प्रकृतियों में सप्रतिपक्षी एवं अप्रतिपक्षी का लक्षण क्या है, और वे कितनी हैं तथा कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर तीर्थंकर, आहारक युगल, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और चारों आयु से ग्यारह प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षी (विरोधरहित) हैं अर्थात् जिस समय इनका बन्ध होता है तो होता ही है नहीं तो नहीं होता है बाकी जो बासठ प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षी (विरोधी) हैं वे सातावेदनीय और असातावेदनीय आदि हैं उनमें जब एक का बन्ध होता है तब दूसरी का बंध नहीं होता है।

प्र.1785 अध्रुव बन्धी प्रकृतियों के निरन्तर बंधने का काल कितना है?

उत्तर तीर्थंकर, आहारक युगल तथा चार आयु, इन सात प्रकृतियों के निरन्तर बन्ध होने का काल अन्तर्मुहूर्त्त है और शेष का एक समय है।

प्र.1786 परोदयबन्धी प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं, वे कितनी और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जिन प्रकृतियों का पर के उदय में बन्ध होता है अर्थात् जिनके उदयकाल में उन्हीं का बन्ध नहीं होता वे परोदयबन्धी प्रकृतियाँ हैं वे ग्यारह प्रकृतियाँ हैं- देवायु, नरकायु, तीर्थंकर, वैक्रियिक षट्क अर्थात् वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीराङ्गोपाङ्ग, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी ये छह, आहारक शरीर और आहारक शरीराङ्गोपाङ्ग।

प्र.1787 स्वोदयबन्धी प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं, वे कितनी हैं और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जिनका बन्ध अपने उदय के काल में ही होता है वे स्वोदयबन्धी प्रकृतियाँ हैं। वे सत्ताईस हैं- मिथ्यात्व, पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, तैजस, कार्मण, वर्णादिक की चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु और निर्माण।

प्र.1788 उभयोदयबन्धी प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं, वे कितनी हैं और कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर जो अपने उदय होने पर या न होने पर भी बंधती हैं उन्हें उभयोदय बन्धी प्रकृतियाँ कहते हैं। वे बियासी प्रकृतियाँ हैं। अर्थात् परोदयबन्धी, स्वोदयबन्धी सम्बन्धी प्रकृतियों को छोड़कर वियासी प्रकृतियाँ उभयोदय-बन्धी प्रकृतियाँ कहलाती हैं।

प्र.1789 बन्ध-त्रिभङ्गी किसे कहते हैं?

उत्तर बन्ध व्युच्छित्ति, बन्ध और अबन्ध को बन्ध त्रिभङ्गी कहते हैं। इन तीनों का गुणस्थानों और मार्गणाओं में (घटित कर) वर्णन किया जाता है। (क.दी.भा.2) (बन्ध, उदय का लक्षण देखिये जैनागम सं., पृ.180, प्र.191)

प्र.1790 बन्ध, उदय और सत्त्व के योग्य प्रकृतियाँ कितनी हैं?

उत्तर अभेद विवक्षा में पाँच बन्धन, पाँच संघात तथा वर्णादि की सोलह और सम्यग्मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व प्रकृति इस तरह अट्ठाईस प्रकृतियों के कम करने से एक सौ बीस प्रकृतियाँ बन्ध योग्य हैं। सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति का उदय आता है अतः उदय योग्य एक सौ बाईस प्रकृतियाँ हैं। सम्यग्मिथ्यात्व का उदय तृतीय गुणस्थान में और सम्यक्त्व प्रकृति का उदय चतुर्थ से लेकर सप्तम गुणस्थान तक होता है। सत्त्व आठों कर्मों के भेद-प्रभेद रूप एक सौ अड़तालीस प्रकृतियों का होता है (5+9+2+28+4+93+2+5= 148)

प्र.1791 आगम में बंध, उदय और सत्त्व का वर्णन किस विवक्षा से किया है?

उत्तर आगम में बन्ध और उदय का वर्णन अभेद विवक्षा से किया है और सत्त्व का वर्णन भेद विवक्षा से किया है।

प्र.1792 कौन-कौन-से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है?

उत्तर 1.मिथ्यात्व गुणस्थान में सोलह, 2.सासादन गुणस्थान में पच्चीस, 3.सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थान में शून्य, 4.असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में दस, 5.देशसंयत (संयतासंयत) गुणस्थान में चार, 6.प्रमत्त संयत गुणस्थान में छह, 7.अप्रमत्त संयत गुणस्थान में एक, 8.अपूर्वकरण गुणस्थान में छत्तीस,

9.अनिवृत्ति गुणस्थान में पाँच, 10.सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान में सोलह, 11.उपशांत मोह गुणस्थान में शून्य, 12.क्षीणमोह गुणस्थान में शून्य, 13.सयोगकेवली गुणस्थान में एक और 14.अयोग केवली गुणस्थान में शून्य प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1793 मिथ्यात्व गुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति को प्राप्त 16 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण शरीर, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रियजाति, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इन सोलह प्रकृतियों का बन्ध प्रथम गुणस्थान तक ही होता है, आगे नहीं।

प्र.1794 सासादन गुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति को प्राप्त 25 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सासादन गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधादिक चार संस्थान, वज्रनाराचादि चार संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत और तिर्यगायु की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1795 असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 10 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, वज्रवृषभनाराचसंहनन, औदारिक शरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1796 देश संयत गुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति को प्राप्त 4 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर देश संयत गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चतुष्क की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1797 प्रमत्त संयत गुणस्थान में व्युच्छित्ति को प्राप्त 6 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर प्रमत्तसंयत गुणस्थान में अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1798 अप्रमत्त संयत गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 1 प्रकृति कौन-सी है?

उत्तर अप्रमत्त संयत गुणस्थान में देवायु की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1799 अपूर्वकरण गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 36 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अपूर्वकरण गुणस्थान के सात भागों में से प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला इन दो की, छठे भाग के अन्त समय में तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्मण, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय, इन तीस की तथा अन्त के सप्तम भाग में हास्य, रति, भय और

जुगुप्सा इन चार की बन्ध व्युच्छित्ति होती है। (2 + 30 + 4 = 36)

प्र.1800 अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 5 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पाँचों भागों में क्रमशः पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया और संज्वलन लोभ की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1801 सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 16 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में ज्ञानावरण की 5, अन्तराय की 5, दर्शनावरण की 4, उच्च गोत्र और यशस्कीर्ति की बंध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1802 सयोगकेवली गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति को प्राप्त 1 प्रकृति कौन-सी है?

उत्तर सयोग केवली गुणस्थान में सातावेदनीय, इस एक प्रकृति की बंध व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1803 कौन-कौन-से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 117, दूसरे गुणस्थान में 101, तीसरे गुणस्थान में 74, चौथे गुणस्थान में 77, पाँचवे गुणस्थान में 67, छठे गुणस्थान में 63, सातवे गुणस्थान में 59, आठवे गुणस्थान में 58, नौवे गुणस्थान में 22, दसवे गुणस्थान में 17, ग्यारहवे गुणस्थान में 1, बारहवे गुणस्थान में 1 और तेरहवे गुणस्थान में 1 प्रकृतियों का बन्ध होता है।

प्र.1804 कौन-कौन से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों का अबन्ध होता है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 3, दूसरे गुणस्थान में 19, तीसरे गुणस्थान में 46, चौथे गुणस्थान में 43, पाँचवें गुणस्थान में 53, छठे गुणस्थान में 57, सातवे गुणस्थान में 61, आठवे गुणस्थान में 62, नौवे गुणस्थान में 98, दसवे गुणस्थान में 103, ग्यारहवे गुणस्थान में 119, बारहवे गुणस्थान में 119, तेरहवे गुणस्थान में 119 और चौदहवे गुणस्थान में 120 प्रकृतियों का अबन्ध होता है।

प्र.1805 व्युच्छित्ति का अर्थ क्या है?

उत्तर व्युच्छित्ति का अर्थ छूटना या समाप्त होना है। अर्थात् जिस गुणस्थान में जिस कर्म-प्रकृति की बंध उदय व सत्त्व व्युच्छित्ति कही जाती है, उस गुणस्थान के आगे उस कर्म प्रकृति का बन्ध या उदय या सत्त्व नहीं पाया जाता है।

प्र.1806 पूर्व-पूर्व के गुणस्थानों की अपेक्षा आगे-आगे के गुणस्थानों में कर्म प्रकृतियों के बंध, उदय और अबन्ध सम्बन्धी संख्या रूप गणित निकालने की विधि क्या है?

उत्तर पूर्व-पूर्व के गुणस्थानों की कर्मबन्ध प्रकृतियों में से उनकी व्युच्छित्ति कम करने पर आगामी गुणस्थानों का बन्ध निकलता है तथा वर्तमान गुणस्थान की व्युच्छित्ति और वर्तमान गुणस्थान का अबन्ध मिलाने से आगामी गुणस्थान का अबन्ध निकलता है।

जैसे- कुल बन्ध योग्य प्रकृतियाँ 120 हैं, उनमें से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध चतुर्थ से लेकर अष्टम गुणस्थान तक होता है, तथा आहारक युगल का बन्ध सप्तम, अष्टम में होता है, अतः तीन प्रकृतियाँ

प्रथम गुणस्थान में अबन्धनीय होने से कम हो गईं। जिस कारण प्रथम गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति 16 की, बन्ध 117 का और अबन्ध 3 का है। प्रथम गुणस्थान की व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ घट जाने से द्वितीय गुणस्थान में बन्ध योग्य प्रकृतियाँ 101 रह गईं, वहाँ बन्ध व्युच्छित्ति 25 की, बन्ध 101 का और अबन्ध 16 + 3 = 19 का है। द्वितीय गुणस्थान की व्युच्छिन्न 25 प्रकृतियाँ कम हो जाने 76 रहीं पर तृतीय गुणस्थान में आयु का बन्ध नहीं होता अतः 2(मनु.दे.) प्रकृतियाँ और कम हो गई। इस तरह तृतीय गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति शून्य की, बन्ध 74 का और अबन्ध 19 + 25 + 2 = 46 का है। चतुर्थ गुणस्थान में मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होने लगता है अतः बन्ध 74 + 3 = 77 का है। बन्ध व्युच्छित्ति 10 की, बन्ध 77 का और अबन्ध 46-3 = 43 का है। चतुर्थ गुणस्थान की व्युच्छिन्न 10 प्रकृतियाँ घट जाने से पंचम गुणस्थान में बन्ध 67 का, बन्ध व्युच्छित्ति 4 की और अबन्ध 43 + 10 = 53 का है। पञ्चम गुणस्थान से व्युच्छिन्न 4 प्रकृतियाँ घट जाने से छठे गुणस्थान में बन्ध 63 का, बन्ध व्युच्छित्ति 6 की और अबन्ध 53 + 4 = 57 का है। षष्ठ गुणस्थान की व्युच्छिन्न 6 प्रकृतियाँ कम करने से और आहारक युगल मिलाने से सप्तम गुणस्थान में बन्ध 59 का, बन्ध व्युच्छित्ति 1 की और अबन्ध 57 + 6 = 63; 63-2 = 61 (आ., आ.मि.) का है। सप्तम गुणस्थान की व्युच्छिन्न 1 प्रकृति कम हो जाने से अष्टम गुणस्थान में बन्ध 58 का, बन्ध व्युच्छित्ति 36 की और अबन्ध 61 + 1 = 62 का है। अष्टम गुणस्थान में व्युच्छिन्न हुई 36 प्रकृतियाँ कम हो जाने से नवम गुणस्थान में बन्ध 22 का, बन्ध व्युच्छित्ति 5 की और अबन्ध 62 + 36 = 98 का है। नवम गुणस्थान में व्युच्छिन्न 5 प्रकृतियाँ कम हो जाने से दशम गुणस्थान में बन्ध 17 का, बन्ध व्युच्छित्ति 16 की और अबन्ध 98 + 5 = 103 का है। दशम की व्युच्छिन्न 16 प्रकृतियाँ कम हो जाने से ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थानों में बन्ध 1 का और अबन्ध 119 का है। ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति शून्य है। तेरहवें गुणस्थान में 1 की बन्ध व्युच्छित्ति हो जाने से चौदहवें गुणस्थान में बन्ध और बन्ध व्युच्छित्ति शून्य तथा अबन्ध 120 प्रकृतियों का है। (क.दी.भा.2)

प्र.1807 मूल प्रकृति रूप ज्ञानावरणादिक कर्मों का स्थिति बन्ध कितना है?

उत्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, नाम और गोत्र का बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, मोहनीय का सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम (जिसमें दर्शनमोहनीय रूप मिथ्यात्व का सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम और चारित्र मोहनीय का चालीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है), आयु कर्म का तैंतीस सागरोपम, असातावेदनीय का तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम और सातावेदनीय का पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरोपम है।

प्र.1808 मूल प्रकृति रूप ज्ञानावरणादिक कर्मों का जघन्य स्थिति बंध कितना है?

उत्तर वेदनीय कर्म का जघन्य स्थिति बन्ध बारह मुहूर्त्त, नामकर्म और गोत्र कर्म का आठ मुहूर्त्त तथा

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय कर्म का जघन्य स्थिति बन्ध अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है।

प्र.1809 कर्म प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध कब होता है?

उत्तर कर्म प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध कर्म व्युच्छित्ति के काल में होता है। अर्थात् जहाँ कर्म व्युच्छित्ति हो वहीं होता है।

प्र.1810 कर्मबंध में उत्कृष्ट और जघन्य रूप होने का कारण क्या है?

उत्तर उत्कृष्ट संक्लेश रूप परिणामों से तीन शुभ (देव, मनुष्य, तिर्यञ्च) आयु के बिना अन्य 117 प्रकृतियों का यथासंभव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है और मंद कषाय रूप परिणामों से जघन्य स्थिति बन्ध होता है।

प्र.1811 देवायु, आहारक, आहारक मिश्र और तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध कब किस जीव को होता है?

उत्तर देवायु का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध, सप्तम गुणस्थान में चढ़ने के सन्मुख प्रमत्तसंयत गुणस्थान वाला जीव करता है। आहारक, आहारक मिश्र का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध, छठे गुणस्थान में उतरने से सन्मुख सप्तम गुणस्थानवर्ती अप्रमत्त संयत जीव करता है। और तीर्थंकर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध नरक जाने के लिए सन्मुख चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि जीव करता है। तीर्थंकर, आहारकाद्विक और देवायु इन चार प्रकृतियों के सिवाय अन्य 116 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध मिथ्यादृष्टि जीव ही करता है।

प्र.1812 आबाधा का लक्षण क्या है?

उत्तर कर्म रूप होकर आया हुआ कार्मण वर्गणा रूपी द्रव्य जब तक उदय या उदीरणा रूप न हो तब तक के काल को आबाधा कहते हैं।

प्र.1813 आबाधा कितने प्रकार की होती है?

उत्तर आबाधा उदय और उदीरणा की अपेक्षा दो प्रकार की होती है।

प्र.1814 उदय की अपेक्षा किस कर्म की कितनी आबाधा होती है?

उत्तर उदय की अपेक्षा, आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की आबाधा, एक कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति पर सौ वर्ष की होती है। इसी अनुपात से सर्व स्थितियों की आबाधा समझना चाहिए। जैसे- जिस कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर की बँधी है उसकी आबाधा सात हजार वर्ष की होगी अर्थात् इतने समय तक वे कर्म परमाणु उदय में नहीं आवेंगे। जिन कर्मों की स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण बंधी है उनकी आबाधा अन्तर्मुहूर्त्त की होती है। आयु कर्म की आबाधा एक करोड़ पूर्व के तृतीय भाग से लेकर असंक्षेपाद्धा अर्थात् आवली के संख्यातवें भाग प्रमाण काल तक होती है।

प्र.1815 उदीरणा की अपेक्षा किस कर्म की कितनी आबाधा होती है?

उत्तर उदीरणा की अपेक्षा सब कर्मों की आबाधा एक आवली प्रमाण होती है। (बंधी हुई कर्म प्रकृति की एक अचलावली के बाद उदीरणा हो सकती है।)

प्र.1816 बद्धमान और भुज्यमान आयु में उदीरणा सम्बन्धी क्या व्यवस्था है?

उत्तर बद्धमान अर्थात् परभव सम्बन्धी आयु की उदीरणा नहीं होती है, मात्र भुज्यमान अर्थात् वर्तमान आयु की उदीरणा हो सकती है।

प्र.1817 कर्म बन्ध के काल में ज्ञानावरणादि कर्मों में विभाग किस तरह होता है?

उत्तर आठ कर्मों में सबसे अधिक कर्म-प्रदेश वेदनीय कर्म को, उससे कम मोहनीय को, उससे कम परन्तु परस्पर में समान ज्ञानावरण-दर्शनावरण और अन्तराय को, उससे कम परन्तु परस्पर में समान नाम और गोत्र को तथा आयु-कर्म को सबसे कम कर्म प्रदेश प्राप्त होते हैं।

प्र.1818 प्रदेश बन्ध का प्रमुख कारण क्या है और वह कितने भेद रूप है?

उत्तर प्रदेश-बन्ध का प्रमुख कारण योग स्थान है जो कि आत्म-प्रदेशों के परिस्पन्द के भेद से तीन प्रकार का है। जैसे-

1. उपपाद योगस्थान- नवीन पर्याय के प्रथम समय में स्थित जीव के उपपाद योग स्थान होता है।

2. एकान्तानुवृद्धि योगस्थान- पर्याय धारण करने के दूसरे समय से लेकर शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने तक नियम से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ एकान्तानुवृद्धि योग स्थान होता है।

3. परिणाम योगस्थान- शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने के समय से लेकर जीवन पर्यन्त परिणाम योगस्थान होता है। इसमें आत्मप्रदेशों का परिस्पन्द कभी कम और कभी बढ़ता रहता है। इसका दूसरा नाम घोटमान-योग भी है।

प्र.1819 उत्कृष्ट और जघन्य-प्रदेश-बन्ध की योग्यता रूप सामग्री क्या है?

उत्तर उत्कृष्ट योगों सहित, संज्ञी, पर्याप्तक और अल्पप्रकृतियों का बन्ध करने वाला उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध को करता है और इससे विपरीत जीव जघन्य प्रदेश बन्ध को करता है।

प्र.1820 ज्ञानावरणादिक मूल प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध किस गुणस्थान में होता है?

उत्तर आयु कर्म का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध छह गुणस्थानों के अनन्तर सप्तम गुणस्थान में रहने वाला करता है। मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध नवम गुणस्थानवर्ती करता है और शेष छह कर्मों का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध उत्कृष्ट योगों को धारण करने वाला सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान वाला जीव करता है।

प्र.1821 अष्टकर्मों का जघन्य प्रदेश बन्ध किस जीव के कब होता है?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव अपनी पर्याय के प्रथम समय में जघन्ययोग के द्वारा आयु के सिवाय शेष सात कर्मों का जघन्य प्रदेश-बन्ध करता है। आगे चलकर आयु का बन्ध होने पर इसी जीव के आयु कर्म का भी जघन्य प्रदेश बन्ध होता है। (क.दी.,भा.2)

गुणस्थानों में कर्म प्रकृतियों संबंधी बंध, अबंध, व्युच्छित्ति

गुणस्थान	बंध	अबंध	बंध व्युच्छिति	व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
मिथ्यात्व	117	3	16	मोहनीय कर्म की 2, आयु कर्म की 1, नाम कर्म की 13 = कुल 16
सासादन	101	19	25	दर्शनावरण कर्म की 3, मोहनीय कर्म की 5, आयु कर्म की 1, नाम कर्म की 15, गोत्र कर्म की 1 = कुल 25
मिश्र	74	46	0	
अविरत सम्यग्दृष्टि	77	43	10	मोहनीय कर्म की 4, आयुकर्म की 1, नाम कर्म की 5 = कुल 10
संयमासंयम	67	53	4	मोहनीय कर्म की 4 = कुल 4
प्रमत्त संयत	63	57	6	वेदनीय कर्म की 1, मोहनीय कर्म की 2, नाम कर्म की 3 = कुल 6
अप्रमत्त विरत	59	61	1	आयु कर्म की 1 = कुल 1
अपूर्वकरण	58	62	36	दर्शनावरण कर्म की 2, मोहनीय कर्म की 4, नाम कर्म की 30 = कुल 36
अनिवृत्तिकरण	22	98	5	मोहनीय कर्म की 5 = कुल 5
सूक्ष्म साम्पराय	17	103	16	ज्ञानावरण कर्म की 5, दर्शनावरण कर्म की 4, नाम कर्म की 1, गोत्र कर्म की 1, अंतराय कर्म की 5 = कुल 16
उपशांत मोह	1	119	0	
क्षीण मोह	1	119	0	
सयोग केवली अयोग केवली	1 0	119 120	1 0	वेदनीय कर्म की 1 = कुल 1

प्र.1822 कर्म-उदय किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव के अनुसार कर्मों के फल का प्राप्त होना उदय है या स्थिति का क्षय होना या कर्म स्कन्धों का अपना फल देकर झड़ जाना उदय कहलाता है।

प्र.1823 उदय त्रिभङ्गी किसे कहते हैं?

उत्तर उदय व्युच्छित्ति, उदय और अनुदय को उदय त्रिभङ्गी कहते हैं।

प्र.1824 कौन-कौन से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों का अनुदय होता है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 5, दूसरे गुणस्थान में 11, तीसरे गुणस्थान में 22, चौथे गुणस्थान में 18, पाँचवें गुणस्थान में 35, छठे गुणस्थान में 41, सातवें गुणस्थान में 46, आठवें गुण स्थान में 50, नौवें गुणस्थान में 56, दसवें गुणस्थान में 62, ग्यारहवें गुणस्थान में 63, बारहवें गुणस्थान में 65, तेरहवें गुणस्थान में 80 और चौदहवें गुणस्थान में 110 प्रकृतियों का अनुदय होता है।

प्र.1825 किस कर्म-प्रकृति का उदय किस गुणस्थान में होता है?

उत्तर आहारक शरीर और आहारक शरीरांगोपांग का उदय छठे गुणस्थान में, तीर्थंकर-प्रकृति का केवली के तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में, सम्यङ्मिथ्यात्व का तृतीय गुणस्थान में, सम्यक्त्व प्रकृति का वेदक (क्षयोपशमिक) सम्यग्दृष्टि के चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सप्तम गुणस्थान तक, आनुपूर्वी का उदय प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थान में, अनन्तानुबन्धी का उदय प्रथम, द्वितीय गुणस्थान में, अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क का उदय प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान तक, प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का उदय प्रथम से पञ्चम गुणस्थान तक, संज्वलन क्रोध, मान, माया का उदय प्रथम से नवम गुणस्थान तक और संज्वलन लोभ का उदय प्रथम से लेकर दसम गुणस्थान तक, नरकायु और देवायु का उदय प्रथम से लेकर चतुर्थ गुणस्थान तक, तिर्यगायु का उदय प्रथम से लेकर पञ्चम गुणस्थान तक, और मनुष्यायु का उदय प्रारम्भ (प्रथम) से लेकर सभी गुणस्थानों में होता है। सासादन गुणस्थान में मरा हुआ जीव नरक गति में उत्पन्न नहीं होता अतः उस जीव के नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं होता। शेष कर्म प्रकृतियों का उदय मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में अपनी-अपनी उदय व्युच्छित्ति के अन्तिम समय तक होता है।

प्र.1826 किस गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है?

उत्तर अभेद विवक्षा से मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थानों में क्रम से पहले गुणस्थान में 10, दूसरे गुणस्थान में 4, तीसरे गुणस्थान में 1, चौथे गुणस्थान में 17, पांचवें गुणस्थान में 8, छठे गुणस्थान में 5, सातवें गुणस्थान में 4, आठवें गुणस्थान में 6, नौवें गुणस्थान में 6, दसवें गुणस्थान में 1, ग्यारहवें गुणस्थान में 2, बारहवें गुणस्थान में (2,14), तेरहवें गुणस्थान में 29 और चौदहवें गुणस्थान में 13 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1827 षट्खण्डागम ग्रन्थानुसार (भूतबली आचार्यानुसार) किस गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है?

उत्तर षटखण्डागम ग्रन्थानुसार (भूतबली आचार्यानुसार) मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में क्रम से पहले गुणस्थान में 5, दूसरे गुणस्थान में 9, तीसरे गुणस्थान में 1, चौथे गुणस्थान में 17, पाँचवें गुणस्थान में 8, छठे गुणस्थान में 5, सातवें गुणस्थान में 4, आठवें गुणस्थान में 6, नौवें गुणस्थान में 6, दसवें गुणस्थान में 1, ग्यारहवें गुणस्थान में 2, बारहवें गुणस्थान में 16, तेरहवें गुणस्थान में 30 और चौदहवें गुणस्थान में 12 कर्म प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है (क.दी. भा.2)

प्र.1828 किन्हीं आचार्यों और भूतबली आचार्य इन दोनों पक्षों में कर्मों की उदय व्युच्छित्ति सम्बन्धी विवक्षा भेद क्या है?

उत्तर किन्हीं आचार्यों के मत से एकेन्द्रिय और विकलत्रय में सासादन गुणस्थान नहीं होता, अतः एकेन्द्रिय, स्थावर और द्वीन्द्रियादि तीन जातियाँ, इन 5 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति पहले गुणस्थान में ही हो जाती है। फलस्वरूप पहले गुणस्थान में 10 और दूसरे गुणस्थान में 4 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है। बारहवें गुणस्थान के उपान्त्य समय में 2 की और अन्त्य समय में 14 की, दोनों को मिलाकर 16 की व्युच्छित्ति कही गई है। चौदहवें गुणस्थान में परस्पर विरोधी होने से साता-असाता वेदनीय दोनों का एक साथ उदय नहीं होता अतः 1 की व्युच्छित्ति तेरहवें में और 1 की चौदहवें में मानी गई है परन्तु नाना जीवों की अपेक्षा दोनों का उदय संभव है, अतः 29, 13 अथवा 30, 12 का विकल्प बन जाता है। यहाँ इस कृति में भूतबली आचार्य के मतानुसार उदय त्रिभंगी का वर्णन किया गया है।

प्र.1829 मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 5 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन पाँच प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है। अर्थात् द्वितीयादि गुणस्थानों में इनका उदय नहीं रहता।

प्र.1830 सासादन गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 9 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सासादन गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, एकेन्द्रिय, स्थावर, द्वीन्द्रिय-जाति, त्रीन्द्रिय-जाति और चतुरिन्द्रय जाति, इन नौ प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1831 सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली एक प्रकृति कौन-सी है?

उत्तर सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में सम्यङ्मिथ्यात्व इस एक प्रकृति की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1832 असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होनी वाली 17 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकायु, देवायु, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशस्कीर्ति इन 17 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1833 देश-संयत गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 8 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर देश-संयत गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, तिर्यगायु, उद्योत, नीच गोत्र और

तिर्यग्गति इन आठ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1834 प्रमत्त-विरत गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 5 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर प्रमत्त-विरत गुणस्थान में आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा और प्रचलाप्रचला इन पाँच प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1835 अप्रमत्त-विरत गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 4 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अप्रमत्त-विरत गुणस्थान में सम्यक्त्व-प्रकृति, अर्धनाराच-संहनन, कीलक-संहनन और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, इन चार प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1836 अपूर्वकरण गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 6 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अपूर्वकरण गुणस्थान में हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन छह प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1837 अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 6 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध-मान-माया इन छह प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1838 सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली एक प्रकृति कौन-सी है?

उत्तर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान में संज्वलन लोभ, इस एक प्रकृति की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1839 उपशांत मोह गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 2 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर उपशांत मोह गुणस्थान में वज्रनाराच और नाराच संहनन, इन दो प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1840 क्षीण मोह गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 16 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर क्षीण मोह गुणस्थान में निद्रा और प्रचला इन दो की उपान्त्य समय में तथा पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय और चार दर्शनावरण इन 14 की अन्तिम समय में इस तरह दोनों मिलाकर 16 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1841 सयोग केवली गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 30 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सयोग केवली गुणस्थान में वेदनीयकर्म की साता-असाता वेदनीय में से कोई एक, वज्रवृषभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग, तैजस, कार्मण, समचतुरस्रादि 6 संस्थान (समचतुरस्र, न्यग्रोध परिमण्डल, स्वाति, वामन, कुब्जक और हुण्डक), वर्णादिचार (वर्ण, रस, गंध और स्पर्श), अगुरुलघु, उपघात, परघात, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर इन तीस प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती हैं।

प्र.1842 अयोग केवली गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति को प्राप्त होने वाली 12 प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर अयोग केवली गुणस्थान में साता-असाता वेदनीय में से कोई एक प्रकृति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति,

सुभग, त्रस, बादर, श्वासोच्छ्वास, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर और मनुष्यायु इन बारह प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1843 कौन-कौन से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 117, दूसरे गुणस्थान में 111, तीसरे गुणस्थान में 100, चौथे गुणस्थान में 104, पाँचवें गुणस्थान में 87, छठे गुणस्थान में 81, सातवें गुणस्थान में 76, आठवें गुणस्थान में 72, नौवें गुणस्थान में 66, दसवें गुणस्थान में 60, ग्यारहवें गुणस्थान में 59, बारहवें गुणस्थान में 57, तेरहवें गुणस्थान में 42 और चौदहवें गुणस्थान में 12 प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र.1844 पूर्व-पूर्व के गुणस्थानों की अपेक्षा आगे-आगे के गुणस्थानों में कर्म प्रकृतियों के उदय, उदय व्युच्छित्ति और अनुदय सम्बन्धी संख्या रूप गणित निकालने की विधि क्या है?

उत्तर उदय योग्य प्रकृतियाँ कुल 122 हैं। उनमें से प्रथम गुणस्थान में सम्यङ्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग और तीर्थंकर इन पाँच प्रकृतियों का उदय न होने से 117 का उदय है। उपर्युक्त 5 का अनुदय है और 5 की उदय व्युच्छित्ति है। प्रथम गुणस्थान के उदय 117 में उदय व्युच्छित्ति की 5 तथा नरकगत्यानुपूर्वी को घटाने से द्वितीय गुणस्थान में उदय 111 का है। उदय व्युच्छित्ति की 5 और अनुदय की पाँच ऐसे 10 प्रकृतियों में नरकगत्यानुपूर्वी के मिल जाने से अनुदय 11 का और उदय व्युच्छित्ति 9 की है। सासादन की उदय योग्य 111 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 9 प्रकृतियाँ घटाने से 102 रहीं, परन्तु तृतीय गुणस्थान में मृत्यु न होने से किसी भी आनुपूर्वी का उदय नहीं रहता। नरक गत्यानुपूर्वी पहले से घटी हुई है अतः 3 आनुपूर्वियों के घटाने से 99 रहीं उनमें सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति के मिल जाने से तृतीय गुणस्थान में उदय 100 का है। पिछले अनुदय की 11 और उदय व्युच्छित्ति की 9 प्रकृतियाँ मिलाने से 20 हुईं उसमें 3 आनुपूर्वी मिलाने और 1 सम्यङ्मिथ्यात्व प्रकृति के घटाने से तृतीय गुणस्थान में अनुदय 22 का है तथा उदय व्युच्छित्ति 1 की है। तृतीय गुणस्थान की उदय योग्य 100 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 1 प्रकृति घटाने से 99 रहीं। इनमें आनुपूर्वी की 4 तथा सम्यक्त्व प्रकृति के मिलाने से चतुर्थ गुणस्थान में उदय योग्य 104 प्रकृतियाँ है। पिछले अनुदय की 22 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 1 प्रकृति मिलाने से 23 हुईं, उनमें से 4 आनुपूर्वी और 1 सम्यक्त्व प्रकृति के घटाने से चतुर्थ गुणस्थान में अनुदय 18 का है और उदय व्युच्छित्ति 17 की है। चतुर्थ गुणस्थान में उदय योग्य 104 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 17 प्रकृतियाँ घटा देने से पञ्चम गुणस्थान में उदय योग्य 87 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 18 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 17 प्रकृतियाँ मिल जाने से पञ्चम गुणस्थान में अनुदय 35 का और उदय व्युच्छित्ति 8 की है। पंचम गुणस्थान की उदय योग्य 87 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 8 प्रकृतियाँ घटाने तथा आहारक युगल के मिलाने से छठे गुणस्थान में उदय योग्य 81 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 35 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 8 प्रकृतियाँ मिलाने और आहारक युगल के घटाने से छठे

गुणस्थान में अनुदययोग्य 41 प्रकृतियाँ हैं तथा उदय व्युच्छित्ति 5 की है। छठे गुणस्थान के उदय योग्य 81 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 5 प्रकृतियाँ कम होने से सप्तम गुणस्थान में उदय योग्य 76 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 41 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 5 प्रकृतियाँ मिलाने से सप्तम गुणस्थान में अनुदय योग्य 46 प्रकृतियाँ हैं तथा व्युच्छित्ति 4 की है। सप्तम गुणस्थान की उदय योग्य 76 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 4 प्रकृतियाँ कम कर देने से अष्टम गुणस्थान में 72 प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। पिछले अनुदय की 46 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 4 प्रकृतियाँ मिल जाने से अष्टम गुणस्थान में अनुदय योग्य 50 प्रकृतियाँ हैं और 6 की उदय व्युच्छित्ति है। अष्टम गुणस्थान की उदय योग्य 72 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 6 प्रकृतियाँ कम कर देने से नवम गुणस्थान में उदय योग्य 66 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 50 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 6 मिला देने से नवम गुणस्थान में अनुदय योग्य 56 प्रकृतियाँ होती हैं और 6 की उदय व्युच्छित्ति है। नवम गुणस्थान की उदय योग्य प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 6 प्रकृतियाँ कम हो जाने से दशम गुणस्थान में उदय योग्य 60 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 56 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 6 प्रकृतियाँ मिलाने से दशम गुणस्थान में 62 प्रकृतियाँ अनुदय योग्य हैं और 1 की उदय व्युच्छित्ति। दशम गुणस्थान की उदय योग्य 60 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 1 प्रकृति कम हो जाने से ग्यारहवें गुणस्थान में उदय योग्य 59 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 62 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 1 प्रकृति मिल जाने से ग्यारहवें गुणस्थान में 63 प्रकृतियाँ अनुदय योग्य हैं और 2 की उदय व्युच्छित्ति है। ग्यारहवें गुणस्थान की उदय योग्य 59 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 2 प्रकृतियाँ कम कर देने से बारहवें गुणस्थान में उदय योग्य 57 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 63 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 2 प्रकृतियाँ मिल जाने से बारहवें गुणस्थान में 65 प्रकृतियाँ अनुदय योग्य हैं और 16 की उदय व्युच्छित्ति है। बारहवें गुणस्थान की उदय योग्य 57 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 16 प्रकृतियाँ कम हो जाने और 1 तीर्थंकर प्रकृति के मिल जाने से तेरहवें गुणस्थान में 42 प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। पिछले अनुदय की 65 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 16 प्रकृतियों के मिलाने और 1 तीर्थंकर प्रकृति के घटाने से तेरहवें गुणस्थान में 80 प्रकृतियों का अनुदय है तथा 30 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति है। तेरहवें गुणस्थान की उदय योग्य 42 प्रकृतियों में से उदय व्युच्छित्ति की 30 प्रकृतियाँ कम करने से चौदहवें गुणस्थान में उदय योग्य 12 प्रकृतियाँ हैं। पिछले अनुदय की 80 प्रकृतियों में उदय व्युच्छित्ति की 30 प्रकृतियाँ मिलाने से चौदहवें गुणस्थान में अनुदय योग्य 110 प्रकृतियाँ हैं और 12 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति है। इस तरह उदय त्रिभंगी निकालने की विधि समझना चाहिए।

गुणस्थानों में कर्म प्रकृतियों सम्बन्धी उदय, अनुदय, उदय व्युच्छित्ति

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय व्युच्छित्ति	व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
मिथ्यात्व	117	5	5	मोहनीय कर्म की 1, नामकर्म की 4 = कुल 5
सासादन	111	11	9	मोहनीय कर्म की 4, नामकर्म की 5 = कुल 9
मिश्र	100	22	1	मोहनीय कर्म 1 = कुल 1
अविरत सम्यग्दृष्टि	104	18	17	मोहनीय कर्म की 4, आयुकर्म की 2, नाम कर्म की 11 = कुल 17
संयमासंयम	87	35	8	मोहनीय कर्म की 4, नामकर्म की 2, आयु कर्म की 1, गोत्र कर्म की 1 = कुल 8
प्रमत्त संयत	81	41	5	दर्शनावरण कर्म की 3, नामकर्म की 2 = कुल 5
अप्रमत्त विरत	76	46	4	मोहनीय कर्म की 1, नामकर्म की 3 = कुल 4
अपूर्वकरण	72	50	6	मोहनीय कर्म की 6 = कुल 6
अनिवृत्तिकरण	66	56	6	मोहनीय कर्म की 6 = कुल 6
सूक्ष्मसाम्पराय	60	62	1	मोहनीय कर्म की 1 = कुल 1
उपशांतमोह	59	63	2	नामकर्म की 2 = कुल 2
क्षीणमोह	57	65	16	ज्ञानावरण की 5, दर्शनावरण की 6, अंतराय की 5 = कुल 16
सयोग केवली	42	80	30	वेदनीय की 1, नाम कर्म की 29 = कुल30
अयोग केवली	12	110	12	वेदनीय कर्म की 1, नाम कर्म की 9, आयु कर्म की 1, गोत्र कर्म की 1 = कुल 12

प्र.1845 कर्मों के उदय और उदीरणा में क्या अन्तर है ?

उत्तर आबाधा काल (निरन्तरता का काल) पूर्ण होने पर क्रमशः कर्मों का फल प्राप्त होना उदय कहलाता है और विशिष्ट कारणों से आबाधा काल के पूर्व ही कर्मों का उदय में आ जाना अर्थात् फल मिलने लग जाना उदीरणा कहलाती है।

प्र.1846 कौन-कौन से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों की उदीरणा व्युच्छित्ति होती है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 5, दूसरे गुणस्थान में 9, तीसरे गुणस्थान में 1, चौथे गुणस्थान में 17, पाँचवें गुणस्थान में 8, छठे गुणस्थान में 8, सातवें गुणस्थान में 4, आठवें गुणस्थान में 6, नौवें गुणस्थान में 6,

दसवें गुणस्थान में 1, ग्यारहवें गुणस्थान में 2, बारहवें गुणस्थान में 16 और तेरहवें गुणस्थान में 39 प्रकृतियों की उदीरणा व्युच्छित्ति होती है।

प्र.1847 कौन-कौन-से गुणस्थानों में कितनी-कितनी प्रकृतियों की उदीरणा होती है?

उत्तर पहले गुणस्थान में 117, दूसरे गुणस्थान में 111, तीसरे गुणस्थान में 100, चौथे गुणस्थान में 104, पाँचवें गुणस्थान में 87, छठे गुणस्थान में 81, सातवें गुणस्थान में 73, आठवें गुणस्थान 69, नौवें गुणस्थान में 63, दसवें गुणस्थान में 57, ग्यारहवें गुणस्थान में 56, बारहवें गुणस्थान में 54, और तेरहवें गुणस्थान में 39 प्रकृतियों की उदीरणा होती है।

प्र.1848 मूल कर्म प्रकृतियों का बंध कौन-कौन-से गुणस्थानों तक होता है?

उत्तर ज्ञानवरणीय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक, दर्शनावरणीय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक, वेदनीय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक, मोहनीय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से नौवें गुणस्थान तक, आयुकर्म का बंध पहले गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक, नामकर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक, गोत्रकर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक और अन्तराय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक होता है।

प्र.1849 मूल कर्म प्रकृतियों का उदय कौन-कौन-से गुणस्थानों तक होता है?

उत्तर ज्ञानावरणीय कर्म का उदय पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है। दर्शनावरणीय कर्म का उदय पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है। वेदनीय कर्म का उदय पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। मोहनीय कर्म का उदय पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक होता है। आयुकर्म का उदय पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। नाम कर्म का उदय पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। गोत्र कर्म का उदय पहले गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है। अंतराय कर्म का उदय पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है।

गुणस्थानों में उदीरणा व्युच्छित्ति, उदीरणा और अनुदीरणा का कोष्टक

उदीरणा योग्य प्रकृतियाँ 122

क्र.	गुणस्थान	अनुदीरणा	उदीरणा	उदीरणा व्युच्छित्ति	विवरण
1.	मिथ्यात्व	5	117	5	सामान्य उदयकोष्टक के समान
2.	सासादन	11	111	9	सामान्य उदयकोष्टक के समान
3.	मिश्र	22	100	1	सामान्य उदयकोष्टक के समान
4.	असंयत	18	104	17	सामान्य उदयकोष्टक के समान
5.	देशसयंत	35	87	8	सामान्य उदयकोष्टक के समान

6.	प्रमत्तसंयत	41 (35+8-2)	81	8	आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धि त्रिक साता-असातावेदनीय, मनुष्यायु
7.	अप्रमत्तसंयत	49	73	4	सामान्य उदयकोष्टक के समान
8.	अपूर्वकरण	53	69	6	सामान्य उदयकोष्टक के समान
9.	अनिवृत्तिकरण	59	63	6	सामान्य उदयकोष्टक के समान
10.	सूक्ष्मसांपराय	65	57	1	सामान्य उदयकोष्टक के समान
11.	उपशांतमोह	66	56	2	सामान्य उदयकोष्टक के समान
12.	क्षीणमोह	68	54	16	सामान्य उदयकोष्टक के समान
13.	सयोगकेवली	83 (68+16-1)	39	39	सयोग और अयोगकेवली की 30+12=42, 42 में से सात-असातावेदनीय मनुष्यायु इन तीन प्रकृतियों को कम करना
14.	अयोग केवली	122	0	0	

प्र.1850 कर्म-सत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म बन्ध होने पर अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार कर्म-प्रदेशों का आत्म-प्रदेशों के साथ संलग्न रहने को कर्म-सत्व कहते हैं।

प्र.1851 कर्म-सत्व की गुणस्थानों की अपेक्षा क्या व्यवस्था है?

उत्तर प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर और आहारक युगल की सत्ता एक साथ नहीं होती। द्वितीय सासादन गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति और आहारक युगल की सत्ता क्रम से भी नहीं होती और तथा तृतीय मिश्र गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं होती। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त प्रकृति की सत्ता वाले जीवों के उपर्युक्त गुणस्थान नहीं होंगे अर्थात् तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला एवं आहारकद्विक की सत्ता वाला क्षयोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव सासादन या मिश्र गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता है।

प्र.1852 आगम में आयुबन्ध हो चुकने पर सम्यक्त्व, देशव्रत और महाव्रत प्राप्त होने की क्या व्यवस्था है?

उत्तर संसारी जीवों को चारों गतियों सम्बन्धी आयु का बन्ध होने पर सम्यग्दर्शन तो हो सकता है, परन्तु देवायु को छोड़कर अन्य आयु का बन्ध होने पर उस पर्याय में अणुव्रत और महाव्रत नहीं मिल सकते। तात्पर्य यह है कि अविरत सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थान में नाना जीवों की अपेक्षा भुज्यमान आयु के साथ चारों आयु की सत्ता हो सकती है। विशेष यह है कि देव और नरकगति में मनुष्य और तिर्यंच आयु का ही बन्ध होगा तथा मनुष्य और तिर्यंचों के चारों आयु सम्बन्धी बन्ध हो सकता है। नवीन आयु का बन्ध हो जाने पर एक जीव के बध्यमान और भुज्यमान के भेद से दो आयु की सत्ता हो जाती है। नवीन आयु के बन्ध के पहले एक भुज्यमान आयु की ही सत्ता रहती है। क्षपक श्रेणी वाला जीव तद्भव मोक्षगामी

होता है, अतः उसके नवीन आयु का बन्ध नहीं होता और जो बद्धायुष्क है उसके मात्र एक भुज्यमान मनुष्यायु का और बध्यमान देवायु इन दो आयु की सत्ता होगी और जो अबद्धायुष्क है तो उसके मात्र एक भुज्यमान मनुष्यायु की ही सत्ता होगी। क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर्म भूमिज मनुष्य को चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सप्तम गुणस्थान तक होती है और उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्क और मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्वप्रकृति इन सात प्रकृतियों का क्षय हो जाता है अतः इनकी सत्ता नहीं होती।

प्र.1853 कौन-कौन-से गुणस्थानों में कितनी-कितनी कर्म प्रकृतियों की सत्ता होती है?

उत्तर नाना (अनेक) जीवों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में 148 प्रकृतियों की सत्ता है। सासादन गुणस्थान में तीर्थंकर और आहारद्वय की सत्ता न होने से 145 की सत्ता है। मिश्र गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति न होने से एवं अनन्तानुबन्धी आदि सात प्रकृतियों की उपशम रूप सत्ता होने से 147 की सत्ता है। चतुर्थ असंयत सम्यग्दृष्टि, पञ्चम देशव्रत गुणस्थान में नरकायु की सत्ता न होने से 147 की सत्ता है। प्रमत्तविरत नामक छठे गुणस्थान में नरक और तिर्यञ्च आयु की सत्ता न होने से 146 की सत्ता है। इसी प्रकार अप्रमत्त विरत नामक सप्तम गुणस्थान में भी 146 की सत्ता है। इसी प्रकार अप्रमत्त विरत नामक सप्तम गुणस्थान तक सम्यग्दृष्टि के अनन्तानुबन्धी आदि सप्त प्रकृतियों का अभाव होने से 141 की सत्ता है। अष्टम गुणस्थान में क्षपक श्रेणी वाले के उपर्युक्त सात प्रकृतियों के साथ नरक, तिर्यंच और देवायु का भी अभाव होता है अतः 138 की सत्ता है। अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थान के आरम्भ में भी 138 की सत्ता रहती है। पश्चात् क्षपक श्रेणी वाले मनुष्य के नौ भागों में क्रम से 16, 8, 1, 1, 6, 1, 1, 1 और 1 प्रकृति का क्षय होने से 36 प्रकृतियों का क्षय हो जाता है अतः दसवें गुणस्थान में 102 की सत्ता होती है। दसवें गुणस्थान के अन्त में सूक्ष्म लोभ का भी क्षय हो जाने से बारहवें गुणस्थान में 101 की सत्ता रहती है। बारहवें गुणस्थान में 16 की सत्त्व व्युच्छित्ति होने से तेरहवें गुणस्थान में 85 की सत्ता होती है। तेरहवें गुणस्थान में किसी भी प्रकृति का क्षय नहीं होता इसलिए चौदहवें गुणस्थान में भी 85 की ही सत्ता रहती है। पश्चात् उपान्त समय में 72 और अन्त समय में 13 प्रकृतियों का क्षय हो जाने से आत्मा सर्व कर्म विप्रमुक्त हो जाती है। उपशम श्रेणी वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि है और नवीन आयु बन्ध कर चुका है तो उसके 138 + 1 = 139 की सत्ता उपशान्तमोह गुणस्थान तक रहेगी। यदि अबद्धायुष्क है तो 138 की सत्ता होगी यदि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि है तो अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना होने से 142 की सत्ता रहती है।

प्र.1854 कौन-कौन-से गुणस्थानों में किन-किन कर्म-प्रकृतियों का संवर किस तरह से होता है?

उत्तर आगम में कथित चौदह गुणस्थानों में कर्मास्रव में कारण रूप मिथ्यादर्शन, असंयम (अविरति), प्रमाद, कषाय और योग इनका क्रमशः जैसे-जैसे अभाव होता है, तज्जन्य आस्रव के अभाव में (उस-उस गुणस्थान में आस्रवित होने वाले उतने-उतने कर्मों के रुकने रूप) संवर होता है।

प्र.1855 मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यादर्शन के सद्भाव में जिन प्रकृतियों का आस्रव होता है और सासादन गुणस्थान में जिन प्रकृतियों का संवर होता है वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सासादन गुणस्थान में मिथ्यादर्शन के अभाव में मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डक संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, नरक गति प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक और साधारण शरीर इन सोलह प्रकृतियों का संवर होता है।

गुणस्थानों में कर्म प्रकृति संबंधी सत्व, असत्व, सत्व व्युच्छित्ति

गुणस्थान	सत्व	असत्व	सत्व व्युच्छित्ति	व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
मिथ्यात्व	148	0	0	
सासादन	145	3	0	
मिश्र	147	1	0	
अविरत सम्यग्दृष्टि				
उपशम व क्षयोपशम				
सम्यक्त्वी	148	0	1	आयु कर्म की 1 नरकायु = 1
क्षायिक सम्यक्त्वी	141	7	1	आयुकर्म की 1 नरकायु = 1
संयमासंयम				
व क्षयोपशम				
सम्यक्त्वी	147	9	1	आयुकर्म की 1 तिर्यंचायु = 1
क्षायिक सम्यक्त्वी	140	8	1	आयुकर्म की 1 तिर्यंचायु = 1
प्रमत्तविरत				
उपशम				
व क्षयोपशम				
सम्यक्त्वी	146	2	0	
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	1	0	

अप्रमत्त विरत				
उपशम व क्षयोपशम				
सम्यक्त्वी	146	2	4	मोहनीय कर्म की 4 = 4
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	9	1	आयुकर्म की 1, देवायु =1
अपूर्वकरण				
उपशम श्रेणी				
द्वितीयोपशम				
सम्यक्त्वी	142	6	0	
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	9	0	
क्षपक श्रेणी				
क्षायिक सम्यक्त्वी	138	10	0	
अनिवृत्तिकरण				
उपशम श्रेणी				
द्वितीयोपशम				
सम्यक्त्वी	142	6	0	
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	9	0	
क्षपक श्रेणी	–	–	–	
क्षायिक सम्यक्त्वी	138	10	36	दर्शनावरण की 3, मोहनीय कर्म की 20, नामकर्म की 13 = कुल 36
सूक्ष्मसाम्पराय				
उपशम श्रेणी				
द्वितीयोपशम				
सम्यक्त्वी	142	6	0	
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	9	0	
क्षपक श्रेणी				
क्षायिक सम्यक्त्वी	102	46	1	मोहनीय कर्म की 1

उपशांतमोह				
उपशम श्रेणी				
द्वितीयोपशम				
सम्यक्त्वी	142	6	0	
क्षायिक सम्यक्त्वी	139	9	0	
क्षीणमोह	101	47	16	दर्शनावरण की 6, ज्ञानावरण की 5, अंतराय कर्म की 5 = कुल 16
सयोग केवली	85	63	0	
अयोग केवली	85	63	72	नामकर्म की 70
द्विचरम समय में	85	63	72	नामकर्म की 70, वेदनीय कर्म की 1, गोत्र कर्म की 1 = कुल 72
चरम समय में	13	135	13	वेदनीय कर्म की 1, गोत्र कर्म की 1, आयुकर्म की 1, नामकर्म की 10 = कुल 13



पर नारी को नम्र दृष्टि रख; माँ, बहिन के समान देखना चाहिए।

One should always look at others with a pure vision, seeing them with the respect due to a mother, sister, or brother.

•••

धन कमाई हेतु नारी को; परपुरुषों के घर भेजना शील को जोखिम में डालना है।

Sending a woman to the houses of other men for the sake of earning money puts her sacred character at great risk.

•••

व्यर्थ और अप्रयोजनीय कार्य से बचने के लिये बोलने से पहले वचनों को तौलना चाहिए।

To avoid falling into useless and purposeless work, a person should always weigh their words carefully before speaking.

अध्याय-18

गुणस्थानों में प्रकृतियों का संवर, गुणश्रेणी निर्जरादि

(गुणस्थानों में प्रकृतियों का क्षय व निर्जरा, निर्जरा के स्थान, ध्यान, ध्यान के भेद, मोक्ष और तेरह अनुयोग द्वार)

प्र. 1856 मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के आगे मिथ्यात्व के अभाव में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के आगे मिथ्यात्व के अभाव में मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण शरीर, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इन सोलह प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.1857 सासादन गुणस्थान से आगे अनन्तानुबन्धी कषाय रूप असंयम के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर सासादन गुणस्थान से आगे अनन्तानुबन्धी कषाय रूप असंयम के अभाव में निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबंधी मान, अनन्तानुबंधी माया, अनन्तानुबंधी लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यञ्चायु, तिर्यंचगति, मध्य के चार संस्थान(न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान), मध्य के चार संहनन (वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलिक संहनन), दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, उद्योत, नीचगोत्र, अप्रशस्त विहायोगति और तिर्यग्गत्यानुपूर्वी इन पच्चीस प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.1858 असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से आगे प्रत्याख्यानावरण कषाय रूप असंयम के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से आगे अप्रत्याख्यानावरण कषाय रूप असंयम के अभाव में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण मान, अप्रत्याख्यानावरण माया, अप्रत्याख्यानावरण लोभ; मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक शरीर अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन दस प्रकृतियों का संवर होता है।

विशेष- सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान के होने पर आयुकर्म का बंध नहीं होता है।

प्र.1859 संयतासंयत गुणस्थान से आगे प्रत्याख्यानावरण कषाय रूप असंयम के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है, वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर संयतासंयत गुणस्थान के आगे प्रत्याख्यानावरण कषाय रूप असंयम के अभाव में प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.1860 प्रमत्तसंयत गुणस्थान के आगे प्रमाद के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है वे प्रकृतियाँ

कौन सी हैं?

उत्तर प्रमत्तसंयत गुणस्थान से आगे प्रमाद के अभाव में असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति इन छः प्रकृतियों का संवर होता है।

विशेष- देवायु के बंध का आरंभ प्रमाद हेतुक भी होता है और उसके नजदीक का अप्रमाद हेतुक भी होता है। अतः इसका अभाव होने पर (सप्तम गुणस्थान से ऊपर) इसका संवर जानना चाहिए।

प्र.1861 अपूर्वकरण गुणस्थान के आगे तीव्र संज्वलन कषाय के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है, वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर तीव्र संज्वलन कषाय के अभाव में अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रारंभिक संख्येय भाग के आगे निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों का, इसके संख्येय भाग के आगे देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरससंस्थान, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, आहारक शरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर इन तीस प्रकृतियों का तथा इसी गुणस्थान के अंतिम समय से आगे हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियों का इस तरह कुल 36 प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.1862 अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के आगे मध्यम संज्वलन कषाय के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है, वे प्रकृतियाँ कौन-सी हैं?

उत्तर मध्यम संज्वलन कषाय के अभाव में अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम समय से लेकर संख्यात भाग से आगे पुरुष वेद और क्रोध संज्वलन इन दो प्रकृतियों का और उसके संख्यात भाग से आगे मान संज्वलन और माया संज्वलन इन दो प्रकृतियों का और अन्तिम समय में एक लोभ संज्वलन इस प्रकार 5 प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.1863 सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के आगे मन्द संज्वलन कषाय के अभाव में जिन प्रकृतियों का संवर होता है, वे प्रकृतियों कौन-सी हैं?

उत्तर मन्द संज्वलन कषाय के अभाव में सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के आगे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय इन 16 (सोलह) प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.1864 योग के अभाव में उपशांतमोह (कषाय), क्षीणमोह (कषाय) और सयोग केवली इन तीन गुणस्थान के आगे कौन-सी प्रकृति का संवर होता है?

उत्तर योग के अभाव में उपशांत कषाय, क्षीण कषाय, और सयोग केवली इन तीन गुणस्थान के आगे सातावेदनीय का संवर होता है।

प्र.1865 गुणश्रेणी निर्जरा क्या है, एवं गुणश्रेणी निर्जरा में कितना कर्म-द्रव्य प्राप्त होता है?

उत्तर असंख्यात गुणित क्रम श्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा होना गुणश्रेणी निर्जरा है ऐसी निर्जरा में उत्तरोत्तर

गुणश्रेणी निर्जरा के लिये असंख्यात गुणा कर्म द्रव्य प्राप्त होता है।

प्र.1866 असंख्यात गुणी निर्जरा में उत्तरोत्तर काल कितना लगता है?

उत्तर असंख्यात गुणी निर्जरा में आगे-आगे गुणश्रेणी का काल संख्यात गुणा हीन-हीन। अर्थात् सम्यग्दृष्टि को गुणश्रेणी निर्जरा में जो अंतर्मुहूर्त्त, काल लगता है उससे श्रावक को संख्यात गुणा हीन काल लगता है। परंतु सम्यग्दृष्टि गुणश्रेणी निर्जरा द्वारा जितने कर्मप्रदेशों की निर्जरा करता है उसकी अपेक्षा श्रावक असंख्यात गुणे कर्म परमाणुओं की निर्जरा कर लेता है।

प्र.1867 असंख्यात गुणी निर्जरा करने वाले भव्य जीवों के दस स्थान कौन-से हैं?

उत्तर परिणामों की विशुद्धि द्वारा वृद्धि को प्राप्त भव्य पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक जीव प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति के निमित्त के मिलने पर सम्यग्दृष्टि होता हुआ असंख्येयगुण कर्म निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही चारित्र मोहनीय कर्म के एक भेद अप्रत्याख्यानावरण कर्म के क्षयोपशम निमित्तक परिणामों की प्राप्ति के समय विशुद्धि का प्रकर्ष होने से श्रावक होता हुआ उससे असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही प्रत्याख्यानावरण कर्म के क्षयोपशम निमित्तक परिणामों की विशुद्धिवश विरत संज्ञा को प्राप्त होता हुआ उससे असंख्येयगुण निर्जरावाला होता है। पुनः वह ही जब अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ की विसंयोजना करता है; तब परिणामों की विशुद्धि के प्रकर्षवश उससे असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही दर्शनमोहनीयत्रिक रूप तृणसमूह को भस्मसात् करता हुआ परिणामों की विशुद्धि के अतिशयवश दर्शनमोह क्षपक संज्ञा को प्राप्त होता हुआ पहले से असंख्येय-गुण निर्जरा वाला होता है। इस प्रकार वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर श्रेणी पर आरोहण करने के सम्मुख होता हुआ तथा चारित्र मोहनीय के उपशम करने के लिए प्रयत्न करता हुआ विशुद्धि के प्रकर्षवश उपशमक संज्ञा का अनुभव करता हुआ पहले कही गई निर्जरा से असंख्येयगुण निर्जरावाला होता है। पुनः वह ही समस्त चारित्र मोहनीय के उपशमक निमित्त मिलने पर उपशान्त कषाय संज्ञा को प्राप्त होता हुआ पहले कही गई निर्जरा से असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही चारित्र मोहनीय की क्षपणा के लिए सम्मुख होता हुआ तथा परिणामों की विशुद्धि से वृद्धि को प्राप्त होकर क्षपक संज्ञा का अनुभव करता हुआ पहले कही गई निर्जरा से असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही समस्त चारित्र मोहनीय की क्षपणा के कारणों से प्राप्त हुये परिणामों के अभिमुख होकर क्षीणकषाय संज्ञा को प्राप्त करता हुआ पहले कही गई निर्जरा से असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है। पुनः वह ही द्वितीय शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा घातिकर्म समूह का नाश करके जिन संज्ञा को प्राप्त होता हुआ पहले कही गई निर्जरा से असंख्येयगुण निर्जरा वाला होता है।

प्र.1868 भव्य जीव के कौन से गुणस्थान में कौन-सी, कितनी प्रकृतियाँ क्षय या निर्जरा को प्राप्त होती है?

उत्तर असंयत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में सात प्रकृतियों का क्षय करता है। पुनः निद्रानिद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति,

त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंच गति प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम वाली सोलह कर्म प्रकृतियों का अनिवृत्ति बादर साम्पराय गुणस्थान में एक साथ क्षय करता है। इसके बाद उसी गुणस्थान में आठ कषायों का क्षय करता है। पुनः वहीं पर नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का क्रम से क्षय करता है तथा छह नोकषायों को एक ही प्रहार द्वारा गिरा देता है। तदनन्तर पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान और संज्वलन माया का वहाँ पर क्रम से अत्यन्त क्षय करता है। तथा संज्वलन लोभ, सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के अन्त में विनाश को प्राप्त होता है। निद्रा और प्रचला कर्म क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान के उपान्त्य समय में प्रलय को प्राप्त होते हैं। पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तराय कर्मों का उसी गुणस्थान के अन्तिम समय में क्षय होता है। कोई एक वेदनीय, देवगति, औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, (पाँच बन्धन, पाँच संघात), छह संस्थान, औदारिक शरीर अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग, आहारक शरीर अंगोपांग, छह संहनन, पाँच प्रशस्तवर्ण, पाँच अप्रशस्तवर्ण, दो गन्ध, पाँच प्रशस्त रस, पाँच अप्रशस्त रस, आठ स्पर्श, देवगति प्रायोग्यानूपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति, निर्माण और नीच गोत्र नाम वाली बहत्तर प्रकृतियों का अयोगकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय में विनाश होता है तथा कोई एक वेदनीय, मनुष्य आयु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र नाम वाली तेरह प्रकृतियों का अयोग केवली गुणस्थान के अन्तिम समय में वियोग होता है। (नरकायु का पंचम गुणस्थान में, तिर्यञ्चायु के छठ्ठे गुणस्थान में, देवायु का आठवें गुणस्थान में क्षय होता है।)

प्र.1869 कर्म क्षय के हेतु रूप ध्यान का स्वरूप क्या है?

उत्तर 'ध्यै-चिंतायाम्' यह धातु चिन्तवन-ध्यान करने के अर्थ में आती है इससे ध्यान शब्द बनता है। उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्त वृत्ति का रोकना है; वह ध्यान कहलाता है, जो अंतर्मुहूर्त्त काल तक होता है।

प्र.1870 उत्तम संहनन कौन-से हैं?

उत्तर छः संहननों में से आदि के वज्रवृषभनाराच संहनन, वज्र-नाराच संहनन, नाराच संहनन ये तीन उत्तम संहनन हैं।

प्र.1871 एकाग्र चिन्ता निरोध का अर्थ क्या है?

उत्तर 'अग्र' पद का अर्थ मुख है। जिसका एक अग्र (प्रमुख) होता है। वह एकाग्र कहलाता है। अनेक पदार्थों का अवलम्बन होने से चिन्ता परिस्पन्दवती अर्थात् चलायमान होती है। उसे अन्य अशेष (सभी) मुखों (विषयों) से लौटाकर (हटाकर) एक अग्र अर्थात् एक विषय में नियमित करना

(लगाना या लीन करना) एकाग्र चिन्तानिरोध कहलाता है।

प्र.1872 अन्तर्मुहूर्त्त इस पद से ध्यान के विषय में क्या तात्पर्य है?

उत्तर दो घटिका प्रमाण एक मुहूर्त्त यह काल का विवक्षित परिमाण है। जो मुहूर्त्त के भीतर होता है वह अन्तर्मुहूर्त्त कहलाता है। ध्यान के विषय में 'अन्तर्मुहूर्त्त काल तक' इस पद द्वारा काल की अवधि की गयी है। इतने काल के बाद एकाग्र चिन्ता दुर्धर होती है। यही ध्यान के विषय में अन्तर्मुहूर्त्त काल का तात्पर्य है।

प्र.1873 निश्चल ध्यान हेतु सटीक उदाहरण क्या है?

उत्तर जैसे सूर्य की प्रखर किरणें धूप में पड़े कागज को जलाने में समर्थ नहीं हो पातीं, क्योंकि वे सूर्य की किरणें सब ओर बिखरी रहती हैं, वैसे ही जग-विषयों की ओर भटकता हुआ ध्यान कर्म रूपी कागज को जलाने में समर्थ नहीं हो पाता और जब प्रखर सूर्य की बिखरी किरणों को किसी दूरबीन (लेंस) द्वारा एकत्रित (कन्वर्ट) करके एक ही बिन्दु (प्वाइंट) पर थोड़ी देर तक स्थिर करके डाला जाता है तब कागज जल उठता है। उसी तरह सुयोग्य योगी (मुनि) द्वारा सारे संसार के विषयों की तरफ से अपने मन को या ध्यान को हटाकर अपने आत्म तत्त्व के विषय में अन्तर्मुहूर्त्त तक केन्द्रित किया जाता है तब ध्यान रूपी किरणों के प्रभाव से कर्म रूपी कागज जल जाता है और आत्मा केवलज्ञान या मुक्तिलक्ष्मी को प्राप्त कर लेती है।

प्र.1874 ध्यान से आस्रव, बंध भी होता है क्या? कारण बतलाइये?

उत्तर हाँ, क्योंकि ध्यान शुभाशुभ रूप होते हैं, जिस कारण वे शुभाशुभ रूप ध्यान पुण्य-पाप रूप कर्म के आस्रव बंध में कारण होते हैं।

प्र.1875 अशुभ और शुभ रूप ध्यान कौन-से हैं?

उत्तर आगम में ध्यान के 'आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान रूप चार भेद बतलाये गये हैं। जिनमें आर्त्त और रौद्र ध्यान अशुभ ध्यान हैं तथा धर्म और शुक्लध्यान शुभ ध्यान हैं।

प्र.1876 ध्यानों के भेदों में कौन-से ध्यान मोक्ष एवं कौन-से ध्यान संसार के कारण हैं?

उत्तर आगम में 'परे मोक्ष हेतू' (त.सू.9/29) द्वारा अंत के दो ध्यान अर्थात् धर्म और शुक्ल ध्यान मोक्ष के कारण हैं ऐसा कहा गया है। जिससे यह अर्थ निकलता है कि प्रारम्भ के दो ध्यान; आर्त्त, रौद्र ध्यान संसार के कारण हैं।

प्र.1877 आगम में 'पूर्वे संसार हेतू' अर्थात् पूर्व के आर्त्त और रौद्र रूप दो ध्यान संसार के कारण हैं ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर पारिशेष न्याय से जो शेष रहे उनकी विधि अवशिष्ट अर्थात् शेष रहे स्थान के लिए स्वयमेव लागू हो जाया करती है अर्थात् अंत के दो शुभ ध्यानों के अलावा शेष रहे पूर्व के दो अशुभ ध्यान संसार के कारण हैं क्योंकि मोक्ष और संसार से अतिरिक्त अन्य कोई अवस्था शेष नहीं है जहाँ के लिए कारण वे

अशुभ ध्यान हो सकें। तथा संक्षेप रुचि शिष्यों का ध्यान रखते हुए और शास्त्र-भार से बचने हेतु आचार्यवर्य के लिए इतना ही कथन अर्थात् परेमोक्ष हेतु कहना पर्याप्त था।

प्र.1878 आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान इन चारों ध्यानों का यह क्रम रखा जाना किस विशेष उद्देश्य को बतलाता है?

उत्तर आर्त्तध्यान अल्प अशुभास्रव को कराने वाला होने से मुख्यतः तिर्यञ्चायु के आस्रव का कारण है जबकि रौद्रध्यान अधिक अशुभआस्रव का कारण होने से मुख्यतः नरकायु के आस्रव का कारण है। इसी तरह धर्मध्यान अल्प कर्म निर्जरा का कारण होने मुख्यतः स्वर्ग के देवों की आयु के आस्रव का कारण है जबकि शुक्लध्यान सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा का कारण होने से कर्मों से मुक्ति रूप निर्वाण (मोक्ष) का कारण है। इस तरह कम-ज्यादा, कम-ज्यादा कर्मों के आस्रव या मुक्ति (निर्जरा) का कारण होने से यह ध्यान के क्रम को रखे जाने का विशेष उद्देश्य जानना चाहिए।

प्र.1879 आर्त्तध्यान किसे कहते हैं और आर्त्तध्यान कितने प्रकार का है?

उत्तर दुःख रूप या मन-वचन और काय के कष्ट रूप ध्यान को आर्त्तध्यान कहते हैं। वह आर्त्तध्यान इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तवन और निदान रूप चार प्रकार का है।

प्र.1880 इष्ट-वियोग आर्त्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मनपसंद पदार्थों या व्यक्तियों के दूर हो जाने पर, चोरी हो जाने पर या उन पदार्थों के समाप्त आदि हो जाने के सम्बन्ध में उनके कहाँ, कब मिलने रूप संयोग के लिए त्रिकाल संबंधी खेद, चिंता या विकलता होना इष्ट-वियोग आर्त्तध्यान कहलाता है।

प्र.1881 अनिष्ट-संयोग आर्त्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर अपसंद पदार्थों या व्यक्तियों के मिलने पर उनके या उनसे दूर हो जाने के संबंध में जो चिंतवन उत्पन्न होता है, उसे अपने वास्तविक स्वभाव से दूर रखने वाला अनिष्ट-संयोग आर्त्तध्यान कहलाता है।

प्र.1882 पीड़ा चिन्तवन आर्त्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर संसारी जीवों के मन में रोगादिक से शारीरिक कष्टों के संबंध में तथा भूख-प्यास आदि की वेदना को शमन करने के संबंध में जो विचार चलते हैं, उसे पीड़ा चिन्तवन ध्यान कहते हैं।

प्र.1883 निदान नामक आर्त्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर आगामी-कालिक पंचेन्द्रिय के विषय-भोगों की मुझे प्राप्ति हो ऐसा विचार करना निदान नामक आर्त्तध्यान कहलाता है।

प्र.1884 आर्त्त-ध्यान कौन-कौन से गुणस्थानवर्ती जीवों के यथा संभव पाये जाते हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत ऐसे पाँच गुणस्थानों तक वाले जीवों के सभी चारों आर्त्तध्यान यथासंभव होते रहते हैं लेकिन प्रमत्त-संयत नामक मुनियों के छठे गुणस्थान में निदान को छोड़कर इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग और पीड़ा चिंतन ये तीन

आर्त्तध्यान होना संभव हैं।

प्र.1885 रौद्र-ध्यान का लक्षण क्या है और उसके कितने भेद होते हैं?

उत्तर रौद्र अर्थात् क्रूर-आशय रूप जो ध्यान होता है उसे रौद्र-ध्यान कहते हैं। जिसके हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द और परिग्रहानन्द रूप चार भेद होते हैं।

प्र.1886 हिंसानन्द नामक रौद्र ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ त्रस और स्थावर जीवों का घात होता है ऐसे कार्यों में हर्षित होना या अच्छा मानना हिंसानंद नामक रौद्रध्यान कहलाता है।

प्र.1887 मृषानन्द नामक रौद्र ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर जो असत्य वचन पापरूप या हिंसा के कारण होते हैं। उन्हें बोलना, बुलवाना आदि मृषानंद-ध्यान कहलाता है।

प्र.1888 चौर्यानन्द नामक रौद्र ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर दूसरों के धनादिक-हरण करने रूप मन छल व कपट वाला हो जाना चौर्यानन्द-ध्यान कहलाता है।

प्र.1889 परिग्रहानन्द नामक रौद्र ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर जो आत्मा सांसारिक-भोगों की इच्छाओं का जाल फैलाकर परिग्रह का भार बढ़ाकर उसमें हर्ष मनाता है, उस मोही के ध्यान को परिग्रहानन्द रौद्र-ध्यान कहते हैं।

प्र.1890 रौद्र ध्यान कौन-कौन-से गुणस्थानों तक पाये जाते हैं?

उत्तर प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थान तक सभी रौद्र ध्यान यथा संभव होते हैं।

प्र.1891 सम्यग्दृष्टि या अणुव्रतियों के जीवन में धर्मध्यान के काल से अन्य काल में यथा सम्भव होने वाले आर्त्त और रौद्र ध्यान क्या दुर्गतिकारक तीव्र या भयानक अन्याय कारक हो सकते हैं?

उत्तर नहीं! ऐसा कदापि नहीं होता अन्यथा गुणस्थान ही गिर जावेगा। लेकिन सम्यग्दर्शन और अणुव्रतों के साथ प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य रूप चार गुणों की सम्पन्नता तथा स्थूल रूप से पाँच पापों अथवा अन्याय, अनीति का त्याग होने से वे रौद्र-ध्यान तीव्र रूप में नहीं होते बल्कि अन्याय, अनीति को पराजित करने हेतु किये जाते हैं (जैसे- राम ने रावण की अन्याय, अनीति का खंडन करने हेतु युद्ध किया था)।

प्र.1892 धर्म ध्यान किसे कहते हैं? तथा धर्मध्यान के कितने प्रकार हैं?

उत्तर आर्त्त और रौद्र ध्यानों से रहित समीचीन कर्त्तव्य रूप अवस्था धर्म ध्यान कहलाती है। आज्ञाविचय, अपाय विचय, विपाक विचय और संस्थान विचय रूप से धर्म ध्यान चार प्रकार के हैं।

प्र.1893 आज्ञा विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर वीतराग (तीर्थंकर या अरिहंत भगवान) की वाणी से प्राप्त छह द्रव्य, सप्त तत्त्व और सम्यग्दर्शन,

सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयमय मोक्षमार्ग जो उपादेय है उसे हम आदेश मानकर श्रद्धा से आत्म-कल्याण हेतु स्वीकार करें, यही चिंतवन की विचारधारा आज्ञाविचय धर्मध्यान कहलाती है।

प्र.1894 अपाय विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर रोग, भूख, प्यास, ठण्डी, गर्मी आदिक रूप शारीरिक दुःख, कटु व तिरस्कार आदि वचन रूप वाचनिक दुःख और चिंता एवं भोगाकांक्षादि रूप मानसिक दुःख से परिपूर्ण इस संसार को तथा ऐसे दुःखदायी संसार के कारण स्वरूप एकान्त, विपरीत, वैनयिक, संशय और अज्ञान रूप पंच-मिथ्यात्वों को तथा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पंच-पापों से यह संसारी आत्मा कब मुक्त होगी, ऐसा चिंतवन करना अपाय विचय धर्मध्यान कहलाता है।

प्र.1895 विपाक विचय धर्मध्यान क्या कहलाता है?

उत्तर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन अष्ट-कर्मों का क्रमशः ज्ञान में बाधक बनना, दर्शन न होने देना, संसार से मोहित (आकृष्ट) करना, सुख-दुःख का अनुभव कराना, एक गति में रोके रहना, सुंदर-असुन्दर शरीर प्राप्त कराना, उच्च-नीच कुल में पैदा कराना और दान, लाभ, भोग, उपभोग में तथा शक्ति में बाधा उत्पन्न कराने रूप फल इस चतुर्गति रूप संसार में यह अज्ञानी आत्मा भोगता हुआ चौरासी लाख योनि रूप चतुर्गति-संसार में अनंतकाल तक परिभ्रमण करता रहता है इत्यादि रूप-चिंतवन करना विपाक विचय धर्म-ध्यान कहलाता है।

प्र.1896 संस्थान विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं? उसके कितने भेद हैं?

उत्तर तीनों लोकों की रचना का संपूर्ण-गणित या राजू एवं योजन आदि के रूप में लोक के प्रमाण तथा द्रव्यों के स्वरूप और आत्मा के शुद्धोपयोग की प्राप्ति में निमित्त पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ध्यानों का मुनियों के द्वारा चिंतवन किया जाना संस्थान विचय धर्मध्यान कहलाता है। पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीत रूप से संस्थान विचय धर्मध्यान के चार भेद हैं।

प्र.1897 पदस्थ ध्यान क्या कहलाता है?

उत्तर वीतराग शुभ रूप णमोकार मंत्र आदि वाक्यों या पदों का ध्यान पदस्थ-ध्यान कहलाता है।

प्र.1898 पिण्डस्थ ध्यान किसे कहते हैं इसमें क्या चिंतवन करना चाहिए?

उत्तर अपनी आत्मा में लीन होकर अपने ही गुणों का ध्यान करना पिण्डस्थ ध्यान कहलाता है। इसमें दर्शन, सुख, चारित्रमयी अपनी-आत्मा; उत्तम क्षमा आदिक दश धर्मों से परिपूर्ण है तथा अनंत शक्तियों का खजाना है और अनन्त गुणों का धाम है, ऐसा चिंतवन किया जाता है।

प्र.1899 सम्यक् ध्यान के लिये (पिण्डस्थ ध्यान के अंतर्गत) सुयोग्य पंच धारणाएँ कौन-सी हैं?

उत्तर सम्यक् ध्यान को सुयोग्य बनाने वाली (पिण्डस्थ ध्यान के अंतर्गत) पृथ्वी धारणा, अग्नि धारणा, वायु धारणा, जल धारणा और तत्त्व धारणा रूप ये पाँच धारणायें हैं।

प्र.1900 पंच धारणाओं में प्रथम पृथ्वीधारणा क्या है?

उत्तर मध्यलोक में अत्यन्त शान्त स्वरूप क्षीरसागर समान एक लाख योजन वाले जम्बूद्वीप सदृश एक हजार पँखुड़ी वाला कमल स्थित है; जिसके बीचों बीच निन्यानवे हजार चालीस योजन ऊँची कर्णिका के मध्य में शुभ रूप धवल आसन पर अपनी आत्मा निग्रन्थ रूप में विराजमान है ऐसा चिंतवन करना पृथ्वीधारणा कहलाती है।

प्र.1901 अग्निधारणा का स्वरूप क्या है?

उत्तर अपनी नाभि से ऊर्ध्वमुखी स्वर्णमयी एक कमल उत्पन्न हुआ है; जिसकी सोलह पाँखुड़ियों पर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसे सोलह स्वर विराजित हैं और कर्णिका के ऊपर बीचों बीच 'र्हं' अक्षर स्थित है और अपने हृदय के मध्य में अधोमुखी एक कमल शोभित है; जिसकी आठ पाँखुड़ियों पर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ऐसे ये अष्टकर्म क्रमशः चिपके हुये हैं तथा बीचों-बीच कर्णिका पर स्थित 'र्हं' अक्षर अपने अंदर स्थित 'र्' अक्षर से और नाभि-कमल के मध्यवर्ती 'र्हं' के अंदर स्थित 'र्' अक्षर का संयोग एवं उन दोनों 'र्' का पारस्परिक घर्षण शुक्ल-ध्यानाग्नि को प्रकट कर देता है और हम जैसे-जैसे एक-आत्मतत्त्व के स्वरूप के विषय की गहराई के चिंतन में डूबते चले जाते हैं, वैसे-वैसे हमारा ध्यान उत्तम से उत्तमता की ओर बढ़ता चला जाता है और ध्यान अग्नि कर्मों को शीघ्र ही अन्तमुहूर्त्त मात्र में जलाकर नष्ट कर देती है। इस तरह विचार करना 'अग्निधारणा' कहलाती है।

प्र.1902 वायुधारणा और जलधारणा क्या है?

उत्तर ध्यानाग्नि से नष्ट (भष्म) हुये अष्ट कर्मों की राख को तीव्र तूफानी गतिमान वायु उड़ाकर दूर कर देती है और मूसलाधार वर्षात् के द्वारा मेघों का जल राख के बने दाग को धोकर साफ कर डालता है; ऐसा शुभ चिन्तवन करना क्रमशः 'वायुधारणा' और 'जलधारणा' है।

प्र.1903 तत्त्वधारणा का स्वरूप क्या है?

उत्तर यह शुद्धात्मा शरीर, वस्त्र, अलंकार आदिक से भिन्न दर्शन तथा ज्ञान सहित परमतत्त्व स्वरूप है; ऐसा चिन्तवन करना 'तत्त्वधारणा' कहलाती है।

प्र.1904 रूपस्थ ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर अनन्त ज्ञानादिक का खजाने रूप आत्मा चैतन्य-गुणों के उदय और कर्म रूपी मेघ-पटलों के हटने पर, कैवल्य-अवस्था का स्वामी बन जगत् में भासित-शोभित होता है; ऐसा विचार करना 'रूपस्थ ध्यान' है।

प्र.1905 रूपातीत ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर निश्चय नय से कर्म कलंक से रहित त्रिकाल में अपनी आत्मा शुद्ध-निरंजन अकेली होती है; जो कि आनंदमयी गुणों की खान है, अमूर्त शाश्वत-परमात्मा सिद्धों के समान है; ऐसा चिंतवन करना 'रूपातीत ध्यान' कहलाता है।

प्र.1906 धर्मध्यान के स्वामी कौन हैं? एवं संस्थान विचय धर्मध्यान संबंधी विशेष कथन क्या है?

उत्तर असंयत-सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ-गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त संयत नामक सातवें-गुणस्थान तक धर्मध्यान की योग्यता मानी गयी है। लेकिन संस्थान विचय धर्मध्यान हेतु विशेष कथन यह है कि यह धर्मध्यान मात्र निर्ग्रंथ दिगम्बर-आत्मध्यानी मुनियों के ही होता है।

प्र.1907 शुक्लध्यान किसे कहते हैं? इसके कितने प्रकार हैं?

उत्तर रागादि विकल्प नष्ट हो जाने पर आत्मा में जो निर्विकल्प-ध्यान की प्राप्ति होती है, उसे शुक्ल-ध्यान कहते हैं। इसके चार प्रकार हैं- पृथक्त्व वितर्कवीचार, एकत्ववितर्क अवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति एवं व्युपरतक्रिया निवर्ति।

प्र.1908 पृथक्त्व वितर्क वीचार ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर पृथक्त्व अर्थात् भेद रूप द्रव्य, वितर्क अर्थात् श्रुत(ज्ञान) के साथ रहना और वीचार अर्थात् अर्थ (पदार्थ) व्यंजन (पर्याय) एवं योग (मन-वचन-काय) इनका परिवर्तन ऐसा इस प्रथम शुक्लध्यान का शाब्दिक अर्थ होता है। जब मुनिवर जीवाजीवादिक अनेक भेदों सहित द्रव्यों को मन, वचन और काय इन तीनों के द्वारा ध्याते हैं तब पृथक्त्व होता है। मुनिवर का श्रुत-ज्ञान (अंग सहित नवम पूर्व आदिक ज्ञान) जब-तक चिंतवन-मंथन वाला है तब-तक वितर्क कहलाता है। इसी तरह एक अर्थ (पदार्थ) को छोड़कर भिन्न अर्थ का ध्यान करना और एक व्यंजन (पर्याय) या द्रव्य की अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था का ध्यान करना तथाहि मन से चिन्तवन करके वचन से चिन्तवन करना; पुनः काययोग से चिन्तवन करना; इस तरह का परिवर्तन (संक्रमण) यह वीचार कहलाता है। इन अर्थ, व्यंजन और योगों के परिवर्तन से यह ध्यान तीन प्रकार रूप होता है। ऐसे ज्ञान (श्रुत) के विषय में चिंतवन-मंथन करते-करते योगी एक स्वात्मा को ध्येय बनाकर मन की एकाग्रता से पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्ल-ध्यान को ध्याते हैं।

प्र.1909 एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर मन, वचन और काय में से किसी एक योग के द्वारा मुनिवर जब षड् द्रव्यों में से किसी एक-द्रव्य का, नव-पदार्थों में से एक पदार्थ का और व्यंजन का अर्थ-पर्याय जिस में से किसी एक-पर्याय का श्रुतज्ञान के चिंतन-मंथन के साथ जो वितर्क व वीचार के संक्रमण से रहित ध्यान करते हैं उसे एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान कहा जाता है।

प्र.1910 इस एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान का फल क्या है?

उत्तर इस एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान में अर्थ, व्यंजन और योगों का परिवर्तन नहीं होता अर्थात् बड़ी स्थिरता रहती है। इस ध्यान की यह विशेषता है कि इस ध्यान के अन्तर्मुहूर्त्त काल में मुनिवर अपनी आत्मा में अनादिकाल से बंधे कर्म जो कि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय इन चार घातिया कर्मों का क्षय (नाश) करके केवलज्ञान की प्राप्ति करके अरिहंत भगवान के पद को प्राप्त कर

लेते हैं।

प्र.1911 सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान का स्वरूप क्या है?

उत्तर केवली-भगवान के जीवन के अंत में होने वाला परमात्मा की उत्कृष्ट-समता देने वाला ध्यान जिसमें श्वासोच्छवास की क्रिया को छोड़कर काययोग की क्रिया भी सूक्ष्म हो जाती है वह सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाति (अप्रतिपाति अर्थात् निचली अवस्था में लौटकर नहीं आने देने वाला) ध्यान कहलाता है।
विशेष- यह अवितर्क और अवीचार है अर्थात् श्रुत के अवलम्बन से रहित है अतः अवितर्क है और इसमें अर्थ, व्यंजन तथा योगों का संक्रमण नहीं है अतः अवीचार है।

प्र.1912 व्युपरत क्रिया निवर्ति शुक्ल ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर संपूर्ण योगों या काययोग की श्वासोच्छवास सम्बन्धी क्रिया का भी निरोध हो जाने से जो अयोग-केवली-परमात्मा का ध्यान है वह व्युपरतक्रियानिवर्ति या अनिवृत्ति-निरुद्ध योग अथवा समुच्छिन्न क्रिया नामक शुक्लध्यान कहलाता है।

प्र.1913 व्युपरतक्रिया निवर्ति शुक्ल ध्यान की विशेषता एवं विशिष्ट फल को दर्शाइये?

उत्तर व्युपरत क्रिया निवर्ति शुक्लध्यान सभी ध्यानों में अन्तिम और उत्कृष्ट होने से अनुत्तर है, परिपूर्णतया स्वच्छ-उज्ज्वल होने से शुक्ल है, यह मणि के दीप की शिखा के समान होने से पूर्णतया अविचल है। तथाहि तृतीयशुक्ल ध्यान की भाँति अवितर्क, अवीचार भी है। ऐसे उत्कृष्ट-ध्यान के द्वारा संपूर्ण कर्मों का क्षय कर आत्मा क्षणमात्र में मोक्ष-सुख को प्राप्त कर लेती है।

प्र.1914 चौदहवें गुणस्थान का काल कितना है?

उत्तर गणधर-परमेष्ठी के लिए 'अ', 'इ', 'उ', 'ऋ', लृ' इन पंच ह्रस्व-स्वरों के उच्चारण में जितना अल्पकाल (जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त जैसा) लगता है, उतना ही इस चौदहवें-गुणस्थान का काल होता है। जिसमें अयोग केवली भगवान मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

प्र.1915 कौन से गुणस्थान में कौन-सा शुक्ल ध्यान होता है?

उत्तर अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान में पृथक्त्ववितर्क-वीचार नामक प्रथम शुक्ल-ध्यान प्राप्त होता है। क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान में एकत्ववितर्क-अवीचार नामक दूसरा शुक्लध्यान प्राप्त होता है। सयोग-केवली नामक तेरहवें-गुणस्थान के अंत में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामक तृतीय शुक्ल-ध्यान कहा जाता है और अयोग केवली नामक चौदहवें-गुणस्थान में व्युपरतक्रियानिवर्ति नामक चतुर्थ शुक्ल-ध्यान कहा जाता है; इस अन्तिम शुक्लध्यान के उपरान्त आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

प्र.1916 शुक्ल ध्यानों से अष्ट कर्मों के नष्ट होने के उपरान्त सिद्धात्मा की क्या अवस्था होती है?

उत्तर अष्ट-कर्म नष्ट होते ही आत्मा केवलज्ञानी, शुद्ध, बुद्ध परमवीतरागी सिद्ध-परमात्मा बन जग में शोभा पाता है और उनकी आत्मा में अनंतज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तशक्ति आदि अनंत शुभ गुण प्रकट हो जाते हैं तथा वे सिद्ध परमेष्ठी सदा के लिए कृतकृत्य हो जाते हैं।

प्र.1917 सिद्ध अवस्था प्राप्त होने के उपरान्त आत्मा पुनः संसार में अवतार (जन्म) ले सकती है क्या?

उत्तर नहीं; जैसे दुग्ध से प्रकट हुआ घृत जैसे पुनः दुग्ध रूप अवस्था में लौटकर नहीं जाता हुआ अपनी सुगन्ध को चहुँ ओर फैलाता है वैसे ही संसार-समुद्र से पार हुए सिद्ध-परमात्मा अनंतकाल में कभी मोक्षपद या सिद्ध-लोक से लौटकर संसार में पुनर्जन्म नहीं धारण करते, बल्कि सदा वे लोक-शिखर पर ही सुशोभित होते हैं।

प्र.1918 सिद्ध परमात्मा सर्वज्ञ और आत्मज्ञ किस नय से कहलाते हैं?

उत्तर व्यवहार दृष्टि से विश्व के सभी पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञ तथा निश्चय-दृष्टि से दर्पणवत् जिनकी आत्मा में विश्व के सभी पदार्थ युगपत् झलकने लग जाते हैं अतः आत्मज्ञ कहलाते हैं, और वे आत्मज्ञ-सिद्ध-परमात्मा अपने अनन्त गुणों के आनंद में लीन रहते हैं।

प्र.1919 निर्वाण को प्राप्त हुये सिद्ध जीव किन अनुयोगों द्वारा साध्य या विभाग करने योग्य हैं?

उत्तर निर्वाण को प्राप्त हुये सिद्ध जीव क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधितबुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इन तेरह अनुयोगों द्वारा साध्य या विभाग करने योग्य हैं। (विशेष- यह विभाग वर्तमान और भूत का अनुग्रह करने वाले दो नयों की विवक्षा से है)

प्र.1920 क्षेत्र अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर क्षेत्र अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव की; वर्तमान को ग्रहण करने वाले नय की अपेक्षा सिद्धि क्षेत्र में, अपने प्रदेश में या आकाश प्रदेश में सिद्धि होती है। अतीत को ग्रहण करने वाले नय की अपेक्षा जन्म की अपेक्षा पन्द्रह कर्म भूमियों में और अपहरण की अपेक्षा मानुष क्षेत्र में सिद्धि होती है।

प्र.1921 काल अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर वर्तमान ग्राही नय की अपेक्षा एक समय में सिद्ध होता हुआ अतीत ग्राही नय की अपेक्षा, जन्म की अपेक्षा सामान्य रूप से उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में उत्पन्न हुआ सिद्ध होता है। और विशेष रूप से अवसर्पिणी काल में सुषमा-दुषमा के अंत भाग में और दुषमा-सुषमा में उत्पन्न हुआ सिद्ध होता है। दुषमा में उत्पन्न हुआ दुषमा में सिद्ध नहीं होता है। इस काल को छोड़कर अन्य काल में सिद्ध नहीं होता है। संहरण की अपेक्षा उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के सब समयों में सिद्ध होता है। (स.सि., पृ. 446)

प्र.1922 गति अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर सिद्धगति में या मनुष्यगति में सिद्धि होती है।

प्र.1923 लिंग अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर अवेद भाव से या तीनों वेदों से सिद्धि होती है। यह कथन भाव की अपेक्षा है द्रव्य की अपेक्षा नहीं। द्रव्य की अपेक्षा पुंलिंग से ही सिद्धि होती है अथवा निर्ग्रंथ लिंग से सिद्धि होती है। भूतपूर्व नय की अपेक्षा सग्रन्थ लिंग से सिद्धि होती है।

प्र.1924 तीर्थ अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर तीर्थ सिद्धि दो प्रकार की है- तीर्थंकर सिद्ध और इतर सिद्ध। इतर दो प्रकार के हैं, कितने ही जीव तीर्थंकर के रहते हुये सिद्ध होते हैं और कितने ही जीव तीर्थंकर के अभाव में सिद्ध होते हैं।

प्र.1925 चारित्र अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य है?

उत्तर नाम रहित चारित्र से सिद्धि होती है या एक, चार और पाँच प्रकार के चारित्र से सिद्धि होती है।

प्र.1926 प्रत्येक बुद्ध अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर अपनी शक्तिरूप निमित्त से होने वाले ज्ञान के भेद से अथवा स्वयं ज्ञान की अपेक्षा प्रत्येक बुद्ध होते हैं और इन जीवों की सिद्धि प्रत्येक बुद्ध सिद्धि है।

प्र.1927 बोधित बुद्ध अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर परोपदेश रूप निमित्त से होने वाले ज्ञान के भेद से बोधित बुद्ध होते हैं। ऐसे जीवों की सिद्धि बोधित बुद्ध सिद्धि है।

प्र.1928 ज्ञान अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर एक, दो, तीन और चार प्रकार के ज्ञान विशेषों से सिद्धि होती है।

प्र.1929 अवगाहना अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर आत्मप्रदेशों में व्याप्त करके रहना इसका नाम अवगाहना है। वह दो प्रकार की है- जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्ट अवगाहना पाँच सौ पच्चीस धनुष है और जघन्य अवगाहना कुछ कम साढ़े तीन अरत्नि है। बीच के भेद अनेक हैं। किसी एक अवगाहना में सिद्धि होती है।

प्र.1930 अन्तर अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर सिद्धि को प्राप्त होने वाले सिद्धों का जघन्य अन्तर का अभाव दो समय है और प्रकृष्ट अन्तर का अभाव आठ समय। जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अंतर छह माह है।

प्र.1931 संख्या अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर जघन्य रूप से एक समय में एक जीव सिद्ध होता है और उत्कृष्ट रूप से एक समय में एक सौ आठ जीव सिद्ध होते हैं।

प्र.1932 अल्पबहुत्व अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य हैं?

उत्तर क्षेत्रादि की अपेक्षा भेदों को प्राप्त जीवों की परस्पर संख्या का विशेष प्राप्त करना अल्पबहुत्व है। जैसे- वर्तमान नय की अपेक्षा सिद्ध क्षेत्र में सिद्ध होने वाले जीवों का अल्पबहुत्व नहीं है। भूतपूर्व नय की अपेक्षा विचार करते हैं- क्षेत्रसिद्ध जीव दो प्रकार के हैं- जन्मसिद्ध और संहरण सिद्ध। इनमें से संहरण सिद्ध जीव सबसे अल्प हैं, इनसे जन्मसिद्ध जीव संख्यातगुणे हैं। क्षेत्रों का विभाग सात तरह का है जैसे-कर्मभूमि, अकर्मभूमि, समुद्र, द्वीप, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक। इनमें से ऊर्ध्वलोक सिद्ध सबसे कम हैं, इनसे अधोलोक सिद्ध संख्यातगुणे हैं, इनसे तिर्यग्लोक सिद्ध संख्यात गुणे हैं। समुद्र सिद्ध सबसे कम हैं, इनसे द्वीप सिद्ध संख्यातगुणे हैं। यह सामान्य रूप से कहा है। विशेष रूप से

विचार करने पर लवण समुद्र सिद्ध सबसे कम हैं, इनसे कालोदधि सिद्ध संख्यातगुणे हैं, इनसे जम्बूद्वीप सिद्ध संख्यातगुणे हैं, इनसे धातकी खण्ड सिद्ध संख्यातगुणे हैं और इनसे पुष्करार्द्ध द्वीप सिद्ध संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार कालादि का विभाग करने पर भी आगम के अनुसार अल्प बहुत्व जानने योग्य है। [यहाँ जो अकर्म भूमि (भोगभूमि) सिद्ध, समुद्र सिद्ध, अधोलोक सिद्ध और ऊर्ध्वलोक सिद्ध बतलाये हैं वे संहरण और विक्रिया ऋद्धि से सम्भव मानना चाहिए।]

प्र.1933 संहरण से सिद्ध होने का तात्पर्य क्या है?

उत्तर संहरण का अर्थ एक स्थल से दूसरे स्थल पर ले जाना, रख देना है। जैसे कि किसी क्षेत्र पर ध्यानस्थ मुनिराज को कोई देव या विद्याधर आदि उठाकर अन्य क्षेत्र रूप अकर्म भूमि या समुद्र आदि में रख दे या फेंक दे तो भी ध्यान लीन मुनिराज अपने कर्मों का क्षय कर वहाँ से सिद्धि को प्राप्त कर सकते हैं। इसी का नाम संहरण सिद्ध या अपहरण सिद्ध भी है।

प्र.1934 विक्रिया ऋद्धि से सिद्ध किस तरह से घटित होते हैं?

उत्तर विक्रिया ऋद्धि से मुनिराज द्वारा अपना शरीर छोटा, बड़ा रूप बनाया जा सकता है। जैसे किसी मुनिराज द्वारा जब अपने शरीर का लघु रूप बनाकर मेरु पर्वत की जड़ तक नीचे तक गमन कर, मेरु की जड़ से सटकर अधोलोक में उस लघु रूप शरीर से ध्यान कर अपने सर्व कर्मों का क्षय कर दिया जाता है, तब वे अधोलोक सिद्ध कहलाते हैं और कोई मुनिराज विक्रिया ऋद्धि से लघु रूप बनाकर मेरु पर्वत की चूलिका और स्वर्ग विमान के बीच जो एक बाल का अन्तर है ऐसे ऊर्ध्व लोक में विराजित होकर अपने शुक्ल ध्यान द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर सिद्धावस्था को प्राप्त कर लेते हैं वे ऊर्ध्व लोक सिद्ध कहलाते हैं। इस तरह विक्रिया ऋद्धि से लघु रूप बनाकर सिद्ध होना घटित हो जाता है।

प्र.1935 सिद्ध परमेष्ठी के ध्यान घटित क्यों नहीं होता है?

उत्तर कर्म रूपी ईंधन जिनके भष्म हो चुका है उन्हें ध्यान रूपी अग्नि की आवश्यकता ही नहीं है अतः सिद्ध परमेष्ठी के ध्यान घटित नहीं होता है।



चित्त की स्थिरता; आत्मा और परमात्मा के चिंतन से आती है।

The stability and stillness of the mind come only from contemplating the nature of the Soul and the Supreme Soul.

•••

अधिक बोलने वालों की शक्ति व्यर्थ हो जाती है।

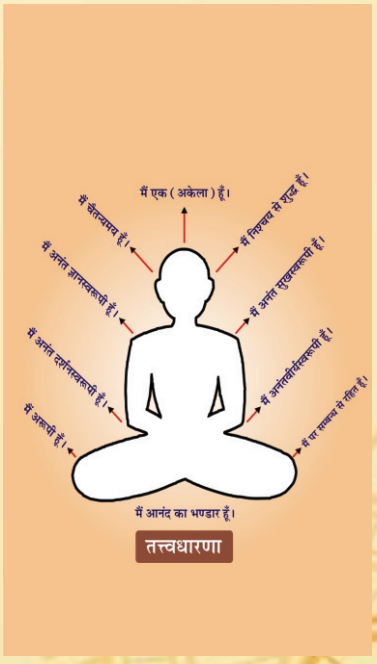
The vital energy and spiritual strength of those who speak too much is wasted and lost in vain.


पृथ्वीधारणा


ज्ञानावरण
दर्शनावरण
मोहनीय
अंतराय
वेदनीय
आयु
नाम
गोत्र
ह्रूं ह्रूं
अग्निधारणा


स्वायें स्वायें
वायुधारणा


जलधारणा


मैं एक (अकेला) हूँ।
मैं चैतन्यमय हूँ।
मैं निश्चय से शुद्ध हूँ।
मैं अनंत ज्ञानस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत सुखस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत दर्शनस्वरूपी हूँ।
मैं आनंदस्वरूपी हूँ।
मैं अरूपी हूँ।
मैं पर स्वभाव से रहित हूँ।
मैं आनंद का भण्डार हूँ।
तत्त्वधारणा

अध्याय-19

आगम में नय, प्रमाण, नयों के प्रकार, द्रव्य,-गुण-पर्याय

(द्रव्यादिक के भेद, उपनय और उनके भेद, अध्यात्म पद्धति में नय व उनके भेद और तीन तरह के संबन्धादि)

प्र.1936 आगम में नय किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाण के द्वारा ग्रहण की गई वस्तु के एक धर्म अर्थात् अंश को ग्रहण कराने वाले ज्ञान को आगम में नय कहते हैं।

प्र.1937 प्रमाण किसे कहते हैं? और उसके भेद कौन-से हैं?

उत्तर सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से दो भेद हैं।

प्र.1938 प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर इन्द्रियातीत ज्ञान को प्रत्यक्ष एवं इन्द्रियज ज्ञान को परोक्ष प्रमाण कहते हैं।

प्र.1939 प्रत्यक्ष प्रमाण के कितने भेद हैं?

उत्तर प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद हैं-

1. सकल प्रत्यक्ष प्रमाण और 2.विकल प्रत्यक्ष प्रमाण।

प्र.1940 सकल प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर केवलज्ञान को सकल प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। (केवलज्ञान के लक्षण को देखें- आ.अनु.भाग -1, पृ.162 प्र.1183, 1185)

प्र.1941 विकल प्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान को विकल प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। (अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का लक्षण देखिये आ.अनु. भाग-1 पृ. 162 प्र.1185)

प्र.1942 परोक्ष प्रमाण के कितने भेद हैं? और उनका लक्षण क्या है?

उत्तर परोक्ष प्रमाण के दो भेद हैं- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान।

इन्द्रियों और मन की सहायता से जानने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं और मतिज्ञान से जाने हुये पदार्थों को विशेष रूप से जानने वाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।

प्र.1943 जैनागम में आगम पद्धति से नयों के कितने भेद हैं?

उत्तर जैनागम में आगम पद्धति से नयों के मूलभूत दो भेद हैं- द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय।

द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद हैं- नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय। पर्यायार्थिक नय के चार भेद हैं- ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढ़नय और एवंभूतनय। इस प्रकार सात नय हैं।

प्र.1944 द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य ही जिस नय का प्रयोजन होता है अर्थात् जो नय द्रव्य को ही ग्रहण करना है उसे द्रव्यार्थिक नय

कहते हैं।

प्र.1945 आगम में द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर जो गुण और पर्यायों से युक्त होता है उसे आगम में द्रव्य कहते हैं।

प्र.1946 आगम में गुण किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य के साथ जो हमेशा रहते हैं; कभी भी द्रव्य से पृथक् नहीं किये जाते उन्हें आगम में गुण कहते हैं।

प्र.1947 गुणों के कितने भेद हैं?

उत्तर गुणों के दो भेद हैं- सामान्य गुण और विशेष गुण।

प्र.1948 सामान्य गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जो गुण द्रव्यों में समान रूप से पाये जाते हैं उन्हें सामान्य गुण कहते हैं।

प्र.1949 सामान्य गुण कितने होते हैं?

उत्तर सामान्य गुण दस होते हैं- अस्तित्त्व, वस्तुत्त्व, द्रव्यत्त्व, प्रमेयत्त्व, अगुरुलघुत्त्व, प्रदेशत्त्व, चेतनत्त्व, अचेतनत्व, मूर्त्तत्त्व और अमूर्त्तत्त्व।

प्र.1950 अस्तित्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर 'अस्ति' अर्थात् 'है' और ऐसे भाव को अस्तित्त्व कहते हैं। जिस द्रव्य को जो स्वभाव प्राप्त है, उस स्वभाव का कभी अभाव नहीं होता और द्रव्य किसी से उत्पन्न भी नहीं होता ऐसी उस शक्ति को अस्तित्त्व गुण कहते हैं। जैसे- जीव का ज्ञान, दर्शन स्वभाव है।

प्र.1951 वस्तुत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर वस्तु का अपना जो भाव है वह वस्तुत्त्व गुण कहलाता है। अथवा जिस शक्ति के निमित्त से वस्तु में कोई न कोई अर्थ क्रिया होती है, उसे वस्तुत्त्व गुण कहते हैं। जैसे- घड़े की अर्थक्रिया जलधारण करना है।

प्र.1952 द्रव्यत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य अपने स्वभाव व विभाव रूप पर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा और हो चुका है वह द्रव्यत्त्व गुण कहलाता है। अथवा जिस शक्ति के कारण द्रव्यता कायम रहकर पर्याय निरंतर बदलती रहती है उसे द्रव्यत्त्व गुण कहते हैं।

प्र.1953 प्रमेयत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी प्रमाण (ज्ञान) का विषय होता है उसे प्रमेयत्त्व गुण कहते हैं। अथवा प्रत्येक द्रव्य में ऐसी शक्ति है जिसके कारण वह किसी न किसी ज्ञान में झलकता है।

प्र.1954 अगुरुलघुत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर अगुरुलघु के भाव को अगुरुलघुत्त्व गुण कहते हैं। इस गुण के कारण एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप, एक गुण दूसरे गुणरूप ना ही परिणमन करता और ना ही एक द्रव्य के गुण बिखर कर पृथक्-पृथक् होते हैं।

प्र.1955 प्रदेशत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य अपने कोई न कोई क्षेत्र को प्राप्त होता है उसे प्रदेशत्त्व गुण कहते हैं। अविभागी (विभाग रहित) पुद्गल, परमाणु के द्वारा व्याप्त क्षेत्र को प्रदेश कहते हैं।

प्र.1956 चेतनत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में स्व और पर पदार्थ का अनुभव (ज्ञान) होता है वह चेतनत्त्व गुण अचेतनत्व कहलाता है।

प्र.1957 अचेतनत्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में स्व-पर पदार्थ का ज्ञान नहीं होता उसे अचेतनत्व गुण कहते हैं।

प्र.1958 मूर्त्तत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाया जाता है, उसे मूर्त्तत्त्व गुण कहते हैं।

प्र.1959 अमूर्त्तत्त्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर मूर्त्तत्त्व गुण के अभाव को अमूर्त्तत्त्व गुण कहते हैं।

प्र.1960 प्रत्येक द्रव्य में सामान्य गुण कितने-कितने होते हैं?

उत्तर प्रत्येक द्रव्य में सामान्य गुण आठ-आठ होते हैं जीव द्रव्य में अचेतनत्त्व और मूर्त्तत्त्व के बिना, पुद्गल द्रव्य में चेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व के बिना और धर्म आदि चार द्रव्यों के चेतनत्त्व और मूर्त्तत्त्व के बिना आठ-आठ सामान्य गुण होते हैं।

प्र.1961 विशेष गुण किसे कहते हैं?

उत्तर जो गुण सभी द्रव्यों में न पाये जाकर किसी विशेष द्रव्य में पाये जाते हैं वे विशेष गुण कहलाते हैं।

प्र.1962 विशेषगुण कितने होते हैं?

उत्तर विशेषगुण 16 होते हैं- ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, गतिहेतुत्त्व, स्थितिहेतुत्त्व, अवगाहनहेतुत्त्व, वर्तनाहेतुत्त्व, चेतनत्त्व, अचेतनत्त्व, मूर्त्तत्त्व और अमूर्त्तत्त्व।

प्र.1963 प्रत्येक द्रव्य में विशेषगुण कितने-कितने होते हैं?

उत्तर जीव द्रव्य में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व ये छह गुण पाये जाते हैं। पुद्गल द्रव्य में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अचेतनत्त्व और मूर्त्तत्त्व ये छह गुण पाये जाते हैं। धर्म द्रव्य में गति हेतुत्त्व, अचेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व ये तीन गुण पाये जाते हैं। अधर्म द्रव्य में स्थितिहेतुत्त्व, अचेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व ये तीन गुण पाये जाते हैं। आकाश द्रव्य में अवगाहनहेतुत्त्व, अचेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व ये तीन गुण पाये जाते हैं। काल द्रव्य में वर्तनाहेतुत्त्व, अचेतनत्त्व और अमूर्त्तत्त्व ये तीन विशेष गुण पाये जाते हैं।

प्र.1964 चेतनत्त्व, अचेतनत्त्व, मूर्त्तत्त्व एवं अमूर्त्तत्त्व इन चार गुणों को सामान्य एवं विशेष गुणों में क्यों लिया है?

उत्तर स्वजाति की अपेक्षा से ये सामान्य गुणों में लिये गये हैं किन्तु विजाति की अपेक्षा से ये ही चार गुण विशेष गुणों में लिये जाते हैं। जैसे- चेतनत्त्व सभी जीवों में पाया जाता है इसलिए सामान्य गुण

कहलाता है किन्तु यही चेतनत्त्व पुद्गल आदि पाँच द्रव्यों में नहीं पाया जाता है इसलिए विशेष गुण कहलाता है।

प्र.1965 जैनागम में पर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर द्रव्य और गुणों के विकार को अर्थात् परिणमन को जैनागम में पर्याय कहते हैं।

प्र.1966 पर्यायें कितने प्रकार की होती हैं?

उत्तर पर्यायें दो प्रकार की होती हैं-

1. अर्थ पर्याय और 2. व्यंजन पर्याय।

प्र.1967 अर्थ पर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर जो पर्याय अतिसूक्ष्म होती है, क्षण-क्षण में नाश को प्राप्त होती है और वचनों के द्वारा जो कही नहीं जाती है उसे अर्थ पर्याय कहते हैं।

प्र.1968 अर्थ पर्यायें कितने प्रकार की होती हैं?

उत्तर अर्थ पर्यायें दो प्रकार की होती हैं-

1. स्वभाव अर्थपर्याय और 2. विभाव अर्थपर्याय।

प्र.1969 स्वभाव अर्थ पर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर अगुरुलघु गुणों के परिणमन को स्वभाव अर्थ पर्याय कहते हैं।

प्र.1970 स्वभाव अर्थपर्याय किन-किन द्रव्यों में होती हैं?

उत्तर स्वभाव अर्थपर्यायें सभी द्रव्यों में पायी जाती हैं।

प्र.1971 स्वभाव अर्थपर्यायें कितने प्रकार की होती हैं?

उत्तर स्वभाव अर्थपर्यायें षट्वृद्धिरूप और षट्हानिरूप से बारह प्रकार की होती हैं-

जैसे-अनंतभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुण-वृद्धि, अनंतगुणवृद्धि, अनंतभागहानि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि और अनंतगुणहानि।

प्र.1972 विभाव अर्थपर्यायें किन्हें कहते हैं?

उत्तर पर पदार्थ के निमित्त से जो पर्यायें होती हैं उन्हें विभाव अर्थपर्यायें कहते हैं।

प्र.1973 विभाव अर्थपर्यायें किन-किन द्रव्यों में होती हैं?

उत्तर विभाव अर्थपर्यायें जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में ही होती हैं।

प्र.1974 जीव द्रव्य की विभाव अर्थपर्यायें कौन-कौन सी हैं?

उत्तर जीव द्रव्य की विभाव अर्थपर्यायें छः प्रकार की होती हैं-

मिथ्यात्त्व, कषाय, राग, द्वेष, पुण्य और पाप।

प्र.1975 पुद्गल द्रव्य की विभाव अर्थपर्यायें कौन-कौन-सी हैं?

उत्तर द्विअणुक आदि स्कंधों में एक वर्ण आदि से अन्य वर्ण आदि रूप परिणमन की शक्ति ही पुद्गल द्रव्य की विभाव अर्थपर्यायें हैं।

प्र.1976 व्यंजनपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर प्रदेशत्त्वगुणों के परिणमन को व्यंजनपर्याय कहते हैं। यह स्थूल, वचनगोचर एवं अनेक समयवर्ती हुआ करती है।

प्र.1977 व्यंजनपर्यायें कितने प्रकार की होती हैं?

उत्तर स्वभाव व्यंजनपर्याय और विभाव व्यंजनपर्याय के भेद से व्यंजनपर्यायें दो प्रकार की होती हैं। स्वभाव व्यंजनपर्याय भी द्रव्यस्वभाव-व्यंजनपर्याय और गुणस्वभाव व्यंजनपर्याय के भेद से दो प्रकार की होती हैं। विभाव व्यंजनपर्याय भी द्रव्यविभाव व्यंजनपर्याय और गुणविभाव व्यंजनपर्याय के भेद से दो प्रकार की होती हैं।

प्र.1978 व्यंजनपर्याय किन-किन द्रव्यों में होती हैं?

उत्तर जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में व्यंजनपर्याय हुआ करती हैं।

प्र.1979 जीव द्रव्य की द्रव्य स्वभाव व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर बिना दूसरों के निमित्त से जो व्यंजनपर्याय होती है उसे द्रव्य स्वभाव व्यंजनपर्याय कहते हैं। जैसे- जीव की सिद्धपर्याय।

प्र.1980 जीव की गुणस्वभावद्रव्य व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर कर्मोपाधि से रहित गुणों की स्वभाविकपर्याय को गुणस्वभाव व्यंजनपर्याय कहते हैं। जैसे- जीव का अनंतचतुष्टय।

प्र.1981 जीव की विभावगुण व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर कर्मोपाधि से सहित ज्ञान दर्शन के परिणमन को विभाव गुण व्यंजनपर्याय कहते हैं जैसे- मतिज्ञान आदि सात ज्ञान और चक्षुदर्शन आदि तीन दर्शन।

प्र.1982 जीव की विभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर कर्मोपाधि से सहित द्रव्य की पर्याय को विभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय कहते हैं। जैसे- नर-नारक आदि पर्यायें अथवा चौरासी लाख योनिरूप पर्यायें।

प्र.1983 पुद्गल द्रव्य की विभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर पुद्गल द्रव्य की विभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय द्विअणुक आदि स्कंध रूप अवस्था है।

प्र.1984 पुद्गल द्रव्य की विभाव गुण व्यंजन पर्याय क्या है?

उत्तर पुद्गल द्रव्य की विभाव गुण व्यंजनपर्याय एक रस से दूसरे रस रूप, एक गन्ध से दूसरे गन्ध रूप आदि रूप अवस्था है।

प्र.1985 पुद्गल द्रव्य की स्वभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर पुद्गल द्रव्य की स्वभाव द्रव्य व्यंजनपर्याय अविभागी पुद्गल परमाणु रूप शुद्ध अवस्था है।

प्र.1986 पुद्गल द्रव्य की स्वभाव गुण व्यंजनपर्याय क्या है?

उत्तर पुद्गल परमाणुओं में एक वर्ण, एक रस, एक गंध और अविरोधी दो स्पर्श का (यथा- स्निग्ध, रुक्ष में से एक और शीत उष्ण में से एक का) रहना स्वभाव गुण व्यंजनपर्याय है।

प्र.1987 आगम पद्धति से द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद हैं?

उत्तर आगम पद्धति से द्रव्यार्थिक नय के दस भेद हैं-

1. कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
2. उत्पादव्यय गौणसत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
3. भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
4. कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
5. उत्पादव्ययसापेक्ष सत्ता ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
6. भेद कल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
7. अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिकनय।
8. स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय।
9. परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय। और
10. परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय।

प.1988 कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म की उपाधि की अपेक्षा न करने वाला नय कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है, जैसे- संसारी जीव को सिद्ध के समान शुद्ध बतलाना।

प्र.1989 उत्पादव्ययगौणसत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय किसे कहते हैं?

उत्ता उत्पाद व्यय (पर्याय) को गौण करके सत्ता (ध्रौव्य) को ग्रहण करने वाला नय शुद्ध द्रव्यार्थिकनय कहलाता है। जैसे- द्रव्य नित्य है ऐसा कहना।

प्र.1990 भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर भेदकल्पना की अपेक्षा से रहित द्रव्य को विषय करने वाला नय भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है, जैसे- द्रव्य अपने गुण, पर्याय और स्वभाव से अभिन्न है।

प्र.1991 कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मोपाधि की अपेक्षा सहित अशुद्ध द्रव्य को विषय करने वाला नय कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- कर्म जनित क्रोधादि भावों को आत्मा के बतलाना।

प्र.1992 उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर उत्पाद, व्यय की अपेक्षा सहित द्रव्य को विषय करने वाला नय उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक

नय कहलाता है। जैसे- एक ही समय में द्रव्य, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक है।

विशेष- शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय मात्र ध्रौव्य होता है। उत्पादव्यय पर्यायार्थिकनय के विषय हैं। अतः यह नय उत्पाद व्यय (पर्याय) सापेक्ष ध्रौव्य (द्रव्य) को विषय बनाने के कारण अशुद्धद्रव्यार्थिक नय कहलाता है।

प्र.1993 भेद कल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर भेद कल्पनासापेक्ष द्रव्य को विषय करने वाला नय भेद कल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुण हैं।

विशेष- यह नय एक अखण्ड द्रव्य को उसके गुणों को भेदपूर्वक ग्रहण करता है, इसलिए अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है।

प्र.1994 अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर मनुष्य, देव, नारकी आदि पर्यायों में यह जीव है, इस प्रकार का कथन करने वाला नय अन्वयसापेक्ष द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- मनुष्य, देव, नारकी आदि पर्यायों में यह जीव है, यह जीव है ऐसा कथन अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

प्र.1995 स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर स्वद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य को विषय करने वाला नय स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- स्व चतुष्टय (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव) की अपेक्षा द्रव्य सत् रूप है।

प्र.1996 परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर परद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य का कथन करने वाला नय, परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- पर चतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य असत् रूप है।

प्र.1997 परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय जीव के अनेक स्वभावों में से ज्ञान नामक परमभाव को ही ग्रहण करता है वह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। जैसे- आत्मा ज्ञानस्वरूपी है।

प्र.1998 शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर शुद्ध द्रव्य ही जिसका प्रयोजन होता है, वह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहलाता है।

प्र.1999 शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय क्या है?

उत्तर धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य, सिद्धजीवद्रव्य और शुद्धपुद्गल-परमाणु शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषय हैं।

प्र.2000 अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर अशुद्ध द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है, उसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

प्र.2001 अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय क्या है?

उत्तर द्विअणुक आदि स्कंधरूप अशुद्ध पुद्गल-द्रव्य और नर-नारक आदि संसारी जीवरूप अशुद्ध जीव-द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषय हैं।

प्र.2002 शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद हैं?

उत्तर शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के पाँच भेद हैं-

1.कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

2.उत्पाद व्यय गौणसत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

3. भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

4. स्वद्रव्यादि ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

5. परमभावग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय।

प्र.2003 कर्मोपाधि-निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय कर्मोपाधि की अपेक्षा रहित जीव द्रव्य है, जैसे संसारी जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा है। यद्यपि संसारी जीव कर्मोपाधि सहित है तथापि शुद्ध द्रव्यार्थिक नय उस जीव को कर्मोपाधि से रहित सिद्ध जीव समान शुद्ध बतलाता है। यदि जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा हो तो वह संसारी नहीं हो सकता और संसारी जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा नहीं हो सकता, क्योंकि संसारी अवस्था जीव की अशुद्ध पर्याय है। सिद्ध अवस्था जीव की शुद्ध पर्याय है। एक समय में जीव की एक ही अवस्था रह सकती है। कर्मोपाधि अर्थात् कर्म बंध जीव की अशुद्धता का कारण है, क्योंकि अन्य द्रव्य के बंध बिना द्रव्य अशुद्ध नहीं हो सकता। कर्म-बंध के कारण ही जीव संसारी हो रहा है। फिर भी कर्म बंध की अपेक्षा न करके उस संसारी जीव को (अशुद्धात्मा को) शुद्धात्मा बतलाना शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का प्रथम भेद है। संसारी अवस्था की अपेक्षा से इस नय का विषय सत्य नहीं है तथापि शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से इस नय का विषय सत्य है। अर्थात् कर्मों के बीच में पड़े हुए जीव को सिद्ध समान ग्रहण करने वाला नय कर्मोपाधि-निरपेक्ष -शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

प्र.2004 उत्पाद व्यय गौण सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर उत्पाद-व्यय को गौण करके (अप्रधान करके) सत्ता (ध्रौव्य) को ग्रहण करने वाला शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे- द्रव्य नित्य है। द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य है तथा द्रव्य अनेकान्तात्मक अर्थात् नित्य-अनित्य-आत्मक है। किन्तु शुद्ध द्रव्यार्थिक नय उत्पाद व्यय को अप्रधान करके मात्र ध्रौव्य को ग्रहण करके (नित्य-अनित्य-आत्मक) द्रव्य को नित्य बतलाता है। अनेकान्त दृष्टि में इस शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय यथार्थ नहीं है तथापि एक धर्म को (अनित्य धर्म को) गौण करके नित्य धर्म को मुख्य करने से इस नय के विषय को सर्वथा अयथार्थ नहीं कहा जा सकता। अर्थात् उत्पाद-व्यय को गौण करके मात्र ध्रुव को ग्रहण करने वाला नय आगम में सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

प्र.2005 भेद कल्पनानिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर शुद्ध द्रव्यार्थिक नय भेदकल्पना की अपेक्षा से रहित है, जैसे- निज गुण से, निज पर्याय और निज स्वभाव से द्रव्य अभिन्न है।

यद्यपि संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा गुण और द्रव्य में, पर्याय और द्रव्य में तथा स्वभाव और द्रव्य में भेद है किन्तु प्रदेश की अपेक्षा गुण-द्रव्य में, पर्याय द्रव्य में, स्वभाव-द्रव्य में भेद नहीं है अर्थात् अनेकान्त रूप से द्रव्य भेद-अभेद-आत्मक है। शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय भेद नहीं है, मात्र अभेद है। भेद विवक्षा को गौण करके शुद्ध-द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा गुण-पर्याय-स्वभाव का द्रव्य से अभेद है, क्योंकि प्रदेश भेद नहीं है। अर्थात् गुण , गुणी आदि चार अर्थों में (गुण, पर्याय, स्वभाव, द्रव्य) में भेद नहीं करने वाले नय को भेद कल्पना (विकल्प)- निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहा गया है।

प्र.2006 स्वद्रव्यादिग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य को अस्ति रूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादिग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। पर द्रव्यादि की विवक्षा न कर, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से द्रव्य अस्तित्व को अस्तिरूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादि ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। अथवा स्वद्रव्यादि चतुष्टय से वस्तु स्वरूप का अस्तित्व बतलाना जिस नय का अभिप्राय है वह स्व-द्रव्यादिग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

प्र.2007 परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर शुद्ध और अशुद्ध के उपचार से रहित जो नय द्रव्य के स्वभाव को ग्रहण करता है वह परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। ज्ञान स्वरूप आत्मा ऐसा कहना परमभावग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है, क्योंकि इसमें जीव के अनेक स्वभावों में से ज्ञान नामक परम भाव को ही ग्रहण किया गया है। यद्यपि आत्मद्रव्य संसार और मुक्त पर्यायों का आधार है तथापि आत्मद्रव्य कर्मों के बंध और मोक्ष का कारण नहीं होता है। यह परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। अथवा आत्मा कर्म से उत्पन्न नहीं होता और न कर्मक्षय से उत्पन्न होता है- द्रव्य के ऐसे भाव को बतलाने वाला परमभावग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

प्र.2008 अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद हैं?

उत्तर अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय के पाँच भेद हैं।

1. कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
2. उत्पाद व्यय सापेक्ष सत्ताग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
3. भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
4. परद्रव्यादिग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय।
5. अन्वयग्राहक अशुद्धद्रव्यार्थिक नय।

प्र.2009 कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर सब जीवों में रागादि भावों को कहने वाला जो नय है वह कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध नय है। कर्मोपाधि सापेक्ष (अपेक्षा सहित) अशुद्ध जीव द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है, जैसे- कर्मजनित क्रोधादि भावरूप आत्मा है।

अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय अशुद्ध द्रव्य है। संसारी जीव अनादिकाल से पौद्गलिक कर्मों से बँधा हुआ है इसलिए अशुद्ध है। संसारी जीव में कर्मजनित औदयिक भाव निरंतर होते रहते हैं। वे औदयिक भाव जीव के स्वतत्त्व हैं। क्रोधादि कर्मजनित औदयिकभावमयी आत्मा अशुद्ध-द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

प्र.2010 उत्पादव्यय सापेक्ष सत्ताग्राहक अशुद्धद्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर उत्पाद-व्यय मिश्रित ध्रुव अर्थात् एक समय में इन तीन मयी द्रव्य को ग्रहण करने वाला अशुद्ध नय है। उत्पाद-व्यय की अपेक्षा सहित द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है, जैसे- एक ही समय में उत्पाद व्यय-ध्रौव्यात्मक द्रव्य है। शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय मात्र ध्रौव्य है। क्योंकि उत्पाद व्यय पर्यायार्थिक नय का विषय है। द्रव्य का लक्षण सत् है और सत् का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी है। इस प्रकार द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप है, किन्तु उत्पाद व्यय पर्यायार्थिक नय का विषय होने के कारण उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक अशुद्ध द्रव्य को -अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय कहा है।

प्र.2011 भेदकल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर गुण गुणी में भेद होने पर भी जो नय द्रव्य में गुण गुणी का सम्बन्ध करता है वह भेद कल्पना सहित अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय जानना चाहिए। भेदकल्पना सापेक्ष द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है जैसे- आत्मा के ज्ञान दर्शनादि गुण हैं। आत्मा में न ज्ञान है, न चारित्र है, न दर्शन है वह तो ज्ञायक शुद्ध है। आत्मा में ज्ञान दर्शनादि गुणों की कल्पना करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। अर्थात् एक अखण्ड द्रव्य में गुणों का भेद करना अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है।

प्र.2012 परद्रव्यादिग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परस्वभाव की अपेक्षा द्रव्य नास्ति रूप है ऐसा पर द्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय है। स्वद्रव्य आदि की विवक्षा न कर परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परस्वभाव की अपेक्षा से द्रव्य के नास्तित्त्व को कथन करने वाला नय परद्रव्यादिग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। अर्थात् परद्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षा से जो नय विवक्षित पदार्थ में वस्तु के नास्तित्व को बतलाता है वह परद्रव्यादि सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय है। जैसे- रजतद्रव्य, रजतक्षेत्र, रजतकाल, रजतपर्याय अर्थात् रजतादि रूप से स्वर्ण नास्ति है।

प्र.2013 अन्वय ग्राहक अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय का स्वरूप क्या है?

उत्तर संपूर्ण गुण पर्याय और स्वभावों में द्रव्य को अन्वय रूप से ग्रहण करने वाला नय अन्वय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे- नय संपूर्ण स्वभावों को यह द्रव्य है, यह द्रव्य है ऐसे अन्वय रूप से द्रव्य की

स्थापना करता है वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है। जैसे कि कड़े आदि पर्यायों में तथा पीतत्व आदि गुणों में अन्वय रूप से रहने वाला स्वर्ण।

प्र.2014 पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर पर्याय ही जिस नय का प्रयोजन होता है, उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

प्र.2015 आगम पद्धति से पर्यायार्थिक नय के कितने भेद हैं?

उत्तर आगम पद्धति से पर्यायार्थिक नय के छः भेद हैं-

1.अनादि नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय।

2. सादिनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय।

3. स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय।

4. स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय।

5. विभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय।

6. विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय।

प्र.2016 अनादिनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय का लक्षण क्या है?

उत्तर अनादि नित्य पर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह अनादिनित्य शुद्धपर्यायार्थिक नय कहलाता है। जैसे- चन्द्रमा, सूर्य, सुमेरु पर्वत, अकृत्रिम चैत्यालय आदि पुद्गल की पर्यायें अनादि से हैं और अनंतकाल तक रहेंगी, इसलिए अनादि नित्य हैं, ध्रुव हैं अतः शुद्ध कही जाती हैं और पर्याय को विषय करने के कारण यह अनादिनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाता है।

प्र.2017 सादिनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर सादिनित्य पर्याय ही जिस नय का प्रयोजन है वह सादिनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाता है। जैसे- सिद्ध पर्याय। कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुई है इसलिए सादि शुद्ध है, कभी नष्ट नहीं होगी इसलिए नित्य है।

प्र.2018 स्वभावअनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय ध्रौव्य को गौण करके उत्पाद व्यय को ग्रहण करता है उसे स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे- प्रति समय अर्थ पर्यायें विनाश को प्राप्त होती हैं। प्रत्येक क्षण सूक्ष्म अर्थ पर्याय प्रकट करते रहना वस्तु का स्वभाव है, क्योंकि यह अन्य की अपेक्षा न करके स्वतः ही होता है। इसलिए इस नय के साथ स्वभाव लगाना ठीक है। केवल अनित्य अंश को ग्रहण करता है, इसलिए अनित्य कहा है। स्वभाव को ग्रहण करने वाला होने से शुद्ध है। इसलिए इस नय का उपर्युक्त नाम सार्थक है।

प्र.2019 स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो जब एक ही समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त सत्ता को विषय बनाता है, उसे स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे- पर्याय एक ही समय में उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य रूप है। ध्रौव्य

को ग्रहण करने के कारण अशुद्ध है। पर्याय रूप होने के कारण पर्यायार्थिक नय का विषय है। अन्य कारणों की अपेक्षा नहीं रखता इसलिए स्वभाव है। अतः इस नय का उपर्युक्त नाम सार्थक है।

प्र.2020 विभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर यह नय कर्म जनित वैभाविक भावों की विवक्षा न कर उसके स्वभाविक भावों को अपना विषय बनाता है, उसे विभावअनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे- संसारी जीवों की पर्याय सिद्ध के समान शुद्ध है। संसारी जीवों को लक्ष्य में रखकर विशेषण बनाया है इसलिए विभाव विशेषण लगाया है। पर्यायग्राही होने के कारण अनित्य तथा पर्यायार्थिक नय है। कर्मों की विवक्षा न होने के कारण शुद्ध कहा जा रहा है। अतएव उपर्युक्त नाम सार्थक है।

प्र.2021 विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय कर्मजनित वैभाविक भावों को ग्रहण करता है, उसे विभावअनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते हैं। जैसे- संसारी जीवों की जन्म, मरण से होने वाली चतुर्गति रूप पर्यायें तथा पुद्गल की स्कंध रूप पर्यायें। यह नय स्वभाव से विपरीत होने के कारण विभाव है, सादि सांत होने के कारण अथवा विनश्वर होने के कारण अनित्य है, कर्मोपाधिसापेक्ष होने के कारण अशुद्ध है, इसलिए इस नय का उपर्युक्त नाम सार्थक है।

प्र.2022 शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर शुद्ध पर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाता है। जैसे- धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य, सिद्धजीवद्रव्य और परमाणुरूप पुद्गलद्रव्य शुद्ध द्रव्य हैं अतः इनकी पर्यायें भी शुद्ध हैं और ये पर्यायें शुद्ध पर्यायार्थिकनय की विषय हैं।

प्र.2023 अशुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

उत्तर अशुद्धपर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहलाता है। जैसे- पुद्गल की द्विअणुक आदि स्कंधरूप पर्यायें और कर्मोपाधि सहित जीव की नर नारक आदि पर्यायें अशुद्ध पर्यायार्थिक नय की विषय हैं।

प्र.2024 नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर जो एक को ही प्राप्त नहीं होता अर्थात् अनेक को प्राप्त होता है वह नैगमनय है। नैगम का अर्थ विकल्प है जो विकल्प को ग्रहण करे, वह नैगमनय है अथवा नैगमनय द्रव्य, गुण, पर्याय सभी को विषय करता है अथवा अनिष्पन्न अर्थ में संकल्प मात्र को ग्रहण करने वाला नैगमनय है। जैसे- ईंधन और जल आदि के लाने में लगे हुए किसी पुरुष से कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे हैं? वह कहता है कि मैं भात पका रहा हूँ, केवल भात के लिए किये गये व्यापार (उद्यम) में भात का प्रयोग किया गया है।

प्र.2025 नैगमनय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर नैगमनय का विषय बहुत व्यापक है। फिर भी संक्षिप्त में नैगमनय को दो भेदों में बाँटा जा सकता है।

1. सामान्य नैगमनय। 2.विशेष नैगमनय।

सामान्य नैगमनय के तीन भेद हैं- भूत-नैगमनय, भावी-नैगमनय, वर्तमान-नैगमनय। विशेष नैगमनय के भी तीन भेद हैं- द्रव्य नैगमनय, पर्याय नैगमनय और द्रव्य-पर्याय नैगमनय।

प्र.2026 भूत-नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ पर अतीत काल की पर्याय का वर्तमान की पर्याय में कथन किया जाता है, वह भूत-नैगमनय है। जैसे- आज दीपावली के दिन श्री महावीर स्वामी मोक्ष गये हैं।

प्र.2027 भावी-नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ भविष्यत पर्याय को हो चुकी के समान कथन किया जाता है वह भावी-नैगमनय है। जैसे- अरहन्त; सिद्ध ही हैं। अथवा यह पुरुष; नारकी है ऐसा कहना।

प्र.2028 वर्तमान-नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर करने के लिए प्रारंभ की गई ऐसी ईषत् निष्पन्न (थोड़ी बनी हुई) अथवा अनिष्पन्न (बिल्कुल नहीं बनी हुई) को निष्पन्नवत् कहना, वर्तमान-नैगमनय है। जैसे- मैं भात पका रहा हूँ।

प्र.2029 द्रव्य-नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर दो धर्मों के कथंचित् एकता के संकल्प का नाम ही द्रव्य-नैगमनय है। जैसे- सत् द्रव्य लक्षणम्। गुणपर्ययवद् द्रव्यम्।

प्र.2030 पर्याय-नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर दो धर्मियों के कथंचित् एकता के संकल्प का नाम ही पर्याय-नैगमनय है। जैसे- सत् और चैतन्य स्वरूपी आत्मा है।

प्र.2031 द्रव्य-पर्याय नैगमनय किसे कहते हैं?

उत्तर धर्म-धर्मी में एकता के संकल्प का नाम ही द्रव्य-पर्याय नैगमनय है। जैसे कि संसारी जीव क्षण मात्र के लिये सुखी है।

प्र.2032 संग्रहनय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय अभेद रूप से सम्पूर्ण वस्तु समूह को विषय करता है, वह संग्रहनय है। अथवा भेद सहित सब पर्यायों को अपनी जाति के अविरोध द्वारा एक मानकर सामान्य से सबको ग्रहण करने वाला नय संग्रहनय है। जैसे- सत् कहने से सभी द्रव्यों का ग्रहण हो जाता है। संग्रहनय समूह को विषय करता है एक को नहीं।

प्र.2033 संग्रहनय के कितने भेद हैं?-

उत्तर संग्रहनय के दो भेद हैं-

1.सामान्य संग्रहनय। 2.विशेष संग्रहनय।

प्र.2034 सामान्य संग्रह नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय समस्त द्रव्यों को एकत्व रूप से ग्रहण कर लेता है, उसे सामान्य संग्रहनय कहते हैं। जैसे- सभी द्रव्य सत् स्वरूपी हैं। अर्थात् सत् कहने से सभी द्रव्यों का ग्रहण हो जाता है।

प्र.2035 विशेष संग्रहनय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय एक जाति विशेष की अपेक्षा से अनेक पदार्थों को एक रूप से ग्रहण करता है वह विशेष संग्रहनय है। जैसे- चैतन्यपने की अपेक्षा से सम्पूर्ण जीव राशि एक है।

प्र.2036 व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर संग्रहनय से ग्रहण किये हुए पदार्थों को जो भेद रूप से व्यवहार अर्थात् स्वीकार करता है, वह व्यवहार नय है।

प्र.2037 व्यवहार नय के कितने भेद हैं?

उत्तर व्यवहार नय के दो भेद हैं-

1. सामान्य व्यवहार नय। 2. विशेष व्यवहार नय।

प्र.2038 सामान्य व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर सामान्य संग्रह नय के विषयभूत पदार्थ में भेद करने वाला नय सामान्य संग्रह भेदक व्यवहारनय कहलाता है। जैसे- द्रव्य के दो भेद हैं- जीव और अजीव।

प्र.2039 विशेष व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर विशेष संग्रहनय के विषयभूत पदार्थ को भेद रूप से ग्रहण करने वाला नय विशेष संग्रहभेदक व्यवहारनय कहलाता है, जैसे- जीव के संसारी और मुक्त ऐसे दो भेद करना।

प्र.2040 ऋजुसूत्र नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय ऋजु अर्थात् अवक्र, सरल को सूत्रित अर्थात् ग्रहण करता है, वह ऋजुसूत्र नय है। अर्थात् यह नय अतीत और अनागत कालों के विषयों को ग्रहण ना करके वर्तमान काल के विषयभूत पदार्थों को ग्रहण करता है।

प्र.2041 ऋजुसूत्र नय के कितने भेद हैं?

उत्तर ऋजुसुत्र नय के दो भेद हैं-

1.सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय। 2.स्थूल ऋजुसूत्र नय।

प्र.2042 सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय एक समयवर्ती पर्याय को विषय करता है, वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय है। जैसे- शब्द क्षणिक है। अथवा इन्द्रियजन्य सुख क्षणिक है।

प्र.2043 स्थूल ऋजुसूत्र नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय अनेक समयवर्ती स्थूल पर्याय को विषय करता है, वह स्थूल ऋजुसूत्र नय है। जैसे- मनुष्य आदि पर्यायें अपनी-अपनी आयु प्रमाण काल तक रहती हैं।

प्र.2044 शब्दनय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय शब्द अर्थात् व्याकरण से प्रकृति और प्रत्यय के द्वारा सिद्ध अर्थात् निष्पन्न शब्द को मुख्यकर विषय करता है, वह शब्दनय है अथवा लिंग, संख्या, काल आदि के व्यभिचार (दोष) को दूर कर अर्थ का प्रतिपादन करता है, इस तरह शब्द प्रधान होने के कारण उसे शब्दनय कहा जाता है। जैसे- पुल्लिंग के स्थान में स्त्रीलिंग का और स्त्रीलिंग के स्थान में पुल्लिंग का कथन करना आदि लिंग-व्यभिचार है। जैसे- 'तारका स्वातिः' स्वाति नक्षत्र तारका है। यहाँ पर तारका शब्द स्त्रीलिंग और स्वाति शब्द पुल्लिंग है, अतः स्त्रीलिंग शब्द के स्थान पर पुल्लिंग शब्द का कथन करने से लिंग व्यभिचार है अर्थात् तारका शब्द स्त्रीलिंग है उसके साथ पुल्लिंग स्वाति शब्द का प्रयोग किया गया है जो व्याकरण अनुसार ठीक नहीं है। एकवचन आदि के स्थान पर द्विवचन आदि का कथन करना संख्या-व्यभिचार है। जैसे- 'नक्षत्रं पुनर्वसू' पुनर्वसू नक्षत्र है। यहाँ पर नक्षत्र शब्द एकवचनान्त और पुनर्वसू शब्द द्विवचनान्त है, इसलिए एकवचन के साथ में द्विवचन का कथन करने से संख्या व्यभिचार है। भूत आदि काल के स्थान में भविष्यत् आदि काल का कथन करना काल-व्यभिचार है। जैसे- 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता' जिसने समस्त विश्व को देख लिया है ऐसा इसको पुत्र होगा। यहाँ पर 'विश्वदृश्वा' शब्द भूत-कालीन है और 'जनिता' यह भविष्यत् कालीन है। अतः भविष्य अर्थ के विषय में भूतकालीन प्रयोग करना काल-व्यभिचार है। इस प्रकार जितने भी लिङ्ग आदि व्यभिचार हैं वे सभी अयुक्त हैं।

प्र.2045 समभिरूढ़ नय किसे कहते हैं?

उत्तर शब्द नय के द्वारा ग्रहण किये गये समान स्वभावी अर्थात् समान लिंग आदि वाले एकार्थवाची शब्दों में व्युत्पत्ति अर्थ से अर्थ भेद की स्थापना करने वाला समभिरूढ़ नय है। जैसे- इन्द्र (ऐश्वर्यवान) शक्र (सामर्थ्यवान) पुरन्दर (पुरों का विभाजन करने वाला) इस प्रकार तीनों शब्द देवराज के वाची होते हुये भी भिन्नार्थ वाची हैं अथवा एक शब्द के पर्यायवाची अनेक शब्द को छोड़कर एक प्रसिद्ध अर्थ को ग्रहण करने वाला समभिरूढ़ नय है। जैसे- गौ शब्द के गाय, वाणी, पृथ्वी आदि अर्थ होते हुये भी प्रसिद्ध अर्थ गाय को ही ग्रहण करता है।

प्र.2046 एवंभूत नय किसे कहते हैं?

उत्तर जिस नय में वर्तमान क्रिया की प्रधानता होती है, वह एवंभूत नय है। जिस शब्द का जिस क्रिया रूप अर्थ है उस क्रिया रूप से परिणत समय में ही उस शब्द का प्रयोग करना युक्त है, अन्य समय में नहीं, ऐसा जिस नय का अभिप्राय है वह एवं भूत नय है। जैसे- पूजा करते समय ही उस व्यक्ति को पुजारी कहना, अन्य समय में नहीं।

प्र.2047 उपनय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नयों के समीप में रहें उन्हें उपनय कहते हैं। उपनय भी वस्तु के यथार्थ धर्म का कथन करता है, अयथार्थ धर्म का कथन नहीं करता, इसलिए इसके द्वारा भी वस्तु का यथार्थ बोध होता है।

प्र.2048 उपनयों के मुख्य रूप से कितने भेद हैं?

उत्तर उपनयों के मुख्य रूप से तीन भेद हैं-

1.सद्भूतव्यवहार नय।

2. असद्भूतव्यवहार नय।

3.उपचरितअसद्भूत व्यवहार नय।

प्र.2049 सद्भूतव्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन के भेद से जो नय गुण-गुणी में भेद करता है, वह सद्भूतव्यवहार नय है। इसी प्रकार पर्याय-पर्यायी में, स्वभाव-स्वभावी में, कारक-कारकी में भी भेद करना, सद्भूतव्यवहार नय का कार्य है। जैसे- उष्ण स्वभाव और अग्नि स्वभावी में भेद करना। जीव और मनुष्य पर्याय में भेद करना।

प्र.2050 सद्भूतव्यवहार नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर सद्भूतव्यवहार नय दो प्रकार का है- 1.शुद्ध सद्भूतव्यवहार नय 2.अशुद्ध सद्भूतव्यवहार नय।

प्र.2051 शुद्ध सद्भूतव्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर शुद्ध गुण और शुद्ध गुणी में तथा शुद्ध पर्याय और शुद्धपर्यायी में जो नय भेद का कथन करता है वह शुद्ध सद्भूतव्यवहार नय है। कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्धजीव और क्षायिक शुद्धज्ञान में तथा सिद्धजीव व सिद्ध पर्याय में भेद करना शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय का विषय है जैसे- जीव का केवलज्ञान अथवा जीव की सिद्ध पर्याय।

प्र.2052 अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर अशुद्ध गुण और अशुद्ध गुणी में तथा अशुद्ध पर्याय व अशुद्ध पर्यायी में जो नय भेद का कथन करता है वह अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है। कर्मोपाधि सहित अशुद्ध जीव गुणी में तथा क्षायोपशमिक ज्ञान में और संसारी जीव में व नर-नारक आदि में भेद का कथन करना अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय का विषय है। जैसे-जीव के मति आदि ज्ञान अथवा जीव की मनुष्य आदि पर्यायें।

प्र.2053 असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म (स्वभाव) का अन्यत्र समारोप करने वाला असद्भूतव्यवहार नय है।

प्र.2054 असद्भूत व्यवहार नय के विषय भेद कितने हैं?

उत्तर असद्भूत व्यवहार नय के विषय भेद नौ हैं-

1. द्रव्य में द्रव्य का उपचार- जैसे- पुद्गल में जीव का उपचार अर्थात् पृथ्वी आदि पुद्गल में एकेन्द्रिय जीव का उपचार।

2. पर्याय में पर्याय का उपचार- जैसे- दर्पण रूप पर्याय में अन्य पर्याय रूप प्रतिबिंब का उपचार। किसी के प्रतिबिंब को देखकर वह जिसका प्रतिबिंब है इसको उस प्रतिबिंब रूप बतलाना।

3. गुण में गुण का उपचार- जैसे-मतिज्ञान मूर्त है- यहाँ विजाति ज्ञानगुण में विजाति मूर्तगुण का आरोपण है।

4. द्रव्य में गुण का उपचार- जैसे- जीव अजीव ज्ञेय हैं अर्थात् ज्ञान के विषयक हैं। यहाँ जीव-अजीव द्रव्य में ज्ञान गुण का उपचार है।

5. द्रव्य में पर्याय का उपचार- जैसे- परमाणु बहुप्रदेशी है अर्थात् परमाणु पुद्गल द्रव्य में बहुप्रदेशी पर्याय का उपचार।

6. गुण में द्रव्य का उपचार- जैसे- श्वेत प्रासाद (गृह)। यहाँ पर श्वेत गुण में प्रासाद द्रव्य का आरोपण किया गया है।

7. गुण में पर्याय का उपचार- जैसे-ज्ञानगुण के परिणमन में ज्ञान-पर्याय का ग्रहण, गुण में पर्याय का आरोपण है।

8. पर्याय में द्रव्य का उपचार- जैसे- स्कंध को पुद्गल द्रव्य कहना, पर्याय में द्रव्य का उपचार है।

9 पर्याय में गुण का उपचार- जैसे इसका शरीर रूपवान है, यहाँ पर शरीर रूप पर्याय में 'रूपवान' गुण का उपचार किया गया है।

प्र.2055 असद्भूत व्यवहार नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर असद्भूत व्यवहार नय तीन प्रकार का है-

1. स्वजातिअसद्भूत व्यवहार नय।
2. विजातिअसद्भूत व्यवहार नय।
3. स्वजातिविजाति असद्भूतव्यवहार नय।

प्र.2056 स्वजाति असद्भूतव्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय स्वजातीय द्रव्य आदि में स्वजातीय द्रव्य के संबंध से होने वाले धर्म का आरोपण करता है वह स्वजाति-असद्भूतव्यवहार नय है जैसे- परमाणु को बहुप्रदेशी कहना।

विशेष- परमाणु अन्य परमाणुओं के संबंध से बहुप्रदेशी हो सकता है। यहाँ पर स्वजातीय द्रव्य में स्वजातीय द्रव्य के संबंध से होने वाली विभावपर्याय का आरोपण किया गया है।

प्र.2057 विजातिअसद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय विजाति द्रव्य आदि में विजातीय द्रव्य का आरोपण करता है वह उपर्युक्त नय है। जैसे- मतिज्ञान मूर्त है। यहाँ पर मतिज्ञान नामक आत्मगुण में पौद्गलिक मूर्तपने का आरोपण किया है।

प्र.2058 स्वजाति-विजाति असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर स्वजातीय और विजातीय द्रव्य आदि में जो स्वजातीय द्रव्य आदि का आरोपण करता है उसे उपर्युक्त नय कहते हैं। जैसे- जीव-अजीव रूपी ज्ञेय को ज्ञान कहना।

प्र.2059 उपचरित असद्भूतव्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय उपचार में भी उपचार करता है वह उपर्युक्त नय है। अर्थात् जो नय किसी प्रयोजन या निमित्त से बिल्कुल भिन्न स्वजातीय, विजातीय तथा स्वजातीय विजातीय पदार्थ को अभेद रूप से ग्रहण करता है वह उपचरित असद्भूतव्यवहार नय कहलाता है।

प्र.2060 उपचरितअसद्भूत व्यवहार नय कितने प्रकार का है?

उत्तर तीन प्रकार का है-

1. स्वजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय।
2. विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय।
3. स्वजातीयविजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय।

प्र.2061 स्वजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्त्र जो नय उपचार से स्वजातीय द्रव्य में अपना स्वामी पन बतलाता है वह उपर्युक्त नय है। जैसे-पुत्र, पौत्र, स्त्री आदि मेरे हैं।

प्र.2062 विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय उपचार से विजातीय द्रव्य को स्वजातीय द्रव्य का स्वामी बतलाता है वह उपर्युक्त नय है। जैसे- वस्त्र-आभूषण, स्वर्ण इत्यादि मेरे हैं। अपने जाति के न होने से विजातीय हैं और आत्मरूप न होने से असद्भूत हैं।

प्र.2063 स्वजाति विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय चेतन-अचेतन रूप मिश्र पदार्थ को अपना स्वामी बतलाता है वह स्वजाति-विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय कहलाता है। जैसे- देश, दुर्ग, राज्य आदि मेरे हैं।

प्र.2064 अध्यात्म पद्धति से नयों के मूलभूत कितने भेद हैं?

उत्तर अध्यात्म पद्धति से नयों के मूलभूत दो भेद हैं-

1. निश्चय नय और 2. व्यवहार नय।

प्र.2065 निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर गुण-गुणी में पर्याय-पर्यायी आदि में भेद न करके अभेद रूप से वस्तु को ग्रहण करने वाला नय निश्चय नय कहलाता है।

प्र.2066 निश्चय नय कितने प्रकार का है?

उत्तर निश्चय नय दो प्रकार का है-

1. शुद्ध निश्चय नय और 2.अशुद्ध निश्चय नय।

प्र.2067 शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मजनित विकार से रहित गुण-गुणी को अभेद रूप से ग्रहण करने वाला नय शुद्ध निश्चय नय कहलाता है जैसे- जीव केवलज्ञानमयी है।

प्र.2068 शुद्ध निश्चय नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर तीन प्रकार का होता है-

1.परम शुद्ध निश्चय नय।

2. साक्षात् शुद्ध निश्चय नय।

3.एकदेश शुद्ध निश्चय नय।

प्र.2069 परम शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर जो नय आत्मा के त्रिकाल शुद्ध परम पारिणामिक भावों को ग्रहण करता है उसे परम शुद्ध निश्चय नय कहते हैं। जैसे- जीव; सत्ता, चैतन्य व ज्ञानादि शुद्ध प्राणों से जीता है।

प्र.2070 साक्षात् शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर निरुपाधिक गुण-गुणी को अभेद रूप से विषय करने वाला नय शुद्ध निश्चय नय या साक्षात् शुद्ध निश्चय नय कहलाता है। यह नय आत्मा को क्षायिक भावों से अभिन्न बतलाता है। जैसे- जीव को केवलज्ञान रूपी कहना।

प्र.2071 एकदेश शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर क्षायोपशमिक भावों की एकदेश शुद्धता के साथ तन्मय वस्तु को ग्रहण करने वाला नय एकदेश शुद्ध निश्चय नय कहलाता है। जैसे- रागद्वेष आदि भाव कर्मजनित हैं।

प्र.2072 शुद्ध निश्चय और एकदेश शुद्ध निश्चय नय में अंतर क्या है?

उत्तर शुद्ध निश्चय नय तो पूर्ण शुद्धक्षायिक भावों के साथ जीव की तन्मयता या अभेदपने को ग्रहण करता है और एक देश शुद्ध निश्चय नय क्षायोपशमिक भाव में रहने वाले केवल शुद्ध अंश के साथ जीव की तन्मयता अर्थात् अभेद को ग्रहण करता है।

प्र.2073 अशुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मजनित विकार सहित गुण-गुणी को अभेद रूप से ग्रहण करने वाला नय अशुद्ध निश्चय नय कहलाता है। जैसे- आत्मा संपूर्ण मोह रागद्वेष रूप भाव-कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है।

प्र.2074 व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर गुण-गुणी, पर्याय-पर्यायी में भेद करके वस्तु को ग्रहण करने वाला नय व्यवहार नय कहलता है।

प्र.2075 व्यवहार नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर व्यवहार नय दो प्रकार का होता है-

1.सद्भूत व्यवहार नय और 2. असद्भूत व्यवहार नय।

प्र.2076 सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर एक ही वस्तु में गुण-गुणी का संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा भेदपूर्वक कथन करने वाला नय सद्भूत व्यवहार नय कहलाता है। जैसे- जीव के ज्ञानदर्शन आदि गुण।

प्र.2077 सद्भूत व्यवहार नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर सद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार होता है-

1.उपचरित सद्भूत व्यवहार नय 2.अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय।

प्र.2078 उपचरित सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मजनित विकार सहित गुण-गुणी के भेद को ग्रहण करने वाला नय उपचरित सद्भूत व्यवहार नय कहलाता है। जैसे- जीव के मतिज्ञान आदि गुण।

प्र.2079 अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर कर्म से उत्पन्न होने वाले विकार से रहित जीव में गुण-गुणी के भेद को ग्रहण करने वाला नय अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय कहलाता है। जैसे- जीव के केवलज्ञान आदि गुण।

प्र.2080 असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर दो भिन्न-भिन्न सत्ता वाले पदार्थों के संबंध को विषय करने वाला नय उपर्युक्त नय है। जैसे- ज्ञान; ज्ञेय पदार्थों को जानता है। अर्थात् ज्ञेय-ज्ञायक संबंध, वाच्य-वाचक आदि संबंध असद्भूत व्यवहार नय के विषय हैं।

प्र.2081 असद्भूत व्यवहार नय कितने प्रकार का होता है?

उत्तर असद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार का होता है-

1. उपचरित असद्भूत व्यवहार नय 2.अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय।

प्र.2082 उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर संयोग संबंध से सहित ऐसी भिन्न वस्तुओं के परस्पर में संबंध को ग्रहण करने वाला नय उपर्युक्त नय है। जैसे देवदत्त का धन।

प्र.2083 संयोग संबंध किसे कहते हैं?

उत्तर दो पृथक् भूत पदार्थों में (प्रदेश भेद वाले पदार्थों में) एकत्व का संबंध संयोग संबंध कहलाता है। जैसे- शरीर का वस्त्र के साथ संबंध।

प्र.2084 अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

उत्तर संश्लेष संबंध से सहित वस्तुओं को ग्रहण करने वाला नय उपर्युक्त नय है। जैसे- जीव का शरीर।

प्र.2085 संश्लेष संबंध किसे कहते हैं?

उत्तर प्रदेशों के साथ एकमेक संबंध को संश्लेष संबंध कहते हैं। जैसे- दूध-पानी का संबंध अथवा जीव का शरीर या कर्मों के साथ संबंध।

प्र.2086 तादात्म संबंध किसे कहते हैं?

उत्तर आत्मभूत (गुण-गुणी के) संबंध को तादात्म संबंध कहते हैं। जैसे- आत्मा और ज्ञान, दर्शन आदि गुणों का संबंध रहना।

अध्याय-20

छह अधिकारों द्वारा शास्त्र व्याख्यानादि

(मंगल का व्युत्पत्ति अर्थ, पर्यायवाची नाम आदि, चौबीस अनुयोग द्वार, निर्देशादि का लक्षण, सत् संख्यादि का लक्षण, काल-अन्तर्मुहुर्तों का स्पष्टीकरण, गुणस्थानों में भाव, अल्पबहुत्व, चार अभाव और मोक्ष की भावना आदि।)

सैद्धान्तिक-प्रकरण

प्र.2087 आचार्य कौन-से अधिकारों के व्याख्यान द्वारा शास्त्र का व्याख्यान करते हैं?

उत्तर आचार्य; मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्त्ता इन छह अधिकारों के व्याख्यान द्वारा शास्त्र का व्याख्यान करते हैं। (धवल पु.1, पृ.7)

प्र.2088 मंगल शब्द कैसे बना है या मंगल का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है?

उत्तर 1.मंग-पुण्यं या सुखं, ल-लातीति ददातीति मंगलं। अर्थात् जो पुण्य या सुख को लाता है या देता है उसे मंगल कहते हैं।

2.मं-पापं, गल-गालयतीति मंगलं। अर्थात् जो पापों को गलाये वह मंगल है। (ध.पु.1,पृ. 33)

प्र.2089 मंगल शब्द के पर्यायवाची नाम कौन-कौन-से हैं?

उत्तर मंगल, पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, शुभ, कल्याण, भद्र और सौख्य इत्यादि मंगल शब्द के पर्यायवाची नाम हैं। (ध.पु.1,पृ.31)

प्र.2090 ज्ञानीजनों ने कार्य करने के कौन-कौन से स्थानों पर मंगल करने का विधान किया है?

उत्तर ज्ञानी पुरुषों ने प्रारम्भ किये गये किसी भी कार्य के आदि, मध्य और अन्त में मंगल करने का विधान किया है।(ध.पु.1,पृ.41)

प्र.2091 मंगल या मंगलाचरण क्या है?

उत्तर कार्य की निर्विघ्न सिद्धि के लिए जिनेन्द्र भगवान (वीतराग नवदेव- अरहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनश्रुत, जिनचैत्य और चैत्यालय) के गुणों का कीर्तन करना ही मंगल या मंगलाचरण कहलाता है। (ध.पु.1,पृ.41)

प्र.2092 यदि कोई कहे कि जिनेन्द्र भगवान के गुणों का कीर्तन (गायन, बखान) तथा नमस्कार व्यवहार नय का विषय है और शुभ-परिणाम रूप होने से मात्र पुण्य-बन्ध का ही कारण है, अतः मंगल नहीं करना चाहिए।

उत्तर ऐसा कहना अनुचित है, क्योंकि गौतम स्वामी ने व्यवहार नय का आश्रय लेकर 'कृति' आदि चौबीस अनुयोग द्वारों के आदि में 'णमो जिणाणं' इत्यादि रूप से मंगल किया है।

प्र.2093 यदि कोई व्यवहार नय को असत्य माने तो उसका उत्तर क्या है?

उत्तर उसका ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उसमें (मार्ग में) व्यवहार का अनुसरण करने वाले शिष्यों की

प्रवृत्ति देखी जाती है। अतः जो व्यवहार नय बहुत जीवों का अनुग्रह (उपकार) करने वाला है उसी का आश्रय करना चाहिए ऐसा अपने मन में निश्चय करके गौतम स्वामी ने चौबीस अनुयोग द्वारों के प्रारम्भ में मंगल किया है।(जयधवल पु.1,पृ.8)

प्र.2094 चौबीस अनुयोग द्वार कौन-से हैं?

उत्तर 1.कृति, 2.वेदना, 3.स्पर्शन, 4.कर्म, 5.प्रकृति, 6.बन्ध, 7.निबन्धन, 8.प्रक्रम, 9.अनुपक्रम, 10.अभ्युदय, 11.मोक्ष, 12.संक्रम, 13.लेश्या, 14.लेश्याकर्म, 15.लेश्या-परिणाम, 16.सातासात, 17.दीर्घह्रस्व, 18.भवधारणीय, 19.पुद्गलात्म, 20.निधत्तानिधत्त, 21.निकाचितानिकाचित, 22.कर्मस्थिति, 23.पश्चिमस्कन्ध और 24.अल्पबहुत्व। विशेष देखें (षट्खण्डागम भाग-4, धवल पु.9, पृ.822)

प्र.2095 अरहंत भगवान को किया गया नमस्कार क्या केवल पुण्यबन्ध का ही कारण है या निर्जरा का भी कारण है?

उत्तर अरहंत भगवन्तों का नमस्कार तत्कालीन पुण्य बन्ध की अपेक्षा असंख्यात-गुणी कर्म निर्जरा का कारण है। अतः सराग-संयम के समान अरहंत-गुण-कीर्तन व नमस्कार में मुनियों की सत्प्रवृत्ति देखी जाती है। क्योंकि कहा भी है कि- जो विवेकी जीव भावपूर्वक अरहंत (परमेष्ठी) को नमस्कार करता है वह अतिशीघ्र समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है। (ज.ध.,पु. 1, पृ.9)

प्र.2096 कोई कहता है कि शुभोपयोग से कर्मों की निर्जरा कैसे हो सकती है? उससे मात्र पुण्य बन्ध ही होता है।

उत्तर ऐसा नहीं; क्योंकि यदि शुभ और शुद्ध इन दोनों परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाये तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता।(जयधवल पु.1,पृ.6)

प्र.2097 आचार्य देव; शास्त्र व्याख्यान के पूर्व निमित्त का कथन किस तरह से किया करते हैं?

उत्तर आचार्य देव; शास्त्र व्याख्यान से पूर्व निमित्त का कथन करते हुए कहते हैं कि- भव्य जीव श्रुतज्ञान रूपी सूर्य के दीप्त तेज से छह द्रव्य और नव-पदार्थों को भली भांति जानें, इस निमित्त से श्रुतज्ञान रूपी सूर्य का उदय हुआ है अर्थात् यह ग्रन्थ प्रभु की वाणी से गणधरों ने रचा है। (ध.पु.1, पृ.55)

प्र.2098 आचार्य परमेष्ठी; शास्त्र कथन से पूर्व हेतु-फल का महत्त्व किस तरह बतलाते हैं?

उत्तर आचार्य परमेष्ठी; शास्त्र कथन से पूर्व हेतु अर्थात् फल का महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं कि- अज्ञान का विनाश, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, देव-मनुष्यादि के द्वारा निरन्तर पूजा का होना और प्रत्येक समय में असंख्यात गुणित श्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा का होना (स्वाध्याय, शास्त्राभ्यास या ग्रन्थ रचना का) साक्षात्-प्रत्यक्ष फल है।

यह जिनागम जीव के मोह रूपी ईंधन को भस्म करने के लिए अग्नि के समान है, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है, कर्म-मल अर्थात् द्रव्य-कर्म (ज्ञानावरणादि)

और कर्म-कलुष अर्थात् भाव-कर्म (रागद्वेषादि) को मार्जन करने वाला समुद्र के समान है और परम सुभग (प्रिय) है। (ध.पु.1,पृ.59)

प्र.2099 शास्त्र या शब्दों से ज्ञान कैसे हो सकता है क्योंकि ज्ञान तो आत्मा का गुण है? अतः शास्त्र ज्ञान से क्या लाभ है?

उत्तर सिद्धान्त ग्रन्थों में आचार्यों ने कहा है कि शब्द से पद की सिद्धि होती है, पद की सिद्धि से उसके अर्थ का निर्णय होता है। अर्थ के निर्णय से तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है और तत्त्वज्ञान से परमकल्याण होता है।(धवल पु.1,पृ.10)

प्र.2100 आचार्य भगवन्; शास्त्र व्याख्यान के पूर्व शास्त्र परिमाण की व्याख्या किस तरह से करते हैं?

उत्तर आचार्य भगवन्; कहते हैं कि- अक्षर, पद और समास आदि की अपेक्षा या गाथा, सूत्र और श्लोक की अपेक्षा शास्त्र का परिमाण संख्यात है तद्वाच्य विषय की अपेक्षा शास्त्र का परिमाण अनंत है।

प्र.2101 आचार्य परमेष्ठी द्वारा शास्त्र नाम की व्याख्या किस तरह से की जाती है?

उत्तर आचार्य परमेष्ठी द्वारा व्याख्यान योग्य किसी शास्त्र का नाम रखा जाना या उसके नाम का कथन किया जाना नाम अधिकार कहलाता है। जैसे- इस शास्त्र का नाम 'आगम-अनुयोग' है।

प्र.2102 आचार्य देव; शास्त्र-व्याख्यान से पूर्व शास्त्र-कर्त्ता का व्याख्यान किस तरह से करते हैं?

उत्तर आचार्य देव; शास्त्र व्याख्यान से पूर्व कहते हैं कि- अर्थ कर्त्ता और ग्रन्थकर्त्ता के भेद से कर्त्ता दो प्रकार के होते हैं। जैसे- तीर्थंकर श्री 1008 महावीर भगवान अर्थकर्त्ता हैं। श्री 108 गौतमस्वामी गणधर देव द्रव्य श्रुत के कर्त्ता हैं। इस तरह केवली, श्रुतकेवली और अंगादि श्रुत के धारियों की परम्परा से आता हुआ श्रुत क्षीण-क्षीण होता गया और वह ज्ञान आचार्यश्री विद्यासागरजी से आचार्यश्री आर्जवसागर को मिला। इस 'आगम-अनुयोग' कृति के कर्त्ता का नाम है- आचार्य आर्जवसागर।

प्र.2103 प्रमाण के भेद रूप स्वार्थ और परार्थ से क्या तात्पर्य है?

उत्तर श्रुतज्ञान को छोड़कर शेष मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान स्वार्थ प्रमाण है तथा श्रुतज्ञान स्वार्थ प्रमाण भी है और परार्थ प्रमाण भी है। ज्ञानात्मक श्रुत स्वार्थ प्रमाण है और वचनात्मक श्रुत परार्थ प्रमाण है।

प्र.2104 वचनात्मक श्रुत के विकल्पों (भेदों) को क्या कहते हैं?

उत्तर वचनात्मक श्रुत के विकल्पों को नय कहते हैं। नयों का वर्णन पूर्व में ही किया जा चुका है।

प्र.2105 नयों की दृष्टि में प्रमाण को प्रधानता क्यों है?

उत्तर क्योंकि नयों की उत्पत्ति में प्रमाण कारण होने से वह प्रधान है। प्रमाण के द्वारा पदार्थों को जानकर उसके विशेष अर्थ की अवधारणा करना नय कहलाता है। (स.सि.अ.1,सू.6)

प्र.2106 प्रमाण और नयों द्वारा जाने गये जीवादि पदार्थों के ज्ञान के उपरान्त जीवादि या सम्यग्दर्शनादि को जानने के दूसरे भी कोई उपाय हैं क्या? अगर आगम में हैं तो बतलाइये।

उत्तर हाँ! हैं; निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान के द्वारा भी सम्यग्दर्शनादि विषयों का ज्ञान होता है।

प्र.2107 निर्देशादि का लक्षण क्या है संक्षिप्त में समझाइये?

उत्तर 1.किसी वस्तु के स्वरूप या नाम का कथन करना **निर्देश** कहलाता है। जैसे-सम्यग्दर्शन है।

2. किसी वस्तु के स्वामी का कथन करना **स्वामित्व** कहलाता है। जैसे- सम्यग्दर्शन का स्वामी संज्ञी पञ्चेन्द्रिय भव्य जीव है।

3. किसी वस्तु की उत्पत्ति के कारण या निमित्त बतलाना **साधन** कहलाता है। जैसे-सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में कारण जिन-बिम्ब दर्शन, धर्मोपदेश व जातिस्मरण आदि हैं।

4. किसी वस्तु का आधार बतलाना **अधिकरण** कहलाता है। जैसे-सम्यग्दर्शन; संज्ञी पञ्चेन्द्रिय भव्य जीव के आधार से रहता है और सम्यग्दृष्टि आत्मा लोक के आधार से रहती है।

5. किसी वस्तु के रहने के काल की मर्यादा (सीमा) बतलाना **स्थिति** कहलाती है। जैसे-सम्यग्दर्शन के भेद उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक की अपेक्षा क्रमशः अन्तर्मुहूर्त्त, अन्तर्मुहूर्त्त से लेकर छ्यासठ सागरोपम, संसार में रहने की अपेक्षा एक, दो, तीन व चार भव या मोक्ष की अपेक्षा अनन्तकाल की स्थिति होती है।

6. किसी वस्तु के भेद-प्रभेद बतलाना **विधान** कहलाता है। जैसे-सम्यग्दर्शन के उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक रूप तीन भेद। निसर्गज और अधिगमज रूप से दो भेद। सराग-वीतराग रूप से भी दो भेद और आज्ञा, मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार, अर्थ, अवगाढ़ और परमावगाढ़ रूप दस भेद हैं। (विशेष-गति आदि के भेद से देखें-सर्वार्थसिद्धि अ.1,सू.7)

प्र.2108 नरकगति में प्रथम भूमि में अपर्याप्त अवस्था में वेदक सम्यग्दर्शन या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन किस तरह घटित होता है?

उत्तर जिस जीव ने मिथ्यात्व अवस्था में नरकायु का बंध किया था, तदुपरांत केवली, श्रुतकेवली के पादमूल में दर्शन-मोह का क्षपण प्रारम्भ किया और चार अनन्तानुबन्धी, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का क्षय करके कृतकृत्य अवस्था को प्राप्त हुआ परन्तु सम्यक्प्रकृति का वेदन कर रहा है, अतः वेदक सम्यग्दृष्टि है, ऐसा कर्मभूमिया मानव वेदक सम्यग्दर्शन से युक्त मरणकर प्रथम नरक में गया तथा अन्तर्मुहूर्त्त के बाद पर्याप्ति पूर्ण कर सम्यक्प्रकृति का क्षयकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि बन जाता है, अतः कृतकृत्य वेदक की अपेक्षा प्रथम नरक में अपर्याप्त अवस्था में वेदक सम्यग्दर्शन क्षायोशमिक सम्यग्दर्शन पाया जाता है। वास्तव में अपर्याप्त अवस्था में क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है।

प्र.2109 सम्यक्प्रकृति के क्षय करने में कितना काल आपेक्षित है? और कृतकृत्य वेदक कब तक कहलाता है?

उत्तर सम्यक्प्रकृति के क्षय करने में छह आवली काल लगता है और बीच में ही मरण हो जाये तो मरण से

पूर्व मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति का क्षय कर कृतकृत्य संज्ञा को प्राप्त जीव और सम्यक् प्रकृति का वेदन करता हुआ छह आवली के अन्दर ही अपर्याप्त अवस्था में कृतकृत्य वेदक कहलाता हुआ पुनः पर्याप्त होकर सम्यक् प्रकृति का क्षय कर देता है और क्षायिक सम्यग्दृष्टि बन जाता है।

प्र.2110 स्त्री पर्याय में क्षायिक सम्यग्दर्शन घटित होता है क्या?

उत्तर सम्यग्दृष्टियों की उत्पत्ति स्त्री पर्याय में नहीं होती। मनुष्यिनी के क्षायिक सम्यग्दर्शन का जो कथन है वह भाव स्त्री की अपेक्षा से है। अर्थात् नाम कर्म से उत्पन्न पुरुषाकार चिह्न से युक्त द्रव्य से जो पुरुष लिंगी है परन्तु चारित्र मोहनीय कर्म से उत्पन्न भाववेद की अपेक्षा स्त्रीवेदी है, उसके क्षायिक सम्यग्दर्शन हो सकता है अतः स्त्रीवेदी के (भाववेद की अपेक्षा) तीनों सम्यग्दर्शनों का कथन किया है।

प्र.2111 जब उपशम सम्यग्दर्शन सहित प्राणी का मरण नहीं होता तब देवों को अपर्याप्त अवस्था में औपशमिक सम्यग्दर्शन कैसे घटित हो सकता है?

उत्तर जो भव्य मनुष्य चारित्र मोहनीय कर्म का उपशम करके या करते हुए उपशम श्रेणी में मरण कर देव होते हैं, उन देवों को अपर्याप्त अवस्था में औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है अर्थात् यद्यपि मिथ्यात्व पूर्वक उपशम (प्रथमोपशम) सम्यग्दर्शन सहित प्राणी का मरण नहीं होता किन्तु वेदक सम्यक्त्व पूर्वक उपशम सम्यग्दर्शन (द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन) सहित प्राणी का तो मरण हो सकता है। क्योंकि द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन युक्त मुनिराज उपशम श्रेणी पर आरूढ़ होते हैं तथा श्रेण्यारोहण के समय चारित्रमोह के उपशम के साथ मरण होने पर विग्रह गति में अपर्याप्त देवों के भी उपशम सम्यग्दर्शन हो सकता है।

प्र.2112 कौन-से देव और देवांगनाओं में क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता? तथा भवनत्रिक देव एवं सभी तरह की देवांगनाओं की अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दर्शन सम्बन्धी क्या नियम है?

उत्तर भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों एवं उनकी देवांगनाओं के तथा सौधर्म, ऐशान कल्पवासी देवांगनाओं के क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता। उनके पर्याप्त अवस्था में औपशमिक और क्षायोपशमिक ये दो सम्यग्दर्शन हो सकते हैं- अपर्याप्त अवस्था में मिथ्यादर्शन रहता है। अतः इनके अपर्याप्त अवस्था में कोई भी सम्यग्दर्शन नहीं होता क्योंकि व्यन्तर, भवनवासी, ज्योतिषी इन तीन प्रकार के देवों में तथा सर्व चारों प्रकार के देवों की देवांगनाओं में सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होते हैं। (स.सि.अ. 1, सूत्र 7)

प्र.2113 क्षयोपशमिक सम्यग्दर्शन का उत्कृष्ट काल 66 सागरोपम किस तरह घटित होता है?

उत्तर जैसे कोई एक जीव उपशम सम्यग्दर्शन से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होकर शेष भुज्यमान आयु से कम बीस सागरोपम आयु वाले देवों में उत्पन्न हुआ। पुनः मनुष्यों में उत्पन्न होकर मनुष्य भव के सुखों का अनुभव कर मनुष्यभव की आयु से कम बाईस सागरोपम की आयु वाले देवों में उत्पन्न हुआ फिर

मनुष्य गति में जाकर भुज्यमान मनुष्यायु से तथा दर्शनमोह की क्षपणा पर्यन्त आगे भोगी जानी वाली मनुष्य आयु से कम चौबीस सागरोपम-प्रमाण आयु वाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से फिर मनुष्य गति में आकर वहाँ वेदक सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त्त रह जाने पर दर्शनमोह की क्षपणा प्रारम्भ करके कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होकर कृतकृत्य वेदक के अन्तिम समय तक स्थिर रहता है तब क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन का उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागरोपम घटित होता है।

प्र.2114 पदार्थों के जानने के उपायों में आपने जिस तरह संक्षेप में निर्देश आदि का स्वरूप बतलाया है वैसे ही अब अन्य तरह से वर्णित सत्, संख्या आदि का स्वरूप भी बतलाइये?

उत्तर सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व रूप आठ अनुयोग-द्वारों से भी जीवादि पदार्थों या सम्यग्दर्शनादि का ज्ञान होता है।

प्र.2115 सत्, संख्यादि आठ अनुयोग-द्वारों का लक्षण क्या है? उदाहरण सह इनका स्वरूप भी संक्षेप में अवश्य समझाइये?

उत्तर **1. अस्तित्व का निर्देशक शब्द सत् कहलाता है।** जैसे- जीव सामान्य (ओघ) रूप गुणस्थानों की अपेक्षा से चौदह गुणस्थानों में स्थित है, या कौन-कौन-से जीव कौन-कौन-से गुणस्थानों में स्थित हैं और विशेष रूप मार्गणाओं की अपेक्षा किन-किन गति, इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणाओं में कौन-कौन-से गुणस्थान वाले जीव पाये जाते हैं इत्यादि। (विशेष देखें- सर्वार्थसिद्धि अ.1, सू.8), (धवलग्रंथ)

2. भेद-गणना को संख्या कहा जाता है। जैसे- कौन-कौन-से गुणस्थान में कितनी संख्या में जीव पाये जाते हैं और कौन-कौन-सी मार्गणाओं में कौन-कौन-से गुणस्थान वाले कितनी-कितनी संख्या में जीव पाये जाते हैं इत्यादि।

3. वर्तमान कालीन विषय निवास क्षेत्र कहलाता है। जैसे- कौन-कौन-से गुणस्थान वाले जीवों के रहने का क्षेत्र कितना है और कौन-कौन-सी मार्गणाओं में कौन-कौन-से गुणस्थान वाले जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं इत्यादि।

4. त्रिकाल गोचर (संबन्धित) निवास क्षेत्र को स्पर्श या स्पर्शन कहते हैं। जैसे- कौन-कौन से गुणस्थान वाले जीवों ने किस-किस अपेक्षा से लोक के कितने-कितने स्थान का स्पर्श किया और कौन-कौन-सी मार्गणाओं में कौन-कौन-से गुणस्थान वाले जीव लोक के कितने भाग का स्पर्श करते हैं इत्यादि।

5. समय की मर्यादा पूर्वक जीवों की गणना करने को काल (या व्यवहार काल) कहा जाता है। जैसे- कौन-कौन-से गुणस्थानों में जीवों के रहने का काल कितना-कितना है और कौन-कौन-सी मार्गणाओं में कौन-कौन-से गुणस्थान वाले जीव कितनी-कितनी काल मर्यादा तक रहते हैं इत्यादि।

6. विरहकाल (अन्तराल-काल) को अन्तर कहते हैं। अर्थात् एक अवस्था को छोड़कर जीव बीच में कितनी ही अन्य अवस्थाओं को प्राप्त कर पुनः उसी अवस्था को प्राप्त करता है, इस तरह दोनों अवस्थाओं के बीच का जो विरह या अन्तराल काल है उसे अन्तर कहते हैं।

जैसे- किस गुणस्थान में जीव बीच में किसी अन्य गुणस्थान को पाकर पुन- स्व स्थान में कितने समय पश्चात् लौटकर आता है और किस मार्गणा के किस गुणस्थान से किस गुणस्थान को पाकर पुनः अपने गुणस्थान को कितने काल के उपरान्त प्राप्त करता है इत्यादि।

7. **औपशमिक और क्षायोपशमिक आदि भाव को (या वस्तु की गुणवत्ता को) भाव कहा जाता है।** जैसे- जीव का यह गुणस्थान ही इस भाव रूप है या इस गुणस्थान में औपशमिक आदि इतने भाव होते हैं, और मार्गणानुसार इस गति के इस गुणस्थान में इतने भाव होते हैं इत्यादि।

8. अन्य की अपेक्षा से जो विशेष ज्ञान रूप प्रतिपत्ति होती है उसको अल्पबहुत्व कहते हैं। जैसे- किस गुणस्थान में किस गुणस्थान की अपेक्षा कितने न्यून या कितने अधिक जीव हैं और किस मार्गणा के किस गुणस्थान में कितने न्यूनाधिक जीव रहते हैं इत्यादि। विशेष देखें (सर्वार्थसिद्धि अ.1, सूत्र 8), (धवलग्रन्थ)

प्र.2116 एकेन्द्रिय से लेकर चौइन्द्रिय तक या असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों में एक ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान क्यों कहा है?

उत्तर क्योंकि उनमें इन्द्रिय विकलता होने से और ईषत्-इन्द्रिय रूप मन का अभाव होने से तत्त्वों के ज्ञान करने की वा समझने की सामर्थ्य नहीं होती अर्थात् देशना लब्धि की योग्यता नहीं पायी जाती है, अतः वे एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान वाले ही कहलाते हैं।

प्र.2117 स्त्री, पुरुष और नपुंसक रूप तीनों वेदों में मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्ति बादर तक नौ ही गुणस्थान क्यों बतलाये हैं?

उत्तर क्योंकि वेद चारित्र मोहनीय के भेद हैं और चारित्रमोहनीय का उदय नवमें गुणस्थान तक ही रहता है, आगे नहीं।

प्र.2118 सयोग केवली और अयोग केवली संज्ञी और असंज्ञी नाम से रहित क्यों हैं?

उत्तर संज्ञी-पने में कारण मन है और मन ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से होता है, परन्तु तेरहवें एवं चौदहवें गुणस्थान में ज्ञानावरण कर्म का क्षय है अतः भाव मन के अभाव होने से वे केवली तथा मन, वचन, काय रूपी योग रहित अयोग केवली संज्ञी-असंज्ञी व्यपदेश से रहित हैं।

प्र.2119 आहारकों में कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर आहारकों में मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली तक तेरह गुणस्थान होते हैं।

प्र.2120 विग्रह गति को प्राप्त अनाहारकों में कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर विग्रह गति को प्राप्त अनाहारकों में मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि ये तीन

गुणस्थान होते हैं।

प्र.2121 समुद्घात गत सयोग केवली और अयोग केवली की आहारक और अनाहारक के क्षेत्र में क्या व्यवस्था है?

उत्तर समुद्घात गत सयोगकेवली और अयोग केवली अनाहारक होते हैं।

प्र.2122 आगम में आहार कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर आगम में आहार छह प्रकार का कहा गया है- 1.कवलाहार, 2.मानसिक-आहार, 3.ओजाहार, 4.लेपाहार, 5.कर्माहार और 5.नोकर्माहार।

प्र.2123 कवलाहार किसे कहते हैं और वह किन जीवों के होता है?

उत्तर ग्रास लेकर रसना इन्द्रिय के द्वारा जो खाया जाता है उसे कवलाहार कहते हैं, जो दो इन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य किया करते हैं।

प्र.2124 मानसिकाहार किसे कहते हैं और वह किन जीवों द्वारा किया जाता है?

उत्तर कण्ठ में अमृत झर जाना मानसिक आहार कहलाता है। जैसे- खाने की इच्छा होने पर देवों के कण्ठ में अमृत झर जाना।

प्र.2125 ओजाहार किसे कहते हैं और वह किसके होता है?

उत्तर अण्डज पक्षियों द्वारा ऊर्जा या उष्णता प्राप्त होने रूप जो आहार होता है वह ओजाहार कहलाता है। जैसे-अण्डों पर पंख फैलाकर प्रमुखता से मादा पक्षी द्वारा ऊर्जा का दिया जाना।

प्र.2126 लेपाहार किसे कहते हैं और वह किसके होता है?

उत्तर मिट्टी, जल के लेप या सम्पर्क से जीवन संवर्धित होना लेपाहार कहलाता है। जैसे- मिट्टी और जल के सम्पर्क से वनस्पति वृद्धि को प्राप्त होती है।

प्र.2127 कर्माहार किसे कहते हैं और वह किसके होता है?

उत्तर जीव के परिणामों द्वारा प्रतिक्षण कर्म वर्गणाओं का ग्रहण किया जाना कर्माहार कहलाता है। जैसे- नारकी जीवों का अन्य आहारों के बिना कर्म वर्गणाओं के ग्रहण रूप कर्माहार ही होता है।

प्र.2128 नोकर्माहार किसे कहते हैं और वह किस जीव के होता है?

उत्तर तीन शरीर (औदारिक, वैक्रियिक और आहारक) छह पर्याप्ति (आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा और मन) के योग्य पुद्गल वर्गणाओं का ग्रहण नोकर्माहार कहलाता है। जैसे- ऐसा आहार विग्रहगति और केवली समुद्घात को छोड़कर सर्व संसारी जीवों के प्राप्त होता है।

प्र.2129 प्रथम गुणस्थान से लेकर पंचम गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में रहने वाले जीवों की संख्या कितनी है?

उत्तर ✡ मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं।

✡ सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयातासंयत इनमें से प्रत्येक

गुणस्थान वाले जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। (जो कि पूर्व कोटि से अधिक कहना चाहिए।)

प्र.2130 प्रमत्त-संयत और अप्रमत्त-संयत मुनीश्वरों की संख्या कितनी है? अर्थात् छठे और सातवें गुणस्थान में कितने-कितने जीव हैं।

उत्तर प्रमत्त-संयतों की संख्या कोटि पृथक्त्व है अर्थात् पाँच करोड़ तिरानवै लाख अठानवै हजार दो सौ छह हैं (अंकों में 5,93,98,206 है)।

अप्रमत्त-संयत संख्यात हैं अर्थात् दो करोड़ छ्यानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन हैं (अंकों में 2,96,99,103 हैं)।

प्र.2131 चारों उपशमक अर्थात् आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें गुणस्थान के मुनीश्वरों की संख्या कितनी है?

उत्तर चारों उपशमक गुणस्थान वाले मुनीश्वर प्रवेश की अपेक्षा एक, दो या तीन हैं, उत्कृष्ट रूप से चौवन हैं और अपने काल के द्वारा संचित हुए उक्त जीव संख्यात अर्थात् प्रत्येक गुणस्थान में 299 और कुल 1196 हैं (शब्दों में ग्यारह सौ छ्यानवे हैं)।

प्र.2132 चारों क्षपक अर्थात् आठवें, नौवें, दसवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनीश्वरों की संख्या कितनी है?

उत्तर चारों क्षपक मुनीश्वर प्रवेश की अपेक्षा एक, दो या तीन हैं, उत्कृष्ट रूप से एक सौ आठ हैं और अपने काल के द्वारा संचित हुए उक्त जीव संख्यात हैं अर्थात् प्रत्येक गुणस्थान में 598 और कुल 2392 हैं। (शब्दों में तेइस सौ बानवे) हैं।

प्र.2133 सयोग केवली गुणस्थानवर्ती मुनीश्वरों की संख्या कितनी है?

उत्तर सयोग केवली गुणस्थानवर्ती जीव प्रवेश की अपेक्षा एक, दो या तीन हैं, उत्कृष्ट रूप से एक सौ आठ हैं और अपने काल के द्वारा संचित हुये उक्त जीव लाख पृथक्त्व हैं अर्थात् 8,98,502 हैं (शब्दों में आठ लाख अंठानवे हजार पाँच सौ दो हैं)।

प्र.2134 अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती मुनीश्वरों की संख्या कितनी है?

उत्तर अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती जीव प्रवेश की अपेक्षा एक, दो या तीन हैं। उत्कृष्ट रूप से एक सौ आठ हैं और अपने काल के द्वारा संचित हुये जीव संख्यात हैं अर्थात् कुल 598 हैं। (शब्दों में पाँच सौ अंठानवे) (विशेष देखें- स.सि.अ.1 सू. 8)

प्र.2135 छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवे गुणस्थान तक रहने वाले नग्न दिगम्बर मुनीश्वर-संयतों की कुल संख्या कितनी है?

उत्तर छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक रहने वाले सम्यग्दृष्टि निर्ग्रन्थ मुनीश्वर-संयतों की उत्कृष्ट संख्या 8,99,99,997 (शब्दों में आठ करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ सत्तानवे

है। अर्थात् तीन कम नौ करोड़ होती है।)

प्र.2136 मुनियों के सम्पूर्ण गुणस्थानों की संख्या बतलाते समय यह उत्कृष्ट संख्या है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर प्रमत्त संयत आदि मुनीश्वर उत्कृष्ट रूप से यदि एक समय में एकत्र होते हैं तो उनकी संख्या तीन कम नौ करोड़ होती है।

एक मत से जो जीव आठ समयों में इन श्रेणियों के आठवें गुणस्थान में चढ़े हैं वे ही अन्तर्मुहूर्त्त बाद नौवें गुणस्थान में पहुँचते हैं। इसी तरह आगे भी जानना चाहिए और इस प्रकार समय भेद से अन्तर्मुहूर्त्त के भीतर सब संयत मुनीश्वरों की संख्या 8,99,99,997 सिद्ध हो जाती है, ऐसा उत्कृष्ट संख्या का अभिप्राय है।

प्र.2137 क्या अच्युत नामक सोलहवें स्वर्ग के देव नीचे अधोलोक सम्बंधी तीसरी पृथ्वी तक जाकर नारकियों के लिए सम्बोधन दे सकते हैं?

उत्तर हाँ! परस्थान विहार की अपेक्षा नारकियों को सम्बोधन करने के लिए (सासादन गुणस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि) अच्युत स्वर्ग के देव तीसरी पृथ्वी तक नारकियों को सम्बोधन करने के लिए जाते हैं। तीसरी पृथ्वी सोलहवें स्वर्ग से आठ राजू है अतः परस्थान विहार की अपेक्षा कुछ कम 14 राजू में से 8 राजू स्पर्श होता है।

प्र.2138 मनुष्य गति में प्रथम गुणस्थान से लेकर पंचम गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में रहने वाले जीवों की संख्या कितनी है?

उत्तर 1. प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में असंख्यात मनुष्य जीव हैं।

2 .द्वितीय सासादन गुणस्थान में बावन करोड़ मनुष्य हैं।

3. तृतीय सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में एक सौ चार करोड़ मनुष्य हैं।

4. चतुर्थ असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सात सौ करोड़ मनुष्य हैं।

5. पंचम संयतासंयत गुणस्थान में तेरह करोड़ मनुष्य हैं।

प्र.2139 काय मार्गणा की अपेक्षा पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों की संख्या कितनी है?

उत्तर पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों की संख्या असंख्यात लोक प्रमाण है, अर्थात् पूर्ण लोक इन पृथ्वीकायिक आदि के सूक्ष्म अथवा बादर भेदों से भरा हुआ है।

प्र.2140 वनस्पतिकायिक जीवों की संख्या कितनी है?

उत्तर वनस्पतिकायिक जीवों की संख्या अनन्तानन्त है।

प्र.2141 त्रस काय अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की संख्या कितनी है?

उत्तर दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की संख्या असंख्यात-असंख्यात है।

प्र.2142 औपशमिक सम्यग्दर्शन के साथ मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद (उत्पत्ति-जन्म) सम्भव

है क्या है?

उत्तर औपशमिक सम्यग्दर्शन के साथ किसी भी गति में मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद सम्भव नहीं है, परन्तु उपशम श्रेणी में होने वाले द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन के साथ मनुष्यों का ऐसा मारणान्तिक समुद्घात एवं उपपाद सम्भव है।

प्र.2143 असंयत सम्यग्दृष्टि का अन्तमुहूर्त्त कम एक पूर्व कोटि अधिक एक समय कम तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट काल कैसे घटित होता है?

उत्तर जो उपशम श्रेणी वाला जीव मरण कर एक समय कम तेतीस सागरोपम की आयु लेकर अनुत्तर विमान में उत्पन्न होता है, फिर पूर्वकोटि की आयु वाले मनुष्यों में जन्म लेकर जीवन भर असंयम के साथ रहा है, केवल जीवन में अन्तर्मुहूर्त्त काल शेष रहने पर संयम को प्राप्त होकर सिद्धपद को प्राप्त होता है, उस जीव के असंयत सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्टकाल घटित होता है(स.सि.,अ.1 सू. 8)

प्र.2144 संयमासंयम का अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पूर्वकोटि उत्कृष्ट काल कैसे घटित होता है?

उत्तर पूर्वकोटि की आयु वाला जो सम्मूर्छिम तिर्यञ्च उत्पन्न होने के अन्तर्मुहूर्त्त बाद क्षयोपशम सम्यग्दर्शन के साथ संयमासंयम को प्राप्त करता है, उस जीव के संयमासंयम का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पूर्व कोटि घटित होता है।

प्र.2145 अधोलोक सम्बन्धी सातों पृथ्वियों में सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल कैसे घटित होता है?

उत्तर प्रथम पृथ्वी में सम्यक्त्व के साथ जन्म लेकर पूर्ण आयु एक सागरोपम पर्यन्त सम्यक्त्व के साथ घटित होता है और सम्यक्त्व के साथ निकल भी सकता है। अथवा कोई जीव प्रथम पृथ्वी में या छह पृथ्वियों में मिथ्यात्व के साथ उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त्त बाद सम्यक्त्व को प्राप्त कर जीवन पर्यन्त सम्यक्त्व के साथ रह सकता है। लेकिन सातवी पृथ्वी में प्रवेश और उससे निर्गम मिथ्यात्व के साथ होता है बीच के काल में सम्यक्त्व के साथ बने रहने में कोई बाधा नहीं होती है। अतः प्रथम पृथ्वी में उस पृथ्वी की पूर्ण आयु पर्यन्त सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति (काल), द्वितीय से लेकर छठी पृथ्वी तक प्रारम्भ के अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्ण आयु तक सम्यक्त्व की स्थिति का काल और सातवी पृथ्वी में प्रारम्भ और अंत के अन्तर्मुहूर्त्त कम अपनी पूर्ण आयु पर्यन्त सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल घटित होता है। (एक अन्तर्मुहूर्त में लघु अनेक अन्तर्मुहूर्त्त घटित हो सकते हैं।)

प्र.2146 एक सादिसान्त मिथ्यादृष्टि जीव का मिथ्यात्व का उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन कैसे घटित होता है?

उत्तर जैसे कोई भव्य जीव अल्प कालिक अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण उपशम सम्यक्त्व के काल को बिताकर पुनः मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होकर मिथ्यादृष्टि हुआ और मिथ्यात्व के साथ कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल संसार में परिभ्रमण कर अन्तिम भव में मनुष्य हुआ और संसार परिभ्रमण के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त्त (जिसमें लघु अनेक अन्तर्मुहूर्त्त होते हैं) में संयम धारण कर क्षपक श्रेणी में

शुक्लध्यान के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर मोक्ष पा लेता है। तब सादिसान्त मिथ्यादृष्टि जीव के मिथ्यात्व का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन घटित होता है।

प्र.2147 लघु अन्तर्मुहूर्त्त से क्या तात्पर्य है और इसमें किस तरह से मोक्ष जाने तक कौन-कौन से कार्य हुआ करते हैं?

उत्तर समय, आवलि से लेकर 48 मिनट में एक समय कम रहने तक एक ही अन्तर्मुहूर्त्त कहलाता है। परन्तु इस अन्तर्मुहूर्त्त में अनेक लघु अन्तर्मुहूर्त्त हुआ करते हैं। जैसे- 1.पाँच प्रकृतियों का उपशम कर प्रथमोपशम सम्यक्त्व को पाना, 2.तीन करण कर प्रथमोशम सम्यक्त्व को प्राप्त करना, 3.वेदक सम्यक्त्व को पाना, 4.अनन्तानुबन्धी का विसंयोजन करना, 5.दर्शनमोहनीय का क्षय करना, 6.अप्रमत्तसंयत होना, 7.प्रमत्ताप्रमत्त में पुनरावृत्ति होना, 8.क्षपक श्रेणी हेतु अधः प्रवृत्तकरण करना, 9.अपूर्वकरण क्षपक होना, 10.अनिवृत्तिकरण क्षपक होना, 11.सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक होना, 12. क्षीण कषाय वीतराग छद्मस्थ क्षपक होना, 13.सयोगकेवली होना, 14.अयोगकेवली होकर सिद्ध पद पाना। इस तरह तेरह कार्य हेतु13 अन्तर्मुहूर्त्त एक बड़े अन्तर्मुहूर्त्त में हुआ करते हैं। पांच प्रकृतियों का उपशम तीन कारणों के माध्यम से एक अन्तर्मुहूर्त में होता है अतः तेरह कार्यों का तेरह अन्तर्मुहूर्त में होने वाला बतलाया गया है।

प्र.2148 मनुष्य गति में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का काल एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट रूप से पूर्वकोटि पृथक्त्व अर्थात् सैंतालीस पूर्वकोटि से अधिक तीन पल्योपम कैसे घटित होता है?

उत्तर इसका समाधान यह है कि किसी जीव ने नपुंसक वेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेद के साथ आठ-आठ बार पूर्वकोटि की आयु से उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त्त के अन्दर लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य के आठ क्षुद्र भव धारण किये, उसके पश्चात् उस जीव ने पुनः नपुंसकवेद और स्त्री वेद के साथ आठ-आठ भव पूर्व-कोटि की आयु के साथ धारण किये, किन्तु पुरुषवेद के साथ सात, सात बार ही पूर्वकोटि की आयु में उत्पन्न हुआ उसके बाद भोगभूमि में तीन पल्योपम की आयु को प्राप्त किया और तत्पश्चात् वह देव हो गया। इस तरह उस जीव के एक अन्तर्मुहूर्त्त तीन पल्योपम अधिक सैंतालीस पूर्वकोटि काल घटित होता है।

प्र.2149 क्षुद्र-भव का अर्थ क्या है एवं एक अन्तर्मुहूर्त्त में कितने क्षुद्र-भव धारण हो सकते हैं?

उत्तर जब एक मुहूर्त्त के भीतर अर्थात् अन्तर्मुहूर्त्त में एकेन्द्रिय होकर कोई जीव छियासठ हजार एक सौ बत्तीस बार जन्म मरण करता है तथा वही जीव उसी मुहूर्त्त में दो इन्द्रिय के अस्सी, तीन इन्द्रिय के साठ, चौइन्द्रिय के चालीस और पञ्चेन्द्रिय के चौबीस जन्म मरण धारण करता है। तब ये सभी क्षुद्र-भव मिलकर छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस जन्म मरण रूप होते हैं। तब एक उच्छ्वास में जो अठारह बार जन्म मरण प्राप्त होते हैं उसमें से एक की ही संज्ञा क्षुद्रभव है।

प्र.2150 आयु स्थिति और भव स्थिति किसे कहते है?

उत्तर अनेक जन्मों की आयु स्थिति का युगपत् कथन भव स्थिति कहलाता है और एक जन्म की स्थिति

आयुस्थिति कहलाती है जैसे-मनुष्यों के लगातार आठ भव का कथन भव स्थिति है और मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम कहना यह आयु स्थिति है।

प्र.2151 पञ्चेन्द्रिय जीवों में मिथ्यादृष्टि अवस्था के एक सामान्य पर्याप्तक अपर्याप्तक जीव की अपेक्षा कितना उत्कृष्ट काल घटित होता है?

उत्तर पञ्चेन्द्रिय अवस्था को प्राप्त हुआ जीव जब तक अन्य इन्द्रिय (विकलेन्द्रिय या स्थावर) अवस्था को प्राप्त न हो जावे तब तक पञ्चेन्द्रिय जीव का उत्कृष्ट काल जानना चाहिए। ऐसे पञ्चेन्द्रिय जीव का उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व(छियानवे पूर्वकोटि) से अधिक एक हजार सागरोपम है। जैसे- जो जीव नपुंकसक वेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेद में संज्ञी रूप से आठ-आठ बार एक पूर्वकोटि की आयु लेकर उत्पन्न होता है। मध्य में अन्तर्मुहूर्त्त में आठ बार क्षुद्र-भव धारी पंचेन्द्रिय होता है। पुनः दूसरी बार नपुंसक वेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेद में संज्ञी और असंज्ञी के रूप में अड़तालीस पूर्वकोटि आयु घटित करना, इस तरह छियानवे पूर्व कोटि और सौधर्म, माहेन्द्र विमान में और प्रथम पृथ्वी में चार-चार बार उत्पन्न होने से तथा द्वितीयादिक छह पृथ्वियों में ब्रह्म कल्प से आदि लेकर आरणाच्युत कल्प तक के देवों में पाँच-पाँच बार उत्पन्न होने से (सात पृथ्वियों में 4 + 15 +35 + 50 + 85 + 110 +165 =464, सौधर्म कल्प, माहेन्द्र आदि कल्पों में 8 + 28 + 50 + 70 + 80 + 90 + 100 + 110 = 536 अर्थात् 464 + 536 = 1000 सागरोपम) उत्कृष्ट काल छियानवे पूर्वकोटि अधिक एक हजार सागरोपम पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि सामान्य अर्थात् पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव का घटित होता है। इसी विषय के लिए चार्ट से समझें-

पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि के एक हजार सागरोपम

(प्रथमादि पृथ्वियों संबंधी)

क्र	किस पृथ्वी में	पृथ्वियों में उत्कृष्ट आयु	कितनी बार	कुल आयु
1.	प्रथम पृथ्वी	1 सागरोपम	4 बार	4 सागरोपम
2.	द्वितीय पृथ्वी	3 सागरोपम	5 बार	15 सागरोपम
3.	तृतीय पृथ्वी	7 सागरोपम	5 बार	35 सागरोपम
4.	चतुर्थ पृथ्वी	10 सागरोपम	5 बार	50 सागरोपम
5.	पंचम पृथ्वी	17 सागरोपम	5 बार	85 सागरोपम
6.	षष्ठम पृथ्वी	22 सागरोपम	5 बार	110 सागरोपम
7.	सप्तम पृथ्वी	33 सागरोपम	5 बार	165 सागरोपम
		सातों पृथ्वियों में कुल आयु- 464 सागरोपम		

सौधर्मादि कल्पों संबंधी

क्र.	किस कल्प में	कल्पों में उत्कृष्ट आयु	कितनी बार	कुल आयु
1.	सौधर्म-ईशान	2 सागरोपम	4 बार	8 सागर
2.	सानत्कुमार-माहेन्द्र	7 सागरोपम	4 बार	28 सागर
3.	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	10 सागरोपम	5 बार	50 सागर
4.	लांतव-कपिष्ठ	14 सागरोपम	5 बार	70 सागर
5.	शुक्र-महाशुक्र	16 सागरोपम	5 बार	80 सागर
6.	शतार-सहस्रार	18 सागरोपम	5 बार	90 सागर
7.	आनत-प्राणत	20 सागरोपम	5 बार	100 सागर
8.	आरण-अच्युत	22 सागरोपम	5 बार	110 सागर
			आठों कल्पों में जीवों की कुल आयु -	536 सागरोपम

प्र.2152 संयतासंयत का एक जीव की अपेक्षा कुछ अधिक (साधिक) छियासठ सागरोपम अन्तर काल किस तरह से घटित होता है?

उत्तर एक जीव मनुष्य पर्याय में उत्पन्न हुआ। आठ वर्षोपरान्त एक साथ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और संयमासंयम को प्राप्त हुआ। पुनः अन्तर्मुहूर्त्त संयम को प्राप्त करके अन्तर को प्राप्त हुआ। संयम के साथ पूर्वकोटि काल बिताकर तैतीस सागरोपम की आयु के साथ देव हुआ। वहाँ से च्युत होकर पूर्वकोटि आयु के साथ मनुष्य हुआ। पुनः संयम धारण कर और मरण कर तैतीस सागरोपम की आयु लेकर देव हुआ। वहाँ से च्युत हो पुनः पूर्वकोटि आयु लेकर मनुष्य हुआ। वहाँ दीर्घकाल तक रहकर संयमासंयम को प्राप्त हुआ। इस तरह आठ वर्ष कुछ अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पूर्वकोटि अधिक छियासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर काल एक जीव की अपेक्षा संयमासंयम का काल घटित होता है। (ध.पु.5, पृ.116)

प्र.2153 संयमासंयम से पुनः संयमासंयम प्राप्ति हेतु उत्कृष्ट अन्तरकाल के बीच एक अपेक्षा से 3 अन्तर्मुहूर्त्त या 12 अन्तर्मुहूर्त्त कौन से हो सकते हैं?

उत्तर संयमासंयम से पुनः संयमासंयम प्राप्ति के बीच आठ वर्ष कम तीन पूर्वकोटि अधिक छियासठ सागरोपम अन्तर काल के साथ 3 या 12 अन्तर्मुहूर्त्त इस तरह हो सकते हैं- 1.संयम धारण, 2.क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति और 3.अवधिज्ञान की प्राप्ति। या 1.संयमधारण 2.मनुष्यगति से मरण, 3.देवगति में जन्म, 4.देवगति में मरण, 5.मनुष्य गति में जन्म, 6.मनुष्य गति से मरण, 7.देवगति में जन्म, 8.देवगति से मरण, 9.मनुष्य गति में जन्म, 10.क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्ति, 11.अवधिज्ञान प्राप्ति और 12. संयमासंयम की प्राप्ति। (यह चिंतन स्वतन्त्र रूप है)

प्र.2154 सिद्धांत में कौन-से गुणस्थान में कौन-सा भाव घटित होता है?

उत्तर सिद्धांत में सामान्य की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान औदायिक भाव है। सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पारिणामिक भाव है; क्योंकि सासादन सम्यक्त्व यह दर्शनमोहनीय कर्म के उदय, उपशम, क्षय व क्षयोपशम से नहीं होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान यह क्षायोपशमिक भाव है; क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व कर्म का उदय होने से श्रद्धानाश्रद्धात्मक मिश्र अवस्था जीव का परिणाम है, उसमें श्रद्धानांश यह सम्यक्त्व रूप अंश है, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व कर्म का उदय उसका अभाव करने में असमर्थ है, इसलिए सम्यक्त्व-मिथ्यात्व यह क्षायोपशमिक भाव है।

असंयत नामक चतुर्थ गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक ये तीनों भाव होते हैं; क्योंकि उस गुणस्थान का कथन दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय, उपशम और क्षयोपशम से है, अतः दर्शनमोह के क्षयादि से होने वाले तीनों सम्यक्त्व उस गुणस्थान में होते हैं, इस कारण उस गुणस्थान में तीनों भाव हैं, परंतु उसमें असंयतपना औदायिक भाव की अपेक्षा से है। संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त संयत ये क्षायोपशमिक भाव हैं। यह चारित्र मोहनीय की अपेक्षा वर्णन है। चारों उपशमकों के (8, 9, 10 और 11 वें गुणस्थान के) औपशमिक भाव हैं। चारों क्षपकों (8, 9, 10 और 12वें गुणस्थानवर्ती), सयोगकेवली और अयोगकेवली के क्षायिक भाव हैं। (स.सि., अ.1, सू.8)

प्र.2155 आगम में कौन-से गुणस्थान में अल्प-बहुत्व किस तरह से घटित होता है? या अल्प-बहुत्व उपशमक से प्रारम्भ क्यों होता है?

उत्तर क्योंकि उपशमकों की संख्या सबसे कम है। सामान्य की अपेक्षा तीनों उपशमक (8, 9, 10 वें गुणस्थानवर्ती) सबसे कम है जो अपने-अपने गुणस्थान के कालों में प्रवेश की अपेक्षा समान संख्या वाले हैं। अर्थात् कम-से-कम एक और अधिक-से-अधिक चौवन। उपशान्त कषाय जीव उतने ही हैं। उससे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थान के क्षपक संख्यात गुणे हैं। अर्थात् कम-से-कम एक और अधिक-से-अधिक एक सौ आठ हैं।

क्षीणकषाय वीतराग-छद्मस्थ उतने ही हैं अर्थात् कम-से-कम एक और उत्कृष्ट रूप से 108 हैं। सयोगकेवली और अयोग केवली प्रवेश की अपेक्षा समान संख्या वाले हैं। इनसे अपने काल में समुदित हुए (संगृहीत हुए) सयोग-केवली संख्यात गुणे हैं। इनसे अप्रमत्त-संयत संख्यात गुणे हैं। इनसे प्रमत्त-संयत संख्यात गुणे हैं। इनसे संयतासंयत असंख्यात गुणे हैं। इनसे सासादन सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं। इनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यात गुणे हैं। इनसे असंयत-सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं। इनसे भी मिथ्यादृष्टि अनंत गुणे हैं।

प्र.2156 शुक्ल लेश्या वाले असंख्यात गुणे मिथ्यादृष्टियों से शुक्ल लेश्या वाले असंयत सम्यग्दृष्टि संख्यात गुणे क्यों हैं?

उत्तर क्योंकि शुक्ल लेश्या वाले मिथ्यादृष्टियों से अधिक संख्या शुक्ल लेश्या वाले ग्यारहवें स्वर्ग से लेकर

नवग्रैवेयक नवअनुदिश और पंचानुत्तर विमानों में रहने वाले असंयत सम्यग्दृष्टि देवों की होती है।

प्र.2157 अभाव किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ पूर्व में होकर वही अवस्था बाद में न हो वहाँ उसका अभाव कहा जाता है। वस्तु का कभी सर्वथा अभाव नहीं होता। अतः भावान्तर रूप होना ही अभाव कहा जाता है। जैसे- किसी स्थल पर घट रखा था और फिर वहाँ से वह घट हटा लिया गया तो वहाँ के घट का अभाव हो गया।

प्र.2158 अभाव कितने प्रकार का होता है?

उत्तर अभाव चारप्रकार का होता है- 1. प्राग्-अभाव, 2.प्रध्वंस-अभाव, 3.अन्योन्य-अभाव और 4.अत्यन्तअभाव।

प्र.2159 प्रागभाव किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ द्रव्य की वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में जो अभाव है उसे प्रागभाव कहते हैं। जैसे- वर्तमान दधी रूप पर्याय (अवस्था) का पूर्व की दुग्ध रूप पर्याय में जो अभाव है वह प्राग्-अभाव ही प्रागभाव कहलाता है। (अथवा कार्य का कारण में अभाव होना प्रागभाव कहलाता है।)

प्र.2160 प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ आगामी पर्याय में वर्तमान पर्याय का जो अभाव है उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं। जैसे- आगामी घृत-पर्याय में वर्तमान की दधि पर्याय का जो अभाव है वह प्रध्वंस-अभाव ही प्रध्वंसाभाव कहलाता है। (अथवा कार्य का स्वरूप लाभ के पश्चात् जो अभाव होता है प्रध्वंसाभाव कहलाता है।)

प्र.2161 अन्योन्याभाव किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ एक द्रव्य की एक पर्याय का उसी द्रव्य की दूसरी पर्याय में जो अभाव है उसे अन्योन्याभाव कहते हैं। जैसे- पुद्गल की घट रूप पर्याय का पुद्गल की ही वस्त्र रूप पर्याय में जो अभाव है वह अन्योन्य-अभाव ही अन्योन्याभाव कहलाता है। (अर्थात् घट; वस्त्र नहीं और वस्त्र; घट नहीं है यही अन्योन्याभाव जानना चाहिए।)

प्र.2162 अत्यन्ताभाव किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का जो अभाव है उसे अत्यन्ताभाव कहते हैं। जैसे- जीव द्रव्य का पुद्गल द्रव्य में और पुद्गल द्रव्य में जो जीव द्रव्य का अभाव होता है वह अत्यन्त-अभाव ही अत्यन्ताभाव कहलाता है।

प्र.2163 जब जीव और पुद्गलादि द्रव्यों का एक दूसरे में अत्यन्तअभाव है तो पुनः जीवों में पुद्गलादि के सम्बन्ध में आसक्ति या राग-द्वेष क्यों देखे जाते हैं?

उत्तर चूंकि, जीव और पुद्गलादि द्रव्यों में अत्यन्ताभाव है और वे निश्चय नय से भी भिन्न-भिन्न हैं। और व्यवहार नय से इनका सम्बन्ध भी आगम में बतलाया गया है, परन्तु जीव द्वारा पुद्गलादि अजीव द्रव्यों में अथवा शरीर एवं धनादि द्रव्यों में जो आसक्ति रूप राग-द्वेष पैदा होते हैं उसका मुख्य कारण मोह-

भाव है।

किन्तु यह भव्य प्राणी अगर मोह रूपी मदिरा को त्यागकर वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की शरण में संयम के पथ पर चल पड़े तो उसे अनादि कालीन कर्म की बेड़ियों और संसार के कारागृह से एक दिन मुक्ति निःसंदेह अवश्य ही मिलेगी और अधिक क्या कहें; वह भव्यात्मा अनन्त सुखों या अनन्त गुणों का भाजन भी बन जावेगा, मोक्ष पद पावेगा। धन्य... धन्य... धन्य।

ज्ञानी जन; भेद-विज्ञान के सम्बन्ध में कहते ही हैं कि-

जीव जुदा, पुद्गल जुदा, यही तत्त्व का सार।
इसके आगे जो कहा, या ही का विस्तार॥

परिशिष्ट

प्र.2164 शास्त्रानुसार संकरादि आठ दोष का लक्षण क्या है?

उत्तर 1.संकर, 2. व्यतिकर, 3.विरोध, 4. वैयाधिकरण, 5 अनवस्था, 6. संशय, 7.अप्रतिपत्ति, 8. अभाव ये संकरादि आठ दोष है।

1.संकर- सर्व वस्तुओं का परस्पर मिलकर एक वस्तु हो जाना।

2. व्यतिकर- जिस वस्तु की किसी भी प्रकार से स्थिति न हो व्यतिकर दोष है। जैसे-'चक्षु से सुना' यह व्यतिकर दोष है।

3. विरोध- जड़ का चेतन हो जाना और चेतन का जड़ होना। जड़ और चेतन में परस्पर विरोध है।

4. वैयाधिकरण- एक समय में अनेक वस्तुओं में विषम अर्थात् परस्पर विरुद्ध पर्यायें रह सकती है। जैसे-शीत व उष्ण पर्यायें भिन्न-भिन्न वस्तुओं में तो रह सकती है यथा-जल में शीतलता और अग्नि में उष्णता। किन्तु इन दोनों परस्पर विरुद्ध अर्थात् पर्यायों को एक ही समय में एक के आधार कहना वैयाधिकरण दोष है।

5. अनवस्था (ठहराव नहीं)- एक से दूसरे की, दूसरे से तीसरे की और तीसरे से चौथे की उत्पत्ति- इसप्रकार कहीं पर भी ठहराव नहीं होना। जैसे- ईश्वर-कर्तृत्व में अनवस्था दोष आता है, क्योंकि संसार का कर्ता ईश्वर है, ईश्वर का कर्त्ता अन्य है और उस अन्य का कर्त्ता दूसरा है। इस प्रकार कल्पनाओं का कहीं विराम न होना अनवस्था दोष है।

6. संशय-वर्तमान में निश्चय न कर सकना संशय है। अथवा, विरुद्ध अनेक कोटि को स्पर्श करने वाले विकल्प को संशय कहते हैं। जैसे- यह सीप है या चाँदी।

7.अप्रतिपत्ति- वस्तुस्वरूप की अज्ञानता अप्रतिपत्ति है। जैसे- बिना पहचान की वस्तु।

8. अभाव- जिस वस्तु का सर्वथा अभाव हो उसको कहना अभाव दोष है। जैसे- गधे के सींग।

प्र.2165 विकलेन्द्रिय जीव भी क्या अण्डज होते हैं?

उत्तर हाँ! विकलेन्द्रिय जीव भी अण्डज होते हैं। चींटियाँ आदिक विकलेन्द्रिय जीव नपुंसक मात्र एक वेद वाले होते हैं। सड़े गले मलादि से बने पुद्गलों को शीतोष्णादि स्थानों में सुरक्षित रख लेते हैं। कालान्तर में वे ही पुद्गल चींटी आदिक के शरीर बन जाते हैं वे सम्मूर्छन होते हैं अण्डज नहीं। (श्लोक वार्तिक-5/252)

प्र.2166 जिनेन्द्र भगवान के मन संबंधी आगम प्रमाण क्या है?

उत्तर ज्ञानावरण तथा अन्तराय कर्म के अत्यन्त क्षय के उपरान्त जिनेन्द्र भगवान के तेरहवें गुणस्थान में द्रव्यमन होते हुए भी मनोबल का अभाव है। क्योंकि मनोबल की उत्पत्ति ज्ञानावरण तथा अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से होती है। (गो.सा.जी.का. 229)

प्र.2167 चतुर्गति में लेश्याओं संबंधी सामान्य कथन क्या है?

उत्तर नारकियों की- तीन अशुभ लेश्याएँ,
देवों की- तीन शुभ लेश्याएँ,
भोगभूमि के जीवों की- तीन शुभ लेश्याएँ और
कर्मभूमिज मनुष्य एवं तिर्यंचों की- छहों लेश्याएँ होती है।

प्र.2168 मनःपर्यय ज्ञान के स्वामी संबंधी विशिष्टता क्या है?

उत्तर मनःपर्यय ज्ञान उन प्रबर्द्धमान चारित्र वाले संयतों को ही प्राप्त होता है हीन चारित्र वाले संयतों को नहीं। उनमें भी सप्त ऋद्धियों में से अन्यतम ऋद्धि को प्राप्त होने वाले को ही प्राप्त होता है अन्य को नहीं। ऋद्धि के प्राप्तों में भी किन्हीं के ही होता है सबको नहीं। (रा.वा. 1/23)

प्र.2169 केवलियों के द्रव्येन्द्रिय सम्बन्धी आगम का क्या नियम है?

उत्तर केवलियों के यद्यपि भावेन्द्रिय समूल नष्ट हो गयी है और बाह्य इन्द्रिय का व्यापार भी बन्द हो गया है तो भी भावेन्द्रिय के निमित्त से उत्पन्न हुईं द्रव्येन्द्रियों के सद्भाव की अपेक्षा उन्हें पंचेन्द्रिय कहा गया है। (ध.1/265)

इसी के आधार से केवली को भूतपूर्व का ज्ञान कराने वाले न्याय (नय) के आश्रय से पंचेन्द्रिय कहा है। (ध.1/266)

आवरण के क्षीण हो जाने से पंचेन्द्रियों के क्षयोपशम के नष्ट हो जाने पर भी क्षयोपशम से उत्पन्न और उपचार से क्षयोपशमिक संज्ञा की प्राप्त पाँचों बाह्येन्द्रिय का अस्तित्व पाये जाने से सयोगी और अयोगी जिनों के पंचेन्द्रित्व सिद्ध कर लेना चाहिए। (ध.7/68)

प्र.2170 क्या परिहार विशुद्धि संयम के साथ उपशम श्रेणी संभव है?

उत्तर नहीं! परिहार विशुद्धि संयम के साथ उपशम सम्यक्त्व व उपशम श्रेणी चढ़ना संभव नहीं है। (ध.5/327)

प्र.2171 क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति किस वेद वाले जीवों के होती है?

उत्तर जिस प्रकार अप्रशस्त वेद के उदय के साथ मनःपर्यय ज्ञानादि का होना संभव नहीं है, उसी प्रकार अप्रशस्त वेद के उदय में दर्शन-मोह की क्षपणा संभव है या नहीं, इस प्रकार संदेह से जिसका हृदय घुल रहा है, उस शिष्य के संदेह को दूर करने के लिए सूत्र में 'मणुसस्स मणुस्सणीए वा' यह पद कहा है। सूत्र में मनुष्य कहने पर उससे भाव पुरुष वेद और भाव नपुंसक वेद के उदय वाले मनुष्यों का ग्रहण होता है। मनुष्यिनी ऐसा कहने पर उससे भाव स्त्रीवेद के उदय वाले मनुष्य जीवों का ग्रहण होता है। (ज.ध. 3/241)

क्षायिक सम्यक्त्व तो असंयतादि अप्रमत्त पर्यंत चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यों के तथा असंयत, देशसंयत और उपचार से महाव्रती मनुष्यिनियों के कर्मभूमिज वेदक सम्यग्दृष्टियों के ही सात प्रकृतियों का निरवशेष क्षय हो जाने पर होता है। (गो.सा.जी.का. 704)

प्र.2172 क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव क्या ढाई दीप के बाहर भी हो सकते हैं?

उत्तर हाँ, ढाई द्वीप के बाहर की भोग-भूमियों में भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च हो सकते हैं अन्यथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चों का स्वस्थान पद की अपेक्षा ढाई द्वीप से असंख्यात गुणा और तिर्यक् लोक का असंख्यात भाग क्षेत्र नहीं बन सकता है। (ध. 4/302)

प्र.2173 विपुलपति मनःपर्यय ज्ञान वाले उपशम श्रेणी क्यों नहीं चढ़ते?

उत्तर विपुलमति मनःपर्ययज्ञान प्रवर्धमान चारित्र वालों के ही होता है। दूसरी बात यह अप्रतिपाती होता है। कहा भी है- 'विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः' इससे समझ में आता है कि विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान वाले उपशम श्रेणी नहीं चढ़ते हैं अतः उनके द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी नहीं होता है।

प्र.2174 जीव के सासादन सम्यक्त्व कब और कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर प्रथमोपशम-सम्यक्त्व के काल में से जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट से छह आवली शेष रहने पर जब अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया व लोभ इन चारों में से किसी एक का उदय होता है तब वह जीव सासादन-सम्यग्दृष्टि कहा जाता है अर्थात् उस जीव को सासादन-सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

प्र.2175 किन प्रकृतियों के उपशम से प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है?

उत्तर सात प्रकृतियों के उपशम से प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है। दर्शनमोहनीय की तीन- सम्यक् प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व तथा मिथ्यात्व।

चारित्रमोहनीय की चार- अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया लोभ।

सादि मिथ्यादृष्टि के यदि सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय इन दो प्रकृतियों का सत्त्व हो तो उसके सात प्रकृतियाँ हैं, यदि इन दोनों का सत्त्व नहीं है अर्थात् इन दोनों की उद्वेलना कर दी है तो उसके दर्शन मोह की पाँच प्रकृतियाँ हैं। ऐसा जीव भी अनादि मिथ्यादृष्टि ही है। वह भी मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क इन पाँच प्रकृतियों को प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम विधान के द्वारा युगपत् उपशमाकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त उपशम सम्यक्त्व को अंगीकार करता है। (गो.क.)

प्र.2176 प्रथमोपशम सम्यक्त्व का लक्षण बतलाइए?

उत्तर जो सम्यक्त्व सर्व प्रथम, पहली बार होता है अर्थात् अनादि मिथ्यादृष्टि को होता है, वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व है। अथवा सादि मिथ्यादृष्टि के भी सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक् प्रकृति की उद्वेलना होने पर जो सम्यक्त्व होता है वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व है।

प्र.2177 जीव; कृतकृत्य वेदक कब कहलाता है?

उत्तर अनिवृत्तिकरण के अन्त समय में सम्यक्त्व मोहनीय की अन्तिम फालि के द्रव्य के नीचे के निषेकों के साथ क्षेपण करने के अन्तर्मुहूर्त्त काल तक जीव कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होता है। (ध. 6/248)

अन्तिम स्थितिकाण्डक के समाप्त होने पर कृतकृत्य वेदक कहलाता है। (ध. 6/263)

प्र.2178 किन दोषों के कारण वेदक सम्यक्त्व मलिन होता है?

उत्तर वेदक सम्यक्त्व मलिन करने वाले मुख्य दोष निम्न हैं-

(1) अगाढ़ दोष (2) मल दोष

अगाढ़ दोष- जैसे वृद्ध पुरुष के हाथ में लाठी काँपती रहती है वैसे यह मंदिर मेरा है। मैंने बनाया है, ''यह मंदिर दूसरों का है'' इत्यादि रूप श्रद्धा में कमजोरी होती है। वह अगाढ़ दोष है।

मल दोष- जिस प्रकार शुद्ध स्वर्ण मल के निमित्त से मलिन कहलाता है उसी प्रकार सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से श्रद्धा में पूर्ण निर्मलता नहीं होती, वह मल दोष है। (गो.सा.जी.का.25)

प्र.2179 क्या सम्यग्मिथ्यात्व में सम्यक्त्व का अंश संभव है?

उत्तर हाँ, अभेद की विवक्षा में सम्यग्मिथ्यात्व के भिन्न जातीयता भले ही रही आवे, किन्तु भेद की विवक्षा करने पर उसमें सम्यग्दर्शन का अंश है ही। यदि ऐसा न माना जाये तो उसके जात्यन्तरत्व के मानने में विरोध आता है और ऐसा मानने पर सम्यग्मिथ्यात्व के सर्वघातिपना भी विरोध को प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि उसके भिन्न जातीयता प्राप्त होने पर सम्यग्दर्शन के एकदेश का अभाव है इसलिए उसके सर्वघातिपना मानने में कोई विरोध नहीं आता है। (ध. 5/205)

प्र.2180 क्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव के अनाहारक अवस्था नहीं होती?

उत्तर हाँ! सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव के कभी मरण नहीं होता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का कभी मरण नहीं होता है। इसलिए उसके अनाहारक अवस्था नहीं होती

है।सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव ने यदि मिथ्यात्व के साथ आयु का बन्ध किया है तो मिथ्यात्व में जाकर और यदि सम्यक्त्व के साथ आयु का बन्ध किया है तो वह सम्यक्त्व में जाकर ही मरण करता है। क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व के साथ आयु बंध नहीं होता है और न मरण ही होता है। (गो.सा.जी.का. 24)

प्र.2181 क्या तृतीय गुणस्थान में तीनों ज्ञान, अज्ञान से मिश्रित होते हैं?

उत्तर हाँ, सम्यग्मिथ्यात्व मिश्र प्रकृति के उदय से तीन अज्ञान और तीन ज्ञान का परस्पर मिश्रण होने वाले मिश्रज्ञान होते हैं अर्थात् तीनों ज्ञान, अज्ञान से मिश्रित होते हैं। (गो.जी. 302) हाँ, तीसरे गुणस्थान में सम्यक्त्व का अंश होने से ज्ञान में भी कुछ सम्यक्पना रहता है तथा मिथ्यात्व का अंश होने से कुछ मिथ्यात्व भी रहता है, इन्हीं तीनों को मिश्रज्ञान कहते हैं।

प्र.2182 क्या अनाहारक जीव भी पर्याप्तक होते हैं?

उत्तर हाँ, चौदहवें गुणस्थानवर्ती पर्याप्त मनुष्य भी अनाहारक होते हैं, उसका कारण यह है कि अयोगकेवली भगवान के शरीर के निमित्तभूत आने वाले परमाणुओं का अभाव होने पर भी अनाहारकपना बन जाता है। (ध. 1/503)

प्र.2183 जीव; एक भव से दूसरे भव में जाने पर भी आहारक कैसे बना रहता है?

उत्तर जब यह जीव उपपाद क्षेत्र के प्रति ऋजुगति में रहता है तब आहारक होता है, क्योंकि शरीर छोड़ने व अन्य शरीर ग्रहण करने के बीच एक समय का भी अन्तर नहीं पड़ने देता है। अर्थात् ऋजुगति (मोड़े से रहित गति) से जाने वाला जीव एक भव से दूसरा भव में जन्म लेने के बीच में भी अनाहारक नहीं बनता है, क्योंकि वह आहारकादि वर्गणाओं को ग्रहण करता हुआ ही जाता है। (रा.वा. 6)

प्र.2184 कौन से आहारक जीव उसी भव में अनाहारक बन सकते हैं?

उत्तर मनुष्यगति के आहारक जीव जो तेरहवें गुणस्थान में पहुँच गये हैं, वहाँ प्रतर व लोकपूरण समुद्घात के समय कार्मण काययोग में अनाहारक बन जाते हैं फिर अनाहारक अवस्था समाप्त होने पर दण्ड व कपाट समुद्घात में आहारक हो जाते हैं और पुनः चौदहवें गुणस्थान में जाकर अनाहारक बन जाते हैं।

प्र.2185 आगम में पञ्चीस प्रकार की विकथाएँ कौन सी कही गई हैं?

उत्तर (1) स्त्रीकथा (2) अर्थकथा (3) भोजनकथा (4) राजकथा (5) चोरकथा (6) बैरकथा (7) परपाखण्डकथा (8) देशकथा (9) भाषाकथा (10) गुणप्रतिबन्धकथा (11) देवीकथा (12) निष्ठुर कथा (13) परपैशुन्यकथा (14) कन्दर्पकथा (15) देश-काल के अनुचित कथा (16) भण्ड (निर्लज्ज) कथा (17) मूर्खकथा (18) आत्मप्रशंसाकथा (19) परपरिवाद कथा (20) परजुगुप्सा कथा (21) परपीड़ा कथा (22) कलहकथा (23) परिग्रहकथा (24) कृषि आदि आरम्भ कथा (25) संगीत-वादित्रादिकथा। (गो.जी.जी.44)

स्त्रीकथा, धनकथा, भोजनकथा, नदी-पर्वत से घिरे हुए स्थान की कथा, केवल पर्वत से घिरे

हुए स्थान की कथा, राजकथा, चोरकथा, देश-नगरकथा, खानि सम्बन्धी कथा, नटकथा, भाटकथा, मल्लकथा, कपट जीवी व्याध व जुआरी की कथा, हिंसकों की कथा, ये भी लौकिक कथाएँ हैं। (मू.आ. 855-56)

प्र.2186 क्षपक श्रेणी चढ़ने का अधिकारी कौन होता है?

उत्तर जिसने असंयतादिक 4 गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में सात प्रकृतियों का क्षय किया है और देव, तिर्यंच और नरकायु का जिसके सत्त्व न हो अर्थात् जिसके आयुबंध नहीं हुआ हो वही क्षपक श्रेणी मांडता है। (गो.क.जी. 336)

बद्धायुष्क जीवों का क्षपक श्रेणी पर आरोहण संभव नहीं है। (ध. 12/412)

क्षपक के क्षायिक भाव होता है, क्योंकि जिसने दर्शनमोहनीय का क्षय नहीं किया हो, वह क्षपक श्रेणी पर नहीं चढ़ सकता है। (ध. 1/182)

प्र.2187 सयोग-केवली भगवान को किन-किन नामों से पुकारा जा सकता है?

उत्तर सयोग केवली भगवान को अनेक नामों से कहा जा सकता है-

1. तीर्थंकर केवली, 2. अन्तःकृत केवली, 3. उपसर्ग केवली, 4. सातिशय केवली, 5. सयोग केवली, 6. समुद्घात केवली, 7. सामान्य केवली, 8. मूक केवली, 9. स्वस्थान केवली, 10. अरहंत केवली आदि।

1. **तीर्थंकर केवली** - जिन केवली भगवान के तीर्थंकर नामकर्म का उदय होता है वे तीर्थंकर केवली हैं।

2. **अन्तःकृत केवली** - जिस समय केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है उसी समय जो निर्वाण पद प्राप्त करते हैं उन्हें अन्तः कृत केवली कहते हैं।

3. **उपसर्ग केवली** जो उपसर्ग को जीतकर केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं वे उपसर्ग केवली हैं।

4. **सातिशय केवली** जो अतिशय से युक्त केवली होते हैं वे सातिशय केवली हैं।

5. **सयोग केवली** जो योग सहित केवली होते हैं वे सयोग केवली हैं।

6. **समुद्घात केवली** - जो केवली समुद्घात करते हैं वे समुद्घात केवली हैं।

7. **सामान्य केवली** जिनके चार घातिया कर्म नष्ट हो गये हैं वे सामान्य केवली हैं।

8. **मूक केवली** - जिन केवली भगवान की देशना नहीं होती है वे मूककेवली हैं।

9. **स्वस्थान केवली** - समुद्घात से रहित समय में स्थित केवली स्वस्थान केवली हैं।

10. **अरहंत केवली** - जो केवली पंच कल्याणक से पूज्य होते हैं वे अरहंत केवली हैं।

प्र.2188 क्या तेरहवें गुणस्थान के अलावा भी कोई केवली होते हैं?

उत्तर हाँ, तेरहवे गुणस्थान के अलावा भी चौदहवे गुणस्थान में अयोग केवली तथा छठे से बारहवें गुणस्थान तक श्रुतकेवली भी होते हैं।

अयोग केवली- जो योग से रहित होते हैं वे अयोग केवली भगवान हैं।

श्रुत केवली - जिनको पूरे द्वादशांग श्रुत या आगम का पूरा ज्ञान होता है, ऐसे मुनि को श्रुतकेवली कहते हैं।

प्र.2189 अयोग केवली भगवान के आहारक अवस्था क्यों नहीं होती है?

उत्तर अयोग केवली भगवान तीन शरीर एवं छह पर्याप्तियों के योग्य वर्गणाओं को ग्रहण नहीं करते हैं। उसका भी कारण यह है कि जब तक योग नहीं होता तब तक जीव कर्म-नोकर्म किसी प्रकार की वर्गणाओं को ग्रहण नहीं करता है। अयोगी भगवान के योग नहीं हैं इसलिए उनके आहारक अवस्था नहीं होती है।

प्र.2190 अयोग केवली के एक प्राण कौन सा होता है और क्यों?

उत्तर ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम स्वरूप पाँच इन्द्रिय प्राण तो अयोगकेवली के हैं नहीं, क्योंकि ज्ञानावरणादि कर्मों के क्षय हो जाने पर क्षयोपशम का अभाव पाया जाता है। इसी प्रकार आनपान, भाषा और मनः प्राण भी उनके नहीं हैं, क्योंकि पर्याप्तिजनित प्राण संज्ञावाली शक्ति का उनके अभाव है। उसी प्रकार उनके कायबल नामक प्राण भी नहीं है, क्योंकि उनके शरीर नामकर्म के उदयजनितकर्म और नोकर्म के आगमन का अभाव है। इसलिए अयोग केवली के एक आयु प्राण ही होता है। ऐसा समझना चाहिए। (ध. 2/445)

प्र.2191 प्रमत्तादि गुणस्थान में रौद्रध्यान क्यों नहीं होता?

उत्तर संयत (मुनियों) के रौद्रध्यान नहीं होता, क्योंकि रौद्रध्यान में संयतपने से च्युत हो जाते हैं व हिंसादि के आवेश में संयम नहीं रह सकता, क्योंकि जब आत्मा रौद्रध्यान से युक्त होती है तब उसके संयम नहीं रह सकता। (रा.वा. 9/35)

प्र.2192 संयतासंयत होते हुये भी पञ्चम गुणस्थानवर्ती वालों के रौद्र ध्यान कैसे हो सकता है?

उत्तर हिंसादि के आवेश से या धन आदि से परतंत्र होने के कारण कभी संयमासंयमी देशव्रती के भी रौद्र ध्यान हो सकता है। किन्तु यहाँ होने वाला रौद्रध्यान नरकादि दुर्गतियों का कारण नहीं है, क्योंकि सम्यग्दर्शन की ऐसा ही सामर्थ्य है। (स.सि. 9/45)

रौद्रध्यान का वर्णन प्रधानता से मिथ्यात्व की अपेक्षा है। जबकि पाँचवें गुणस्थान में सम्यक्त्व की सामर्थ्य से ऐसे रौद्रपरिणाम नहीं होते हैं। कुछ गृहकार्य के संस्कार से किंचित् लेशमात्र होता है। उसकी अपेक्षा से कहा है सो यह नरकगति का कारण नहीं है। (ज्ञा. 26/36 के विशेषार्थ से)

पंचम गुणस्थानवर्ती यद्यपि संयतासंयत होते हैं, फिर भी अपनी सम्पत्ति की रक्षा के लिए,

धार्मिक आयतनों पर आये हुए उपसर्गों (बाधाओं) को दूर करने के लिए उसके रौद्रध्यान हो जाते हैं। लेकिन अति संक्लेश का अभाव होने से उनका रौद्रध्यान नरक गति में ले जाने वाला नहीं होता है।

प्र.2193 कौन-कौन से गुणस्थान में कौन सा धर्म्यध्यान होता है?

उत्तर चतुर्थादि सप्तम गुणस्थान तक धर्म्यध्यान होता है। (स.सि.)

धर्म्यध्यान दसवें गुणस्थान तक होता है। (धवला पु. मूला.)

एवं चउबीस ठाणा के अनुसार-

धर्म्यध्यान	**गुणस्थान**
आज्ञाविचय	तीसरे से सातवे तक
अपाय विचय	चौथे से सातवे तक
विपाक विचय	पाँचवे से सातवे तक
संस्थान विचय	छठे-सातवे में

प्र.2194 अशुभ लेश्याएँ होते हुये भी नारकियों के धर्म्यध्यान कैसे संभव है?

उत्तर यद्यपि धर्म्यध्यान में शुभ लेश्याएँ ही होती हैं, लेकिन नारकियों में शुभ लेश्याओं का सद्भाव ही नहीं है इसलिए वहाँ अशुभलेश्या में धर्म्यध्यान होना यह एक अपवाद है। अथवा यों समझना चाहिए कि जहाँ शुभ और अशुभ दोनों लेश्याएँ होती हैं वहाँ शुभ लेश्याओं में ही धर्म्यध्यान होता है। (उपशम सम्यक्त्व शुभ लेश्याओं में उत्पन्न होता है।) लेकिन नारकियों के अशुभ लेश्याओं में भी उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

जब उपरितन अर्थात् छठे आदि गुणस्थानवर्ती जीवों के जैसे साधु के उपकरणादि की आसक्तिवश आर्त्तध्यान होता है, तब ही आर्त्तध्यान से तीन अशुभ लेश्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं (त.वृ. 9/47) न कि धर्म्यध्यान में। अतः धर्म्यध्यान में शुभ लेश्याएँ ही संभव हैं। चौथे आदि गुणस्थानों में अशुभ लेश्याओं के समय आर्त्तध्यान ही होता है, धर्म्यध्यान नहीं।

प्र.2195 धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान में अंतर को बतलाइए?

उत्तर स्वरूप की अपेक्षा धर्म्यध्यान एवं शुक्लध्यान में कोई भेद नहीं है किन्तु इतनी विशेषता है कि धर्म्यध्यान एक वस्तु में स्वल्प काल तक रहता है, क्योंकि कषाय सहित परिणाम का गर्भगृह के भीतर स्थित दीपक के समान चिरकाल तक अवस्थान नहीं बन सकता। परन्तु शुक्लध्यान के एक पदार्थ में स्थित रहने का काल धर्म्यध्यान के अवस्थानकाल से संख्यातगुणा है, क्योंकि वीतराग परिणाम मणि की शिखा के समान बहुत काल के द्वारा भी चलायमान नहीं होता है। (ध. 13/74-75)

प्र.2196 जाति किसे कहते हैं? परिभाषा बतलाइए?

उत्तर यहाँ योनि को ही जाति कहा गया है। उपपाद देश के पुद्गल प्रचय रूप योनि है। (सर्वा. 2/32)

जिसमें जीव आकर उत्पन्न हो उसका नाम योनि है। (रा.वा. 2/32)

योनि अर्थात् मिश्ररूप होना है। जिसमें जीव औदारिकादि नोकर्म वर्गणारूप पुद्गलों के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होता है, जीव के उपजने के ऐसे स्थान का नाम योनि है। (गो.सा.जी.का. 81)

शरीर की रचना से जीवों की जाति में जो विभिन्नता आती है उसे योनि कहते हैं। (पा.च. 20/36)

प्र.2197 निगोदिया जीव का लक्षण बतलाइए?

उततर पुलवियों को निगोद कहते हैं। (ध. 14/84)

साधारण नामकर्म के उदय से जीव निगोद शरीर होता है। 'नि' अर्थात् अनन्तपना है निश्चित जिनका ऐसे जीवों को 'गो' अर्थात् एक ही क्षेत्र 'द' अर्थात् देता है उसको निगोद कहते हैं। अर्थात् जो अनन्त जीवों को एक निवास दे उसको निगोद कहते हैं। (गो. सा.जी.का. 191)

साधारण नामकर्म के उदय से साधारण वनस्पति कायिक जीव होते हैं उन्हें निगोदिया भी कहते हैं। (का.अ. 125)

प्र.2198 सूक्ष्म जीव का लक्षण बतलाइए?

उततर सर्वत्र जल-स्थल-आकाश में बिना आधार के रहने वाले जीव सूक्ष्मकाय कहलाते हैं। (मू. 215)

जिन जीवों का पृथ्वी से, जल से, आग से और वायु से प्रतिघात नहीं होता, उन्हें सूक्ष्मकायिक जानो। (का.अ. 127)

जिनका शरीर अन्य पुद्गलों से प्रतिघात रहित होता है वे सूक्ष्म जीव कहलाता है। (रा.वा. 8/11)

प्र.2199 बादर जीव का लक्षण बतलाइए?

उत्तर आठ प्रकार की पृथिवी और विमान आदि का आश्रय लेकर उत्पन्न होते हैं वे बादरकाय हैं। (मू. आ. 1204)

काई, पणक, कचरे में होने वाली वनस्पति, छत्राकार आदि फफूंदी ये बादर वनस्पति हैं।

जिन जीवों का शरीर बादर, स्थूल अर्थात् प्रतिघात सहित होता है, उन्हें बादर काय कहते हैं। (ध. 3/276)

प्र.2200 मिथ्यादृष्टि के धर्म्यध्यान क्यों नहीं होता है?

उत्तर जो पुरुष साक्षात् रत्नत्रय को प्राप्त न होकर ध्यान करना चाहता है, वह मूर्ख आकाश के फूलों से वन्ध्यापुत्र के लिए सेहरा बनाना चाहता है। (ज्ञा. 6/4) दृष्टि की विकलता से वस्तुसमूह को अपनी इच्छानुसार ग्रहण करने वाले मिथ्यादृष्टियों के ध्यान की सिद्धि स्वप्न में भी नहीं होती है। सिद्धान्त में ध्यानमात्र मिथ्यादृष्टियों के ही निषेध नहीं किया है, किन्तु जो जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा से प्रतिकूल हैं तथा जिनका चित्त चलित है और जैन साधु कहलाते हैं उनके भी ध्यान का निषेध किया जाता है, क्योंकि उनके ध्यान की सिद्धि नहीं होती है। (ज्ञा. 4/18,30)

जो प्रमाण व नय के द्वारा वस्तु का निश्चय करके उसे नहीं जानता, वह ध्यान की भावना के द्वारा भी

आराधक नहीं हो सकता। ऐसा नियम है। (न.च.वृ. 179 के आधार)

प्र.2201 क्षायिक सम्यग्दर्शन हेतु दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रतिष्ठापक (प्रारंभ करने वाला) कौन होता है?

उत्तर ढाई दीप समुद्रों में स्थित कर्मभूमिया जीव केवली, श्रुतकेवली के पादमूल में चतुर्थ से सप्तम गुणस्थान तक, वेदक सम्यग्दृष्टि तथा पीत लेश्या वाला दर्शन मोहनीय की क्षपणा कर क्षायिक सम्यक्त्व का प्रतिष्ठापक होता है।

प्र.2202 क्षायिक सम्यग्दर्शन हेतु दर्शन मोहनीय की क्षपणा का निष्ठापक (अंत करने वाला) कौन होता है?

उत्तर क्षपणा के प्रारंभ स्थान में, विमानवासी देवों में, भोगभूमिज मनुष्यों तथा तिर्यंचों में और रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथ्वी में भी होता है। (क्षायिक सम्यक्त्व का प्रतिष्ठापक बद्धायुष्क कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि मरकर चारों ही गतियों में उत्पन्न होकर निष्ठापक होता है) (ल.सा.)

प्र.2203.सोलह स्वर्गों में कितने इन्द्र होते हैं?

उत्तर सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं-

कल्प	दक्षिणेन्द्र	उत्तरेन्द्र
सौधर्म-ऐशान कल्प में	सौधर्म इन्द्र	ऐशान इन्द्र
सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्प में	सानत्कुमार इन्द्र	माहेन्द्र इन्द्र
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्प में	ब्रह्म इन्द्र	
लान्तव-कापिष्ठ कल्प में	लान्तव इन्द्र	
शुक्र-महाशुक्र कल्प में	शुक्र इन्द्र	
शतार-सहस्रार कल्प में	शतार इन्द्र	
आनत-प्राणत कल्प में	आनत इन्द्र	प्राणत इन्द्र
आरण-अच्युत कल्प में	आरण इन्द्र	अच्युत इन्द्र

प्र.2204 स्वर्गों की अपेक्षा देवों की संख्या का विवरण क्या है?

उत्तर सामानिक आदि देवों की अपेक्षा, संख्या का विवरण-

				परिषद्					सप्त अनीक *	
इंद्रों के नाम	प्रतींद्र	सामानिक	त्रयास्त्रिंश	अभ्यंतर समिति	मध्य समिति	बाह्य समिति	आत्मरक्ष	लोकपाल	प्रत्येक अनीक सहस्र	कुल सहस्र
सौधर्म	1	84000	33	12000	14000	16000	336000	4	10668	74676
ऐशान	1	80000	33	10000	12000	14000	32000	4	10160	71120
सानत्कु.	1	72000	33	8000	10000	12000	228000	4	9144	64008
माहेन्द्र	1	70000	33	6000	8000	10000	280000	4	8890	62230
ब्रह्म	1	60000	33	4000	6000	8000	240000	4	7620	53340
लांतव	1	50000	33	2000	4000	6000	200000	4	6350	44450
महाशुक्र	1	40000	33	1000	2000	4000	160000	4	5080	35560
सहस्रार	1	30000	33	500	1000	2000	120000	4	3810	26670
आनत	1	20000	33	250	500	1000	80000	4	2540	17780
प्राणत	1	20000	33	250	500	1000	80000	4	2540	17780
आरण	1	20000	33	125	500	1000	80000	4	2540	17780
अच्युत	1	20000	33	125	500	1000	80000	4	2540	17780

नोट-[वृषभ तुरंग आदि सात अनीक सेना है। प्रत्येक सेना में सात-सात कक्षा हैं। प्रथम कक्षा अपने सामानिक प्रमाण है। द्वितीयादि कक्षाएँ उत्तरोत्तर दूनी-दूनी हैं। अत: एक अनीक का प्रमाण=सामानिक का प्रमाण ×127 कुल सातों अनीकों का प्रमाण=एक अनीक×7 (देखें अनीक); (तिलोयपण्णत्ति/8/235-237)]

प्र.2205 स्वर्गों की अपेक्षा देवियों की संख्या का वितरण क्या है?

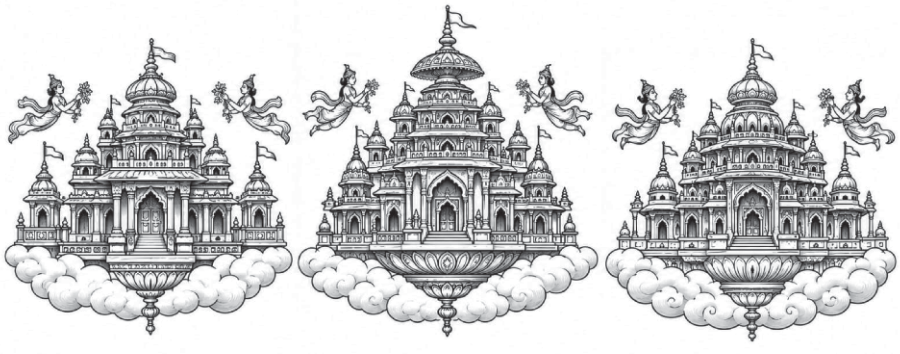
उत्तर देवियों की अपेक्षा संख्या का वितरण-

क्र.	इंद्र का नाम	ज्येष्ठ देवियाँ	प्रत्येक ज्येष्ठ देवी की परिवार देवियाँ	वल्लभिका	अग्र देवियाँ	प्रत्येक देवी के वैक्रियक रूप
1	सौधर्म	8	16000	32000	160,000	16000
2	ऐशान	8	16000	32000	160,000	16000
3	सानत्कुमार	8	8000	8000	72,000	32000
4	माहेन्द्र	8	8000	8000	72,000	32000
5	ब्रह्म	8	4000	2000	34,000	64000
6	लांतव	8	2000	500	16500	128000
7	महाशुक्र	8	1000	250	8250	256000
8	सहस्रार	8	500	125	4125	512000
9	आनत	8	250	63	2063	1024000
10	प्राणत	8	250	63	2063	1024000
11	आरण	8	250	63	2063	1024000
12	अच्युत		250	63	2063	1024000

प्र.2206 स्वर्ग में विमानों की संख्या का प्रमाण क्या है?

उत्तर स्वर्गों में विमानों की संख्या का प्रमाण–

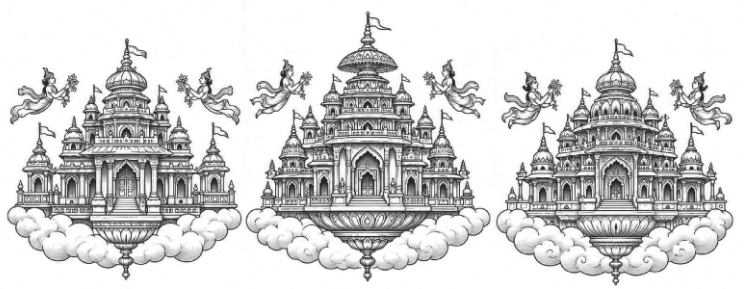
क्र.	कल्प का नाम	इंद्रक	श्रेणीबद्ध	प्रकीर्णक	कुल योग	सं.व असं.योजन युक्त
1.	सौधर्म	31	4371	3195598	32 लाख	सर्व राशि के पाँचवें भाग प्रमाण संख्यात योजन विस्तार युक्त है और शेष असंख्यात योजन विस्तार युक्त
2.	ऐशान	–	1457	2798543	28 लाख	
3.	सानत्कुमार	7	588	1199405	12 लाख	
4.	माहेन्द्र	–	196	799804	8 लाख	
5.	ब्रह्म	4	360	399636	4 लाख	
6.	लांतव	2	156	49842	50,000	
7.	महाशुक्र	1	72	39927	40,000	
8.	सहस्रार	1	68	5931	6,000	
9.	आनतादिचार	6	324	370	700	
10.	अधो ग्रै.	3	108	×	111	
11.	मध्य ग्रै.	3	72	32	107	
12.	ऊर्ध्व ग्रै.	3	36	52	91	
13.	अनुदिश	1	4	4	9	
14.	अनुत्तर	1	4	×	5	



प्र.2207 वैमानिक इन्द्रों के परिवार देव की देवियों का प्रमाण क्या है?

उत्तर वैमानिक इंद्रों के परिवार देवों की देवियाँ-

परिवार देव	देवी का पद	सौधर्म ऐशान	सानत्कुमार माहेंद्र	ब्रह्म ब्रह्मोत्तर	लांतव कापिष्ठ	शुक्र महाशुक्र	शतार सहस्त्रार	आनत-प्राणत आरण-अच्युत
प्रतींद्र सामानिक त्रायस्त्रिंश	अग्र देवी	–	→	अपने इंद्रों के समान		←		
	परिवार देवी	4000	2000	1000	500	250	125	63,62
प्रत्येक लोकपाल	अग्र देवी	–	→ 350,00,000		←	–	–	–
अभ्यंतर परिषद्	अग्र देवी	500	400	300	200	100	50	25
मध्य परिषद्	अग्र देवी	600	500	400	300	200	100	50
बाह्य परिषद्	अग्र देवी	700	600	500	400	300	200	100
अनीक मह	अग्र देवी	600	600	600	600	600	600	600
अनीक-	अग्र देवी	200	200	200	200	200	200	1200
आत्मरक्ष	ज्येष्ठ देवी	1	1	1	1	1	1	1
आत्मरक्ष	वल्लभा देवी	1	1	1	1	1	1	1
प्रकीर्णक आदि	-	←		उपदेशनष्ट	→		-	-



प्र.2208 कल्प विमानों व इन्द्र भवनों के विस्तार आदि का प्रमाण क्या है?

उत्तर कल्प विमानों व इंद्र भवनों के विस्तार संबंधी प्रमाण-

इंद्रों के नाम	कल्प विमान	इंद्रों के भवन			देवियों के भवन		
	तिलोयपण्णत्ति/8/198-202 हरिवंशपुराण-6.92-93 त्रिलोकसार/480	तिलोयपण्णत्ति/8/372-373 +455-456 हरिवंशपुराण 6.94-96			तिलोयपण्णत्ति/8/414-417		
	मोटाई	लंबाई	चौड़ाई	ऊँचाई	लंबाई	चौड़ाई	ऊँचाई
सौधर्म यु.	1121	120	60	600	100	50	500
सानत.यु.	1022	100	50	500	90	45	450
ब्रह्म यु.	923	90	45	450	80	40	400
लांतव यु.	824	80	40	400	70	35	350
महाशुक्र यु.	725	70	35	350	60	30	300
सहस्त्रार	626	60	30	300	50	25	250
आनतादि 4	527	50	25	250	40	20	200
अधो ग्रै.	428	40	20	200			
मध्य ग्रै.	329	30	15	150			
उपरि ग्रै.	230	20	10	100			
अनुदिश	131	10	5	50			
अनुत्तर	121	5	2	25			

प्र.2209 इन्द्र नगरों के विस्तार सम्बन्धी प्रमाण क्या है?

उत्तर इंद्र नगरों का विस्तार सम्बन्धी प्रमाण-

इंद्रों के नाम	नगर त्रिलोकसार/489		नगरकोट त्रिलोकसार/490-491		नगर द्वार त्रिलोकसार/492 493	
	लंबाई	चौड़ाई	ऊँचाई	मोटाई व नींव	संख्या व ऊँचाई	चौड़ाई
सौधर्म	84000	84000	300	50	400	100
ऐशान	80000	80000	300	50	400	100
सानत्कुमार	72000	72000	250	25	300	90
माहेंद्र	70000	70000	250	25	300	90
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	60000	60000	200	12	200	80
लांतव-कापिष्ठ	50000	50000	150	6	160	70
शुक्र-महाशुक्र	40000	40000	120	4	140	50
शतार-सहस्त्रार	30000	30000	100	3	120	40
आनतादि 4	20000	20000	80	2	100	30

प्र.2210 भवनवासी देवों के कितने भेद हैं एवं उनके मुकुट पर चिह्न, आहार का अंतराल, श्वासोच्छ्वास का अन्तराल, अवगाहना एवं आयु कितनी है?

उत्तर भवनवासी देवों के भेद, मुकुट पर चिह्न आदि-

देवों के नाम	मुकुट पर चिह्न	आहार का अन्तराल	श्वासोच्छ्वास का अन्तराल	आयु उत्कष्ट	आयु जघन्य	अवगाहना
असुरकुमार	चूड़ामणि	1000 वर्ष	15 दिन	1 सागर		25 धनुष
नागकुमार	सर्प	12.5 दिन	12.5 मुहूर्त	3 पल्य		10 धनुष
सुपर्णकुमार	गरुड़	12.5 दिन	12.5 मुहूर्त	2.5 पल्य		10 धनुष
द्वीपकुमार	हाथी	12.5 दिन	12.5 मुहूर्त	2 पल्य	सर्वत्र	10 धनुष
उदधिकुमार	मगर	12 दिन	12 मुहूर्त	1.5 पल्य	10,000	10 धनुष
स्तनितकुमार	स्वस्तिक	12 दिन	12 मुहूर्त	1.5 पल्य	वर्ष	10 धनुष
विद्युतकुमार	वज्र	12 दिन	12 मुहूर्त	1.5 पल्य		10 धनुष
दिक्कुमार	सिंह	7.5 दिन	7.5 मुहूर्त	1.5 पल्य		10 धनुष
अग्निकुमार	कलश	7.5 दिन	7.5 मुहूर्त	1.5 पल्य		10 धनुष
वायुकुमार	घोड़ा	7.5 दिन	7.5 मुहूर्त	1.5 पल्य		10 धनुष

प्र.2211 कल्पवासी देवों की आयु व अवगाहना कितनी है?

उत्तर कल्पवासी देवों की आयु व अवगाहना-

कल्पवासी देव	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	अवगाहना
सौधर्म ऐशान	2 सागर से कुछ अधिक	1 पल्य से कुछ अधिक	7 हाथ
सानत्कुमार-माहेन्द्र	7 सागर से कुछ अधिक	2 सागर से कुछ अधिक	6 हाथ
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	10 सागर से कुछ अधिक	7 सागर से कुछ अधिक	5 हाथ
लान्तव-कापिष्ठ	14 सागर से कुछ अधिक	10 सांगर से कुछ अधिक	5 हाथ
शुक्र-महाशुक्र	16 सागर से कुछ अधिक	14 सागर से कुछ अधिक	4 हाथ
शतार-सहस्त्रार	18 सागर से कुछ अधिक	16 सागर से कुछ अधिक	4 हाथ
आनत-प्राणत	20 सागर से अधिक नहीं	18 सागर से अधिक नहीं	3.5 हाथ
आरण-अच्युत	22 सागर से अधिक नहीं	20 सागर से अधिक नहीं	3 हाथ

प्र.2212 कल्पातीत देवों की आयु व अवगाहना कितनी है?

उत्तर कल्पातीत देवों की आयु व अवगाहना-

कल्पातीत देव	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	अवगाहना
ग्रैवेयकों (अधो) में क्रमशः	23, 24, 25 सागर	23, 24, 25 सागर	2.5 हाथ
मध्यम ग्रैवेयकों में क्रमशः	26, 27, 28 सागर	25, 26, 27 सागर	2 हाथ
उपरिम ग्रैवेयकों में क्रमशः	29, 30, 31 सागर	28, 29, 30 सागर	1.5 हाथ
नव अनुदिशों में अनुत्तरों में	32 सागर	31 सागर	1.5 हाथ
सर्वार्थसिद्धि में	33 सागर	33 सागर	1 हाथ

विशेष- अनुदिशों में अवगाहना 1.25 हाथ (सि.सा.दी. 15/257)

प्र.2213 कौन से स्वर्ग के देव मरणकर कितने समय बाद उसी स्वर्ग के देव हो सकते हैं?

उत्तर

स्वर्ग	अन्तर काल
भवनत्रिक	अन्तर्मुहूर्त्त
सौधर्म-ऐशान	अन्तर्मुहूर्त्त
सानत्कुमार-माहेन्द्र	मुहूर्त पृथक्त्व
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	दिवस पृथक्त्व
लान्तव-कापिष्ठ	दिवस पृथक्त्व
शुक्र-महाशुक्र	पक्ष पृथक्त्व
शतार-सहस्रार	पक्ष पृथक्त्व
आनत-प्राणत	माह पृथक्त्व
आरण-अच्युत	माह पृथक्त्व
नवग्रैवेयक	वर्ष पृथक्त्व
नव अनुदिश	वर्ष पृथक्त्व
चार अनुत्तरों में	वर्ष पृथक्त्व

विशेष- पृथक्त्व का अर्थ 3 से 9 तक। किन्तु नवग्रैवेयक, नवअनुदिश एवं चार अनुत्तर विमानों में वर्ष पृथक्त्व से 8 वर्ष अन्तर्मुहूर्त से 9 वर्ष तक लेना होगा। क्योंकि कल्पातीत विमानों में मुनि ही जाते हैं और आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त से पहले मुनि नहीं बन सकते हैं।

प्र.2214 देव अवधिज्ञान से कहाँ तक का ज्ञान कर सकते हैं?

उत्तर

इन्द्र	नीचे कहाँ तक
सौधर्म-ऐशान	प्रथम नरक तक
सानत्कुमार-माहेन्द्र	दूसरे नरक तक
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ	तीसरे नरक तक
शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्त्रार	चौथे नरक तक
आनत-प्राणत, आरण-अच्युत	पाँचवें नरक तक
नव ग्रैवेयक	छठवें नरक तक
नव अनुदिश	लोकनाड़ी पर्यन्त
पञ्च अनुत्तर (रा.वा., 1/21/7)	लोकनाड़ी पर्यन्त

सभी देव ऊपर अपने-अपने विमान के ध्वजदंड तक जानते हैं। तथा असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन तिर्यक् रूप से जानते हैं।

प्र.2215 आगम में निर्जरा के ग्यारह स्थान भी कहे गए हैं क्या?

उत्तर. हाँ! आगम में निर्जरा के ग्यारह स्थान भी कहे गए हैं। प्रथम उपशम सम्यक्त्व के प्रकट होने से पहले सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव के अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण नाम के तीन परिणाम होते हैं। जब वह जीव उन परिणामों के अन्तिम समय में वर्तमान होता है, तो उसके परिणाम विशुद्ध होते हैं, और वह अन्य मिथ्यादृष्टियों से विशिष्ट कहलाता है। उस विशिष्ट मिथ्यादृष्टि के आयुकर्म के सिवाय शेष सात कर्मों की जो गुणश्रेणि निर्जरा होती है, उससे असंयतसम्यग्दृष्टि के असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि से अणुव्रतधारी के असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा होती है। अणुव्रतधारी से ज्ञानी महाव्रती के असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा होती है। महाव्रती से अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन करने वाले के असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा होती है। उससे दर्शनमोहनीय का क्षपण विनाश करने वाले के असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा होती है। उससे उपशम श्रेणि के आठवें, नौवें तथा दसवें गुणस्थान में चारित्र मोहनीय का उपशम करने वाले के असंख्यात गुणी कर्मनिर्जरा होती है। उससे ग्यारहवें गुणस्थान वाले उपशमक के असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा होती है। उससे क्षपक श्रेणि के आठवें, नौवें और दसवें गुणस्थान में चारित्र मोहनीय का क्षय करने वाले के असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा होती है। उससे बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान वाले के असंख्यातगुणी कर्म-निर्जरा होती है। उससे सयोगकेवली भगवानके असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा होती है। उससे अयोगकेवली भगवानके असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा होती है। इस प्रकार इन ग्यारह स्थानों में ऊपर-ऊपर असंख्यात गुणी

असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा होती है। (स्वा.का. गाथा 108)

यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि स्वामीकार्तिकेय ने ग्यारहवाँ स्थान अयोगकेवली को बतलाया है। किन्तु गाथा की टीका अनुसार सयोगकेवली के ही दो भेद करके स्वस्थान-सयोगकेवली को दसवाँ और समुद्घातगत सयोगकेवली को ग्यारहवाँ स्थान बतलाया है।

प्र.2216 आगम में त्रसनाड़ी का उत्सेध कुछ कम तेरह राजू जो कहा गया है उसमें कुछ कम से क्या तात्पर्य है?

उत्तर सप्तम पृथ्वी में त्रस जीव $3999\frac{1}{3}$ धनुष तक नहीं रहते और सर्वार्थसिद्धि से लेकर आठवीं पृथिवी तक का अन्तराल 12 योजन, आठवीं पृथिवी की मोटाई 8 योजन और आठवीं पृथ्वी के ऊपर 7575 धनुष प्रमाण क्षेत्र त्रस जीवों से शून्य है। अतः उक्त धनुषों से कम 13 राजू प्रमाण त्रसनाली में त्रसजीव जानने चाहिये ।

प्र.2217 जैन दर्शन में मरण के भेद कौन-से हैं?

उत्तर

जैन दर्शन में मरण के भेद

1. जैन दर्शन में अन्य प्रकार से मरण के 5 भेद

क्रम	मरण के प्राकर	किसका मरण?	गुणस्थान	संक्षिप्त विवरण
1	बाल-बाल मरण	मिथ्यादृष्टि जीव	1	मिथ्यात्व में स्थित जीव का मरण।
2	बाल मरण	अविरत सम्यग्दृष्टि	4	सम्यग्दर्शन तो है, पर संयम नहीं।
3	बाल पण्डित मरण	देशव्रती श्रावक	5	अणुव्रती, प्रतिमाधारी का मरण।
4	पण्डित मरण	संयमी मुनिराज	6-7	पूर्ण महाव्रती साधुओं का मरण।
5	पण्डित-पण्डित मरण	केवली भगवान	14	इस मरण के साथ मोक्ष

2. मरण के तीन भेद (देहत्याग की दृष्टि से)

क्रम	मरण के भेद	कब?	कैसे?	कौन?	उदाहरण/विशेषता
1	च्युत मरण	आयु पूर्ण होने पर	स्वाभाविक रूप से शरीर का छूटना	जिसकी आयु पूर्ण हो	जैसे पका हुआ फल वृक्ष से स्वयं गिरता है।
2	च्यावित मरण	आयु पूर्ण होने से पूर्व	आत्मघात आदि निमित्त से शरीर का छूटना	प्रमादी/अज्ञ संसारी जीव	विष, शस्त्रघात, अग्नि जल, गिरना आदि से।
3	त्यक्त मरण	मरण अवश्यंभावी या रोग उपसर्गादि होने पर	धर्माराधना, संयम और समता पूर्वक देहत्याग	योग्य साधु तथा योग्य श्रावक	परिग्रह-त्याग, रत्नत्रय और आत्मराधना में स्थित होकर देहत्याग।

3. त्यक्त मरण के 3 भेद

क्रम	मरण के भेद	कौन कर सकता है?	संक्षिप्त विवरण
1	भक्तप्रत्याख्यान	योग्य साधु तथा योग्य श्रावक	● मरण निकट जानकर आहार-जल आदि का क्रमशः त्याग करना। ● रत्नत्रय की आराधना, स्वाध्याय, ध्यान एवं समता में स्थित रहना। ● यह मरण वर्तमान में साधु व श्रावक जन भी करते हैं।
2	इंगिनीमरण	विशेष योग्यता एवं दृढ़ संयम वाला साधक अज्ञानादि का धारक	● शरीर की आवश्यक क्रियाओं को न्यूनतम करना। चारों प्रकार के आहार पूर्ण त्याग कर, अपनी सेवा स्वयं तो करते हैं परन्तु किसी से कराते नहीं हैं। ● अत्यंत सजगता, स्मृति और संयम के साथ आत्मध्यान एवं समता में स्थित रहना जैसे-भद्रबाहु स्वामी व धरसेनाचार्य
3	प्रायोपगमन संन्यास	अत्यंत समर्थ, विरक्त एवं योग्य साधक (उत्कृष्ट संहननधारी)	● चारों प्रकार के आहार का पूर्ण त्याग कर, अपनी सेवा न तो स्वयं करते हैं न किसी से करवाते हैं। आँखें खुली तो खुली और बंद तो बंद रहती हैं; कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। ● शरीरादि से पूर्ण अनासक्ति, क्षमा, समता और रत्नत्रय की आराधना में स्थित होकर देहत्याग करना जैसे- गजकुमार मुनि, सुकौशल स्वामी, सुकुमाल स्वामी

विशेष

अचानक कोई रोग या उपसर्ग आदि होने पर आयु पूर्ण होने के पूर्व सुमरण का स्वागत करते हुए मोह-ममता से मुक्त होकर धर्माराधना एवं समता में स्थिर होकर देह का त्याग करना संक्षेप-प्रत्याख्यान कहलाता है।



अंतिम मंगल

सागर शुभ संभाग में, नगर शाहपुर जान।
अथ आगम अनुयोग का, किया सुमंगल मान॥

निकट हि, गोलाकोट के, खनियांधाना गाँव।
शीतकाल में शुभ मिली, पार्श्वप्रभो की छाँव॥

पच्चीस सौ पचासवाँ, वीर प्रभो निर्वाण।
शुभ आगम-अनुयोग का, पूर्ण-सुचिंतन मान॥

कृति आगम-अनुयोग यह, सुखद हुई संपूर्ण।
पढ़ें भवि पढ़वायेंगे, हों रत्नत्रय पूर्ण॥

'विद्यागुरु' ने की कृपा, संयम मिला सुपूर्ण।
'आर्जवता' से हो नमन, शिव पाऊँ संपूर्ण॥

卐 भद्रं भूयात् 卐

सम्यग्ज्ञान-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र

प्रश्नपत्र-1

प्र.1. आगम किसे कहते हैं?

प्र. 2. आगम के छह विशेषण कौन-से हैं?

प्र. 3. आगम के उपदेश में नयार्थ का अर्थ क्या है?

प्र. 4. आगम पद्धति किसे कहते हैं?

प्र. 5. शास्त्र अध्ययन व वीतराग की देशना का पात्र कौन है?

प्र. 6. धर्मोपदेष्टा के कौन-कौन-से गुण होते हैं?

प्र. 7. श्रोता का लक्षण क्या है?

प्र. 8. जिनवाणी में उपदेश की पद्धति को क्या कहते हैं?

प्र. 9. एक पुरुष या त्रेसठ शलाका पुरुषों का कथन किस अनुयोग में होता है?

प्र.10. त्रेसठ शलाका पुरुष कब उत्पन्न होते हैं?

प्र.11. जो भव्य जीवों को संसार पार लगावे उसे क्या कहते हैं?

प्र.12. पुरुषार्थ का वास्तविक शाब्दिक अर्थ क्या है?

प्र.13. काम-पुरुषार्थ को पुरुष कैसे सार्थक बनाता है?

प्र.14. मोक्ष पाने के लिए कौन-सा पुरुषार्थ किस तरह करना चाहिए?

प्र.15. ऋषभ देव तीर्थंकर ने मनुष्यों को कौन-कौन-सी शिक्षाएँ दीं?

प्र.16. कल्पवृक्ष का लक्षण क्या है?

प्र.17. कुलकर या मनु किन्हें कहते हैं?

प्र.18. शलाका पुरुषों का मोक्ष-प्राप्ति सम्बन्धी नियम क्या है?

प्र.19. भोग-भूमि के जीव मरणोपरान्त कौन-सी गति को प्राप्त करते हैं?

प्र.20. धर्म-पुरुषार्थ में कौन-कौन-से प्रमुख कार्य करना चाहिए?

प्रश्नपत्र-2

प्र.1. प्रथम तीर्थंकर के समय सौधर्मेन्द्र अयोध्या की रचना किस तरह से करता है?

प्र. 2. निर्मल सम्यग्दृष्टि को किस तरह की भावना से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है?

प्र. 3. तीर्थंकरों की जन्म-नगरी अयोध्या के विभिन्न नाम बतलाइये?

प्र. 4. महाराजा वृषभदेव के निवास भवन का नाम क्या था?

प्र. 5. महाराजा नाभिराज के निवासार्थ कौन-से भवन की रचना की गई थी?

प्र. 6. ऋषभदेव ने मुनि-दीक्षा किस तरह के वैराग्य भाव से धारण की थी?

प्र. 7. रत्नों से सम्पन्न तीर्थंकरों के लिए देवों द्वारा रत्नों की वर्षात् क्यों की गई?

प्र. 8. तीर्थंकर मुनिराज के पास पिच्छिका और कमण्डलु क्यों नहीं होते?

प्र. 9. दीक्षा धारण के पीछे ऋषभदेव तीर्थंकर का क्या प्रयोजन था?

प्र.10. तीर्थंकरों के जन्माभिषेक हेतु क्षीरसागर का जल ही क्यों सुयोग्य माना गया है?

प्र.11. स्वयंभू यह विशेषण तीर्थंकरों के लिए क्यों लगाया जाता है?

प्र.12. अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमायें कब-से व किन-से प्रतिष्ठित रहती हैं?

प्र.13. सुदर्शन मेरु पर्वत पर चारों वनों सम्बन्धी कितने-कितने अकृत्रिम चैत्यालय स्थित हैं?

प्र.14. कौन-से परमेष्ठी की प्रतिमाएँ अकृत्रिम जिनालयों में रहती हैं?

प्र.15. पंच मेरु सम्बन्धी कितने जिनालयों में कितनी-कितनी प्रतिमायें होती हैं?

प्र.16. अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमायें किस आकार, रूपादि वाली होती हैं?

प्र.17. ऐरावत गज पर विराजित कर मेरु पर ले जाते समय प्रभु की इन्द्र किस तरह सेवा करता है?

प्र.18. शची इन्द्राणी तीर्थंकर प्रभु की किस तरह की सेवा कर सातिशय पुण्यार्जन करती है?

प्र.19. प्रथम मेरु पर्वत कहाँ पर स्थित है और किस विशेषता को धारण करता है?

प्र.20. तीर्थंकर को जन्म देने वाली माता की सेवा कितनी व कौन-कौन-सी देवियाँ करती हैं?

प्रश्नपत्र-3

प्र.1. तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ कितने हजार राजाओं ने दीक्षा ली थी?

प्र. 2. तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा लेते ही कितने माह का योग धारण किया था?

प्र. 3. भ. आदिनाथ के लिए विधिवत् आहार कितने दिनों के बाद कब प्राप्त हुआ ?

प्र. 4. तीर्थंकर केवली की दिव्य-ध्वनि कितनी भाषाओं में खिरती है?

प्र. 5. समवसरण में प्राणियों के लिए कौन-सी बाधाएँ उत्पन्न नहीं होती?

प्र. 6. तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने श्रुतकेवली विराजमान थे?

प्र. 7. समवसरण में एक अपेक्षा से ग्यारह भूमियाँ कौन-सी होती हैं?

प्र. 8. सौधर्मेन्द्र ने किस देव को ऐरावत गज बनने हेतु आज्ञा प्रदान की थी?

प्र. 9. विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकरों के समवसरण का विस्तार कितना होता है?

प्र.10. तीर्थंकर ऋषभदेव का कर्मभूमि की व्यवस्था में कितना गृहस्थ जीवन व्यतीत हुआ?

प्र.11. तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के छदमस्थ अवस्था में कितने वर्ष व्यतीत हुए?

प्र.12. केवलज्ञान होते ही तीर्थंकर धरातल से कितने ऊपर उठ जाते हैं?

प्र.13. साक्षात् तीर्थंकर केवली के दर्शन कौन-से जीवों को नहीं हो पाते?

प्र.14. सेविका रूप विद्याएँ गृहस्थों के जीवन में कौन-सी अवस्था तक रह सकती हैं?

प्र.15. संयमी जनों द्वारा असंयमी देवी-देवताओं को रखना कौन-सा अनर्थ है?

प्र.16. भ. आदिनाथ के लिए राजा श्रेयांस ने किन नव विधियों से आहार दिया था?

प्र.17. तीर्थंकर ऋषभदेव का प्रथमाहार किस नगर में किसके द्वारा सम्पन्न हुआ?

प्र.18. तीर्थंकर दीक्षा लेते ही कितनी ऋद्धियों के स्वामी हो जाते हैं?

प्र.19. भरत चक्रवर्ती ने राजाश्रेयांस को क्यों और कौन-से तीन विशेषणों से पुकारा था?

प्र.20. भ. आदिनाथ के साथ कितने मुनियों ने सिद्धालय की ओर गमन किया था?

प्रश्नपत्र-4

प्र.1. भगवान बाहुबली के लिए मोक्ष की प्राप्ति किसके पूर्व व किसके बाद हुई थी?

प्र. 2. बलभद्र महापुरुष किन्हें कहते हैं?

प्र. 3. कामदेव बाहुबली और अनन्तवीर्य ने मोक्षपथ किस कारण अपनाया था?

प्र. 4. कामदेव महापुरुष किन्हें कहते हैं?

प्र. 5. नारायण और प्रतिनारायण में क्या विशेषता होती है?

प्र. 6. नारायण महापुरुष किन्हें कहते हैं?

प्र. 7. चक्रवर्ती महापुरुष कौन कहलाते हैं?

प्र. 8. चक्रवर्ती के दशांगभोग कौन-से हैं?

प्र. 9. चक्रवर्ती के चौदह रत्नों के नाम क्या हैं?

प्र.10. चक्रवर्ती के चूड़ामणि रत्न की क्या विशेषता है?

प्र.11. चक्रवर्तियों की नवनिधियाँ कौन-सी थीं?

प्र.12. चक्रवर्तियों की नव निधियों का आकार व प्रमाण कैसा था?

प्र.13. चक्रवर्ती की नवनिधियों की रक्षा कौन करता है?

प्र.14. चक्रवर्ती की सर्व-रत्न निधि क्या फल देती है?

प्र.15. राजाओं के चार कर्त्तव्य कौन-से होते हैं?

प्र.16. चक्रवर्ती के अधीनस्थ कितने देश होते हैं?

प्र.17. चक्रवर्ती के राज्य में कितनी गौ-शालाएँ होती हैं?

प्र.18. चक्रवर्ती के शंख, भेरी, पटहों की संख्या व उनकी शब्द-श्रवण दूरी कितनी होती है?

प्र.19. भरत चक्रवर्ती के कौन-से पुत्र ने मिथ्यामत के प्रचार से भवभ्रमण कर कब मोक्ष पाया था?

प्र.20. भरत चक्रवर्ती के 923 पुत्रों ने मोक्ष पुरुषार्थ को किस तरह सफल बनाया था?

प्रश्नपत्र-5

प्र.1. योजन किसे कहते हैं?

प्र. 2. अंगुल के प्रकार बताइये?

प्र. 3. सागरोपम और सागर किसे कहते हैं?

प्र. 4. राजू की उपमा क्या है?

प्र. 5. पल्य के कितने भेद हैं?

प्र. 6. युग किसे कहते हैं?

प्र. 7. पूर्व किसे कहते हैं?

प्र. 8. अन्तर्मुहूर्त्त किसे कहते हैं?

प्र. 9. अर्धपुद्गल परिवर्तन काल को अनन्त क्यों कहा है?

प्र.10. संख्यात, असंख्यात और अनन्त के उदाहरण क्या हैं?

प्र.11. समय किसे कहते हैं?

प्र.12. घन क्षेत्र फल किसे कहते हैं?

प्र.13. व्यास या परिधि किसे कहा जाता है?

प्र.14. घनमूल किसे कहते हैं?

प्र.15. वर्गमूल क्या कहलाता है?

प्र.16. परिकर्माष्टक किन्हें बोलते हैं?

प्र.17. गुणकार किसे कहते हैं?

प्र.18. भागहार किसे कहा जाता है?

प्र.19. करणानुयोग का लक्षण क्या है?

प्र.20. लोक और अलोक किसे कहा जाता है?

प्रश्नपत्र-6

प्र.1. लोक का मध्यभाग कौन-सा कहलाता है ?

प्र. 2. लोक कहाँ पर स्थित है?

प्र. 3. लोक की ऊँचाई कितनी है?

प्र. 4. सम्पूर्ण लोक को किसने बनाया?

प्र. 5. त्रसनाड़ी में त्रस जीवों से रहित स्थान कौन-कौन-सा है?

प्र. 6. त्रस नाड़ी कहाँ है और वह कितनी लम्बी, चौड़ी और ऊँची हैं?

प्र. 7. नरक और नारकी किसे कहते हैं?

प्र. 8. रत्नप्रभा नामक पृथ्वी के कितने भाग हैं?

प्र. 9. कौन-कौन-से जीव कौन-कौन-सी नरक पृथ्वियों में जन्म ले सकते हैं?

प्र.10. कौन-कौन-से जीव नरकों में जन्म नहीं लेते?

प्र.11. तीर्थंकर प्रकृति-बंध करने वाला जीव किस कारण नरक में जाता है ?

प्र.12. नरकों का वातावरण कैसा है?

प्र.13. नरकों से निकले नारकी किन-किन अवस्थाओं में पैदा नहीं होते हैं?

प्र.14. तीर्थंकर प्रकृति बंध वाला जीव कौन-सी नरक-पृथ्वी तक जा सकता है?

प्र.15. नरक से निकला जीव कौन-से पदों को धारण नहीं कर सकता है?

प्र.16. मानुषोत्तर पर्वत किसे कहते हैं?

प्र.17. सर्व द्वीप और समुद्रों के बीच में कौन-सा द्वीप किस आकार में स्थित है?

प्र.18. तीर्थंकर के गर्भ में आने के छह माह पूर्व नरक में उसकी स्थिति क्या होती है?

प्र.19. ढाई द्वीप किसे कहते हैं?

प्र.20. सर्व द्वीप और समुद्रों का विस्तार कितना है?

प्रश्नपत्र-7

प्र.1. स्वयंप्रभ पर्वत कहाँ पर स्थित है ?

प्र. 2. कहाँ, कौन, कब नंदीश्वर द्वीप में महापूजा किया करते हैं ?

प्र. 3. स्वयंभू रमण समुद्र में कौन-से जीव पाये जाते हैं ?

प्र. 4. ढाई द्वीप के बाहर स्वयंप्रभ पर्वत तक स्थित समुद्रों में कौन से जीव होते हैं?

प्र. 5. कल्पकाल किसे कहते हैं ?

प्र. 6. युग का प्रारम्भ किस काल में होता है ?

प्र. 7. भोग भूमि के मनुष्य किस कार्य से रहित होते हैं ?

प्र. 8. दुषमा-सुषमा (वर्तमान काल) कब प्रारम्भ हुआ ?

प्र. 9. द्वादशांग के ज्ञाता पांच श्रुतकेवली कौन थे ?

प्र.10. भ. महावीर के उपरान्त हुए तीन अनुबद्ध केवली प्रभु के नाम क्या थे ?

प्र.11. अन्तिम अंगाशधर श्रुत ज्ञाता कौन-से आचार्य थे ?

प्र.12. भोग भूमिज मनुष्य कौन-सी कलाओं में निपुण होते हैं ?

प्र.13. पुष्पदन्त और भूतबली नामक महान आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थ कौन सा है ?

प्र.14. दुषमा नामक इस पंचम काल में अन्तिम अवधिज्ञानी मुनि कौन होंगे ?

प्र.15. इस पंचम काल में कौन-से अन्तिम मुकुटबद्ध राजा ने मुनि दीक्षा ली थी ?

प्र.16. विजयार्ध इस नाम की सार्थकता क्या है ?

प्र.17. म्लेच्छ खण्डों एवं विजयार्ध पर्वत पर काल परिवर्तन का क्या नियम है ?

प्र.18. विदेह क्षेत्र में कौन-सी अशुभ स्थितियों का अभाव होता है ?

प्र.19. तीर्थकरों की एवं तीर्थंकर की माता की सेवा करने वाली देवियाँ कहाँ रहती हैं ?

प्र.20. भोग भूमि में प्राकृतिक सौन्दर्य किस तरह का होता है ?

प्रश्नपत्र-8

प्र.1. वलयाकार स्वयंभूरमण समुद्र के आगे मध्यलोक में कौन-सी रचना व जीव होते हैं?

प्र. 2. सम्मूर्च्छन जीव का लक्षण क्या है?

प्र. 3. स्वयंभूरमण समुद्र में कौन-से एकेन्द्रिय जीव की कितनी उत्कृष्ट अवगाहना होती है?

प्र. 4. सर्व जघन्य शरीर किन जीवों का होता है?

प्र. 5. पृथक्त्व किसे कहते हैं?

प्र. 6. स्वयंभूरमण समुद्र में सबसे जघन्य अवगाहना वाला जीव कौन-सा है?

प्र. 7. बादर और सूक्ष्म जीवों का लक्षण क्या है?

प्र. 8. जिह्वा इन्द्रिय का आकार किस तरह का होता है?

प्र. 9. पृथ्वीकायिक जीवों का आकार किस तरह का होता है?

प्र.10. देवों में कौन-सा संस्थान पाया जाता है?

प्र.11. भवनवासी देवों का गमन किस निमित्त कहाँ तक होता है?

प्र.12. देव एक समय में कितनी दूरी तय कर सकता है?

प्र.13. असुरकुमार देव किस निमित्त कहाँ तक गमन करते हैं?

प्र.14. व्यन्तर देवों के निवास कहाँ पर होते हैं?

प्र.15. देवों का आहार किस तरह से और किस तरह का होता है?

प्र.16. भवनवासियों में असुरकुमार आदि देवों के मुकुटों में कौन-से चिह्न होते हैं?

प्र.17. देवगति के देव अत्यन्त शक्तिवान होते हैं तब वहाँ आत्मरक्ष क्यों होते हैं?

प्र.18. देवों के निवास स्थलों के नाम कौन-से होते हैं?

प्र.19. देवों की अपेक्षा मनुष्यों का शरीर उत्कृष्ट क्यों है?

प्र.20. देवों का दिव्य शरीर किस तरह निर्मित होता है?

प्रश्नपत्र-9

प्र.1. ज्योतिषी देवों का गमन किस गति से होता है?

प्र. 2. सूर्य, चन्द्रादि की किरणें किस स्वभाव वाली हैं?

प्र. 3. सूर्य में रहने वाले देव की आयु कितनी होती है?

प्र. 4. युग किसे कहते हैं, और युग का प्रारम्भ कब होता है?

प्र. 5. स्वर्ग की दूरी मध्यलोक से कितनी है?

प्र. 6. भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों के आभूषण कौन-से स्वर्ग के मानस्तम्भ पर रहते हैं?

प्र. 7. वैमानिक देवों सम्बन्धी पटलों की संख्या कितनी है?

प्र. 8. स्वर्गों का सौधर्म आदि नाम क्यों है?

प्र. 9. ग्रैवेयक क्यों कहते हैं? या ग्रैवेयक का अर्थ क्या है?

प्र.10. सौधर्म आदि इन्द्रों की प्रधानदेवी की सहयोगी देवियाँ कितनी होती हैं?

प्र.11. स्वर्गों में देव दर्शन की क्या व्यवस्था होती है?

प्र.12. देव पर्याय में एक भव में मोक्ष जाने वाले कौन-कौन से भव्य जीव हैं?

प्र.13. अनुदिश एवं अनुत्तर विमानों में क्या सम्यग्दृष्टि ही जन्म लेते हैं?

प्र.14. सुख कितने प्रकार का होता है? नाम बतलाये?

प्र.15. तिर्यञ्च पर्याय में कौन-से देव उत्पन्न नहीं होते हैं?

प्र.16. संक्षेप-ओघ किसकी संज्ञा है?

प्र.17. चतुर्थ गुणस्थान में कौन-से भाव होते हैं?

प्र.18. सर्वार्थसिद्धि विमान से सिद्धशिला कितने ऊपर स्थित है?

प्र.19. अप्रमत्त गुणस्थान के कितने प्रकार हैं?

प्र.20. विसंयोजना किसे कहते हैं?

प्रश्नपत्र-10

प्र.1. साकार उपयोग रूप ज्ञानोपयोग के कितने भेद होते हैं?

प्र. 2. दर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?

प्र. 3. संज्ञी जीव की पहचान के चार हेतु कौन-से हैं?

प्र. 4. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में निमित्त पाँच लब्धियाँ कौन-सी हैं?

प्र. 5. भव्य जीव कितने प्रकार के होते हैं?

प्र. 6. आहारक शरीर का क्या लक्षण क्या है?

प्र. 7. कौन-से जीवों के शरीर निगोदिया जीवों से प्रतिष्ठित होते हैं?

प्र. 8. कार्मण काययोग में कौन-कौन-से गुणस्थान होते हैं?

प्र. 9. एक निगोदिया जीव में कितने जीवों का निवास होता है?

प्र.10. नित्य निगोदिया और इतर निगोदिया जीवों के संसार भ्रमण का काल कितना होता है?

प्र.11. कौन-सी गति में कितने गुणस्थान होते हैं?

प्र.12. मार्गणा के कितने प्रकार हैं? नाम बताओ?

प्र.13. मार्गणा की परिभाषा क्या है?

प्र.14. भाव-प्राण कौन-से हैं?

प्र.15. प्राण की परिभाषा क्या है?

प्र.16. जीव की पहचान हेतु द्रव्य प्राण कौन-से हैं?

प्र.17. केवली भगवान कौन-सी नव लब्धियों के स्वामी होते हैं?

प्र.18. मुनिराज द्वारा उपशम श्रेणी कितनी बार प्राप्त की जा सकती है?

प्र.19. अनुभाग किसे कहते हैं?

प्र.20. सामायिक संयम किसे कहते हैं?

सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु धार्मिक प्रश्न-पत्र

प्रश्न-पत्र-11

प्र.1. आचरांग किन महानात्मा द्वारा उपदिष्ट है?

प्र. 2. आचारांग किन महान आत्मा द्वारा रचित है?

प्र. 3. किन विशेषताओं सहित आचारांग होता है?

प्र. 4. कौन-से प्रमुख अधिकारों से निबद्ध और अर्थों से गंभीर आचारांग है?

प्र. 5. चरणानुयोग का लक्षण जिनागम में किस रूप में कहा गया है?

प्र. 6. यम और नियम किसे कहते हैं?

प्र. 7. मुनि किन्हें कहते है?

प्र. 8. महाव्रत इतने महान क्यों कहलाते हैं?

प्र. 9. जैन साधु, साध्वी स्वहस्त से केशलोंच क्यों करते हैं?

प्र.10. मुनि रूप के चार चिह्न (लिंग) कौन-से माने गये हैं?

प्र.11. साधु तीन स्थान की भूमि देखकर आहार ग्रहण करते हैं, इसका अर्थ क्या है?

प्र.12. मुनिराज एक, दो अथवा तीन मुहूर्त्त तक आहार ग्रहण करते हैं इसका क्या तात्पर्य है?
प्र.13. यतियों के (मुनियों के) जीवन में होने वाले छः काल कौन-से हैं?
प्र.14. यतियों के द्वारा त्याज्य तीन गारव (गौरव) कौन से हैं?
प्र.15. प्रवचन मातृका की असादना किस रूप होती है?
प्र.16. यति लोग जिन निर्यापक के पास आलोचना प्रकट करते हैं वे कैसे आचार्यों के गुणों से समन्वित होते हैं?
प्र.17. आवश्यक का लक्षण क्या है?
प्र.18. अचेलकत्व की परिभाषा क्या है?
प्र.19. पाँच इन्द्रिय निरोध किस तरह घटित होता है?
प्र.20. स्थिति भोजन मूलगुण से जीवन के अंत सम्बन्धी कौन-सा संकेत प्राप्त होता है?

प्रश्नपत्र-12

प्र.1. अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल को अनन्त संज्ञा कैसे दी है?
प्र. 2. संघ किसे कहते हैं?
प्र. 3. परीत संसारी कैसे होते हैं?
प्र. 4. भूख प्यासादिक की बाधाओं में क्षपक किस तरह का चिंतवन करे?
प्र. 5. काम, भोगों के सेवन में तृप्ति क्यों नहीं मिलती, इसका कोई उदाहरण दें?
प्र. 6. क्षपक को उत्कृष्ट रूप से, मोक्ष प्राप्ति में तीन भव कौन-से लगते हैं?
प्र. 7. क्षपक; अंतिम इच्छा रूप प्रशस्त निदान में क्या फल चाहता है?
प्र. 8. भेद-विज्ञान को प्राप्त कराने वाला मंत्र कौन-सा है?
प्र. 9. सच्चे; सल्लेखना धारक व आराधक कौन हैं?
प्र. 10.विज्ञान का अर्थ चारित्र क्यों लिया गया है?
प्र.11. समाधि के समय कौन-सी शरणों का विचार करना चाहिए?
प्र.12. तीर्थंकर महावीर की शरण का चिंतवन किस तरह करना चाहिए?
प्र.13. सल्लेखना के समय एक बीज पद की शरण से क्या तात्पर्य है?
प्र.14. सल्लेखना के समय क्षपक किन भावों का त्याग कर देता है?
प्र.15. स्वध्याय-मरण से क्या तात्पर्य है?
प्र.16. बोधि की सुलभता किस तरह से होती है?
प्र.17. उत्तमार्थ प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?
प्र.18. यदि मरणकाल में परिणाम बिगड़ जायें तो क्या गति होती है?
प्र.19. किल्विष भावना का स्वरूप एवं फल क्या है?
प्र.20. शिष्य द्वारा गुरु से निवेदित गुप्त दोषों को रहस्य में रखना गुरु का कौन-सा गुण है?

प्रश्नपत्र-13

प्र.1. औघिक समाचार में तथाकार क्या कहलाता है?
प्र. 2. आचार्य कुन्दकुन्द देव ने दीक्षा गुरु व निर्यापक किसको कहा है?

प्र.3. सूत्र किसे कहते हैं?
प्र.4. उपसंपत् क्या है? और वह कैसे करना चाहिए?
प्र.5. औघिक समाचार के तथाकार में वाचना किसको कहते हैं?
प्र.6. छह आयतन कौन-से होते हैं?
प्र.7. निषेधिका और आसिका कहाँ-कहाँ की जाती है?
प्र.8. प्रवर्तक मुनि कौन कहलाते हैं?
प्र.9. निर्ग्रन्थ मुनि या आचार्य परमेष्ठी को आयतन किस अपेक्षा से कहा है?
प्र.10. तत्त्व ज्ञाता होते हैं आचार्य परमेष्ठी, इसका अर्थ क्या है?
प्र.11. संविग्न या संवेगी किन्हें कहते हैं?
प्र.12. आर्यिकाएँ वसतिका में किस प्रकार काल व्यतीत करती हैं?
प्र.13. देववंदना, गुरुवंदना आदि क्रियाओं में आर्यिकाएँ किस तरह जाती हैं?
प्र.14. स्वाध्याय में परिवर्तन का अर्थ क्या है?
प्र.15. मुनियों की प्रतिक्रमण क्रियायें कितने प्रकार की हैं?
प्र.16. आर्यिकाएँ आचार्य, उपाध्याय आदि की वंदना कितने दूर से करती हैं?
प्र.17. जीवदया के निमित्त मुनिगणों की शुद्धियाँ कितने प्रकार की हैं?
प्र.18. मुनियों के उपकरण कौन-से होते हैं?
प्र.19. मुनियों के संस्तर कितने प्रकार के होते हैं?
प्र.20. आचार्य परमेष्ठी के अनुग्रह गुण का अर्थ क्या है?

प्रश्नपत्र-14

प्र.1. जिनागम में दस प्रकार के सत्य कौन-से हैं?
प्र.2. विस्मृत हुआ कौन-सा ज्ञान पर भव में केवलज्ञान को प्राप्त करा देता है?
प्र.3. सत्य आदिक में साधु-जनों को कौन-से वचन बोलना चाहिए?
प्र.4. स्वाध्याय से साधुओं के लिए होने वाले तात्कालिक लाभ कौन-से हैं?
प्र.5. श्रावकों द्वारा बनाये गये आहार को करते हुए साधु किस तरह निर्दोष कहलाते हैं?
प्र.6. मुनिराज किस तरह का आहार ग्रहण करते हैं?
प्र.7. मुनिवर किन कारणों से आहार ग्रहण नहीं करते हैं?
प्र.8. मुनिराज किस लिए आहार ग्रहण करते हैं?
प्र.9. कोई नई वस्तु से या पदार्थ से निर्मित आहार सर्व प्रथम मुनि को देने से क्या दोष है?
प्र.10. चौदह मल दोष कौन-से हैं?
प्र.11. असंयतों के साथ साधु को आहार देने में कौन-सा दोष है और क्यों?
प्र.12. मुनियों के योग्य निर्दोष आहार कैसा होता है?
प्र.13. अतिथि संविभाग करने से श्रावक को कौन-सा फल प्राप्त होता है?
प्र.14. क्या अशुभ कार्यों में ही मुनि को आहार त्याग करना चाहिए?

प्र.15. पिण्ड-शुद्धि कितने प्रकार की होती है?
प्र.16. ज्योतिषज्ञान बताकर आहार प्राप्त करना कौन-सा दोष है?
प्र.17. औषध उपचार कर आहार प्राप्त करना कौन-सा दोष है?
प्र.18. अप्रधान दाता या (गुरु सेवा से वेतन चहेता) से आहार लेने में कौन-सा दोष है?
प्र.19. बालक आदि को सजाकर आहार उत्पन्न करवाने में कौन-सा दोष है?
प्र.20. मुनिराज किन कारणों से आहार ग्रहण करते हैं?

प्रश्नपत्र-15

प्र.1. संस्कृत/प्राकृत भक्तियों के अन्त में पढ़ी जाने वाली चूलिका का अर्थ क्या है?
प्र. 2. प्रतिमा-योग किसे कहते हैं?
प्र. 3. प्रतिक्रमण में वर्णित पाप सूत्रों में गान्धर्व सूत्र किसे कहा है?
प्र. 4. असमाधि के स्थानों में रादीणीय पडिहासीका अर्थ क्या है?
प्र. 5. सूरधमाण भोजी किसे कहते हैं?
प्र. 6. थेर विवाद तराए का अर्थ क्या है?
प्र. 7. चित्र कर्मादि सूत्र को पाप सूत्र क्यों कहा जाता है?
प्र. 8. जीव का लक्षण क्या है?
प्र. 9. बादर और सूक्ष्मकायिक जीव किसके आधार से रहते हैं?
प्र. 10. जीवादि पदार्थों को सम्यक्त्व कैसे कहा गया है?
प्र.11. मोक्ष क्या है?
प्र.12. द्रव्यानुयोग का लक्षण क्या है?
प्र.13. बंध का लक्षण क्या है?
प्र.14. पुण्य किसे कहा जाता है?
प्र.15. किण्व वनस्पति किसे कहा जाता है?
प्र.16. संमूर्च्छिम का लक्षण क्या है?
प्र.17. शुद्धाग्नि किसे कहा जाता है?
प्र.18. मूल वनस्पति क्या है?
प्र.19. पृथ्वी के चार भेद कौन-से हैं?
प्र.20. निर्जरा का लक्षण क्या है?

प्रश्नपत्र-16

प्र.1. अनुजीवी गुणों का लक्षण क्या है एवं वे कौन-से हैं?
प्र.2. भाव-कर्म किसे कहते हैं?
प्र.3. द्रव्य-कर्म किसे कहते हैं?
प्र.4. कर्म किसे कहते हैं?
प्र.5. पौद्गलिक वर्गणाओं का स्वरूप क्या है, और वे कैसी हैं?

प्र.6. पुण्यास्रव और पापास्रव के कारण क्या हैं?
प्र.7. रूप, रस, गंध और स्पर्श आदि रूप पुद्गल किसके कारण हैं?
प्र.8 परमाणु किसे कहते हैं?
प्र.9. रूपी पुद्गल के चार भेद कौन-से हैं?
प्र.10. अष्ट कर्मों का जघन्य प्रदेश बन्ध किस जीव के कब होता है?
प्र.11. आबाधा का लक्षण क्या है?
प्र.12. कर्म प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध कब होता है?
प्र.13. उत्कृष्ट और जघन्य प्रदेश-बन्ध की योग्यता रूप सामाग्री क्या है?
प्र.14. मूल प्रकृति रूप ज्ञानावरणादिक कर्मों का जघन्य स्थितिबंध कितना है?
प्र.15. ज्ञानावरणादिक मूल प्रकृतियों का उत्कृष्ट प्रदेश बन्ध किस गुणस्थान में होता है?
प्र.16. व्युच्छित्ति का अर्थ क्या होता है?
प्र.17. बंध, उदय और सत्त्व का वर्णन आगम में किस विवक्षा से है?
प्र.18. कर्म बन्ध का स्वरूप क्या है?
प्र.19. स्वोदय बन्धी प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं?
प्र.20. कर्म-बन्ध के काल में ज्ञानावरणादि कर्मों में विभाग किस तरह होता है?

प्रश्नपत्र-17

प्र.1. कर्मों के उदय और उदीरणा में क्या अन्तर है?
प्र.2. मूल प्रकृतियों का उदय कौन-कौन से गुणस्थानों तक होता है?
प्र.3. मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में उदय व्युच्छित्ति कौन-सी प्रकृतियों की है?
प्र.4. कर्म सत्त्व का अर्थ क्या है?
प्र.5. गुणस्थानों की अपेक्षा कर्म सत्त्व कैसे समझना चाहिए?
प्र.6. अणुव्रतों, महाव्रतों का लाभ कौन-कौन सी आयु बंधने के बाद नहीं होता है?
प्र.7. क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कौन-सी भूमि में हो सकती है?
प्र.8. नवीन आयु का बंध किस जीव को नहीं होता है?
प्र.9. क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक होती है?
प्र.10. क्षायिक सम्यग्दर्शन में कौन-सी सप्त प्रकृतियों का क्षय होता है?
प्र.11. अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के कितनी कर्म प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है?
प्र.12. सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध छूट जाता है?
प्र.13. प्रमत्त संयत गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों का बन्ध होता है?
प्र.14. सयोगकेवली गुणस्थान में कितनी कर्म प्रकृतियों का अबंध है?
प्र.15. षट्खण्डागम ग्रन्थानुसार किस गुणस्थान में कितने कर्म-प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है?
प्र.16. आहारकद्विक का उदय कौन-से गुणस्थान में होता है?
प्र.17. तीर्थंकर प्रकृति का उदय कौन-कौन से गुणस्थान में होता है?

प्र.18. आनुपूर्वी का उदय किन-किन गुणस्थानों में होता है?
प्र.19. संज्वलन लोभ का उदय किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक होता है?
प्र.20. नरकायु और देवायु का उदय किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक होता है?

प्रश्नपत्र-18

प्र.1. मोक्ष और संसार के कारण रूप ध्यान कौन कौन से हैं?
प्र.2. कर्म क्षय के कारण रूप ध्यान का स्वरूप क्या है?
प्र.3. नयों के प्रकरण में एवंभूतनय किसे कहते हैं?
प्र.4. व्यवहार नय का स्वरूप क्या है?
प्र.5. व्यंजन पर्याय कौन-से द्रव्यों में होती है?
प्र.6. जीव द्रव्य की विभाव अर्थ पर्यायें कौन-सी हैं बतलाओ?
प्र.7. पुद्गल द्रव्य की विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय बतलायें?
प्र.8. पुद्गल द्रव्य की विभाव अर्थ पर्यायें कौन-कौन-सी हैं?
प्र.9. आगम में नय का लक्षण क्या है?
प्र.10. विकलप्रत्यक्ष प्रमाण किसे कहा जाता है?
प्र.11. बोधितबुद्ध अनुयोग की अपेक्षा सिद्ध जीव किस प्रकार साध्य है?
प्र.12. सिद्धों का क्या संसार में अवतार संभव है?
प्र.13. सर्वज्ञ और आत्मज्ञ का कथन किस नय से है?
प्र.14. धर्मध्यान के स्वामी कौन होते हैं?
प्र.15. निदान नामक आर्त्तध्यान मुनि के संभव है क्या?
प्र.16. संस्थान विचय धर्मध्यान किसे होता है?
प्र.17. परिग्रहानन्द नामक रौद्रध्यान का स्वरूप क्या है?
प्र.18. अनिष्ट संयोग ध्यान का लक्षण क्या है?
प्र.19. पदस्थ ध्यान में क्या किया जाता है?
प्र.20. पंच धारणाएँ कौन-कौन सी हैं?

प्रश्नपत्र-19

प्र.1. शुद्ध निश्चय नय किसे कहते हैं?
प्र.2. विजातीय उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहा गया है?
प्र.3. त्रिकाल गोचर निवास क्षेत्र को क्या कहते हैं?
प्र.4. मंगलाचरण क्या है?
प्र.5. मंगल के पर्यायवाची नाम क्या हैं?
प्र.6. संश्लेष सम्बन्ध का लक्षण क्या है?
प्र.7. अरिहंतों के नमस्कार में केवल पुण्यबन्ध है या निर्जरा भी?
प्र.8. व्यवहार नय को असत्य कहना उचित है क्या?

प्र.9. संयोग सम्बन्ध की परिभाषा क्या है?
प्र.10. बुद्धिमान लोग कहाँ-कहाँ पर मंगलाचरण करना आवश्यक कहते हैं?
प्र.11. शास्त्र नाम की व्याख्या आचार्यों द्वारा किस तरह से की जाती है?
प्र.12. शुभोपयोग से मात्र पुण्य बन्ध होता है या निर्जरा भी होती है?
प्र.13. किसका नाम तादात्म सम्बन्ध है?
प्र.14. स्थावरों से लेकर त्रसों में असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीव मिथ्यादृष्टि क्यों हैं?
प्र.15. शास्त्र प्रवचन के पहले शास्त्र परिमाण की व्याख्या गुरु कैसे करते हैं?
प्र.16. शुद्ध निश्चय नय का लक्षण क्या है?
प्र.17. केवली को संज्ञी असंज्ञी कहा जा सकता है क्या?
प्र.18. सोलहवें स्वर्ग के देव क्या तीसरी पृथ्वी तक जाकर संबोधन दे सकते हैं?
प्र.19. आहार के प्रकार आगम-अनुयोग में कितने बतलाये गये हैं?
प्र.20. स्थिति के प्रकरण में आयु और भव स्थिति किसे कहा गया है?

प्रश्नपत्र-20

प्र.1. क्षयोपशम सम्यक्त्व में कौन-कौन से दोष लगते हैं?
प्र.2. क्या अनाहारक जीव भी पर्याप्तक होते हैं?
प्र.3. गोमटसार ग्रंथानुसार पच्चीस प्रकार की विकथाएँ कौन सी है?
प्र.4. क्या ढ़ाई द्वीप के बाहर क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव हो सकते हैं?
प्र.5. जिनेन्द्र भगवान के मन संबंधी आगम प्रमाण क्या है?
प्र.6. क्या प्रमत्तादि गुणस्थान में रौद्रध्यान होता है?
प्र.7. धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान में क्या अंतर है?
प्र.8. निगोदिया जीव का लक्षण क्या है?
प्र.9. कौन से गुणस्थान में कौन सा धर्म्यध्यान होता है?
प्र.10. समुद्घात से रहित समय में स्थित केवली कौन कहलाते हैं?
प्र.11. दर्शनमोहनीय व चारित्रमोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ कितनी व कौन सी है?
प्र.12. संकरादि आठ दोष कौन से हैं? नाम बतलाइए।
प्र.13. एक भव से दूसरे भव में जाने पर भी जीव आहारक कैसे बना रहता है?
प्र.14. दिक्कुमार देवों की उत्कृष्ट आयु, आहार और श्वासोच्छ्वास का अन्तराल एवं अवगाहना कितनी है?
प्र.15. लांतव स्वर्ग में इन्द्रक श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक विमानों की संख्या का प्रमाण कितना है?
प्र.16. वर्तमान चौबीसी के किन-किन तीर्थंकरों को दो से अधिक नामों से जाना जाता है? नाम बताइए?
प्र.17. पंचबालयति-बालब्रह्मचारी तीर्थंकरों के शुभ नाम कौन से हैं?

प्र.18. द्वादशांग श्रुत में कितने अंग और कितने पूर्व होते हैं?

प्र.19. स्वर्गों में देवाङ्गनाओं की उत्पत्ति कौन से स्वर्ग तक होती है?

प्र.20. पञ्चम स्वर्ग में कौन-से देवों की देवियाँ नहीं होती?

आधार :आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'**आगम-अनुयोग**'।

परीक्षार्थी परिचय

नाम..... उम्र .....

पिता/माता/पति का नाम .....

पता .....

.....

मोबाईल/फोन नं. .....



सम्यग्ज्ञान एवं सिद्धांत-भूषण पदवी हेतु परीक्षार्थी के लिए नियमावली

1. उपर्युक्त पदवी हेतु परीक्षार्थी की उम्र कम-से-कम 13 वर्ष पूर्ण और अधिक-से-अधिक आंखों की दृष्टि और लेखनी के स्थिर रहने तक रहेगी।
2. परीक्षार्थी अवश्य रूप से सप्त-व्यसनों अथवा मद्य, मधु, मांस का त्यागी एवं तीर्थंकर व उनकी जिनवाणी का श्रद्धालु होना चाहिए।
3. आगम-अनुयोग कृति सम्बन्धी प्राप्त होने वाले प्रश्नोत्तरों तथा अंत में दिये गये प्रश्न-पत्र को स्वयं पढ़कर हल करें और प्रेषित करें तथा अन्य जनों तक भी परीक्षा में भाग लेने की जानकारी अवश्य देने का पूर्ण प्रयास करें। (इस कार्य हेतु इंटरनेट का भी उपयोग कर सकते हैं।)
4. परीक्षार्थी के लिए यह आवश्यक होगा कि वे प्रश्नोत्तरी पढ़कर स्वयं साफ-सुथरे रजिस्टर के पेपर्स पर पूर्ण शुद्धता और विनयपूर्वक उत्तर लिखकर निम्नलिखित पते पर भेजने का उपक्रम करें।
5. उत्तर पुस्तिका पर अंक (नम्बर) देने का भाव उत्तर-पुस्तिका में वर्णित उत्तरों की शुद्धता और लिखावट आदि पर निर्भर करेगा।
6. परीक्षार्थी से ऑनलाइन या फोन द्वारा उत्तर पूछने की पहल भी की जा सकती है अतः अपने पते के साथ ई-मेल एड्रेस या मोबाईल/फोन नं. अवश्य लिखें।
7. उत्तर लिखकर काट दिये जाने पर या घिस दिये जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।
8. परीक्षार्थी प्रश्नों के उत्तर स्वतः अपनी लिखावट में ही लिखें, अन्य किसी के नाम से उत्तर पुस्तिका भरकर प्रेषित किये जाने पर हमारे परीक्षा बोर्ड द्वारा उसे पदवी हेतु मान्य नहीं किया जावेगा।
9. किसी भव्य द्वारा उनके आग्रह किये जाने पर उन्हें आगम-अनुयोग प्रश्नोत्तरी व प्रश्नपत्र उपलब्ध कराये जाने की व्यवस्था परीक्षा-बोर्ड द्वारा की जा सकेगी।
10. सम्यग्ज्ञानभूषण एवं सिद्धांतभूषण पदवी सम्बन्धी उत्तीर्णता प्राप्त करने वाले भव्य गणों को आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण ट्रस्ट, भोपाल के द्वारा प्रमाण पत्र सह सम्मानित किया जावेगा।
11. प्रश्नोत्तरी पुस्तक व प्रश्न-पत्र मंगवाने हेतु परीक्षा-बोर्ड के निम्न लिखित पदवीधारी से सम्पर्क करें:-
12. उत्तर पुस्तिका डाक/पोस्ट से निम्न पते पर प्रेषित करें:-

ट्रस्ट के पदाधिकारी

अध्यक्ष- श्री प्रेमचंद जैन 9893274229

उपाध्यक्ष- डॉ.प्रो. सुधीर जैन 9425011357, **डॉ. प्रशांत जैन** 9826067147

महामंत्री-श्री राजेन्द्र जैन 7049004653 **कोषाध्यक्ष-इंजी. महेन्द्र जैन** 9425601832

मंत्री-डॉ. अजित जैन-9425601161, **श्री जयदीप जैन मोनू** 9826340190

सम्पादक, भाव-विज्ञान, 114, डीके काटेज, ई-8 एक्सटेंशन,
दानापानी रेस्टोरेंट के पास, बावड़िया कला, भोपाल 462026 (म.प्र.)
अथवा Whatsapp पर PDF रूप में प्रेषित करें।
Aarjavvani 9174843674

आगम अनुयोग ग्रन्थ में प्रयुक्त ग्रन्थ सूचि

संकेताक्षर	ग्रंथ का नाम	ग्रंथकार
1. मू.चा.	मूलाचार	आचार्य वट्टकेर
2. जै.सं.	जैनागम संस्कार	आचार्य आर्जवसागर
3. प्र.सा.	प्रवचनसार	आचार्य कुंदकुंद
4.क.दी.	करणानुयोग दीपक	पं.डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य
5. गो.सा.जी.का.	गोम्मटसार जीवकाण्ड	आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती
6. गो.सा.क.का.	गोम्मटसार कर्मकाण्ड	आचार्य देवसेन
7. न.च.प्र.	नय-चक्र प्रकरण	श्री माइल्ल धवल
8. त्रि.महा.	त्रिकालवर्ती महापुरुष	संकलन- (मुनि आदिसागर सेडवाल)
9.ष.ख.ग्रं.	षट्खण्डागम ग्रंथ	आ.पुष्पदन्त भूतबली
10. ज.ध.	जयधवला पुस्तक	आ.वीरसेन स्वमी
11. स.सि.	सर्वार्थसिद्धि	आचार्य पूज्यपाद
12. ध.पु.	धवला पुस्तक	आ.वीरसेन स्वमी
13. म.पु.	महापुराण	आ. जिनसेन स्वामी
14. त्रि.सा.	त्रिलोकसार	आ. नेमिचन्द्र
15. आ.पु.	आदिपुराण	आ.जिनसेन स्वामी
16. जै.सि.कोश	जैनेन्द्र सिद्धांत कोश	जिनेन्द्र वर्णी
17.मु.का.	मुनिसुव्रत का.	कविवर अर्हद्दास
18. ति.प.	तिलोयपण्णत्ति	आ. यतिवृषभ
19. क.प्र.	करणानुयोग प्रवेशिका	पं. कैलासचन्द्र शास्त्री
20. स्वा.का.	स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा	स्वामिकार्तिकेय
21. ह.पु.	हरिवंश पुराण	आ. जिनसेन स्वामी
22. पं.सं.	पंचसंग्रह	श्रीचन्दर्षि महत्तर
23. आ.प.	आलाप पद्धति	आ.देवसेन
24. रा.वा.	राजवार्तिक	अकलंक देव
25. श्लो.वा.	नयवार्तिक	अकलंक देव
26. न.च.	नयचक्र	आ. माइल्ल धवल
27. ल.सा.	लब्धिसार	आ. नेमिचंद स्वामी

आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज के

चातुर्मास स्थल

1985 – सिद्धक्षेत्र आहार जी (मध्यप्रदेश)

1986 – अतिशय क्षेत्र पपौराजी (मध्यप्रदेश)

1987 – अतिशय क्षेत्र थूबौनजी (मध्यप्रदेश)

1988 – मढ़ियाजी, जबलपुर (मध्यप्रदेश)

1989 – सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर (मध्यप्रदेश)

1990 – सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरि (मध्यप्रदेश)

1991 – कोपरगाँव (महाराष्ट्र)

1992 – सांगली (महाराष्ट्र)

1993 – श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)

1994 – दावणगेरे (कर्नाटक)

1995 – पोन्नूरमलै (तमिलनाडु)

1996 – पोन्नूरमलै (तमिलनाडु)

1997 – कन्नलम (तमिलनाडु)

1998 – विशाखाचार्य तपोनिलय (तमिलनाडु)

1999 – नल्लवन पालयम (तमिलनाडु)

2000 – विशाखाचार्य तपोनिलय (तमिलनाडु)

2001 – आरनी (तमिलनाडु)

2002 – शिमोग्गा (कर्नाटक)

2003 – कोपरगाँव (महाराष्ट्र)

2004 – भोपाल (मध्यप्रदेश)

2005 – अशोकनगर (मध्यप्रदेश)

2006 – राँची (झारखंड)

2007 – दमोह (मध्यप्रदेश)

2008 – ग्वालियर (मध्यप्रदेश)

2009 – अजमेर (राजस्थान)

2010 – जयपुर (राजस्थान)

2011 – रामगंजमंडी (राजस्थान)

2012 – सूरत (गुजरात)

2013 – इंदौर (मध्यप्रदेश)

2014 – खातेगाँव (मध्यप्रदेश)

2015 – सिद्धक्षेत्र तारंगाजी (गुजरात)

2016 – मंडीदीप (मध्यप्रदेश)

2017 – जबलपुर (मध्यप्रदेश)

2018 – बंडा (मध्यप्रदेश)

2019 – भोपाल (मध्यप्रदेश)

2020 – ललितपुर (उत्तरप्रदेश)

2021 – लखनादौन (मध्यप्रदेश)

2022 – ईसरी (झारखंड)

2023 – अशोकनगर (मध्यप्रदेश)

2024 – पिड़ावा (राजस्थान)

2025 – इंदौर (मध्यप्रदेश)

2026 – बड़ौत (उत्तरप्रदेश)